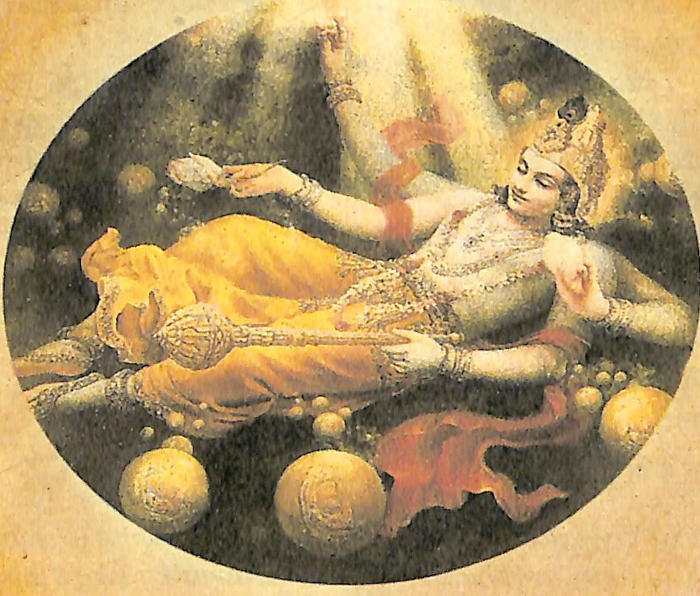
विष्णु महापुराण

(मूल हिन्दी अनुवाद तथा सहित)

डॉ० श्रद्धा शुक्ला



NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक

श्रीविष्णु महापुराण

(मूल तथा हिन्दी अनुवाद सहित)

डॉ. श्रद्धा शुक्ला

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक

श्रीविष्णु महापुराण

(मूल, हिन्दी अनुवाद सहित)

(भाग दो)

डॉ० श्रद्धा शुक्ला
संस्कृत विभाग, मिरांडा हाऊस
दिल्ली

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक
११-ए० यू० ए० जवाहर नगर दिल्ली-११०००७

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित

नाग प्रकाशक

(१) ११ए/यू. ए. जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७

(२) संस्कृत भवन, १२,१५ फ्लेट, संस्कृत नगर, प्लाट नं० ३, सेक्टर-१४, रोहिणी, नई दिल्ली-११००८५

(३) जलालपुर माफी (चुनार-मिर्जापुर) उ० प्र०

ISBN - 7081-81-415-4 (Set)

ISBN - 7081-81-416-2 (Vol. I)

ISBN - 7081-81-417-0 (Vol. II)

प्रथम संस्करण : १९९८

श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा नाग प्रकाशक, ११ए, यू. ए., जवाहर नगर, दिल्ली ११०००७, द्वारा प्रकाशित, अक्षरयोजक : यूनीक प्रिंट मिडिया, दिल्ली-९ तथा जी. प्रिंट प्रासेस, ३०८/२, शहजादा बाग, दयाबस्ती, दिल्ली ११००३५ द्वारा मुद्रित ।

विषयानुक्रमणी

(द्वितीय भाग)

श्रीविष्णु महापुराण

चतुर्थ अंश - पहला अध्याय

(पुरूरवाका जन्म तथा रेवती के साथ बलराम का विवाह)

मैत्रेय उवाच ।

भगवन् ! यन्नरैः कार्य्यं साधुकर्म्मण्यवस्थितैः ।
तन्मह्यं गुरुणाख्यातं नित्यनैमित्तिकात्मकम् ॥ १ ॥

वर्णधर्म्मास्तथाख्याता धर्म्मा ये चाश्रमेषु वै
श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशान् तांस्त्वं प्र ब्रूहि मे गुरो ॥ २ ॥

मैत्रेय बोले—हे भगवन् ! सत्कर्मनिष्ठ सज्जनपुरुषों द्वारा जो नित्य-नैमित्तिक क्रियाएँ करनी चाहिये उनका आपने वर्णन किया । हे गुरो ! आपने वर्णधर्म एवं आश्रमधर्म का वर्णन किया । अब मैं समस्त राजवंशों का वर्णन सुनना चाहता हूँ, कृपया आप वर्णन करें ॥ १-२ ॥

पराशर उवाच ।

मैत्रेय ! श्रूयतामयमनेकयज्विवीरशूरभूपालालङ्कृतो ब्रह्मादिर्मानवो वंशः तथा चोच्यते । ब्रह्माद्यं यो मनोर्वंशमहन्यहनि संस्मरेत् । तस्य वंशसमुच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति ॥ ३ ॥

पराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! अनेकों यज्ञों के करने वाले शूरवीर राजागण उत्पन्न होकर जिस वंश को अलङ्कृत किये हैं इस समय उसी मनुवंश का श्रवण करो । इस मानव वंश का आदि पुरुष श्रीब्रह्माजी हैं । ऐसा कहा जाता है कि जो व्यक्ति आदिपुरुष ब्रह्मा जी से आरम्भ करके समग्र मानव वंश का स्मरण प्रतिदिन करता है, उसके वंश का समुच्छेद कदापि नहीं होता ॥ ३ ॥

तदस्य वंशानुपूर्व्वीमशेषपापप्रक्षालनाय मैत्रेयैतां श्रृणु । तद् यथा सकलजगतामनादिरादिभूत ऋग्-यजुः-सामादिमयो भगवद्विष्णुमयं ब्रह्मणो मूर्त्तिरूपं हिरण्यगर्भो ब्रह्माण्डतो भगवान् ब्रह्मा प्राग्बभूव ॥ ४ ॥

ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्ठजन्मा दक्षः प्रजापतिः दक्षस्याप्यदितिः, अदितेर्विवस्वान्, विवस्वतो मनुः, मनोरिक्ष्वाकु-नृग-धृष्ट-शर्य्याति नरिष्यन्त-प्रांशु-नाभागनेदिष्ठ-करूष-पृषधाख्याः पुत्रा बभूवुः ॥ ५ ॥

हे मैत्रेय ! इसी कारण से अनेक प्रकार के पापों का विनाशक इस मनुवंश का श्रवण करो । उस वंश का विवरण इस प्रकार है—प्राचीन काल में सृष्टि के पहले भगवद्विष्णुमय परमब्रह्म के मूर्तिस्वरूप, समस्त जगत् के आदिभूत ऋक्-यजुः-साममय हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा ब्रह्माण्ड से उत्पन्न हुए । ब्रह्मा के दक्षिण अंङ्गुष्ठ से दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए । दक्ष की अदिति नाम की एक कन्या हुई, उन अदिति के पुत्र सूर्य और सूर्य के पुत्र मनु हुए । मनु के इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु नाभाग, नेदिष्ट, करूष और पृषध्र—ये दश पुत्र हुए ॥ ४-५ ॥

इष्टिञ्च मित्रावरुणयोर्म्मनुः पुत्रकामश्चकार ॥ ६ ॥

तत्रापहते होतुरपचारादिला नाम कन्या बभूव ॥ ७ ॥

सैव च मित्रावरुणप्रसादात् सुद्युम्नो नाम मनोः पुत्रो मैत्रेयासीत् ।

पुनश्चेश्वरकोपात् स्त्री सती सोमसूनोर्बुधस्याश्रमसमीपे बभ्राम ॥ ८ ॥

सानुरागश्च तस्यां बुधः पुरूरवसमात्मजमुत्—पादयामास ॥ ९ ॥

जाते च तस्मिन्नमिततेजोभिः परमर्षिभिरिष्टिमय ऋङ्मयो यजुर्म्मयः साममयोऽथर्व्वमयः सर्वमयो मनोमयो ज्ञानमयोऽकिञ्चिन्मयो भगवान् यज्ञपुरुषस्वरूपी सुद्युम्नस्य पुंस्त्वमभिलषद्भिर्यथावदिष्टः ॥ १० ॥

मनु ने पुत्रोत्पत्ति के पूर्व मित्रावरुण नामक दो देवताओं के प्रसन्नता के लिए एक यज्ञ करना आरम्भ किया । किन्तु मनुपत्नी की प्रार्थना के अनुसार होतागणने कन्यालाभ के संकल्प करके हवन किया । अतएव इस वैकल्पिक यज्ञ में 'इला' नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई । हे मैत्रेय ! मित्रावरुण की कृपा से वह इला नाम की कन्या सुद्युम्न नामक पुत्र हो गया । पुनः शिवजी के प्रकोप से वह सुद्युम्न स्त्री बनकर चन्द्रपुत्र बुध के आश्रम के समीप भ्रमण करने लगी । बुध ने उस स्त्री के साथ प्रेमपूर्वक संगम करके पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया । पुत्रोत्पत्ति के

बाद अमित तेजस्वी महर्षिगण ने सुद्युम्न की पुरुषत्वप्राप्ति निमित्त ऋङ्मय यजुर्मय सामभय अथर्वमय सर्वमय और मनोमय किन्तु परमार्थतः अकिञ्चिन्मय भगवान् यज्ञपुरुषशिवकी आराधना आरम्भ किया ॥ ६-१० ॥

तत्प्रसादादिला पुनरपि सुद्युम्नोऽभवत् ॥ ११ ॥

तस्याप्यु-कल-गयत् विनतसंज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।
सुद्युम्नस्तु स्त्रीपूर्वकत्वाद् राज्यभागं न लेभे ॥ १२ ॥

तत्पित्रा तु वशिष्ठवचनात् प्रतिष्ठानं नाम नगरं
सुद्युम्नाय दत्तम् । तच्चासौ पुरूरवसे प्रादात् ।
पृषध्रस्तु गुरुगोवधात् शूद्रत्वमगमत् ॥ १३ ॥
करूषात् कारूषा महाबलाः क्षत्रिया बभूवुः ॥ १४ ॥
नाभागो नेदिष्ठपुत्रस्तु वैश्यतामगमत् ॥ १५ ॥

तस्माद् भलन्दनः पुत्रोऽभवत् । भलन्दनाद्वत्सप्रिरुदारकीर्त्तिः, वत्सप्रेः प्रांशुरभवत्, प्रजानिश्च प्रांशोरेकोऽभवत्, ततश्च खनित्रः तस्माच्च क्षुपः, क्षुपाच्च अतिबलपराक्रमोऽविविंशोऽभवत् । ततो विविंशः, तस्माच्च खनीनेत्रः, ततश्चातिविभूतिः, अतिविभूतेर्भूरिबलपराक्रमः करन्धमः पुत्रोऽभवत् । तस्माद-प्यविक्षिः, अविक्षेरप्यतिबलः पुत्रोऽभवत् ॥ १६ ॥

भगवान् की कृपा से इला पुनः पुरुष सुद्युम्न हो गया । उस सुद्युम्न के तीन पुत्र हुए ! उन पुत्रों का नाम उत्कल, गय और विनत थे । पूर्वकाल में स्त्री होने के कारण सुद्युम्न को राज्यभाग नहीं मिला । किन्तु वशिष्ठ मुनि के कहने पर पिता ने सुद्युम्न को प्रतिष्ठान नगर प्रदान किया । सुद्युम्न ने भी यह नगर पुरूरवा को प्रदान कर दिया ।

पृषध्रने गुरु की गोहत्या की, अतएव शूद्रत्व प्राप्त किया । करूष से कारूष नामक महाबली क्षत्रिय उत्पन्न हुए । नेदिष्ट पुत्र नाभाग ने वैश्यत्व प्राप्त किया । वैश्यत्व प्राप्ति के पूर्वनाभाग का भलन्दन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । उसका पुत्र उदारकीर्तिमान्, वत्सप्रिति एवं वत्सप्रितिसे प्रांशु, प्रांशु से प्रजानि नामक एक पुत्र हुआ । उसका पुत्र खनीनेत्र, खलित्रका पुत्र क्षुप हुआ । उसका पुत्र परम वीर महाबली अविविंश नामक हुआ, अविविंशका पुत्र विविंश, उसका पुत्र खनीनेत्र,

खनीनेत्र का पुत्र अतिविभूति, उसका पुत्र महाबलिष्ठ करन्धम नामक हुआ। उससे अविक्षि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा अविक्षि के अतिबलशाली मरुत्त नाम का पुत्र हुआ ॥ ११-१६ ॥

यस्येमावद्यापि श्लेकौ गीयेते।

मरुत्तस्य यथा यज्ञस्तथा कस्याभवद् भुवि।

सर्वं हिरणमयं यस्य यज्ञ वस्त्वतिशोभनम् ॥

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः।

मरुतः परिवेष्टारः सदस्याश्च दिवौकसः ॥ १७ ॥

आजकाल भी मरुत्त के विषय में दो श्लोक गाये जाते हैं—

मरुत्त राजा का जैसा यज्ञ हुआ था पृथ्वी पर वैसा यज्ञ और कभी नहीं हुआ, उस यज्ञ में सभी प्रकार के यज्ञसम्बन्धी वस्तुएँ सुवर्णमय और अतिसुन्दर थी। उस यज्ञ में सोमपान से इन्द्र, दक्षिमा से समस्त ब्राह्मण सन्तुष्ट हुए थे। उस यज्ञ में मरुद्गण अन्नादि के परोसनेवाले तथा देवगण सदस्य थे ॥ १७ ॥

मरुत्तश्चक्रवर्त्ती नरिष्यन्तनामानं पुत्रमवाप। तस्माच्च दमः, दमस्य पुत्रो राज्यवर्द्धनो जज्ञे। राज्यवर्द्धनात् सुधृतिरभूत्। ततश्च नरः, तस्माच्च केवलः, केवलाद् बन्धमान्, बन्धुमतो वेगवान्, वेगवतो बुधः, ततः तृणबिन्दुः तस्याप्येका कन्या इलिबिला नाम। तच्चालम्बुषा नाम वराप्सरा तृणबिन्दुं भेजे। तस्यामस्य विशालो जज्ञेः यः पुरीं वैशालीं नाम निर्म्ममे। हेमचन्द्रश्च विशालस्य; पुत्रोऽभवत्। तस्माच्च सुचन्द्रः, तत्तनयो धूम्राश्वः, तस्यापि सृञ्जयोऽभूत्। सृञ्जयात् सहदेवः, ततः कृशाश्वो नाम पुत्रोऽभूत्। सोमदत्तः कृशाश्वाज्जज्ञे; यो दशाश्वमेधा नाजहार। ततपुत्रश्च जनमेजयः, जनमेजयात् सुमतिः। एते वैशालका भूभृतः ॥ १८ ॥

तृणविन्दोः प्रसादेन सर्व्वे वैशालका नृपाः।

दीर्घायुषो महात्मानो वीर्य्यवन्तोऽधार्म्मिकाः ॥ १९ ॥

चक्रवर्ती राजा मरुत ने नरिष्यन्तनामक एक पुत्र उत्पन्न किया, उसका पुत्र दम, दमके राज्यवर्धन नामक पुत्र हुआ। राज्यवर्धन से सुधृति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, सुधृति से नर, नर के पुत्र केवल, केवल से बन्धुमान्, बन्धुमान् से वेगवान्,

वेगवान् से बुध, बुध से तृणबिन्दु तृणबिन्दु से प्रथम इलविलानामकी एक कन्या उत्पन्न हुई । अनन्तर अलम्बुषा नाम अप्सरा से प्रेम होने पर उसके गर्भ से विशाल नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ । इसी विशाल ने वैशाली नगरी बसायी । विशाल का पुत्र हेमचन्द्र हुआ, हेमचन्द्र का सुचन्द्र, उसका पुत्र धूम्राश्व । धूम्राश्व का पुत्र सृञ्जय, सृञ्जय का पुत्र सहदेव, सहदेव का कृशाश्व नामक पुत्र हुआ । कृशाश्व का सोमदत्त नामक पुत्र हुआ । इस सोमदत्त ने दश अश्वमेध यज्ञ किया था । सोमदत्त का पुत्र जनमेजय, जनमेजय का सुमति नामक पुत्र हुआ ! ये समस्त विशाल वंश के राजागण हुए । इनके सम्बन्ध में एक श्लोक कहा जाता है—

तृणबिन्दु के प्रसाद से समस्त विशालवंशीय राजागण दीर्घायु, महात्मा, पराक्रमी और अत्यन्त धार्मिक थे ॥ १८-१९ ॥

शर्य्यातेः कन्या सुकन्या नामाभवत्; यामुपयेमे च्यवनः । आनर्त्तश्च नाम धार्म्मिकः शर्य्यातिपुत्रोऽभवत् । आनर्त्तस्यापि रेवती नाम पुत्रो जज्ञे, योऽसावानर्त्तविषय बुभुजे, पुरीञ्च कुश स्थलीमध्युवास । रेवतस्यापि ररतः पुत्रः ककुद्मी नाम धर्म्मात्मा भ्रातृशतज्येष्ठोऽभवत् । तस्य च रेवती नाम कन्या । तामादाय कस्येयमर्हतीति भगवन्तम ब्जयोनिं प्रष्टुं ब्रह्मलोकं जगामः । तावच्च ब्रह्मणोऽन्तिके हाहाहूहूसंज्ञाभ्यां गन्धर्व्वाभ्यामतितानं नाम दिव्यं गान्धर्व्वमगीयत ॥ २० ॥

तावच्च त्रिमार्गपरिवर्त्तैरनेकयुगपरिवृत्ति तिष्ठन्नपि रैवतकः श्रृण्वन् मुहूर्त्तमिव मेने ॥ २१ ॥

शर्याति की सुकन्या नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई, उसके साथ च्यवन का विवाह हुआ । शर्याति के आनर्त नामक एक परम धार्मिक पुत्र हुआ और आनर्त का रेवत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । ये रेवत नामक राजा ने आनर्त राज्य का उपभोग एवं कुशस्थली नाम की नगरी में निवास किया । रेवत का पुत्र रैवत ककुद्मी नामक अत्यन्त धर्मात्मा एक पुत्र था जो एक सौ पुत्रों में ज्येष्ठ था, उनकी रेवती नाम की एक कन्या थी । रैवत ककुद्मी इस कन्या का विवाह किसके साथ करे यह बात भगवान् ब्रह्मा जी से पूछने के लिए ब्रह्मलोक में गये, उस समय ब्रह्मलोक में हाहा और हूहू नामक दो गन्धर्व अतितान नामक दिव्य गान्धर्वगान कर रहे थे । उस समय षड्ज, मध्यम गान्धारादि (अथवा तारा, उदारा और सुदारा—ये तीन) स्वर के परिवर्तन से अत्यन्त मनोहर उस गान को श्रवण करते करते राजा अनेकों युगपर्यन्त

वहा रहें, किन्तु समझ नहीं सके । और उन्होंने इस युग परिवर्तन को समझा ही नहीं किन्तु उनके मन में हुआ कि अभी एक मुहूर्तकाल ही व्यतीत हुआ है ॥ २०-२१ । ।

गीतावसाने भगवन्तमब्जयोनिं प्रणम्य रैवतकः कन्यायोग्यं वरमपृच्छत् । तच्चाह भगवान्,—कथय योऽभिमतस्ते वर इति । पुनश्च प्रणम्य भगवते यथाभिमतानात्मनः स वरान् कथयामास,—क एषां भगवतोऽभिमतः ? कस्मै कन्यामिमां प्रयच्छा मीति । ततः किञ्चिदवनतशिराः सस्मितो भगवान् अब्जयोनिराह ॥ २२ ॥

ये एते भवतोऽभिमताः, नैतेषां साम्प्रतमपत्यापत्यसन्ततिरप्यवनीतलेऽस्ति । बहूनि हि तवात्रैतद् गान्धर्व्वं श्रृण्वतश्चतुर्युगान्यतीतानि । साम्प्रत भूतलेऽष्टाविंशतितमस्य मनोश्चतुर्युगमतीतप्रायम्, आसन्नो हि तत्कलिः । अन्यस्मै कन्यारत्नमिदं भवतैकाकिना देयम् ॥ २३ ॥

भवतोऽपि मित्र-मन्त्रि-भृत्य-कलत्र-बन्धु बल-कोषादयः कालेनैतेनात्यन्त मतीताः ॥ २४ ॥

पुनरप्युत्पन्नसाध्वसः स राजा भगवन्तं प्रणम्य पप्रच्छ,—भगवन्! एवमवस्थिते ममेयं कस्मै देयेति । ततः स भगवान् किञ्चिदवनतकन्धरं कृताञ्जलिभूतं सप्तलोकगुरुरब्जयोनिराह ॥ २५ ॥

पश्चात् गान समाप्त होने पर रैवत राजा ने ब्रह्मा जी को प्रणाम करके कन्या के लिए उपयुक्त वर के विषय में प्रश्न किया । तब ब्रह्मा जी ने कहा—तुम्हें जो भी वर अभिमत हो उसे कहो । तब उन्होंने भगवान् ब्रह्माजी को प्रणाम करके अपने अभिमत समस्त वरों के विषय में वर्णन करके पूछा कि इनमें से आप किसे प्रसन्द करते हैं जिसे मैं यह कन्या दूं । इसके बाद कमलयोनि कुछ शिर झुकाकर हंसते हुए बोले—तुमने जिन अभिमत समस्त वरों के विषय में कहा इस समय उनमें से किसी के भी पुत्र पौत्रादि सन्तान पृथ्वी पर वर्तमान नहीं है । कारण इस स्थान में तुम्हें गान श्रवण करते हुए बहुत युग व्यतीत हो गये । इस समय पृथ्वी पर अष्टाविंशतितम मनु का चतुर्युग प्रायः समाप्त है और कलियुग भी आसन्न है । इस समय तुम एकाकी पुरुष हो (अर्थात् तुम्हारे समान दूसरा कोई भी पुरुष संसार में वर्तमान नहीं है, किसी अन्य वर के साथ इस कन्या का विवाह कर दो । इस समय तुम्हारे पुत्र मित्र, दास, स्त्री, बन्धु, सेना और कोषादि समस्त समाप्त हो चुके हैं । पुनः भयभीत रैवत भगवान् को प्रणाम करके बोले—भगवन् ! ऐसी अवस्था में मैं अपनी

कन्या का विवाह किसके साथ करूं ? अनन्तर सप्तलोक के गुरु पद्मयोनि भगवान् ब्रह्म कुछ नम्र एवं कृताञ्जलियुक्त राजा से बोले ॥ २२-२५ ॥

न ह्यादिमध्यान्तमजस्य यस्य विद्मो वयं सर्व्वगतस्य धातुः ।
न च स्वरूपं न परं स्वभावं न चैव सारं परमेश्वरस्य ॥ २६ ॥
कलामुहूर्त्तादिमयश्च कालो न यद् विभूतेः परिणामहेतुः ।
अजन्मनाशस्य समस्तमूर्त्ते—रनामरूपस्य सनातनस्य ॥ २७ ॥
यस्य प्रसादादहमच्युतस्य भूतः प्रजासृष्टिकरोऽन्तकारी ।
क्रोधाच्च रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये पुरुषः परस्मात् ॥ २८ ॥
मद्रूपमास्थाय सृजत्यजो यः स्थितौ च योऽसौ पुरुषस्वरूपी ।
रुद्रस्वरूपेण च योऽत्ति विश्वं धत्ते तथानन्तवपुः समस्तम् ॥ २९ ॥
शक्रादिरूपी परिपाति विश्व—मर्केन्दुरूपश्च तमो हिनस्ति ।
पाकाय योऽग्नित्वमुपेत्य लोकान् बिभर्त्ति पृथ्वीवपुरव्ययात्मा ॥ ३० ॥
चेष्टां करोति श्वसनस्वरूपी लोकस्य तृप्तिञ्च जलस्वरूपी ।
ददाति विश्वस्थितिसंस्थितस्तु सर्व्वावकाशञ्च नभःस्वरूपी ॥ ३१ ॥
यः सृज्यते सर्गकृदात्मनैव यः पाल्यते पालयिता च देयः ।
विश्वात्मनः संह्रियतेऽन्तकारी पृथङ् न यस्यास्य च योऽव्ययात्मा ॥ ३२ ॥
यस्मिन् जगद् यो जगदेतदाद्यो यश्चाश्रितोऽस्मिन् जगति स्वयम्भूः ।
स सर्व्वभूतप्रभवो धरित्र्यां स्वांशेन विष्णुर्नृपतेऽवतीर्णः ॥ ३३ ॥
कुशस्थली या तव भूप ! रम्या पुरी पुराभूदमरावतीव ।
सा द्वारका सम्प्रति तत्र चास्ते स केशवांशो बलदेवनामा ॥ ३४ ॥

ब्रह्मा जी बोले—जिस अजन्मा भगवान् का आदि, मध्य और अन्त हम लोग नहीं जानते, जो सर्वव्यापी धाता परमेश्वर स्वरूप हैं और जिसकी तत्त्वसीमा स्वभाव और बल के विषय में हम लोग कुछ भी नहीं जानते । कलामुहूर्तमय काल भी जिनकी विभूति के परिमाण का कारण नहीं है, जिसका जन्म और मरण भी नहीं है तथा जो सनातन एकरूप हैं और जिसका नामद्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता । जिसकी कृपा से मैं प्रजा की सृष्टि करता हूँ । जिनका क्रोधस्वरूप रुद्र जगत् का विनाश करते हैं और स्थिति काल में पुरुषस्वरूप जो परमात्मा से उत्पन्न होकर

जगत् को स्थिति करते हैं। जो स्थिति के समय स्वयं ही विष्णुस्वरूप हैं, जो रुद्ररूप से जगत् का प्रलय करते हैं, जो अनन्त शरीर-धारण करके समस्त जगत् को धारण करते हैं, जो इन्द्रादि के रूप से विश्व का पालन करते हैं जो सूर्य आदि चन्द्रमा से अन्धकार का विनाश करते हैं, पृथ्वी रूप से जो भगवान् अव्ययात्मा पाक के निमित्त अग्निरूप धारण करके समस्त लोक को धारण करते हैं, जो श्वासरूप होकर जीवगण को चेष्टा प्रदान करते हैं जो जलरूप होकर लोक समूह को तृप्ति साधन करते हैं तथा विश्व की स्थिति के निमित्त जो आकाशस्वरूप होकर सभी को अवकाश प्रदान करते हैं। जो सृष्टिकर्त्ता होकर भी विश्वरूप से आप ही अपने द्वारा रचा जाता है। अपने द्वारा ही पालित और स्वयं प्रतिपालक है। जो विश्व के संहारकारक होकर स्वयं सुरक्षित रहते हैं, जिनके अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है, जो अव्ययात्मा हैं, जिनमें समस्त जगत् है, जो जगत् स्वरूप हैं और जो जगत् के आश्रित तथा स्वयम्भू हैं। हे नरेश! समस्त भूतों का कारणभूत वह अपने अंश से इस पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ है। हे भूप! पूर्वकाल में अमरावती के समान रमणीय जो तुम्हारी कुशस्थली नाम की नगरी थी यही इस समय द्वारका नाम की नगरी है। उस नगरी में भगवान् श्रीविष्णु अपने अंश से बलदेवनाम से विराजमान हैं।। ३४ ॥

तस्मै त्वमेनां तनयां नरेन्द्र ! प्रयच्छ मायामनुजाय जायाम्।
श्लाघ्यो वरोऽसौ तनया तवेयं स्त्रीरत्नभूता सदृशो हि योगः ॥ ३५ ॥

हे नरेन्द्र ! उस माया मनुष्य भगवान् बलदेव को तुम अपनी कन्या को पत्नी रूप से प्रदान करो। बलदेवजी जगत् में अति प्रशंसनीय हैं, और यह तुम्हारी कन्या भी स्त्रीरत्नभूता है अतएव इन दोनों का परस्पर मिलन योग्य है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २६-३५ ॥

इतीरितोऽसौ कमलोद्भवेन भुवं समासाद्य पतिः प्रजानाम्।
ददर्श ह्रस्वान् पुरुषानशेषा—नत्यौजसः स्वल्पविवेकवीर्य्यान् ॥ ३६ ॥
कुशस्थल ताञ्च पुरीमुपेत्य दृष्टान्यरूपां प्रददौ स्वकन्याम्।
सौरध्वजाय स्फटिकाचलाभ—वक्षः स्थलायातुलधीर्नरेन्द्रः ॥ ३७ ॥
उच्चप्रमाणामति तामवेक्ष्य स्वलाङ्गलाग्रेण स तालकेतुः।
विनामयामास ततश्च सापि बभूव सद्यो वनिता यथान्या ॥ ३८ ॥

तां रेवतीं रैवतभूपकन्यां सीरायुधोऽसौ विधिनोपयेमे।
दत्त्वा च कन्यां स नृपो जगाम हिमाचलं वै तपसे धृतात्मा ॥ ३९ ॥

पराशर जी बोले—भगवान् ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर राजा रैवत ने पृथ्वी पर जाकर देखा कि—समस्त मानव समूह ह्रस्व, अल्प तेजस्वी, अल्पपराक्रमी और विवेकशून्य हो गये है। अतुलनीय बुद्धिमान् नरेन्द्र ने अपनी पुरी कुशस्थली को अन्यरूप में ही देखा, अनन्तर वहां पर अपनी पुत्री रेवती को बलदेव को प्रदान किया। भगवान् बलदेव जी का वक्षःस्थल स्फटिक पर्वत के समान श्वेतवर्ण था। भगवान् बलदेवजी ने उस रेवती को अत्यन्त दीर्घशरीरवाली देखकर अपने हलके अग्रभाग से उसे ह्रस्व (छोटा) शरीरवाली बना दी। उस समय रेवती भी तत्कालीन अन्य स्त्री के समान खर्व (नाटी) बन गयी। बलदेव जी को उस रेवतराज कन्या रैवती के साथ विवाह करने के बाद धीर स्वभाववाले बन गये। रेवत राजा भी कन्यादानोपरान्त तपस्या करने के लिए हिमालय पर्वत पर चले गये ॥ ३५-३९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में पहला अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - दूसरा अध्याय

(युवनाश्व और सौमरि का उपाख्यान)

पराशर उवाच ।

यावच्च ब्रह्मलोकात् ककुद्मी रैवतो नामाभ्येति तावत् पुण्यजनसंज्ञा राक्षसास्तामस्य पुरीं कुशस्थलीं जघ्नुः ॥ १ ॥

तावच्चास्य भ्रातृशतं पुण्यजनत्रासाद् दिशो भेजे । तदन्वयाश्च क्षत्रियाः सर्व्वदिक्षु अभवन् । धृष्टस्यापि धार्ष्टुकं क्षत्रं समभवत् । नभागस्यात्मजो नाभागः, तस्याम्बरीषः अम्बरीषस्यापि विरूपोऽभवत् । विरूपात् पृषदश्वो जज्ञे । ततश्च रथीतरः । तत्रायं श्लोकः ।

एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ २ ॥

पराशरजी बोले—जिस समय रैवत ककुद्मी राजा ब्रह्मलोक से नहीं आये थे उसी बीच पुण्यजन नामक राक्षसों ने कुशस्थली नाम की पुरी को विध्वंस कर दिया । उस समय रैवत राजा के एक सौ भाईयों ने पुण्यजन संज्ञक राक्षसों के भय से दिशा विदिशाओं में भाग कर अपनी रक्षा की । उनके ही वंशज क्षत्रियगण सभी दिशाओं में फैल गये । धृष्ट के वंशज धार्ष्ट के नाम से विख्यात हुए । नभाग का पुत्र नाभाग, उसका पुत्र अम्बरीष, अम्बरीष का विरूप नामक पुत्र हुआ । विरूप क पुत्र पृषदश्व था । उसका पुत्र रथीतर, इस रथीतर के सम्बन्ध में एक श्लोक कहा जाता है—ये सभी रथीतर के वंशज क्षत्रिय सन्तान होते हुए भी पश्चात् आङ्गिरस नाम से प्रसिद्ध हुए । इस प्रकार रथीतर वंशज को क्षत्रोपेत ब्राह्मण कहा जा सकता है ॥ १-२ ॥

क्षुवतश्च मनोरिक्ष्वाकुर्घ्राणतः पुत्रो जज्ञे। तस्य पुत्रशतप्रवरा विकुक्षि-निमि-दण्डाख्यास्त्रयः पुत्राः। शकुनिप्रमुखाः पञ्चाशत् पुत्रा उत्तरापथरक्षितारो बभूवुः। चत्वारिंशदष्टौ च दक्षिणापथे भूपालाः ॥ ३ ॥

छीकने के समय मनु की नासिका से इक्ष्वाकु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकु के एक सौ पुत्रों में विकुक्षि, निमि और दण्डक—ये तीन प्रसिद्ध थे। शकुनि आदि उनके पचास पुत्र उत्तरापथ के राजा हुए, शेष अड़तालीस पुत्र दक्षिणापथ के राजा बने ॥ ३ ॥

स च इक्ष्वाकुरष्टकायामुत्पाद्य श्राद्धार्हमांसमानयेति विकुक्षिमाज्ञापयामास ॥ ४ ॥

स तथेति गृहीताज्ञो वनमभ्येत्यानेकान् मृगान् हत्वा अतिश्रान्तोऽतिक्षुत्परीतो विकुक्षिरेकं शश मभक्षयत्, शेषञ्च मांसमानीय पित्रे निवेदयामास। इक्ष्वाकुणापि इक्ष्वाकुकुलाचार्य्यस्तत्प्रोक्षणाय वशिष्ठः प्रचोदितः प्राह—अलमनेनामेध्येनामिषेण। दुरात्मनानेन ते पुत्रेण एतन्मांसमुपहतम् यतोऽनेन शशको भक्षितः। ततश्चासौ विकुक्षिः गुरुणैवमुक्तः शशादसंज्ञा मवाप, पित्रापि च परित्यक्तः। पितर्य्युपरते चाखिलामेतां पृथ्वीं धर्म्मतः शशास! शशादस्य च परञ्जयो नाम पुत्रोऽभवत् ॥ ५ ॥

एक दिन राजा इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध के निमित्त श्राद्ध योग्य मांस लाने के लिए विकुक्षि को कहा। वह भी पिता की आज्ञा मानकर वन में जाकर अनेक मृगों का वध करने से श्रान्त और बुभुक्षित हो गया। पश्चात उसने एकत्रित मृत पशुओं से एक शशक (खरगोस) का भक्षण करके शेष मांस अपने पिता को निवेदन किया। अनन्तर राजा इक्ष्वाकु ने इक्ष्वाकुकुल के पुरोहित वशिष्ठमुनि को समस्त मांस को प्रोक्षण करने के लिए कहा। उस समय वशिष्ठ ने कहा कि इस अपवित्र मांस से क्या प्रयोजन है। तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने समस्त मांस को अपवित्र (उच्छिष्ट) कर दिया है। क्योंकि इस पुत्र ने समस्त मांसों से एक शशक (खरगोस) का भक्षण कर लिया। गुरु ने जब ऐसी बात कही, तब वह पुत्र विकुक्षि शशाद नाम से प्रसिद्ध हुआ, और राजा ने उसका परित्याग किया। पश्चात् राजा इक्ष्वाकु की मृत्यु होने पर विकुक्षि धर्मानुसार समस्त भूमण्डल का शासन करने लगा। शशाद का परञ्जय नामका पुत्र हुआ था ॥ ४-५ ॥

इदञ्चान्यत्, —पुरा हि त्रेतायां दैवासुरमतीव भीषणं युद्धमासीत्।

तत्र चातिबलिभिरसुरैरमराः पराजिता भगवन्तं विष्णुमाराधयाञ्चक्रुः ॥६ ॥

प्रसन्नश्च देवानामनादिनिधनः सकलजगत्परायणो नारायणः प्राह,—ज्ञातमेव मया युष्माभिर्यदभिलषितम्, तदर्थमिदं श्रूयताम् ॥ ७ ॥

परञ्जयो हि नाम शशादस्य च राजर्षेस्तनयः क्षत्रियवर्य्यः । तच्छरीरेऽहमंशेन स्वयमेवावतीर्य्य तानशेषानसुरान् निहनिष्यामि, तद्भवद्भिः परञ्जयोऽसुरवधार्थाय इह कार्य्योद्योगः कार्य्य इति । एतच्छ्रुत्वा प्रणम्य भगवन्तं विष्णुममराः परञ्जयसकाशमाजग्मुः ॥ ८ ॥

ऊचुश्चैनं भोः भोः क्षत्रियवर्य्य ! अस्माभिरभ्यर्थितेन भवता अस्माकमरातिवधोद्यतानां साहायक कृतमिच्छामः ॥ ९ ॥

तद्भवता अस्माकमभ्यागतानां प्रणयभङ्गो न कार्य्यः । इत्युक्तः परञ्जयः प्राह,—सकलत्रैलोक्यनाथो योऽयं युष्माकमिन्द्रः शतक्रतुः, अस्य यद्यहं स्कन्धमारूढ़ो युष्मदरातिभिः सह योत्स्ये, तदाहं भवतां सहायः । इत्याकर्ण्य समस्तदेवैरिन्द्रेण च बाढ़ मित्येवमन्वीप्सितम् ॥ १० ॥

ततश्च शतक्रतोर्वृषभरूपधारिणः ककुत्स्थो हर्ष समन्वितो भगवतश्च राचरगुरोरच्युतस्य तेजसाप्य यितो देवासुरसंग्रामे समस्तानेवासुनान् निजघान यतश्च वृषभककुत्स्थन राज्ञा निसूदितमसुरबलम्, ततश्चासौ ककुत्स्थ संज्ञामवाप ॥ ११ ॥

और यह भी सुना जाता है कि पूर्वकाल में त्रेतायुग में देवता और दानवों का परस्पर अति भयङ्कर युद्ध हुआ । उस समय देवगण, भगवान्, श्रीविष्णुकी आराधना करने लगे । अनन्तर अनादि निधन आदि अन्तरहित सम्पूर्ण जगत् की गति भगवान् नारायण देवगण के ऊपर प्रसन्न होकर बोले—तुमलोग जिस इच्छा से आराधना करते हो वह मैं जानता हूँ, यह तुम्हारी इच्छा किस प्रकार पूरी होगी वह मैं कहता हूँ । शशाद नामक राजर्षि के परञ्जय नामक क्षत्रियश्रेष्ठ पुत्र है । मैं उसके शरीर मैं अपने अंश से प्रविष्ट होकर समस्त असुरगण का विनाश करूँगा । तुम लोग असुरों के वध के लिए परञ्जय को कार्योद्योगी (अर्थात् युद्ध के लिए) तैयार करो । देवगण इन बातों को श्रवण करने के बाद विष्णु को प्रणाम करके परञ्जय के समीप पहुंचे । देवगण आकर परञ्जय से बोले—हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! हमलोग आप से प्रार्थना करते हैं कि हमलोग शत्रुवध के लिए सचेष्ट हैं इस कार्य में आप हमारी सहायता करें । इसी कारण हम सब आपके समीप आये हैं । आप हम लोगों

का प्रेम भङ्ग न करें। देवताओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर परञ्जय बोला—समस्त त्रिलोकी के स्वामी शतक्रतु जो आपलोगों के इन्द्र हैं उनके स्कन्धपर बैठकर यदि मैं शत्रुगण से युद्धकर सकूँ तब मैं आप लोगों की सहायता करूँगा, अन्यथा नहीं। इस बात को सुनकर समस्त देवगण और इन्द्र ने भी अच्छा ऐसा ही हो' ऐसा कहकर स्वीकार किया। अनन्तर देवासुर संग्राम में वृषभरूपधारी इन्द्र के पर स्थित और प्रसन्न राजा परञ्जय ने चराचर गुरु भगवान् श्रीविष्णु के तेज से युक्त एवं परिपुष्ट होकर समस्त असुर समूह का वध किया। क्योंकि राजा ने वृषभ रूपधारी इन्द्र के ककुत् प्रदेश पर बैठकर असुरबल का दलन किया, अत एव उनका नाम ककुत्स्थ हुआ ॥ ६-११ ॥

ककुत्स्थस्याप्यनेनाः पुत्रोऽभूत्। अनेनसः पृथुः, पृथोर्विश्वगश्वः, तस्य चार्द्रोऽभूत्, अर्द्रस्य युवनाश्वः तस्य श्रावस्तः, यः श्रावस्तीं पुरीं निवेश यामास। श्रावस्तस्य बृहदश्वः, बृहदश्वस्यापि कुवलयाश्वः योऽसावुतङ्कस्य महर्षेरपकारिणं धुन्धुनामानमसुरं वैष्णवेन तेजसाप्यायितः पुत्रसहस्त्रैरेकविंशतिभिः परिवृतो जघान, धुन्धुमारसंज्ञामवाप। तस्य च समस्ता एव पुत्रा धुन्धुमुखनिःश्वासाग्निना विप्लुष्टा विनेशुः ॥ १२ ॥

दृढ़ाश्व-चन्द्राश्व-कपिलाश्वास्त्रयः केवलमवशे षिताः। दृढ़ाश्वाद् वार्य्यश्वः, तस्माद् निकुम्भः निकुम्भात् संहताश्वः, ततश्च कृशाश्वः तस्मात् प्रसेनजित्, ततो युवनाश्वोऽभवत्। तस्य चापुत्रस्यातिनिर्व्वेदान्मुनीनामाश्रममण्डले निवसतः कृपालुभिस्तैर्मुनिभिरपत्योत्पादनाय इष्टिः कृता। तस्याञ्च मध्यरात्रे निवृत्तायां मन्त्रपूतजलपूर्णकलसं वेदिमध्ये निवेश्य ते मुनयः सुषुपुः ॥ १३ ॥

ककुत्स्थका पुत्र अनेना और अनेना के पुत्र पृथु हुआ। पृथु का पुत्र विश्वगश्व, उसका पुत्र आर्द्र था। आर्द्र का पुत्र युवनाश्व, युवनाश्व का श्रावस्त नामक पुत्र हुआ। इसी श्रावस्त ने श्रावस्ती नाम की पुरी बसायी। श्रावस्त का पुत्र बृहदश्व और उसका पुत्र कुवलयाश्व हुआ। इस कुवलयाश्व ने इक्कीस हजार पुत्रों से युक्त होकर एवं वैष्णवतेज के प्रभाव से परिपुष्टि प्राप्त करके उत्तङ्क ऋषि के विरोधी धुन्धुनामक असुर को विनाश कर धुन्धुसार नाम प्राप्त किया। इस कुवलयाश्व के समस्त पुत्रगण धुन्धु नामक असुर के मुख निश्वास से उत्पन्न अग्नि में जल कर विनष्ट हो गये थे। उनमें केवल दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व— ये तीन शेष बचे थे। दृढाश्व का पुत्र वार्यश्व, उसका पुत्र निकुम्भ, निकुम्भ का पुत्र

संहताश्व, संहताश्व से कृशाश्व, कृशाश्व से प्रसेनजित् और उसका पुत्र युवनाश्व हुआ। युवनाश्व ने अपुत्र होने के कारण अत्यन्तक दुःखी होकर मुनिगण के आश्रम में निवास किया। समय बीतने पर कृपालु मुनियों ने युवनाश्व की पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ आरम्भ किया। वह यज्ञ मध्यरात्रि में पूर्ण हुआ। मुनिगण मन्त्रपूत जलकलश को वेदों के बीच में रखकर सो गये ॥ १२-१३ ॥

तेषु च सुप्तेषु अतीव तृट्परीतः स भूपालस्तमा श्रमं विवेश, सुप्तांश्च तानृषीन् नैवोत्थापयामास ॥ १४ ॥

तञ्च कलसजलमपरिमेयमाहात्म्यं मन्त्रपूतं पपौ प्रबुद्धाश्च ऋषयः पप्रच्छुः,—केनैतन्मन्त्रपूतं वारि पीतम् ? अत्र हि पीते राज्ञोऽस्य युवना श्वस्य पत्नी महाबलपराक्रमं पुत्रं जनयिष्यति। इत्याकर्ण्य स राजा अजानता मया पीतमित्याह ॥ १५ ॥

गर्भश्च युवनाश्वोदरेऽभवत् क्रमेण च ववृधे। प्राप्तसमयश्च दक्षिणं कुक्षिमवनीपतेर्निर्भिद्य निश्चकाम न चासौ राजा ममार ॥ १६ ॥

जातो नामैष कं धास्यतीति ते मुनयः प्रोचुः अथागम्य देवराड़ब्रवीत्—मामयं धास्यतीति। ततो मान्धाता नामतोऽभवत्, वक्त्ते, चास्य प्रदेशिनी देवराजेन न्यस्ता, तां पपौ। ताञ्चामृतस्राविणीमासाद्य पीत्वा चाह्नैव व्यवर्द्धत। स तु मान्धाता चक्रवर्ती सप्तद्वीपां महीं बुभुजे। भवति चात्र श्लोकः

यावत् सूर्य्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्व्वं तद यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ १७ ॥

अनन्तर ऋषिगण के सो जाने पर राजा युवनाश्व ने प्यास से व्याकुल होकर उस स्थान में प्रवेश किया किन्तु मुनियों को जगाया नहीं। राजा ने अपरिमेय माहात्म्य-मन्त्रों से पवित्र उस जल पान कर लिया। जागने पर ऋषिगण ने जिज्ञासा की—किसने इस मन्त्रपूत जल को पी लिया ? इस जल को पीकर युवनाश्व की पत्नी महाबलपराक्रमसम्पन्न पुत्र उत्पन्न करती, यह उसी के लिये था। इस बात को सुनकर राजा बोले—बिना जाने मैंने यह मन्त्र पूत जल पी लिया। इसके बाद युवनाश्व को ही गर्भ रह गया और कालक्रम से वह बढ़ने लगा। अनन्तर राजा के दक्षिण कुक्षि को चीर कर बालक निकाला गया किन्तु राजा की मृत्यु नहीं हुई। मुनियों ने कहा कि यह उत्पन्न हुआ बालक क्या पान करेगा (अर्थात् किसका स्तन

पान करके जीवित रहेगा)। तब इन्द्र ने कहा—यह बालक मेरे को पान करेगा (अर्थात् मेरी सहायता से जीवित रहेगा) इसी कारण से इस कुमार का नाम मान्धाता (मां धाता) नाम हुआ। पश्चात् देवराज इन्द्र ने इस बालक के मुख में तर्जनी अङ्गुली प्रदान किया, और बालक उस अङ्गुलि को चूसने लगा। उस अमृतवर्षिणी अङ्गुलि को पाकर बालक एक दिन में ही बढ़ गया। यही बालक मान्धाता समय पर चक्रवर्ती राजा हुआ। उसने सप्तद्वीपवाली पृथ्वी का भोग किया। इस मान्धाता के विषय में एक श्लोक कहा जाता है जहाँ से भगवान् सूर्य का उदय होता है, जहाँ पर वे अस्त होते हैं इस बीच का समस्त क्षेत्र युवनाश्व वंशज राजा मान्धाता का ही कहा जाता है ॥ १४-१७ ॥

मान्धाता च शशबिन्दुदुहितरं बिन्दुमतीमुपयेमे, पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुं कुन्दञ्च तस्यामपत्यत्रयमुत्पादयामास। पञ्चाशच्च दुहितरतस्य नृपतेर्बभूवुः ॥ १८ ॥

बह्वृचश्च सौभरिर्नाम ऋषिरन्तर्जले द्वादशाब्दं काल मुवास ॥ १९ ॥

तत्र चान्तर्जले सम्मदनामातिबहुप्रजोऽतिप्रमाणो मीनाधिपतिरासीत् तस्य पुत्र-पौत्र-दौहित्राः पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतो वक्षः-पुच्छ-शिर साञ्चोपरि भ्रमन्तस्तेनैव सहाहर्निशमतिनिर्वृता रेमिरे। स चापि तत्स्पर्शोपचीयमानहर्षप्रकर्षो बहुप्रकारं तस्यर्षेः पश्यतस्तैरात्मज-पौत्र-दौहि त्रादिभिः सहानुदिवसं बहुप्रकारं रेमे। अथान्तर्जलावस्थितः स सौभरिरे काग्रतासमाधानमपहायानुदिनं तत् तस्य मत्स्यास्या त्मजपौत्रदौहित्रादिभिः सहातिरमणीयं ललितमवे क्ष्याचिन्तयत् ॥ २० ॥

अहो धन्योऽयमीदृशमपि अनभिमतं योन्यन्तरम वाप्य एभिरात्मजपौत्रा दिभिः सह रममाणोऽतीवा स्माकं सपृहामुत्पादयति। वयमप्येवं पुत्रादिभिः सह रमयिष्यामः। इत्येवमभिसमीक्ष्य स तस्मादन्तर्ज लान्निष्क्रम्य निर्व्वेष्टुकामः कन्यार्थं मान्धातारं राजानमगच्छत् ॥ २१ ॥

अथागमनश्रवणसमनन्तरं चोत्थाय तेन राज्ञा सम्यग अर्घ्यादिना पूजितः कृतासनपरिग्रहः सौभरि रुवाच।

निर्व्वेष्टुकामोऽस्मि नरेन्द्र कन्यां प्रयच्छ मे मा प्रणयं विभाङ्क्षीः।
न ह्यर्थिनः कार्य्यवशाभ्युपेताः ककुत्स्थगोत्रे विमुखाः प्रयान्ति ॥ २२ ॥

अन्येऽपि सन्त्येव नृपाः पृथिव्यां क्ष्मापाल येषां तनयाः प्रभूताः ।
किन्त्वर्थिनामर्थितदानदीक्षा कृतव्रत श्लाघ्यमिदं कुलं ते ॥ २३ ॥
शतार्द्धसङ्ख्यास्तव सन्ति कन्यास्तासां ममैकां नृपते ! प्रयच्छ ।
यत् प्रार्थनाभङ्गभयाद् बिभेमि तस्मादहं राजवरातिदुःखात् ॥ २४ ॥

मान्धाता ने शशबिन्दुकी कन्या बिन्दुमती के साथ विवाह किया और उसके गर्भ से पुरुकुत्स, अम्बरीष, तथा मुचकुन्द—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । राजा मान्धाता की पचास कन्याएँ थी । बहुत ऋचाओं के ज्ञाता सौभरिनामक ऋषि ने बारह वर्षो तक जल में निवास किया । उस जल में सम्मद नामक बहुत सन्तानों वाला अति विशाल शरीरवाला एक मत्स्यराज था । उस मत्स्यराज के पुत्र, पौत्र और दौहित्रगण सब समय उसके पार्श्व, पृष्टदेश, आगे, पीछे, छाती और मस्तकपर विहार करते हुए दिन रात अत्यन्त आनन्द प्राप्त करते थे । इस क्रीड़ा को देखने वाले महर्षि के अग्रभाग में सम्मद नाम का महामत्स्य सन्तानादि के स्पर्श से आनन्दित होकर पुत्र, पौत्र, दौहित्रादि के साथ बहुत प्रकार से रमण करता था । तथा जल में निवास करने वाले सौभरि ऋषि भी एकाग्र समाधि को परित्याग कर पुत्र, पौत्र, दौहित्रादि के साथ मनोहर क्रीड़ा करते हुए उस मत्स्यराज को देखकर अपने मन में विचार करते थे । अहो यह मत्स्यराज धन्य है, क्योंकि यह मत्स्य निकृष्टयोनि में जन्म लेकर भी इन समस्त पुत्र-दौहित्रादिको के साथ क्रीड़ा करता हुआ मेरे मन में अतिशय स्पृहा उत्पन्न करता है । मैं पुत्र पौत्रादिकों के साथ इसी प्रकार रमण करूँ तो अच्छा ही होगा इस प्रकार विवेचना करने के बाद सौभरि उस जल से निकलकर संसाराश्रम में प्रवेश के निमित्त कन्या प्राप्ति के लिये राजा मान्धाता के समीप पहुंचे । सौभरि के आने का समाचार सुनकर स्वयं राजा ने उठकर अर्घ्यादि दानद्वारा सम्यक् प्रकार से उनकी पूजा की । पश्चात् आसन पर विराजमान होकर ऋषि ने कहा—हे नरेन्द्र ! मैं विवाह करने की अभिलाषा करता हूँ । मुझे अपनी कन्या प्रदान कीजिये । मैं याचक हूँ, अत एव इच्छित वस्तु को अप्रदान करके मुझे विमुख न करो, प्रेम भङ्ग न करो । ककुत्स्थ वंशजों के समीप आकर याचकगण कभी विमुख नहीं हुए हैं । हे राजन् ! पृथ्वी पर अनेक भूपाल हैं, उनकी अनेक कन्याएँ भी हैं, किन्तु तुम्हारा यह कुल प्रशंसनीय है, कारण कि याचकों को याचित वस्तु दान में देना इस वंश का व्रतस्वरूप है । हे नरेश ! तुम अपनी पचास कन्याओं में से एक कन्या मुझे दे दो । हे भूपते ! प्रार्थना-भङ्ग की आशङ्का से उत्पन्न दुःख से मैं भयभीत हो रहा हूँ । ॥ १८-२४ ॥

इति ऋषिवचनमाकर्ण्य स राजा जरार्ज्जरित देहं तमृषिमालोक्य प्रत्याख्यानकातरस्तस्माच्च भगवतः शापतो बिभ्यत् किञ्चिदधोमुखश्चिरं दध्यौ नरेन्द्र ! कस्मात् समुपैषि चिन्तामशक्यमुक्तं न मयात्र किञ्चित्।

याऽवश्यदेया तनया तयैव कृतार्थता नो यदि किं न लब्धम्॥ २५ ॥

पराशर जी बोले—ऋषि के इस वाक्य को सुनकर राजा उनके जराजीर्ण शरीर को देखकर प्रत्याख्यान करने में कातर और उस भगवान् सौभरि के शाप के भय से डरकर कुछ नम्रमुख होकर बहुत देर तक विचारमगन हो गये। ऋषि बोले—हे नरेन्द्र ! तुम चिन्ता क्यों करते हो, इस विषय में मैंने असाध्य कुछ भी नहीं कहा। तुमने जो कन्या एकदिन देनी ही है उससे ही यदि मेरी कृतार्थता हो तो मैंने क्या नहीं प्राप्त किया॥ २५ ॥

अथ तस्य शापभीतः सप्रश्रयमुवाचासौ राजा।

भगवन् ! अस्मत्कुलस्थितिरियम्, —य एव कन्यायाअभिरुचितोऽभिजनवान्वरः, तस्मै कन्या प्रदीयते। भगवद्याच्ञा चास्मन्मनोरथानामप्यगोचर वर्त्तनी कथमप्येषा सञ्जाता। तदेवमवस्थिते न विद्मः किं कुर्म्म इति, तन्मया चिन्त्यत इत्यभिहिते तेन भूभुजा मुनिरचिन्तयत्। अहो अयमन्यो ऽस्मत्प्रत्याख्यानां पायः। वृद्धोऽयमनभिमतः स्त्रीणां किमुत कन्याना मिति अमुना सञ्चिन्त्यैवमभिहितम्॥२६॥

एवमस्तु तथा करिष्यामीति सञ्चिन्त्य मान्धातार मुवाच॥ २७॥

यद्येवं तदादिश्यतामस्माकं प्रवेशाय कन्यान्तः-पुरवर्षवरः॥ २८॥

पराशरजी बोले—बाद में राजा सौभरि के शापभय से डरकर अतीव नम्रता के साथ बोले—हे भगवन् ! हमारे कुल का यह नियम है कि कन्या महाकुलोत्पन्न जिस वर का वरण करती है उसी को कन्याप्रदान किया जाता है। आपकी प्रार्थना मेरे मनोरथ से अगोचर हो रही है। ऐसी स्थिति में मेरा उचित कर्तव्य क्या है उसे नहीं समझ कर चिन्तित हो रहा हूँ। राजा ने जब ऐसी बात कही तब मुनि विचार करने लगे—अहो मुझे विमुख करने का यह एक और दूसरा उपाय। यह व्यक्ति वृद्ध है, अतएव स्त्रियों का प्रेम नहीं हो सकता, कन्याओं के लिए भी यही बात समझनी चाहिये अर्थात् कन्यायें इसे प्रसन्न नहीं करेगी निश्चय इस प्रकार की चिन्ता करके राजा ने ऐसा कहा। उस समय सौभरि ने ऐसा विचार करके मान्धाता से

कहा—महाराज आपकी कुलस्थिति अच्छी है मैं उसी का अनुसरण कर रहा हूँ। और मुझे कन्याओं के अन्त पुर में प्रवेश के लिए वहाँ के प्रहरियों को आदेश प्रदान करे ॥ २६-२८ ॥

यदि कन्यैव काचिन्मामभिलषति, तदाहं दारपरि ग्रहं करिष्यामीति। अन्यथा चैतदलमस्माकम् एतेनातीतकालारम्भेणेत्युक्तवा विरराम।

ततश्च मान्धात्रा मुनिशापशङ्कितेन कन्यान्तःपुरवर्षवरः समाज्ञप्तः कन्यान्तःपुरं प्रविशन्नेव भगवानखिल सिद्ध-गन्धर्व्व-मनुष्येभ्योऽतिशयेन कमनीयं रूप मकरोत्। प्रवेश्य च तमृषिमन्तःपुरवर्षवरस्ताः कन्यकाः प्राह भवतीनां जनयिता महाराजः समाज्ञापयति अयमस्मान ब्रह्मर्षिःकन्यार्थी समभ्यागतः मया चास्य प्रतिज्ञातं, यद्यस्मत्कन्यका काचिद् भगवन्त वरयति, तत्कन्यायाश्छन्दं नाहं परिपन्थानं करिष्यामि; इत्याकर्ण्य सर्व्वा एव ताः कन्यकाः सानुरागाः समन्मथाः करेणव इवेभयूथपतिं तमृषिमहमहमिकया वरयाम्बभूवुरूचुश्च ॥ २९ ॥

अलं भगिन्योऽहमिमं वृणोमि वृतो मया नैष तवानुरूपः। ममैव भर्त्ता विधिनैष सृष्टः सृष्टाहमस्योपशमं प्रयाहि ॥ ३० ॥

वृतो मयायं प्रथमं मयायं गृहं विशन्नेव विहन्यसे किम्।
मया मयेति क्षितिपात्मजानां तदर्थमत्यर्थकलिर्बभूव ॥ ३१ ॥

यदा तु सर्व्वाभिरतीव हार्द्दाद् धृतः स कन्याभिरनिन्द्यकीर्त्तिः।
तदा स कन्याधिकृतो नृपाय यथावदाचष्ट विनम्रमूर्त्तिः ॥ ३२ ॥

वहां यदि कोई कन्या मेरे साथ विवाह की इच्छा करे तभी मैं उसका पाणिग्रहण करूंगा और यदि इससे अन्यथा हुई तब वृद्धावस्था में मेरा यह उद्योग व्यर्थ होगा कोई प्रयोजन नहीं। इतनी बातें कहकर ऋषि मौन हो गये। इसके बाद राजा मान्धाता ने शाप की आशङ्का से कन्याओं के अन्तःपुर में प्रवेश कराने के लिए वहाँ के रक्षक वर्ग को आदेश दिया। तब महात्मा सौभरि ने अन्तः-पुर में प्रवेश के समय समस्त सिद्ध-गन्धर्व और मनुष्यों की अपेक्षा अतिशय मनोहर रूप धारण किया। पश्चात् उन ऋषि को अन्तःपुर में प्रवेश कराकर अन्तःपुर रक्षक नपुंसक ने कन्यागण से कहा—आपलोगों के पिता ने कहा है कि ये ब्रह्मर्षि कन्यार्थी होकर मेरे समीप आये हैं, मैंने भी इनके समीप प्रतिज्ञा की है कि यदि मेरी कोई कन्या आपको प्रसन्न करेगी तब मैं उस कन्या की इच्छा के प्रतिकूलकार्य कदापि नहीं

करूंगा। इस बात को सुनकर समस्त कन्याओं ने कामपरायणा हस्तिनीगण ने जिस प्रकार यूथपति के वरणनिमित्त व्यस्तता प्रकाशित करती है उसी प्रकार मैं अकेली इस प्रकार कहकर मुनि के प्रति प्रेम और अभिलाषा प्रकट की। और परस्पर में कहने लगी बहन तुम व्यर्थ चेष्टा क्यों करती हो, मैंने इनका वरण कर लिया है। मैंने इनका वरण किया, ये तुम्हारे अनुकूल नहीं है। ब्रह्मा ने इनको मेरे ही पति के रूप में उत्पन्न की, तुम शान्त रहो। कोई कहने लगी अहो इन्होंने जैसे ही घर में प्रवेश किया उसी क्षण प्रथम मैंने इनका वरण किया। तुम क्यों व्यर्थ में विवाद करती हो। उस समय मैंने वरण किया, मैंने वरण किया, इस विषय को लेकर राज्यकन्याओं में विवाद आरम्भ हो गया। अतिशय प्रेम के साथ कन्यागण ने उस अनिन्दनीयकीर्ति ऋषिका वरण किया, तब अन्तःपुर रक्षक ने विनम्रभाव से राजा के समीप जाकर समस्त वृतान्त कह दिया॥ २९-३२॥

तदवगमात् किमेतत् कथय, किं करोमीति किं मयाभिहितमित्याकुल मतिरनिच्छन्नपि कथमपि राजानुमेने। कृतानुरूपविवाहश्च महर्षिः सकला एव ताः कन्यकाः स्वमाश्रममनयत्।

तत्र चाशेष शिल्पिशिल्पप्रणेतारं विधातारमिवान्य विश्वकर्म्माणमाहूय सकलकन्यानामेकैकस्याः प्रोत्फूल्लपङ्कजकूजत्कलहंसकारण्डवादित्रिहमङ्गभिरामजलाशयाः सोपवनाः सविकाशाः साधुशय्यासनपरिच्छदाः प्रासादाः क्रियन्तामित्यादिदेश॥ ३३॥

तच्च तथैवानुष्ठितमशेषशिल्पविशेषाचार्य्यस्त्वष्टा दर्शितवान्॥ ३४॥

ततश्च परमर्षिणा सौभरिणाज्ञप्तस्तेषु गृहेष्वनपाया नन्दन्नामा महानिधि रासाञ्चक्रे॥ ३५॥

ततोऽनवरतभक्ष्यभोज्यलेह्याद्युपभोगैरागतानुगत भृत्यादीनहर्निशमशेष गृहेषु ताः क्षितीशदुहितरो भोजयामासुः॥ ३६॥

इस बात को सुनकर राजा बोले—यह क्या कहता है, मैं क्या करूँ? मैंने क्यों कहा है? इत्यादि वचन कहकर अन्त में अत्यन्त व्याकुल होकर इच्छा न रहने पर भी अत्यन्त कष्ट से उन्होंने पूर्व स्वीकृतिका पालन किया। इस प्रकार विवाह समाप्त हुआ और महर्षि उन समस्त कन्याओं को लेकर अपने आश्रम में पहुँचे। अनन्तर महर्षि ने उस तपोवनों में समस्त शिल्प एवं शिल्पियों के निर्माता द्वितीय ब्रह्मा के समान विश्वकर्मा को आवाहन करके आदेश दिया कि इन समस्त कन्याओं

में से प्रत्येक के लिये स्वतन्त्र रूप से प्रासाद का निर्माण करो। इन समस्त प्रासादों में जलाशय होंगे उसमें विकसित कमल और कूजित हंसकारण्डव प्रभृति जलपक्षी से रमणीय्र हों। उनमें विचित्र उद्यान भी रहेगा, बहुत विस्तृत रमणीय शय्या आसनपरिच्छेद आदि से समस्त प्रासाद परिपूर्ण हों। समस्त शिल्पों के आचार्य विश्वकर्मा ने भी उनकी आज्ञा के अनुसार समस्त कार्य सम्पन्न कर उन मुनि को दिखाया। अनन्तर मुनि के आज्ञानुसार अनपायानन्द नामक महानिधि उन गृहसमूह में निवास करने लगा। इसके बाद सभी राजकन्याएँ, उन गृहों में निवास करके अनेक प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य आदि के उपभोगद्वारा समागत अतिथि प्रभृति अनुचर, कुटुम्ब आदि को पूर्ण तृप्त करने लगी ॥ ३३-३६ ॥

एकदा तु दुहितृस्नेहाकृष्टहृदयः स महीपतिरतिदुःखितास्ताः सुखिता वा इति विचिन्त्य तस्य महर्षेराश्रममुपेत्य स्फुरदंशुमालां स्फटिकमयीं प्रासादमाला-मतिरम्योपवनजलाशयां ददर्श ॥ ३७ ॥

प्रविश्य चैकं प्रासादमात्मजां परिष्वज्य कृतासनपरिग्रहः प्रवृत्तस्नेहनय नाम्बुगर्भनयनोऽब्रवीत् ॥ ३८ ॥

अप्यत्र वत्से भवत्याः सुखमुत किञ्चिदसुखम् अपि ते महर्षिः स्नेहवान्, उत संस्मर्य्यतेऽस्मद्गृहवासस्य ? इत्युक्ता तत्तनया पितरमाह, —तात ! अतिशय-रमणीयः प्रासादोऽत्र अति मनोज्ञमुपवनम् अतिकलवाक्यविहगाभिरुताः प्रोत्फुल्लपद्माकरजलाशयाः, मनोऽनुकूलभक्ष्यभोज्यानुलेपनवस्त्रभूषण दिभोगो-पभोगः, मृदूनि शय नानि, सर्व्वसम्पतसमवेतमेतद् गार्हस्थ्यम्, तथापि केन वा जन्मभूमिर्न स्मर्य्यते ? त्वत्प्रसादादिदम शेषमति शोभनम् ॥ ३९ ॥

एक दिन अपनी कन्याओं के स्नेह से राजा मान्धाता ने मेरी कन्याएँ सुख में है या दुःख में इस विषय को देखने के लिए चिन्तित होते हुए उन महर्षि के आश्रम में आकर दीप्यमान तेजमय स्फटिकनिर्मित उन प्रासाद समूह को और उनमें जलाशय, मनोहर उद्यान आदि का अवलोकन किया। अनन्तर उनमें एक प्रासाद के भीतर प्रवेश करके कन्या का प्रेमालिङ्गन करने के बाद आसनपर बैठकर प्रेम भरे आंसु से पूर्णनेत्र होकर बोले—हे वत्से ! यहाँ पर तुम्हें सुख है अथवा किसी प्रकार का दुःख भी है ? महर्षि क्या तुमसे प्रेम करते हैं ? तुम क्या मेरे घर के निवास को स्मरण करती हो ? राजा के ऐसी बात कहने के उपरान्त वह कन्या पिता से बोली—हे पिताजी !यहाँ पर अत्यन्त रमणीय प्रासाद (महल), अत्यन्त मनोहर उद्यान, अतीव

मधुरभाषी पक्षिगण का शब्द, विकसित कमलों से परिपूर्ण जलाशय, मनोऽनुकूल भक्ष्य-भोज्य, अनुलेपन, भूषण एवं वस्त्रादि का भोग-उपभोग और कोमल शय्या— ये समस्त सम्पत्तियाँ गार्हस्थ्य जीवन के आनन्द देने वाली हैं किन्तु जन्मभूमि का स्मरण कौन नहीं करता । हे पिताजी ! आपकी कृपा से यहाँ सब कुछ सुन्दर है ॥ ३७-३९ ॥

किन्तु एतन्ममैकं दुःखकारणम्, यदस्मद्भर्त्तस्मद्गेहान्न निःसरति । ममैव केवलमतिप्रीत्या समीपवर्त्ती, नान्यासां मद्भगिनीनाम् एवञ्च मम सहोदरा दुः-खिता इत्येवमतिदुःखकारणम् । इत्युक्तस्तया द्वितीयं प्रासाद मुपेत्य स्वतनयां परिष्वज्योपविष्टस्तथैव पृष्टवान् । तयापि तथैव सर्व्वमेतत् प्रासादाद्युपभोगसुख-माख्यातम् । ममैव केवलं पार्श्ववर्त्ती नान्यासामस्मद्भगिनीनामित्येवमादि श्रुत्वा समस्त प्रासादेषु राजा प्रविवेश । तनयां तनयां तथैवापृच्छत्, ताभिश्च तथैवा-भिहितः परितोषविस्मयनिर्भरविवशहृदयो भगवन्तं सौभरिमेकान्ता वस्थितमुपेत्य कृतपूजोऽब्रवीत् ॥ ४० ॥

दृष्टस्ते भगवन् सुमहानेष सिद्धिप्रभावो नैवंविधमन्यस्य कस्यचिदस्माभि र्विभूतिविलसितमुपलक्षितम् । कियदेतद्भगवंस्तपसः फलमित्यभिपूज्य तमृषिं तत्रैव तेन ऋषिवर्य्येण सह किञ्चित् कालमभिमतोपभोगं बुभुजे, स्वपुरञ्च जगाम ॥ ४१ ॥

किन्तु मुझे एक ही दुःख है कि मेरे पतिदेव मेरे घर से बाहर नहीं जाते । प्रेम के कारण केवल मेरे समीप ही रहते हैं । मेरी बहनों से और किसी के पास जाते तक नहीं । इस कारण मेरी बहनें अत्यन्त दुःखी है । यही मेरे लिए अत्यन्त दुःख का विषय है । राजा ने इस प्रकार एक कन्याद्वारा कहे जाने के बाद अन्य कन्या के गृह में प्रवेश करके पूर्वोक्त रीति से स्नेहालिङ्गन कर प्रेमपूर्व जिज्ञासा की । उस कन्या ने भी उसी प्रकार सर्वविध प्रासादादि के उपभोग सुख का वर्णन किया । और पहली कन्या के समान ही वह भी बोली—हमारे पति हमारे समीप में ही रहते हैं, अन्य किसी बहन के निकट जाते तक नहीं, यही केवल दुःख का विषय है । इस प्रकार की बात सुनकर राजा ने एक एक करके समस्त प्रासादों में जाकर समस्त कन्याओं से पूर्वोक्त रीति से जिज्ञासा की और समस्त कन्याओं ने उसी प्रकार अपने सुख की बातेंकहीं । उस समय राजा आनन्द और विस्मय के वशीभूत होकर निर्जन में विराजमान भगवान् सौभरि के समीप जाकर उनकी पूजा करके बोले—हे

भगवान् ! मैंने आपका यह महान् सिद्धिप्रभाव का अवलोकन किया। मैंने अन्य किसी व्यक्ति का इस प्रकार का विभूतिविलासका अवलोकन नहीं किया था। मेरा विश्वास है कि भगवान् की तपस्या का फल इससे भी अनेकगुण अधिक हैं यह तो किञ्चिन्मात्र हैं। पुन: राजा ने ऋषि की पूजा की और वहाँ पर उन ऋषिश्रेष्ठ के साथ निवास कर इच्छानुसार अपने नगर में आ गये ॥ ४०-४१ ॥

कालेन गच्छता तस्य राजतनयासु तासु पुत्रशतं सार्द्धमभवत्। तदनुदिनारूढस्नेहः स तत्रातीव ममताकृष्टहृदयोऽभवत् ॥ ४२ ॥

अप्येतेऽस्मत्पुत्राः कलभाषिणः पद्भ्यां गच्छेयुः, अप्येते यौवनिनो भवेयुः, अपि कृतदारानेतान् पश्येयम्, अप्येतेषां पुत्रा भवेयुः, अथ तत्पुत्रान् पुत्रसमन्वितान् पश्येयम्? एवमादिमनोरथमनुदिन कालसम्पत्ति वृत्तिमवेत्यैतत् सञ्चिन्तयामास ॥ ४३ ॥

अहो मे मोहस्यातिविस्तारः।
मनोरथानां न समाप्तिरस्ति वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः।
पूर्णेषु पूर्णेषु पुनर्नवानाम् उत्पत्तयः सन्ति मनोरथानाम् ॥ ४४ ॥

पद्भ्यां गता यौवनिनश्च जाता दारैश्च संयोगमिताः प्रसूताः।
दृष्टाः सुतास्तत्तनयप्रसूतिं द्रष्टुं पुनर्वाञ्छति मेऽन्तरात्मा ॥ ४५ ॥

द्रक्ष्यामि तेषामपि चेत् प्रसूतिं मनोरथो मे भविता ततोऽन्यः।
पूर्णेऽपि तत्राप्यपरस्य जन्म निवार्य्यते केन मनोरथस्य ॥ ४६ ॥

आ मृत्युतो नैव मनोरथाना-मन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मया च।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमात्मसङ्गि ॥ ४७ ॥

समय व्यतीत होने पर उन समस्त राजकन्याओं से एक सौ पचास पुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तर सौभरि ऋषि के उन समस्त पुत्रों के प्रति प्रतिदिन प्रेम बढ़ने लगा। उस समय वे अत्यन्त ममतायुक्त हो गये। वे सोचने लगे क्या मेरे ये पुत्र मधुर बोली से बोलेंगे? अपने पाँवों से चलेंगे? ये सब क्या युवक होंगे और मैं क्याँ इनको विवाहित देखूगा, इनके क्या पुत्रादि उत्पन्न होंगे? इस प्रकार उनके मन के एक मनोरथ के बाद दूसरा मनोरथ पूर्ण होने लगा। इस प्रकार कालानुसार मनोरथ परम्परा की आवृत्ति होते देखकर सौभरि ने एक दिन विचार किया। अहो हमारे

मोह का विस्तार कितना हो रहा है । हजारों अथवा लाखों वर्षों में भी इन मनोरथों की समाप्ति नहीं हो सकती । कितने मनोरथ पूरे होने के बाद पुनः नवीन मनोरथों की उत्पत्ति होती है । हमारे पुत्रगण अपने पाँव से चलने लगे, फिर वे युवक हुए, इनका विवाह हुआ, पुनः इनके पुत्रादि सन्तान उत्पन्न हुई, इतने देखने के बाद भी अब मेरी अन्तरात्मा पौत्रों के भी पुत्र देखने की अभिलाषा कर रही है । पौत्रों के भी यदि अपत्य (पुत्रादि) यदि देख लूँगा तो निश्चय पुनः दूसरा मनोरथ उत्पन्न होगा, इसी प्रकार उस मनोरथ को पूर्ण होने पर पुनः अन्य मनोरथ की उत्पत्ति को कौन निवारण करेगा ? । मृत्युकाल पर्यन्त मनोरथों का अन्त नहीं हैं यह मैं समझ गया । जिनका मन मनोरथसमूह में आसक्त है उनका अन्तःकरण कदापि परमात्मा में आसक्त नहीं हो सकता ॥ ४२-४७ ॥

स मे समाधिर्जलवासमित्र मतस्यस्य सङ्गात् सहसैव नष्टः ।
परिग्रहः सङ्गकृतो ममायं परिग्रहोत्थाश्च महाविधित्साः ॥ ४८ ॥
दुःखं यदेवैकशरीरजन्म शतार्द्धसङ्ख्यं तदिदं प्रसूतम् ।
परिग्रहेण क्षितिपात्मजानां सुतैरनेकैर्बहुलीकृतं तत् ॥ ४९ ॥
सुतात्मजैस्तत्तनयैश्च भूयो भूयश्च तेषां स्वपरिग्रहेण ।
विस्तारमेष्यत्यतिदुःखहेतुः परिग्रहो वै ममतानिधानम् ॥ ५० ॥
चीर्णं तपो यत्त जलाश्रयेण तस्यर्द्धिरेषा तपसोऽन्तरायः ।
मत्स्यस्य सङ्गादभवच्च यो मे सुतदिरागो मुषितोऽस्मि तेन ॥ ५१ ॥
निःसङ्गता मुक्तिपदं यतीनां सङ्गादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः ।
आरूढयोगोऽपि निपात्यतेऽधः सङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धिः ॥ ५२ ॥
अहं चरिष्यामि तथात्मनोऽर्थे परिग्रहग्राहगृहीतबुद्धिः ।
यथा हि भूयः परिहीणदोषो जनस्य दुःखैर्भविता न दुःखी ॥ ५३ ॥
सर्व्वस्य धातारमचिन्त्यरूप मणोरणीयांसमतिप्रमाणम् ।
सितासितश्चेश्वरमीश्वराणा माराधयिष्ये तपसैव विष्णुम् ॥ ५४ ॥

जलवासकालीन मेरे मित्र महामत्स्य के साथ से मेरी समाधि भङ्ग हुई । और मेरा यह विवाह आसक्ति के लिए हुआ, इसमें कोई सन्देह नहीं और इसी लिए हमारी तृष्णा भी बढ़ती जा रही है । एक शरीर का प्राप्त होना भी दुःख है, और मैंने

तो इन राजकन्याओं का परिग्रह करके पचास गुना कर दिया है एवं बहुत पुत्रों के रूप में यह और भी बढ़ गया है। अब उनके भी पुत्र समूह और उनके विवाह द्वारा पुन: उनकी सन्तान इस प्रकार मेरा यह ममता का निधान दु:ख के हेतु ग्रहण और भी विस्तृत हो जायगा। मैंने जल में निवास करके जो तपस्या की उसी के फल-स्वरूप यह समस्त सम्पत्तियाँ हैं। अहो मत्स्य के साथ से तपस्या के विघ्नस्वरूप यह मेरा पुत्रादिकों से प्रेम उत्पन्न हुआ। और उसी से मैं वञ्चित हो गया। यतियों के लिए नि:सङ्ग होना ही मुक्ति का कारण होता है, सङ्ग से समस्त दोष उत्पन्न होते हैं। पूर्णयोगी का भी सङ्ग के दोष से अध:पतन है और जिसकी स्वल्प सिद्धि है उसकी तो कोई बात ही नहीं। परिग्रह रूपी ग्राहकद्वारा मेरी बुद्धि आक्रान्त हो गयी। अब इस समय मैं दोषहीन होकर जैसे पुन: परिजनों के दु:ख से और दु:खी न बनूं वैसा ही प्रयत्न करूँगा। जो सभी के निर्माता हैं, जिसका स्वरूप अचिन्तनीय है, जो अणु से भी अणु हैं, तथा जो सभी की अपेक्षा महान् हैं, जो श्वेत (सत्त्व) कृष्ण (तम:) स्वरूप हैं और ईश्वर के भी ईश्वर हैं, मैं उन्हीं भगवान् श्रीविष्णुकी तपस्या करके आराधना करूँगा ॥ ४८-५४ ॥

तस्मिन्नशेषौजसि सर्व्वरूपिण्यव्यक्तविस्पष्टतनावनन्ते।

ममाचलं चित्तमपेतदोष सदास्तु विष्णावभवाय भूय: ॥ ५५ ॥

समस्तभूतादमलादनन्तात सर्व्वेश्वरादन्यदनादिमध्यात्।

यस्मान्न किञ्चित् तमहं गुरूणां परं गुरुं संश्रयमेमि विष्णुम् ॥५६ ॥

उस अनन्त, ज्योतिर्मय, सर्वस्वरूप एवं अव्यक्त श्रीविष्णु के प्रति हमारा चित्त दोषहीन होकर सदा मोक्ष के लिए अचलभाव से पुन: आसक्त हो जाय। जो समस्त भूतस्वरूप, अमल, अनन्त और सर्वेश्वर हैं, जिनका आदि अथवा मध्य कुछ भी नहीं है, जिनके अतिरिक्त अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है उस गुरुओं के भी परमगुरु श्रीविष्णु का आश्रय ग्रहण करूंगा ॥ ५५-५६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में दूसरा अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - तीसरा अध्याय

(सगर की उत्पत्ति की कथा)

इत्यात्मानमात्मनवाभिधायासौ सौभरिरपहाय पुत्रगृहासनपरिवर्हादिकम शेषमर्थजातं सकलभार्य्या समवेतो वनं प्रविवेश। तत्राप्यनुदिनं वैखानसनिष्पाद्यमशेषं क्रियाकलापं निष्पाद्य क्षयित सकलपापः परिपक्वमनो वृत्तिरात्मन्यग्नीनारोप्य भिक्षुरभवत्॥ १ ॥

भगवति आसज्याखिलं कर्म्मकलापमजमविकारममरणादिधर्म्ममवाप परं परवतामच्युतपदम्॥ २ ॥

इत्येतन्मान्धातुर्दुहितृसम्बन्धाद्व्याख्यातम्॥ ३ ॥

यश्चैतत् सौभरिचरितमनुस्मरति पठति श्रृणोत्यव धारयति, तस्याष्टौ जन्मान्यसन्मतिरसद्धर्म्मो वा मनसोऽसन्मार्गाचरणमशेषहेयेषु वा ममत्वं न भवतीति। अतो मान्धातुः पुत्रसन्ततिरभि धीयते॥ ४ ॥

श्रीपराशर जी बोले—इस प्रकार अपने मन में विचार करके सौभरि पुत्र, गृह, आसन, शय्या आदि समस्त ऐश्वर्य को परित्याग करके सभी भार्याओं के साथ वन में प्रवेश किया और उस वन में वानप्रस्थों के योग्य समस्त क्रियाकलाप का अनुष्ठान करते हुए सम्पूर्ण पापों के क्षय हो जाने पर और मनोवृत्तिको राग-द्वेषहीन हो जाने पर आहवनीयादि अग्नियों को अपने में स्थापित कर संन्यासी हो गये। फिर भगवान् में आसक्त हो सम्पूर्ण कर्मकलाप का परित्याग कर परमात्मपरायण मोक्ष को प्राप्त किया। जो अजन्मा, अनादि, अविनाशी, विकार और मरणादि धर्मों से रहित, इन्द्रियादि से अतीत तथा अनन्त है। राजा मान्धाता की कन्याओं के प्रसङ्गमें यह सौभरि चरित्र का वर्णन किया गया। जो व्यक्ति इस सौभरिचरित्र का पाठ या श्रवण करके मन में धारण करता है, उसका आठ जन्मों तक दुर्गति, अधर्म और मन का असन्मार्ग में गमन नहीं होता है तथा हरेक प्रकार से सांसारिक वस्तुओं में उसकी

ममता नहीं रहती । अब इसके बाद मान्धाता के पुत्रों की सन्तान के विषय में कहता हूँ ॥ १-४ ॥

अम्बरीषस्य मान्धातुस्तनयस्य युवनाश्वः पुत्रोऽभूत् । तस्मात् हरितः,

रसातले च मौनेया नाम गन्धर्व्वाः षट्कोटि यतोऽङ्गिरसो हारिताः ॥ ५ ॥

मान्धाता के पुत्र अम्बरीष, उनका पुत्र युवनाश्व नामक हुआ । युवनाश्वका पुत्र हरित, उस हरित से अंगिरागोत्रीय क्षत्रियगण विख्यात हुए ॥ ५ ॥

सङ्ख्यास्तैरशैषाणि नागकुलानि अपहृतप्रधान रत्नाधिपत्यान्यक्रियन्त ।६ ॥

तैश्च गन्धर्व्ववीर्य्यावधूतैरुरगेश्वरैर्भगवान् अशेष देवेशस्तवश्रवणोन्मीलि तोद्भिन्न-पुण्डरीकनयनो जलशयनो निद्रावसानाद् विबुद्धः प्रणिपत्याभिहितो भगवन्! अप्यस्माकमेतेभ्यो गन्धर्व्वेभ्यो भयमुपशम मेष्यतीत्याह भगवानादि पुरुषः पुरुषोत्तमो यौवनाश्वस्य मान्धातुः पुरुकुत्सनामा पुत्रस्तमहमनुप्रविश्यैतानशेषदुष्टगन्धर्व्वानुपशम नयिष्यामि ॥ ७ ॥

इत्याकर्ण्य भगवते कृतप्रणामाः पुनर्नागलोक मागताः पन्नगपतयो नर्म्मदाञ्च पुरुकुत्सानयनाय चोदयामासुः ॥ ८ ॥

सा चैनं रसातले नीतवती । रसातलगतश्चासौ भगवत्तेजसाप्यायितात्म वीर्य्यः सकल-गन्धर्व्वान् जघान, पुनश्च स्वभवनमाजगाम । सकलपन्नगपतयश्च नर्म्मदायै वरं ददुः । यस्तेऽनुस्मरण समवेतं नामग्रहणं करिष्यति, तस्य सर्पविषभयं न भविष्यतीति ॥ ९ ॥

नर्म्मदायै नमः प्रातर्नर्म्मदायै नमो निशि ।
नमोऽस्तु नर्म्मदे तुभ्यं रक्ष मां विषसर्पतः ॥
इत्युच्चार्य्याहर्निशमन्धकारप्रवेशे वा न सर्पैर्दश्यते ॥ १० ॥

न चापि कृतानुस्मरणभुजो विषमपि सुभुक्त मुपघाताय भविष्यति ॥११ ॥

पुरुकुत्साय च भवतः सन्ततिविच्छेदो न भविष्यतीत्युरगपतयो वरं ददुः ।१२

पूर्वकाल में पाताल में छः करोड़ मौनेय नामक गन्धर्वगण निवास करते थे । उन्होंने समस्त नागकुलों के प्रधान रत्न और अधिकार छीन लिये थे । गन्धर्वों के पराक्रम से पराभूत एवं अपमानित उन नागेश्वरों द्वारा स्तुति किये जाने पर अपनी स्तुति सुनकर प्रबुद्ध कमलनेत्र जलशायी भगवान् की आँखें खुल गयी, निद्रा के

अन्त में उनको प्रणामकर नागगण बोले—हे भगवन् ! इन गन्धर्वों से उत्पन्न भय क्या विनष्ट होगा ? तब आदिपुरुष पुरुषोत्तम भगवान् बोले—यौवनाश्व मान्धाता का जो पुरुकुत्स नामक पुत्र है उनके शरीर में प्रवेश करके समस्त गन्धर्वकुल का विनाश करूँगा। भगवान् की यह बात सुनकर नागपतिगण उनको प्रणाम करके पुनः रसातल में आकर पुरुकुत्स को लाने के लिए अपनी बहिन और पुरुकुत्स की भार्या नर्मदा को प्रेषित किया। इसके बाद नर्मदा पुरुकुत्स को रसातल में ले आयी। राजा पुरुकुत्स ने रसातल में आकर भगवान् के तेज से अपनी शक्ति बढ़ाकर समस्त गन्धर्वगण का विनाश कर दिया और पुनः अपने स्थान में लौट आये। उस समय समस्त सर्पगण ने प्रसन्न होकर नर्मदा को वर दिये '। जो व्यक्ति निम्नलिखित श्लोक के साथ तुम्हारा नाम स्मरण करेगा उसको सर्पविष से कोई भय नहीं होगा। वह श्लोक जैसे—प्रातःकाल नर्मदा को नमस्कार है, रात्रिकाल में भी नर्मदा को नमस्कार है। हे नर्मदे ! तुमको नमस्कार है, मेरी सर्पविष से रक्षा करो। इस वाक्य को उच्चारण करके दिन में या रात्रि में किसी भी समय अन्धकार में प्रवेश करने से भी सर्प काट नहीं सकता। जो व्यक्ति नर्मदा को नमस्कार करके विष पान भी करता है उसको उससे भुक्तविष भी नाश नहीं कर सकता। सर्पगण ने भी गुरुकुत्स को तुम्हारा वंश विच्छेद कदापि न होगा इस प्रकार का वर प्रदान किया ॥ ६-१२ ॥

पुरुकुत्सो नर्म्मदायां त्रसदस्युमजीजनत्।

त्रसदस्युसुतः सम्भूतः, ततोऽनरण्यः, तं रावणो दिग्विजये जघान। अनरण्यस्य पृषदश्वः, हर्य्यश्वः पुत्रोऽभवत्। ततश्च सुमनाः, तस्यापि त्रिधन्वा, त्रिधन्वनस्त्र्यय्यारुणः ॥ १३ ॥

तस्मात् सत्यव्रतः। सोऽसौ त्रिशङ्कुसंज्ञामवाप, चण्डालतामुपगतश्च द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां विश्वामित्रकलत्रापत्यपोषणार्थं चाण्डालप्रतिग्रहपरिहरणाय च जाह्नवीतीरे न्यग्रोधे मृगमांसमनुदिनं बबन्ध ॥ १४ ॥

पुरुकुत्स ने नर्मदा से त्रसदस्यु नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। त्रसदस्यु का पुत्र सम्भृत हुआ। सम्भृत का पुत्र अनरण्य था, जिसे दिग्विजयकाल में रावण ने विनाश किया। अनरण्य का पुत्र पृषदश्व, उसका पुत्र हर्यश्व, हर्यश्व का पुत्र सुमना, सुमना का पुत्र त्रिधन्वा, त्रिधन्वा का पुत्र त्र्यय्यारुण, उसका पुत्र सत्यव्रत—ये त्रिशङ्कु के नाम से विख्यात हुआ, वह त्रिशंकु चाण्डाल हो गया था। एक समय बारह वर्षों तक अनावृष्टि हुई, इस स्थिति में राजा त्रिशङ्कु विश्वामित्र के परिवार

पोषण के लिए चाण्डाल के दान से दोष नहीं घटता इस अभिप्राय से गङ्गा जी के तीर पर एक वटवृक्ष के ऊपर प्रतिदिन मृगमांस रखा दिया करता था ॥ १३-१४ ॥

परितुष्टेन च विश्वामित्रेण सशरीरः स्वर्गमारोपितः ।

त्रिशङ्कोर्हरिश्चद्रः, तस्मात् रोहिताश्वः, ततश्च हरितः, हरिताच्चञ्चुः, चञ्चोर्विजय-सुदेवौ । रुरुको विजयात्, रुरुकस्य च वृकः, ततो बाहुः । योऽसौ हैहयतालजङ्घादिभिरवजितोऽन्तर्व्वत्न्या महिष्या सह वनं प्रविवेश ॥ १५ ॥

तस्याश्च सपत्न्या गर्भस्तम्भनाय गरो दत्तः । तेनास्या गर्भः स सप्त वर्षाणि जठर एव तस्थौ । स च बाहुर्वृद्धभावादौर्व्वाश्रमसमीपे ममार ॥ १६ ॥

अनन्तर प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उसे सशरीर स्वर्ग प्रदान किया । त्रिशङ्कु का पुत्र हरिश्चन्द, उसका पुत्र रोहिताश्व, उसका पुत्र हरित और हरित का पुत्र चक्षु हुआ । चक्षु के विजय और वसुदेव नाम के दो पुत्र हुए । विजय का पुत्र रुरुक, उसका पुत्र वृक, वृक का पुत्र बाहू नामक हुआ । यह तालजंघ प्रभृति क्षत्रियों से पराजित होकर अपनी पत्नी के साथ वन में प्रवेश किया । वहाँ रानी के गर्भस्थ शिशु के विनाश के लिए सपत्नियों ने उसे विष प्रदान किया । उस विषप्रयोग के कारण रानी के गर्भस्थ बालक सात वर्षों तक गर्भ में ही रहा । राजा बाहू ने भी वृद्ध होकर और्व नामक ऋषि के आश्रम के समीप शरीर त्याग किया ॥ १५-१६ ॥

सा तस्य भार्य्या चितां कृत्वा तमारोप्यानुमरण कृतनिश्चयाभूत् । अथैनामतीतानागतवर्त्तमानकाल वेदी भगवानौर्व्वः स्वस्मादाश्रमान्निर्य्या याब्रवीत्, अलमेतेनासद्ग्रहेण, अखिलभूमण्डलपतिरतिवीर्य्यपराक्रमोऽनेकयज्ञकृदरातिपक्षक्षयकर्त्ता तवोदरे चक्रवर्त्त तिष्ठति । मैवं मैवं साहसाध्य, वसायिनी भवती भवतु, इत्युक्ता च सा तस्मादनुमरण निर्बन्धाद् विवराम ॥ १७ ॥

तेनैव भगवता स्वाश्रममानीयत । कतिपयदिनान्तरे च सहैव तेन गरेणातितेजस्वी बालको जज्ञे । तस्यौर्व्वो जातकर्म्मादिकां क्रियां निष्पाद्य सगर इति नाम चकार । कृतोपनयनञ्चैनमौर्व्वो वेदान् शास्त्राण्यशेषाणि अस्त्रञ्चाग्नेयं भार्गवाख्यमध्यापयामास । उत्पन्नबुद्धिश्च मातरमपृच्छत्, अम्ब ! कथमत्र वयम् ? क्व वा तातः ? तातोऽस्माकं कः ? इत्येवमादि पृच्छतः तन्माता सर्व्वमवोचत् । ततः पितृराज्यहरणामर्षितो हैहयतालजङ्घादिवधाय प्रतिज्ञामकरोत् । प्रायशश्च हैहयान् जघान । शक-यवनकाम्बोज-पारद-पह्लवा हन्यमानास्तत्कुलगुरुं वशिष्ठं शरणं ययुः ॥ १८ ॥

अथैतान् वशिष्ठो जीवन्मृतकान् कृत्वा सगरमाह, वत्स ! वत्स ! अलमेभिरतिजीवन्मृतकैरनुसृतैः ॥ १९ ॥

एते च मयैव त्वत्प्रतिज्ञापरिपालनाय निजधर्म्म द्विजसङ्गपरित्यागं कारिताः ॥ २० ॥

स तथेति तद्गुरुवचनमभिनन्द्य तेषां वेशान्यत्वमकारयत् । यवनान् मुण्डितशिरसः, अर्द्धमुण्डान् शकान्, प्रलम्बकेशान् पारदान्, पह्लवाश्च श्मश्रु धरान् निःस्वाध्यायवषट्कारान् एतानन्यांश्च क्षत्रियांश्चकार । ते च निजधर्म्मपरित्यागाद् ब्राह्मणैश्च परित्यक्ता म्लेच्छतां ययुः । सगरोऽपि स्वमधिष्ठानमागम्य अस्खलितचक्रःसप्तद्वीपवतीमिमामूर्वीं प्रशशास ॥ २१ ॥

उस समय रानी ने चिता बनाकर मृत महाराज को चिता पर रखकर स्वयं भी सहमरण का विचार किया । पश्चात् भूत, भविष्य एवं वर्तमाने के ज्ञाता भगवान् और्व अपने आश्रम से निकलकर बोले—हे साध्वि ! तुम यह दुराग्रह क्यों करती हो । तुम्हारे गर्भ में समस्त भूमण्डल के स्वामी, चक्रवर्ती, बहु पराक्रमशाली, अनेक यज्ञकर्ता और शत्रुओं के विनाश करने वाला बालक निवास करता है । अतएव तुम इस प्रकार का साहसपूर्ण कार्य न करो ऋषिद्वारा ऐसा कहे जाने पर राजा रानी सहमरण के विचार से निवृत्त हो गयी । भगवान् और्व भी उसे अपने आश्रम में ले आये । कुछ दिनों के बाद ही विष सहित अतकि तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ । और्व ने उस बालक का जातकर्म संस्कार सम्पन्न किया और सगर नाम रखा । पश्चात् ऋषि ने ही बालक का उपनयन संस्कार किया । और्व ने उसे वेद, समस्त शास्त्र और भार्गव नामक आग्नेय अस्त्र की शिक्षा दी । अनन्तर परिपक्वबुद्धि बालक ने एक दिन अपनी माता से पूछा—माँ ! हमलोग इस तपोवन में क्यों निवास करते हैं । हमारे पिताजी कहाँ हैं, हमारे पिताजी हैं कौन ? बालक ने इस प्रकार से और भी बातें पूछी । माता ने उस बालक के समीप बीते हुए समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । अनन्तर सगर ने पिता के राज्य हरण से क्षुब्ध होकर हैहयतालजङ्घादि के वध के लिए प्रतिज्ञा की । अनन्तर उसने प्रायः समस्त हैहय राजाओं का वध कर दिया । पश्चात् शक, यवन, पारद, पह्लवगण उनसे आहत होकर उनके कुलगुरु वशिष्ठ के शरण में गये । वशिष्ठ ने भी इनको मृतप्राय करके सगर को कहा—वत्स ! इन जीवीत ही मृतलोगों के अनुसरण करने से क्या फल होगा ? । इन बातों को विचार करके तुम्हारी प्रतिज्ञा पालन के लिये मैंने इनको अपना धर्म और ब्राह्मण

संसर्ग को परित्याग करा दिया। सुतरां ये जीवन्मृत हो गये अतएव इनके विषय में अब कोई सन्देह नहीं राजा सगर ने जो आज्ञा ऐसा कहकर गुरु वचन को स्वीकार करते हुए उनको विभिन्न प्रकार के वेशयुक्त बना दिया। उन्होंने यवनगण को मस्तक मुण्डित करा दिया, शकगण का मस्तक अर्ध मुण्डित, कर दिया, पारदगण को लम्बायमान केशयुक्त बना दिया। तथा पह्लवगण को श्मश्रुयुक्त एवं अन्यान्य क्षत्रियों को उसी प्रकार स्वाध्याय और वषट्कार विहीन कर दिया। उन सबने भी अपने धर्म का परित्याग कर दिया। सुतरां वे समस्त म्लेच्छत्व को प्राप्त हो गये। अनन्तर सगर राजा भी अपनी पुरी में आकर अप्रतिहतसैन्यों से युक्त होकर सप्त द्वीपवाली पृथ्वीपर शासन करने लगे॥ १७-२१॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में तीसरा अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - चतुर्थ अध्याय

(सगर का अश्वमेध यज्ञ, भगीरथ द्वारा गङ्गा का आगमन, रामचन्द्र आदि की उत्पत्ति।)

कश्यपदुहिता सुमतिर्विदर्भराजतनया च केशिनी द्वे भार्य्ये सगरस्यास्ताम्॥ १॥

ताभ्याञ्चापत्यार्थमाराधित और्व्वः परमेण समाधिना वरमदात्॥ २॥

एका वंशधरमेकं पुत्रम्, अपरा षष्टिं पुत्रसहस्त्राणि जनयिष्यतीति, यस्या यदभिमतं गृह्यताम्। इत्युक्ते केशिनी पुत्रमेकम्, सुमतिः पुत्रसहस्त्राणि षष्टिं वव्रे। तथेति च ऋषिणाभिहिते अल्पैरेवाहोभिरेकमसञ्जसं नाम वंशधरं पुत्रमसूत केशिनी। विनतातनयायास्तु सुमत्याः षष्टीः पुत्र सहस्त्राण्यभवन्। तस्मादसमञ्जसोऽशुंमान् नाम कुमारो जज्ञे॥ ३॥

पराशरजी बोले—कश्यप पुत्री सुमति और विदर्भराजपुत्री केशिनी—ये दो सगर की पत्नी थी। इन दोनों पत्नियों ने पुत्रलाभ के लिए परम समाधिद्वारा और्व ऋषि की आराधना की और्व ऋषि ने वर दिया कि तुम दोनों में एक से वंश की वृद्धि करने वाला एक पुत्र उत्पन्न तथादूसरी से अन्य साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगी। इन दो वरों में से जिसको जो इच्छा हो बर ग्रहण कर सकती है। और्व द्वारा ऐसी बात कहे जाने पर केशिनी ने एक पुत्र का और सुमति ने साठ हजारपुत्र की प्रार्थना की। ऋषि बोले—ऐसा ही होगा। पश्चात् कुछ दिनों के बाद केशिनी ने असमञ्जस नामक एक वंशधर पुत्र उत्पन्न किया। तथा विनतापुत्री सुमति ने कालक्रम से साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया। केशिनी पुत्र असमञ्जस से अंशुमान नामक पुत्र हुआ॥ १-३॥

स तु असमञ्जा बाल्यादेवापवृत्तः। पिता चास्या चिन्तयत् अयमतीतबाल्यो बुद्धिमान् भविष्यतीति। अथ तत्रापि वयस्यतीते तच्चरितमेवैनं पिता तत्याज ।।४ ।।

तान्यपि षष्टिः कुमारसहस्राणि असमञ्जसश्चरित मनुचक्रुः ।। ५ ।।

ततश्चासमञ्जसश्चरितानुकारिभिः सागरैरपध्वस्तयज्ञादिसन्मार्गे जगति देवाः सकलविद्यामयमसंस्पृष्टमशेषदोषैर्भगवतः पुरुषोत्तमस्यांशभूतं कपिलर्षि प्रणम्य तदर्थमूचुः ।। ६ ।।

भगवन् ! एभिः सगरतनयैरसमञ्जसश्चरितमनुगम्यते, कथमेवमेभिरनुसरद्भिर्जगद्भविष्यतीत्यार्त्तजगत्परित्राणाय च भगवतोऽत्र शरीरग्रहणम्। इत्याकर्ण्य भगवान् 'अल्पैरेव दिनैरेते विनङ्क्षयन्ति' इत्युक्तवान् ।। ७ ।।

असमञ्जस बाल्यकाल में अत्यन्त दुराचारी था। पिता ने विचार किया कि बाल्यकाल बीतने पर यह बुद्धिमान् होगा। किन्तु युवा होने पर भी वह उसी प्रकार का दुराचारी बना रहा तो पिता ने उसका परित्याग कर दिया। सगर राजा के अन्य साठ हजार पुत्रों ने भी असमञ्जस का ही अनुसरण किया। असमञ्जस के चरित्र का अनुसरण करने वाले सगर के पुत्रों द्वारा जगत् में सन्मार्ग विनष्ट हो रहा है ऐसा देखकर देवतागण समस्त समस्त दोषों से रहित एव भगवान् के अंशभूत कपिल ऋषि को प्रणाम करके उस विषय में बोले—हे भगवन् ! ये सगर के सगर पुत्रगण असमञ्जस के अनुसरण रहेंगे तब जगत् की क्या दशा होगी। हे भगवन् ! आर्तजनों की रक्षा के लिए ही आपने यह शरीर धारण किया है। भगवान् कपिल मुनि इस बात को श्रवण करके बोले—अल्प दिनों में ही ये सारे विनष्ट हो जायेंगे ।। ४-७ ।।

तत्रान्तरे च सगरो हयमेधमारेभे। तत्र च तत् पुत्रैरधिष्ठितमस्याश्वं कोऽप्यपहृत्य भुवो विवरं प्रविवेश ।। ८ ।।

ततश्चाश्वान्वेषणाय तनयान् युयोज। ततस्तत्तनयाश्चाश्वखुरपदवी मनुसरन्तोऽतिनिर्बन्धेन वसुधा तलमेकैको योजनं योजनमवनेश्चखान ।। ९ ।।

पाताले चाश्वं परिभ्रमन्तमवनीपतिनन्दनास्ते ददृशुः। नातिदूरस्थितञ्च भगवन्तमपघने शरत्कालेऽर्कमिव तेजोभिरनवरमूर्द्ध्वमधश्चाशेषदिशश्चोद्भासयमानं कपिलर्षिमपश्यन् ।। १० ।।

ततश्चोद्यतायुधा 'दुरात्मायमस्मदपकारी यज्ञविघातकर्त्ता हयहर्त्ता हन्यतां हन्यतां' मित्यधावन्। ततश्च तेनापि भगवता किञ्चिदीषत्परिवर्त्तितलोचनेन विलोकिताः स्वशरीरसमुत्थेनाग्निना दह्यमाना विनेशुः ॥ ११ ॥

इसके बाद सगर ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञ में सगर के पुत्रगण ही यज्ञीय अश्व के रक्षक हुए। एक दिन किसी व्यक्ति ने उस यज्ञीय अश्व को हरण करके पाताल में प्रवेश किया। सगर ने अपने पुत्रों को ही अश्व खोज करने के लिए भेजा। पश्चात् अश्व की खोज में नियुक्त सगर के पुत्रगण अश्वचरणचिन्ह का अनुसरण करते हुए अत्यन्त परिश्रम से एक एक पुत्र ने पृथ्वी को एक एक योजन तक खोद डाला। पश्चात् उन सगर पुत्रों ने पाताल में घूमते हुए उस यज्ञ अश्व को देखा। समीप में ही उन्होंने कपिल मुनि को भी विराजमान देखा। शरत्कालीन आकार में स्थित सूर्य के समान विराजमान भगवान् कपिलमुनि अपने तेज से ऊपर नीचे और आठों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे। अनन्तर सगर पुत्रों ने शस्त्र उठाकर यही दुरात्मा हमारा अपकारी हैं, इसी ने यज्ञ विनाश के लिए अश्व की चोरी की, इसे मारों, मारों, ऐसा बोलते हुए उन कपिलमुनि के तरफ दौड़ पड़े। तब भगवान् कपिल ने भी कुछ टेढ़ी नजरों से उन सबको देखा। और वे सगर के सभी पुत्र अपने शरीर से ही उत्पन्न अग्निद्वारा भस्मीभूत हो गये ॥ ८-११ ॥

सगरोऽप्यनुगम्याश्वानुसारि तत् पुत्रबलमशेषं परमर्षिकपिलतेजसा दग्धमंशुमन्तमसमञ्जसः पुत्रमश्वानयनाय चोदयामास ॥ १२ ॥

राजा सगर ने अपने पुत्रों को कपिल मुनि के तेज से दग्ध हुए जानकर असमञ्जस पुत्र अंशुमान को अश्व की खोज करने के लिए भेजा ॥ १२ ॥

स तु सगरतनयखातमार्गेण कपिलमुपगम्य भक्ति नम्रस्तथा तथा च तुष्टाव, यथैनं भगवानाह, गच्छैनं पितामहायाश्वं प्रापय, वरं वृणीष्व च। पुत्र! पौत्रश्च ते स्वर्गाद् गङ्गामानयिष्यतीति ॥ १३ ॥

अथांशुमानपि ब्रह्मदण्डहतानामस्मत्पितृणां स्वर्गाय स्वर्गायोग्यानां स्वर्गप्राप्तिकरं वरमस्माकं भगवान् प्रयच्छतु इत्याह ॥ १४ ॥

तञ्चाह भगवान्, —उक्तमेवैतन्मया पौत्रस्ते त्रिदिवाद् गङ्गां भुवमानयिष्यतीति। तदम्भसा संस्पृष्टेष्वस्थि भस्मस्वेते स्वर्गमारोक्ष्यन्ति। भगवद्विष्णु पादाङ्गुष्ठविनिर्गतजलस्य हि तन्माहात्म्यं यन्न केवलमभिसन्धिपूर्व्वकं स्नानाद्युपभोगेषू-

पकारकम्, अनभिसंहितमप्यपेतत्प्राणस्यास्थि-चर्म्म-स्नायु केशाद्युत्सृष्टं शरीरजं यद्भूपतितं सद्यः शरीरिणं स्वर्गं नयतीत्युक्तः प्रणम्य च भगवतेऽश्वमादाय पितामहयज्ञमाजगाम ॥ १५ ॥

सगरोऽस्याश्वमादय तं यज्ञं समापयामास। सागरञ्चात्मजप्रीत्या पुत्रत्वे कल्पयामास ॥ १६ ॥

अंशुमान् भी सगर पुत्रों द्वारा बनाये गये मार्ग से कपिलमुनि के समीप पहुंचकर भक्तिविनम्रभाव से उनको प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे। उस स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् महर्षि कपिलजी बोले—वत्स ! जाओ यह अश्व अपने पितामह को प्रदान करो और वर मांगो। हे पुत्र ! तुम्हारा पौत्र स्वर्ग से गङ्गा लायेगा। अनन्तर अंशुमान् ने यही कहा कि भगवन् ! ब्रह्मदण्ड से विनष्ट स्वर्ग के अयोग्य हमारे पितृगण स्वर्ग प्राप्ति करें यह वरदान दीजिये। ऐसी प्रार्थना की। तब भगवान् कपिल बोले—वत्स ! इसके पूर्व ही मैंने तुझे कहा कि तुम्हारा पौत्र स्वर्ग से गङ्गा लायेगा। उस गङ्गाजल से इनकी हड्डियों के स्पर्श होते ही ये समस्त स्वर्ग चले जायेंगे। भगवान् श्रीविष्णु के पादाङ्गुष्ठ से निकले हुए जल का यह माहात्म्य है कि केवल इच्छापूर्वक उसमें स्नानादि करने मात्र से उपकार होता है ऐसी बात नहीं, किन्तु अकाल में भी मृत भूमिपतित तथा परित्यक्त शरीर के भी हड्डी, चर्म, स्नायु, केश आदि भी यदि इस गङ्गा जी के जल में पड़ जाएँ तो शरीरधारी को स्वर्ग में ले जाता है। ऋषिद्वारा ऐसी बात कहे जाने पर अंशुमान् उनको प्रणाम करके यज्ञीय अश्व को लेकर अपने पितामह के यज्ञ में आ गये। सगर ने यज्ञीय अश्व को प्राप्तकर अपना यज्ञ समाप्त किया और अपने पुत्रों के प्रेम से सागर को अपने पुत्र रूप में माना ॥ १३-१६ ॥

तस्याप्यंशुमतो दिलीपः पुत्रोऽभवत्। दिलीपस्यापि भगीरथः, योऽसौ गङ्गां स्वर्गादिहानीय भागीरथी संज्ञां चकार ॥ १७ ॥

भगीरथात् श्रुतः, तस्यापि नाभागः ततोऽप्यम्बरीषः, तस्मात् सिन्धुद्वीपः, तस्याप्ययुताश्वः, तत्पुत्रऋतुपर्णो नलसहायोऽक्षहृदयज्ञोऽभूत् ॥ १८ ॥

उस अंशुमान् का पुत्र दिलीप हुआ और दिलीप का भगीरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिस भगीरथ ने स्वर्ग से भूतलपर गङ्गा को लाकर भागीरथी ऐसा नामकरण किया। भगीरथ से श्रुत, उसका पुत्र नाभाग, नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ,

अम्बरीष से सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीप का पुत्र अयुताश्व, उसका पुत्र ऋतुपर्ण था जो नल की सहायता से अक्ष (द्यूत) क्रीड़ा का पारङ्गत हुआ ।। १७-१८ ।।

ऋतुपर्णपुत्रः सर्व्वकामः । तत्तनयः सुदासः । सुदासात् सौदासो मित्रसहनामा ।। १९ ।।

योऽसावटव्यां मृगयागतो व्याघ्रद्वयमपश्यत् ।। २० ।।

ताभ्याञ्च तद् वनमपमृगं कृतम् ।। २१ ।।

स चैकं तयोर्वाणेन जघान ।। २२ ।।

म्रियमाणश्चासावतिभीषणाकृतिरतिकरालवदनो राक्षसोऽभवत् ।। २३ ।।

ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम, उसका पुत्र सुदास, सुदास का सौदास मित्रसह नामक पुत्र था । उस मित्रसहने वनमें मृगया के लिए जाने पर दो व्याघ्र देखा, जिन्होंने वन मृगविहीन कर दिया था । उसने दोनों में से एक को बाण से मार डाला । मरते समय उस व्याघ्र ने अत्यन्त भीषण एवं कराल मुखवाला राक्षस का रूप प्रकट किया । दूसरा 'मैं तुमसे बदला लूँगा' ऐसा कहकर अन्तर्ध्यान हो गया ।। १९-२३ ।।

द्वितीयोऽपि प्रतिक्रियां ते करिष्यामीत्युक्तवान्त र्धानं जगाम् ।। २४ ।।

कालेन गच्छता स सौदासो यज्ञमयजत् । परिनिष्ठितयज्ञेचाचार्य्यवशिष्ठे निष्क्रान्ते तद्रक्षो वशिष्ठरूपमास्थाय यज्ञावसाने मम समांसं भोजनं देयम्, तत् संष्क्रियतां क्षणादिहागमिष्यामीतुक्त्वा निष्क्रान्तः ।। २५ ।।

भूयश्च सूदवेशं कृत्वा राजाज्ञया मानुषमांसं संस्कृत्य राज्ञे न्यवेदयत् । असावपि हिरण्यपात्र-स्थितं मांसमादाय वशिष्ठागमनप्रतीक्षोऽभवत् ।। २६ ।।

आगताय च वशिष्ठाय निवेदितवान्, स चाचिन्तयत्, अहो ! राज्ञोऽस्य दौःशील्यम्, येनैतन्मांसमस्माकं प्रयच्छति । किमेतद् द्रव्यजातमिति ध्यानपरोऽभूत्, अपश्यच्च तन्मानुषमांसम् । ततश्च यस्मादभोज्यमस्मद् विधानां तपस्विनाम् अवगच्छ क्रोधकलुषीकृतचेता राजानं प्रति शाप मुत्ससर्ज्ज, न्नपि भवान् मह्यं ददाति, तस्मात्तवैवात्र लोलूपा बुद्धि र्भविष्यतीति ।। २७ ।।

अनन्तरञ्च तेनापि भगवतैवाभिहितोऽस्मीत्युक्तः किं किं मयैवाभि हितम् इति पुनरपि समाधौ तस्थौ ।। २८ ।।

कुछ समय के बाद राजा सौदास ने यज्ञ आरम्भ किया। इस यज्ञ में आचार्य वशिष्ठ यज्ञ समाप्त करके चले गये। पुनः वह राक्षस वशिष्ठ रूप धारण कर आया और बोला कि यज्ञ समाप्ति में मुझे मांस सहित भोज कराना तुम्हारा कर्तव्य है। अत एव तुम अन्नादि का संस्कार करो मैं कुछ ही क्षणों में आ रहा हूँ। राजा को ऐसी बात कहकर वह राक्षस पुनः चला गया। बाद में पाचक का रूप धारण कर उस राक्षस ने राजा के आदेश से मनुष्य माँस पकाकर राजा को निवेदन किया। राजा भी सुवर्ण के पात्रस्थित उस मांस को लेकर वशिष्ठमुनि के आगमन की प्रतिक्षा करने लगे। अनन्तर वशिष्ठ के आने पर राजा ने उनको वह मांस दिया। उस समय वशिष्ठ विचार करने लगे अहो इस राजा की कैसी कुटिलता है? इसने मुझे यह मांस दिया। पश्चात् यह सब है क्या यह जानने के लिए ध्यानस्थ हो गये योग से यह जान सके कि यह मनुष्य का मांस है। अनन्तर क्रोधाविष्टचित्त होकर उन्होंने राजा को शाप दिया, कि जानते हुए आपने मेरे समान तपस्वी को यह अभक्ष्य दिया, अत एव आपकी बुद्धि मनुष्य मांस के प्रति लोलुप होगी (अर्थात् आप राक्षस होंगे)। बाद में राजा बोले—हे भगवन्! आपने ही इस प्रकार का भोजन बनाने के लिए कहा था। इस बात को सुनकर वशिष्ठ बोले क्या? मैंने कहा था ऐसी बात कहकर वशिष्ठ पुनः ध्यान लगाये। अनन्तर समाधि द्वारा समस्त वृत्तान्त को जानकर वशिष्ठ ने राजा पर अनुग्रह किया और कहा—बहुत दिनों तक आपको मनुष्य मांस भक्षण नहीं करना होगा, केवल बारह वर्षों तक आप मनुष्य मांस भक्षण करेंगे॥ २४-२८॥

समाधिविज्ञानावगतार्थश्चास्यानुग्रहं चकार, नात्यन्तमेतत्, द्वादशाब्दं भवतो भोजनं भविष्यतीति॥ २९॥

असावपि तु प्रगृह्योदकाञ्जलिं मुनिशापप्रदा नायोद्यतो 'भगवानस्मद् गुरुः नार्हस्येवं कुलदेवता भूतमाचार्य्यं शप्तु'मिति स्वपत्न्या मदयन्त्या प्रसादितः। शस्याम्बुदरक्षार्थं तच्छापाम्बु नोर्व्यां नाकाशे चिक्षेप, तेनैव स्वपादौ सिषेच॥ ३०॥

तेन क्रोधश्रृतेनाम्भसा दग्धच्छायौ तत्पादौ कल्माषतामुपगतौ॥ ३१॥

उस समय राजा भी हाथ में जल लेकर वशिष्ठ को शाप देने के लिए तत्पर हुए, किन्तु उनकी पत्नी मदयन्ती ने कहा आप क्या करते हैं? भगवान् वशिष्ठ हमारे

गुरु हैं, कुल देवता स्वरूप हैं, इन आचार्य का शाप देना उचित नहीं हैं ऐसा कह राजा को प्रसन्न किया। उस समय अञ्जलि का शाप जल पृथिवी अथवा आकाश में छोड़ने से शस्य और मेघ नष्ट हो जायँगे ऐसा विचार करके राजा ने उस जल को अपने दोनों चरणों पर गिरा दिया। उस क्रोधाग्नि तप्त जल के स्पर्श से उनके दोनों पाँव कल्माषवर्ण (चितकबरे) के हो गये। इसके बाद उस राजा का नाम कल्माषपाद हुआ। अनन्तर वशिष्ठ के शाप से राजा तीसरे दिन राक्षसरूप होकर वन में भ्रमण करते हुए अनेकों मनुष्यों का भक्षण करने लगे ॥ २९-३१ ॥

ततश्च स कल्माषपादसंज्ञामवाप, वशिष्ठशापाच्च षष्ठे काले राक्षसभावमुपेत्याटव्यां पर्य्यटन्ननेकशो मानुषानभक्षयत् ॥ ३२ ॥

एकदा तु कञ्चिन्मुनिमृतुकाले भार्य्यया सह सङ्गतं ददर्श ॥ ३३ ॥

तयोश्च तमतिभीषणं राक्षसमवलोक्य त्रासात् प्रधावितयोर्दम्पत्योर्ब्राह्मणं जग्राह ॥ ३४ ॥

ततः सा ब्राह्मणी बहुशस्तं याचितवती, प्रसीद इक्ष्वाकुकुलतिलकभूतस्त्वं महाराजमित्रसहः न राक्षसः। नार्हसि स्त्रीधर्म्मसुखाभिज्ञो मय्य कृतार्थाया मिमं मद्भर्त्तारमत्तुम्, इत्येवं बहुप्रकारं तस्यां विलपन्त्यां व्याघ्रः पशुमिव तं ब्राह्मणमभक्षयत् ॥ ३५ ॥

ततश्चातिकोपसमन्विता ब्राह्मणी तं राजानं 'यस्मादेवं मय्यतृप्तायां स्वयायं-मत्पतिर्भक्षितः, तस्मात् त्वमप्यन्तमवलोपभोगप्रवृत्तौ प्राप्स्यसि' इति शशापाग्निं प्रविवेश च ॥ ३६ ॥

उस राक्षसरूपी राजा ने एक दिन ऋतुकाल में स्त्री के साथ एक ब्राह्मण को देखा। उस समय अति भयानक राक्षस को देखकर भागते हुए उस द्विजदम्पत्ति में से राक्षस ने ब्राह्मण को पकड़ लिया। तब ब्राह्मणी ने उनसे अनेक प्रार्थना की। हे महाराज! प्रसन्न होइये आप इक्ष्वाकुकुल के तिलकस्वरूप महाराज मित्रसह हैं, राक्षस नहीं हैं। आप स्त्रीधर्म के सुख के ज्ञाता हैं, मुझे अपूर्ण मनोरथ की अवस्था में मेरे पति का भक्षण करना आपके लिए उचित नहीं हैं। इस प्रकार बहुत विलाप करती हुई उस ब्राह्मणी से कहे जाने पर भी कुछ भी न सुनकर जिस प्रकार बाघ पशु को खाता है उसी प्रकार राजा ने भी ब्राह्मण को भक्षण कर लिया। तब अतीव कामार्ता ब्राह्मणपत्नी ने राजा को शाप दिया कि—मेरी कामवासना तृप्ति होने के पहले ही तुमने मेरे पति देवका भक्षण किया, अतः तुम जब कभी भी स्त्री प्रसङ्ग में

प्रवृत्त होगे उसी क्षण तुम भी विनष्ट हो जाओगे । ऐसा शाप देकर ब्राह्मणी ने अग्नि में प्रवेश किया ॥ ३२-३६ ॥

ततस्तस्य द्वादशाब्दपर्य्यये विमुक्तशापस्य स्त्री विषयाभिलाषिणो मदयन्ती स्मारयामास । ततश्च परमसौ स्त्रीसम्भोगं तत्याज ॥ ३७ ॥

अनन्तर बारह वर्ष पूरे होने पर शाप मुक्त होने के बाद स्त्री प्रसङ्ग में अभिलाषा करने वाले राजा को अपने पत्नी ने शाप का स्मरण कराया ॥ ३७ ॥

वशिष्ठश्च-अपुत्रिणा राज्ञा पुत्रार्थमभ्यर्थितो मदयन्त्यां गर्भाधानं चकार । यदा च सप्त वर्षाण्यसौ गर्भो न जज्ञे, ततस्तं गर्भमश्मना देवी जघान । पुत्रश्चाजायत । तस्य चाश्मक एव नामाभवत् । अश्मकस्य मूलको नाम पुत्रोऽभवत् । योऽसौ निःक्षत्रेऽस्मिन् क्ष्मातले क्रियमाणे स्त्रीभिर्विवस्त्राभिः परिवार्य्य रक्षितः । ततस्तं नारीकवचमुदाहरन्ति । मूलकाद् दशरथः तस्मादिलिविलः, ततश्च विश्वसहः तस्माच्च खट्वाङ्गो दिलीपः । योऽसौ देवासुराणा सग्रामे देवताभिरभ्यर्थितोऽसुरान् जघान । स्वर्गे च कृतप्रियैर्देवैर्वरार्थं चोदितः प्राह,—यद्यवश्यं वरो ग्राह्यस्तन्ममायुः कथ्यतामिति । अनन्तरञ्चैतैरुक्तम् एकमुहूर्त्तप्रमाण मायुः । इत्युक्तोऽस्खलितगतिना विमानेन लघिमगुणो मर्त्यलोकमागम्याह,—यथा न ब्राह्मणेभ्यः सकाशादात्मापि मे प्रियतरः, न चापि स्वधर्म्मोल्लङ्घनं मया कदाचिदप्यनुष्ठितम्, न च सकलदेवमानुष-पशु-वृक्षादिकेऽप्यच्युतव्यतिरेकवती दृष्टिर्ममाभूत्, तथा तमेव देवं मुनिजनानुस्मृत भगवन्तमस्खलितगतिरद्य प्रापयेयमित्यशेषदेवगुरौ भगवत्यनिदर्द्देश्यवपुषि सत्तामात्रा त्मन्यात्मानं परमात्मनि वासुदेवे युयोज, तत्रैव लयमवाप ॥ ३८ ॥

तत्रापि श्रूयते श्लोको गीतः सप्तर्षिभिः पुरा ।
खट्वाङ्गेन समो नान्यः कश्चिदुर्व्यां भविष्यति ॥

येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ।
त्रयोऽभिसंहिता लोका बुद्ध्या दानेन चैव हि ॥ ३९ ॥

अनन्तर उस राजा ने स्त्री सम्भोग का परित्याग ही कर दिया । पश्चात् पुत्रहीन राजा द्वारा प्रार्थना करने पर वशिष्ठ ने मदयन्ती के गर्भाधान किया । किन्तु वह गर्भ सात वर्षों तक कुक्षी से बाहर नहीं हुआ । तब मदयन्ती द्वारा प्रस्तर (प्रस्थर) से गर्भपर आघात करने से पुत्र जन्म लिया और उस पुत्र का नाम अश्मक हुआ ।

अश्मक के पुत्र का नाम मूलक था। उसी समय परशुरामजी पृथ्वी को क्षत्रियहीन करने के लिए प्रवृत्त हुए। तब विवस्त्र (वस्त्रहीन) स्त्रियों ने चारों ओर से घेरकर मूलक की रक्षा की थी, अत एव उसका नाम नारीकवच हुआ। मूलक का दशरथ नामक पुत्र था। दशरथ का पुत्र इलविल, उसका पुत्र विश्वसह, विश्वसह का पुत्र खट्वाङ्ग दिलीप हुआ। उस खट्वाङ्ग दिलीप ने देवासुर संग्राम में देवताओं से प्रार्थित होकर असुरों का संहार किया। उस समय स्वर्ग के देवताओं ने अपना उपकारी समझकर वर देने का विचार किया। तब राजा खट्वाङ्ग ने कहा कि आपलोग यदि मुझे निश्चय ही वर देना चाहते हैं तो मुझे यह बताये कि मेरी शेष आयु अब कितनी है ? अनन्तर देवताओं ने कहा, राजन् ! आपकी आयु केवल एक मुहूर्तमात्र अवशिष्ट है। देवताओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर खट्वाङ्ग दिलीप अकुण्ठित गतिवाले देवरथ पर बैठकर अतिशीघ्रता पूर्वक मृत्युलोक में पहुंचकर कहने लगे—जिस कारण ब्राह्मणों की अपेक्षा मेरी आत्मा भी प्रिय नहीं है, जिस कारण मैंने कदापि धर्मका उल्लङ्घन नहीं किया और जिस कारण मेरी दृष्टि देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष, आदिओं में भी एक समान रही उसी कारण से आज अकुण्ठित ज्ञानवाला मैं उन मुनिजनों से सदा स्मृत भगवान् श्रीविष्णुको प्राप्त करूँ, ऐसा कहते कहते राजा खट्वाङ्ग दिलीप ने उस अशेष गुरु अनिर्देश्य शरीर सत्तामात्र स्वरूप परमात्मा भगवान् वासुदेव में अपनी आत्मा का संयोग किया और भगवान् वासुदेव में ही विलीन हो गये। प्राचीनकाल में सप्तर्षियों ने खट्वाङ्गके विषय में एक श्लोक कहा है—पृथिवी पर खट्वाङ्ग के समान अन्य कोई भी व्यक्ति ने जन्म नहीं लिया। जिन्होंने मुहूर्तमात्र आयु जानकर स्वर्ग से पृथ्वी पर पहुंचने के बाद बुद्धिपूर्वक सत्पात्र को दान देकर त्रिलोकी का विजय किया। खट्वाङ्ग का पुत्र दीर्घबाहु, उसका पुत्र रघु, रघु का पुत्र अज, अज के पुत्र दशरथ थे। उन दशरथ के औरस पुत्ररूप में भगवान् पद्मनाभ श्रीविष्णु जगत् की स्थिति के लिए अपने अंश से राम, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न इन चार पुत्रों के रूप में अवतीर्ण हुए ॥ ३७-३९ ॥

खट्वाङ्गत्तो दीर्घबाहुः पुत्रोऽभवत्। ततो रघुः, तस्मादप्यजः, अजाद् दशरथः, दशरथस्यापि श्रीभगवान् अब्जनाभो जगत्स्थित्यर्थमात्मांशेन रामलक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नरूपिणा चतुर्द्धा पुत्रत्वमयासीत् ॥ ४० ॥

रामोऽपि बाल एव विश्वामित्रयज्ञरक्षणाय गच्छंस्ताड़कां जघान ॥ ४१ ॥

यज्ञे च मारीचमिषुपाताहतं दूरं चिक्षेप, सुबाहुप्रमुखाश्च क्षयमनयत्। सन्दर्शनामात्रेणैवाहल्यामपापां चकार। जनकगृहे च माहेश्वरं चापमनायासैनैव बभञ्ज सीताञ्चायोनिजां जनकराजतनयां वीर्य्यशुल्कां लेभे॥ ४२॥

सकलक्षत्रक्षयकारिणमशेषहैहयकुलकेतुभूतञ्च परशुराममपास्तवीर्य्य-बलावलेपं चकार॥ ४३॥

पितृवचनाच्चागणितराज्याभिलाषी भ्रातृभार्य्या समन्वितो वन विवेश॥४४॥

विराध-खर-दूषणादीन् कबन्ध-वालिनौ च जघान। बद्ध्वा चाम्भोनिधिम् अशेषराक्षसकुलक्षयं कृत्वा दशाननापहृतां तद्वधापहतकलङ्कामप्यनलप्रवेश शुद्धामशेषदेवेशसस्तूयमानां सीतां जनकराजतनयामयोध्यामानिन्ये॥ ४५॥

भरतोऽपि गन्धर्व्वविषयसाधनायोग्रगन्धर्व्वकोटीस्तिस्रो जघान। शत्रुघ्ने नाप्यमितबलपराक्रमो मधुपुत्रो लवणो नाम राक्षसेश्वरो निहतो मथुरा च निवेशिता।

इत्येवमाद्यतुलबलपराक्रमविक्रमणैरति दुष्टनिवर्हणैरशेषस्यास्य जगतो निष्पादितस्थितयो राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नाः पुनर्दिवमारूढाः। येऽपि तेषु भगवदंशेष्वनुरागिणः कोशलनगरजनपदास्तेऽपि तन्मनसस्तत्सलोकतामवापुः॥४६॥

रामचद्र ने बाल्यकाल में ही विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिए जाते हुए रास्ते में ताड़का नामक राक्षसी का विनाश किया। और विश्वामित्र के यज्ञ में मारीच को अपने बाण से आहतकर दूर फेंक दिया तथा सुबाहु आदि निशाचरों का भी विनाश कर दिया। इसी प्रकार दर्शनमात्र से अहल्या को निष्पाप बनाकर श्रीरामचन्द्रजी ने जनक गृह में अनायास ही शैव धनुष को भङ्ग करके अयोनिजा जनक राजकुमारी सीता को पत्नी रूप में ग्रहण किया। विवाह के बाद अयोध्या लौटने के समय रास्ते में श्रीरामचन्द्र जी ने समस्त क्षत्रियों का विनाश करने वाले तथा अशेष हैहयकुल के केतुस्वरूप परशुराम जी के वीर्य एवं बल को क्षीण किया। पश्चात् अयोध्या में आकर पिता के वचन से राज्य अभिलाषा को परित्यागकर भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने भ्राता और भार्या के साथ वन में प्रवेश किया। अनन्तर वन में विराध, खर एवं दूषणादि राक्षसगण को तथा कबन्ध और बाली का भी वध किये। बाद में सागर को बाँधकर समस्त राक्षसकुल को समाप्त कर रावण द्वारा अपहृत किन्तु

रावणवध से दूर हुई कलङ्कवाली तथा अग्निप्रवेश से शुद्ध समस्त देवताओं से स्तुति की जाती हुई जनकराजपुत्री सीता को लेकर भगवान् श्रीरामचन्द्र जी अयोध्या में आ गये। अनन्तर गन्धर्व राज्य के प्राप्ति निमित्त भरतजी ने तीन कोटिगन्धर्वो का विनाश किया। शत्रुघ्नजी ने भी महाबल पराक्रमवाले मधु के पुत्र लवणनामक राक्षस को वध करके मथुरा नाम की पुरी बसायी। इस प्रकार अनेक वेष अतुलनीय बलपराक्रम समूहद्वारा बहुत दुरात्माओं का वध करके समस्त जगत् की स्थिति सम्पादनपूर्वक भगवान् श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के साथ पुनः स्वर्ग गमन किया। उस समय अयोध्यावासी जिन मनुष्यों ने भगवान् के अंशचतुष्टय में अनुराग किया उन्होंने भी रामचन्द्र जी में मन लगाकर उनका ही सालोक्य पद प्राप्त किया ॥ ४०-४६ ॥

रामस्य तु कुश-लवौ पुत्रौ, लक्ष्मणस्याङ्गद-चन्द्रकेतु तक्ष पुष्करौ भरतस्य. सुबाहु-शूरसेनौ च शत्रुघ्नस्य ॥ ४७ ॥

कुशस्यातिथिः, अतिथेरपि निषधः पुत्रोऽभवत्। निषधस्यापि नलः, तस्यापि नभाः, नभसः पुण्डरीकः, तत्तनयः क्षेमधन्वा, तस्य च दवानीकः। तस्याप्यहीनगुः (ततो रूपः) ततो रुरुः, तस्य च पारिपात्रः, पारिपात्रद्दलः, दलाच्छलः, तस्याप्यु क्थः, उक्थाद् वज्रनाभः, तस्मात् शङ्खनाभः, ततो व्युत्थिताश्वः, ततश्च विश्वसहो जज्ञे। हिरण्यनाभं स्ततो महायोगीश्वरजैमिनिशिष्यः। यतो याज्ञवल्क्यो योगमवाप।

हिरण्यनाभस्य पुत्रः पुष्यः, तस्माद् ध्रुवसन्धिः, ततः सुदर्शनः, तस्माद ग्निवर्णः ततश्च शीघ्रः, ततोऽपि मरुः पुत्रोऽभूत्! योऽसौ योगमास्थायाद्यापि कलापग्राममाश्रितस्तिष्ठति। आगामियुगे सूर्य्यवंशक्षत्रप्रवर्त्तयिता भविष्यतीति। प्रसुश्रु तस्तस्यात्मजः, तस्यापि सुगन्धिः, ततश्चामर्षः, तस्य महस्वान् ततो विश्रुतवान्, ततो बृहदबलः योऽर्ज्जुनतनयेनाभिमन्युना भारतयुद्धे भयमनीयत ॥ ४८ ॥

राम के पुत्र कुश और लव, लक्ष्मण के पुत्र अङ्गद और चित्रकेतु, भरत के तक्ष और पुष्कल, तथा शत्रुघ्न के सुबाहु और शूरसेन नामक पुत्र थे। कुश का पुत्र अतिथि, अतिथि का पुत्र निषध हुआ। निषध का पुत्र नल, उसका पुत्र नभ, नभ का पुत्र पुण्डरीक, पुण्डरीक पुत्र नल, उसका पुत्र नभ, नभ का पुत्र पुण्डरीक, पुण्डरीक का पुत्र क्षेमधन्वा, उसका पुत्र देवानीक हुआ। देवानीक का पुत्र अहीनगु, अहीनगुका रूप, उसका रुरु, उसका पारिपात्र, पारिपात्रका दल, दलका छल, उसका पुत्र उक्थ,

उक्थ का पुत्र वज्रनाभ, वज्रनाभ का पुत्र शंखनाभ, उसका पुत्र व्युत्थिताश्व, उसका पुत्र विश्वसह नामक हुआ। विश्वसह का पुत्र हिरण्यनाभ हुआ जिससे याज्ञवल्क्य ने योग की शिक्षा ली। हिरण्यनाभ का पुत्र पुष्य, पुष्य का पुत्र ध्रुवसन्धि उसका पुत्र सुदर्शन, सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण, उसका पुत्र शीघ्र, शीघ्र का मरु नामक पुत्र हुआ। जो मरु आज भी योग धारण कर कलापग्राम में निवास करता है और आगामी युग में यही सूर्यवंशीय क्षत्रियगण का प्रवर्तक होगा। मरु का पुत्र प्रसुश्रुत, उसका पुत्र सुगन्धि, उसका पुत्र अमर्ष, अमर्ष का पुत्र महस्वान्, उसका पुत्र विश्रुतवान्, उसका पुत्र बृहद्बल, जो अर्जुनपुत्र अभिमन्यु द्वारा महाभारत युद्ध में मारा गया ॥ ४७-४८ ॥

एते हीक्ष्वाकुभूपालाः प्राधान्येन मयोदिताः ।
एतेषाञ्चरितं शृण्वन् सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४९ ॥

इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशीय प्रधान प्रधान क्षत्रियों का वर्णन मैंने किया। इनके चरित्र सुनने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में चौथा अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - पाँचवा अध्याय

(सीता की उत्पत्ति)

इक्ष्वाकुतनयो योऽसौ निमिर्नाम, स तु सहस्रवत्सरं सत्रमारेभे वशिष्ठञ्च होतारं वरयामास ॥ १ ॥

तमाह वशिष्ठः अहमिन्द्रेण पञ्चवर्षशतं यागार्थं प्रथमतर वृतः, तदनन्तरं प्रतिपाल्यताम्, आगतस्तवापि ऋत्विग् भविष्यामि, इत्युक्ते स पृथिवीपतिना न किञ्चिदुक्तः वशिष्ठोऽप्यनेन समन्वीप्सितमित्यमरपतेर्यागमकरोत् ॥ २ ॥

सोऽपि तत्कालमेवान्यैर्गौतमादिभिर्यागमकरोत् समाप्ते चामरपतेर्यागे त्वरावान् वशिष्टो निमेः कर्म्म करिष्यामीत्याजगाम, तत्कर्म्मकर्त्तृत्वञ्च तत्र गीत मस्य दृष्ट्वा, अथ स्वपते तस्मै राज्ञे मामप्रत्याख्यायैत दनेन गौतमाय कर्म्मान्तर-मर्पितं यस्मात्, तस्मादयं विदेहो भविष्वतीति शापं ददौ ॥ ४ ॥

प्रतिबुद्धश्चासाववनीपतिरपि प्राह, यस्मान्मा मसम्भाष्य अजानत एव शयानस्य शापोत्सर्गमसौ दुष्टगुरुश्चकार, तस्मात तस्यापि देहः पतितो भविष्य-तीति प्रतिशापं दत्त्वा देहमत्यजत् ॥ ५ ॥

तस्माच्छापाच्च मित्रावरुणयोस्तेजसि वशिष्ठतेजः प्रविष्टम्, उर्व्वशीदर्श-नादुद्भूतवीर्य्यप्रपातयोः सकाशाद् वशिष्ठो देहमपरं लेभे ॥ ६ ॥

पराशर जी बोले—इक्ष्वाकु का पुत्र जो निमि था, उसने किसी समय सहस्र वर्षव्यापी यज्ञ आरम्भ किया और उस यज्ञ में होता के रूप से वशिष्ठ का वरण किया। वरण के समय वशिष्ठ बोले—इन्द्र ने पाँच सौ वर्षव्यापी यज्ञ में मेरा वरण किया है। अतएव तब तक आप मेरी प्रतीक्षा करें, इन्द्र का यज्ञ समाप्त होने पर वहाँ से आकर मैं आपके यज्ञ में ऋत्विक् का कार्य करूँगा। वशिष्ठ के ऐसी बात कहने पर राजा निमि कुछ बोले नहीं। वशिष्ठ ने भी मेरी बात राजा स्वीकार कर लिये ऐसा समझकर इन्द्र का यज्ञ आरम्भ कराया। राजा निमि ने भी उसी समय गौतम

आदि अन्य ऋषियों के द्वारा यज्ञ आरम्भ कर दिया । पश्चात् इन्द्र के यज्ञ को समाप्त कर निमि राजा का यज्ञ करना होगा ऐसा विचार कर वशिष्ठं शीघ्रता पूर्वक वहाँ आ गये । अनन्तर उन्होंने गौतममुनि यज्ञ का समस्त कर्म सम्पादन करा रहे हैं, ऐसा देखकर सोये हुए राजा निमिको शाप देते हुए कहा कि राजा निमि ने मेरा अपमान कर गौतम के ऊपर यज्ञ कर्म का भार उदार किया, अतएव वह विदेह (अर्थात् देह हीन) हो जाय । अनन्तर जागने पर राजा ने भी कहा इस दुष्टगुरु ने बिना बात किये ही सोये हुए और इन समस्त बातों को जाने बिना मुझे शाप दिया अतएव उनका भी देहपात होगा । इस प्रकार प्रतिशाप देकर राजा ने शरीरत्याग किया । उस शाप के प्रभाव से मित्रावरुण के तेज से वशिष्ठ का तेज सम्पन्न हुआ । अनन्तर एक दिन उर्वशी को देखने से मित्रावरुण का वीर्यपात्त हुआ उसी से वशिष्ठ ने अन्य देह लाभ किया ॥ १-६ ॥

निमेरपि तच्छरीरमतिमनोहरतैलगन्धादिमरुपस्क्रियमाणं नैव क्लेदादिकं दोषमवाप, सद्योमृतमिव तस्थौ ॥ ७ ॥

यज्ञसमाप्तौ च भागग्रहणायागतान् देवान् ऋत्विज ऊचुः यजमानाय वरो दीयतामिति । देवै श्छन्दितो निमिराह ॥ ८ ॥

भगवन्तोऽखिलसंसारदुःखसङ्घातस्य च्छेतारः न ह्येतावज्जगत्यन्यद् दुःखमस्ति, यच्छरीरात्मनोर्व्वियोगो भवति, तदहमिच्छामि सकललोकलोचनेषु वस्तुम्, न पुनः शरीरग्रहणं कर्त्तुम् । इत्युक्ते देवैरसावशेष भूतानां नेत्रेषु आसां कारितः । ततो भूतान्युन्मेषनिमेषं चक्रुः ॥ ९ ॥

निमिका शरीर भी अत्यन्त मनोहर तैल आदि द्वारा लिप्त करके रखा गया, जिससे वह क्लेशादि दोष से दूषित नहीं हुआ, किन्तु सद्यः मृत के समान बना रहा । यज्ञ समाप्ति के बाद यज्ञ में भाग ग्रहण के लिए आये हुए देवगण से ऋत्विक्गण बोले---कि आप लोग यजमानको वर प्रदान करें । पश्चात् वर ग्रहण के लिए आज्ञा दिये जाने पर देवगण से राजा बोले—हे समस्त संसार के दुःखनाशक भगवद्गण ! संसार में शरीर और आत्मा के वियोग से बढ़कर और कोई दुःख नहीं है इस कारण से अब शरीर धारण की इच्छा नहीं है । किन्तु समस्त जनों के नेत्रों पर निवास करूँगा । निमिसे ऐसी बात कहे जाने पर देवगण ने उनको समस्त जीवों के नेत्रों पर निवास करने का वरदान दिया ॥ ७-९ ॥

अपुत्रस्य च तस्य भूभुजः शरीरमराजकभीरवस्ते मुनयोऽरण्यां ममन्थुः ॥१० ॥ तत्र कुमारो जज्ञे जननाज्जनकसंज्ञाञ्चासा ववाप ॥ ११ ॥

अभूद् विदेहोऽस्य पितेति वैदेहो मथनान्मिथिरभूत्। तस्योदावसुः पुत्रोऽभूत्। ततो नन्दिवर्द्धनः, तस्मात् सुकेतुः, तस्यापि देवरातः, ततश्च बृहदुक्थः, तस्य च महावीर्य्यः, तस्यापि सत्यधृतिः, ततश्च धृष्टकेतुः, धृष्टकेतोर्हर्य्यश्वः, तस्य च मरूः, मरोः प्रतिबन्धकः तस्मात् कृतरथः, तस्मात् कृतिः, तस्य विबुधः, तस्यापि महाधृतिः, तस्य च कृति रातः ततो महारोमा ततः सुवर्णरोमा, तस्याणि पुत्रो ह्रस्वरोमा, ततः सीर ध्वजोऽभूत्। तस्य पुत्रार्थं यजनभुव कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्नमासीत् सीरध्वजस्य भ्राता साङ्काश्याधिपतिः कुशध्वज नामा। सीरध्वजस्यापत्यो भानुमान् ॥ १२ ॥

अतएव समस्त जीव उन्मेष और निमेष करते हैं। राजा का कोई पुत्र नहीं था, अतएव अराजकता के भय से उन मुनियोंने राजा के शरीर को अरणिमन्थन किया। उससे पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार जनक के शरीर से उत्पन्न होने के कारण इस पुत्र का नामभी जनक हुआ, एवं इस पुत्र के पिता विदेह थे, अतः इसका नाम भी विदेह हुआ, इस प्रकार मन्थनद्वारा उत्पन्न होने के कारण इसका एक नाम मिथि रखा गया। उसका पुत्र उदारवसु, उदावसु का पुत्र नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धन का पुत्र सुकेतु, उसका पुत्र देवरात, देवरात का पुत्र बृहदुक्थ हुआ। बृहदुक्थ का पुत्र महावीर्य, उसका पुत्र सत्यधृति, सत्तधृतिका पुत्र धृष्टकेतु, उसका पुत्र हर्यश्व, हर्यश्व का पुत्र मरु का पुत्र प्रतिबन्धक, उसका पुत्र कृतरथ, कृतरथ का पुत्र कृति, उसका पुत्र विबुध उसका पुत्र विबुध उसका पुत्र महाधृति का पुत्र कृतिरात, उसका पुत्र महारोमा, महारोमा का पुत्र सुवर्णरोमा, उसका पुत्र हस्वरोमा, ह्रस्वरोमा का पुत्र सीरध्वज नाम का था। पुत्रप्राप्ति निमित्त यज्ञ के लिये पृथ्वी को कर्षण करते समय हल के अग्रभाग से उनको सीता नाम की एक कन्या प्राप्त हुई। सांकाश्यप्रदेश के अधिपति कुशध्वज इस सीरध्वज के भाई थे। तथा सीरध्वज के पुत्र का नाम भानुमान् था ॥ १०-१२ ॥

भानुमतः शतद्युम्नः, तस्य शुचिः तस्मादूर्ज्ज वहो नाम पुत्रो जज्ञ तस्यापि सत्यध्वजः ततः कुर्निः (कूणिः) कुनेरञ्जनः, तत्पुत्रः ऋतुजित्, ततोऽरिष्टनेमिः, तस्मात् श्रतायुः, ततः सूर्य्याश्वः, तस्मात् सञ्जयः (संनयः), ततः क्षेमारिः, तस्मादनेनाः, तस्मान्मीनरथः (मानरथः) तस्य सत्यरथः, तस्य सात्यरथिः, सात्यरथरुपगुः, तस्मात् श्रुतः, तस्माच्छा पाच्च मित्रावरुणयोस्तेजसि वशिष्ठतेजः,

(सुवर्च्चा:) , तस्यापि सुभास:, ततः सुश्रुत:, तस्माज्जय:, जयपुत्रो विजय:, तस्य ऋत:, ऋतात् सुनय:, ततो वीतहव्य:, तस्मात् सञ्जय:, तस्माद् (क्षेमाश्वः तस्मात्) धृतिः धृतेर्बहुलाश्वः तस्य पुत्रः कृतिः, कृतौ सन्तिष्ठतेऽयं जनक-वंशः ॥ १३ ॥

इत्येते मैथिलाः । प्राचुर्य्येणएतेषामात्मविद्याश्रयिणो भूपाला भविष्यन्ती ॥ १४ ॥

भानुमान् का पुत्र शतद्युम्न, उसका पुत्र शुचि, शुचि का उर्ज्जवह नामक पुत्र था । उर्ज्जवह का पुत्र कुनि, उसका पुत्र अञ्जन, उसका पुत्र ऋतुजित्, ऋतुजित् का पुत्र अरिष्टनेमि, उसका पुत्र श्रुतायु, उसका पुत्र सूर्याश्व, उसका पुत्र सञ्जय, सञ्जय का पुत्र क्षेमारि, उसका पुत्र अनेना, अनेना का पुत्र मीनरथ, उसका पुत्र सत्यरथ, सत्यरथ का पुत्र सात्यरथि, सात्यरथि का उपगु, उसका पुत्र श्रुत, श्रुत का पुत्र शाश्वत, उसका पुत्र सुधन्वा (सुवर्चा), उसका पुत्र सुदास, सुदास का पुत्र सुश्रुत, उसका पुत्र जय, जयका विजय, उसका पुत्र ऋत, ऋतका पुत्र सुनय, उसका पुत्र वीतहव्य, वीतहव्य का सञ्जय, उसका क्षेमाश्व, क्षेमाश्व का धृति, उसका बहुलाश्व, बहुलाश्व से कृति । इसी कृतितक जनकवंशीय राजागण हुए । इतने ही मिथिला के राजा गण हैं । इनमें प्रायशः राजा आत्मविद्या के पण्डित होंगे ॥ १३-१४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में पाँचवा अध्याय समाप्त ।

चतुर्थ अंश - छठा अध्याय

(चन्द्रवंश वर्णन)

मैत्रेय उवाच ।

सूर्य्यस्य भगवन्! वंशः कथितो भवता मम ।
सोमस्य वंशे त्वखिलान् श्रोतुमिच्छामि पार्थिवान् ॥ १ ॥

कीर्त्यते स्थिरकीर्त्तीनां येषामद्यापि सन्ततिः ।
प्रसादसुमुखस्तन्मे ब्रह्मन्नाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

मैत्रेय बोले—हे भगवन्! आपने मुझे सूर्यवंश की कथा सुनायी । अब मैं चन्द्रवंश के राजाओं की कथा सुनना चाहता हूँ । हे ब्रह्मन्! चन्द्रवंश के स्थिर कीर्तिवाले राजागण आज भी संसार में विराजमान हैं, अतएव आप प्रसन्न होकर उन चन्द्रवंशीय राजाओं की कथा मुझे सुनाइये ॥ १-२ ॥

पराशर उवाच ।

श्रूयतां मुनिशादर्दूल वंशः प्रथिततेजसः ।
सोमस्यानुक्रमात् ख्याता यत्रोर्व्वीपतयोऽभवन् ॥ ३ ॥

अयं हि वंशोऽतिबलपराक्रमद्युतिशीलचेष्टावद्भिरतिगुणान्वितैर्नहुषययातिकार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनादिभिर्भूपालैरलङ्कृतः ॥ ४ ॥ तमहं कथयामि श्रूयताम्—अखिलजगत् स्रष्टुर्भगवन्नारायणनाभिसरोजिनीसमुद्भवाब्जयोनेर्बह्मणः पुत्रोऽत्रिः, अत्रेः सोमः तञ्च भगवानब्जयोनिरशेषौषधिद्विज—नक्षत्राणामाधिपत्येऽभ्यषचयत् ॥ ५ ॥

स च राजसूयमकरोत् । तत्प्रभावादत्युत्कृष्टाधिपत्याधिष्ठातृत्वाच्चैनं मद आविवेश ॥ ६ ॥

मदावलेपाच्चासौ सकलदेवगुरोर्बृहस्पतेस्तारां नाम पत्नीं जहार ॥ ७ ॥

बहुशश्च बृहस्पतिचोदितेन भगवता ब्रह्मणा चोद्यमानः सकलैश्च देवर्षिभिर्याच्यमानोऽपि न मुमोच। तस्य हि बृहस्पतिद्वेषादुशनाः पार्ष्णिग्राहोऽभवत् ॥ ८ ॥

अङ्गिरसश्च सकाशोपलब्धविद्यो भगवान् बृहस्पतेः साहाय्यमकरोत् ॥९ ॥

यतश्चोशनाः, ततो हि जम्भ-कुजम्भाद्याः समस्ता एव दैत्यदानवनिकाया महान्तमुद्यम चक्रुः । बृहस्पतेरपि सकलदेवसैन्यसहायः शक्रोऽभवत् ॥ १० ॥

पराशर जी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ मैत्रेय ! जिस चन्द्रवंश में विख्यात राजागण हो चुके हैं उस चन्द्रवंश की कथा क्रमशः श्रवण करो । अतिबल-पराक्रमशाली, कान्तिमान्, सत्स्वभाव, दानादि क्रिया से सम्पन्न, अति गुणवान्, नहुष, ययाति, कार्तवीर्यार्जुन प्रभृति राजाओं से जो चन्द्रवंश अलङ्कृत हो चुका है । उस चन्द्रवंश की कथा मैं कहता हूँ, श्रवण करो । समस्त जगत् के उत्पादक भगवान् नारायण के नाभिकमल से उत्पन्न पद्मयोनि ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि मुनि थे । अत्रि मुनि का पुत्र चन्द्रमा हुए । भगवान् ब्रह्मा जी ने चन्द्रमा को समस्त नक्षत्र, औषधि और ब्राह्मणगण के आधिपत्यपर अभिषेक किया । चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया । इस यज्ञ के बाद यज्ञ के प्रभाव से एवं सर्वोत्कृष्ट आधिपत्य के अधिष्ठाता होने से चन्द्रमा के मन में अहङ्कार उत्पन्न हुआ । अहङ्कार युक्त हो जाने से चन्द्रमा ने समस्त देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी की पत्नी तारा का हरण किया । अनन्तर बृहस्पति जी की प्रार्थना से ब्रह्मा के बहुत अनुरोध करने पर एवं समस्त देवर्षिगण द्वारा याचना करने पर भी चन्द्रमा ने तारा का परित्याग नहीं किया । बृहस्पतिके साथ द्वेष होने के कारण शुक्राचार्य ने भी चन्द्रमा की सहायता की । बाद में अङ्गिरा से विद्यालाभ करके भगवान् रुद्र ने बृहस्पति की सहायता की । शुक्राचार्य चन्द्रमा के पक्ष में थे, अतएव जम्भ, कुजम्भ प्रभृति दानवगण उनकी सहायता के लिए महान् उद्योग करने लगे । अनन्तर समस्त देवताओं के साथ इन्द्र वृहस्पति की सहायता करने लगे ॥ ३-१० ॥

एवञ्च तयोरतीवोग्रः संग्रामस्तारकानिमित्तस्तारकामयो नामाभवत् । ततश्च समस्तशस्त्राण्यसुरेषु रुद्रपुरोगमा देवा देवेषु चाशेषदानवा मुमुचुः ॥ ११ ॥

एवञ्च देवासुराहवक्षोभक्षुब्धहृदयमशेषमेव जगद् ब्रह्माणं शरण जगाम ॥१२ ॥

अब दोनों पक्षों में भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ । यह युद्ध तारा के निमित्त था, अतएव इसका नाम तारकायुद्ध पड़ा । अनन्तर रुद्र आदि देवगण दानवों के प्रति

और दानवगण देवताओं के प्रति नानाप्रकार के अस्त्रशस्त्र से युद्ध करने लगे। पश्चात् इस देवासुर संग्राम से क्षुब्ध हृदय समस्त जगत् ब्रह्मा जी की शरण में हुआ ॥ ११-१२ ॥

ततश्च भगवानप्युशनस शङ्करमसुरान् देवांश्च निवार्य्य बृहस्पतेः ताराम-दात्। ताञ्चान्तःप्रसवामवलोक्य बृहस्पतिराह ॥ १३ ॥

नैष मम क्षेत्रे भवत्यान्यसुतो धार्य्यस्तदुत्सृजैनमलमतिधाष्ट्र्येनेति। सा च तेनैवमुक्ता पतिव्रता भर्त्तृवचनात् तमीषिकास्तम्बे गर्भमुत्ससर्ज्ज ॥ १४ ॥

स चोत्सृष्टमात्र एवातितेजसा देवानां तेजांस्याचिक्षेप ॥ १५ ॥

बृहस्पतिमिन्दुञ्च तस्य कुमारस्यातिचारुतया साभिलाषौ दृष्ट्वा देवाः समुत्पन्नसन्देहास्तारां पप्रच्छुः सत्यं कथयास्माकमतिसुभगे ! कस्यायमात्मजः, सोमस्याथ बृहस्पतेः ? इत्युक्तापि सा तारा ह्रिया न किञ्चिदुवाच ॥ १६ ॥

बहुशोऽप्यभिहिता यदासौ देवेभ्यो नाचचक्षे, ततः कुमारस्तां ! शप्तुमुद्यतः प्राह च दुष्टे ! अम्ब कस्मान्मम तातं नाख्यासि, अद्यैव तेऽलीकलज्जावत्याः शास्तिमयमहं करोमि, यथा नैवमन्याप्यतिमन्थरवचना भवतीति ॥ १७ ॥

अथ भगवान् पितामहस्तं कुमारं सन्निवार्य्य स्वयमपृच्छत् ताराम्, कथय वत्से ! कस्यायमात्मजः ? सोमस्याथ बृहस्पतेः ? इत्युक्ता लज्जाजड़माहसोम-स्येति ॥ १८ ॥

ततः स्फुरदुच्छ्सितामलकपोलकान्तिर्भगवानुडुस च आख्यातमेवैतत्— यथेलायामात्मजं पुरूरवसमुत्पादयामास। पतिस्तामालिङ्गय कुमारं साधु साधु वत्स ! प्राज्ञोऽसीति बुध इति नाम चक्रे ॥ १९ ॥

ब्रह्मा जी शुक्र, शङ्कर, असुर एवं देवगण को निवारण करके बृहस्पति को उनकी भार्या तारा दिलायी। उसे गर्भवती देखकर बृहस्पति ने कहा। हमारे क्षेत्र में अन्य व्यक्ति का औरस पुत्र धारण करना तुम्हें उचित नहीं, तुम इसे परित्याग करो। बृहस्पतिद्वारा इस प्रकार कहे जाने पर पतिव्रता तारा ने पतिवाक्य से ही उस गर्भ को मुञ्जतृण के गुच्छे में परित्याग किया। निक्षेपमात्र से ही उत्पन्न वह बालक अपनी कान्ति से देवगण के तेज को भी तिरस्कृत करता हुआ विराजमान हो रहा था। उस समय बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों की ही उस बालक के प्रति अभिलाषा देखकर देवगण ने सन्दिग्धभाव से तारा के प्रति

जिज्ञासा की। हे अतिसुभगे ! तुम सत्य कहो कि यह सन्तान चन्द्रमा अथवा बृहस्पतिकी है। देवगणों द्वारा ऐसा कहे जाने पर लज्जा से तारा कुछ नहीं बोली। अनेक बार पूछे जाने पर भी देवगण के समक्ष जब तारा कुछ नहीं बोली—तब सद्योजात वह कुमार उसे शाप देने के लिए उद्यत होकर बोला—अयि दुष्टस्वभाव से जननि ! तुम क्यों नहीं मेरे पिता का नाम कहती हो ? झूठी लज्जा करने वाली तुझे शासन मैं इस प्रकार करता हूं कि और कोई तेरे समान मन्थर भाषिणी होगी नहीं। अनन्तर भगवान् ब्रह्मा उस बालक को निवारण करके तारा से बोले—वत्से ! बोलो यह पुत्र किसका है चन्द्रमाका अथवा बृहस्पतिका ? इस प्रकार पूछे जाने पर तारा लज्जा जड़ित होती हुई बोली—चन्द्रमा का। अनन्तर उच्छ्वसित कपोल कान्तिवाला चन्द्रमा उस कुमार को आलिङ्गन करके बोले—हे वत्स ! साधु साधु, तुम प्राज्ञ हो इसी कारण तुम्हारा नाम बुध होगा ॥ १३-१९ ॥

पुरूरवास्त्वतिदानशीलोऽतियज्वातितेजस्वी। यं सत्यवादिनमतिरूपस्ववन्तं मित्रावरुणशापान्मानुषे लोके मया वस्तव्यम् इति कृतमतिरुर्व्वशी ददर्श ॥ २० ॥

दृष्टमात्रे च यस्मिन् अपहाय मानमशेषमपास्य स्वर्ग सुखाभिलाषं तन्मना भूत्वा तमेवोपतस्थे ॥ २१ ॥

सोऽपि च तामतिशयितसकललोकस्त्रीकान्ति-सौकुमार्य्य-लावण्यातिविलासहासादिगुणामवलोक्य तदायत्तचित्तवृत्तिर्बभूव ॥ २२ ॥

उभयमपि तन्मनस्कमनन्यदृष्टि परित्यक्तसमस्तान्यप्रयोजनमभूत् ॥ २३ ॥

उस बुध ने इलाके गर्भ से जिस प्रकार पुरूरवा को उत्पन्न किया था उसका वर्णन मैं पहले ही कह चुका हूँ। पुरूरवा अत्यन्त दानशील बहुत यज्ञ करने वाले और तेजस्वी थे। अनन्तर किसी समय मित्रावरुण के शाप से मुझे मनुष्यलोक में निवास करना होगा, ऐसा विचार करके उर्वशी ने मनुष्य लोक में उस सत्यवादी एवं अत्यन्त रूपवान् राजा पुरुरवा का दर्शन किया। उनको देखते ही उर्वशी समस्त मान और स्वर्ग सुख की अभिलाषा को परित्यागकर उनके समीप उपस्थित हुई। अनन्तर राजा पुरूरवा भी समस्त स्त्री कान्ति, सौकुमार्य, लावण्य की अपेक्षा अतिशय लावण्य आदि सम्पन्न, अत्यन्त विलासवती हास्यादि गुणशालिनी उस उर्वशी को देखकर उसके वशीभूत हो गये। उसी समय राजा और उर्वशी दोनों की परस्पर

आसक्तचित्त और एक दृष्टिवाले हुए और अन्य समस्त काम्यवस्तुओं को तुच्छ समझने लगे ॥ २०-२३ ॥

राजा तु प्रागल्भ्यात् तामाह ॥ २४ ॥

सुभ्रु त्वामहमभिकामोऽस्मि प्रसीदानुरागमुद्वह इत्युक्ता लज्जावखण्डित मुर्व्वशी प्राह ॥ २५ ॥

भवत्वेवं यदि मे समयपरिपालनं भवान् करोतीति ॥ २६ ॥

आख्याहि मे समयमित्यथ पृष्टा पुनरब्रवीत् ॥ २७ ॥

शयनसमीपे ममोरणकद्वयं पुत्रभूतं नापनेयम् ॥ २८ ॥

भवांश्च मया नग्नो न द्रष्टव्यः, घृतमात्रञ्च ममाहारः । इत्येवमेवेति भूपतिराह ।

तया च सहावनीपतिरलकायां चैत्ररथादिवनेषु अमलपद्मषण्डेषु अभिरमणीयेषु मानसादिसरःसु अभिरममाण एव षष्टिवर्षसहस्राणि अनुदिनप्रवर्द्धमान प्रमोदोऽनयत् । उर्व्वशी च तदुपभोगात् प्रतिदिनप्रवर्द्धमानानुरागा अमर लोक वासेऽपि न स्पृहां चकार । बिना चोर्व्वश्या सुरलोकोऽप्सरसां सिद्ध गन्धर्व्वाणाञ्च नातिरमणीयोऽभवत् ॥ २९ ॥

उस समय राजा संकोच का परित्याग करके बोले—हे सुभ्रु ! मैं तुम्हारे पर आसक्त हूँ तुम प्रसन्न हो और मेरे प्रति प्रेम करो । इस प्रकार राजा के कहने पर उर्वशी लज्जा को शिथिल करके बोली—यदि आप मेरी प्रतिज्ञा स्वीकार करें तो ऐसा ही होगा । तुम्हारी प्रतिज्ञा क्या है ? इस प्रकार राजा के कहने पर पुनः उर्वशी बोली—हमारे दो पुत्रों के समान इस दोनों मेषों (भेड़) को कदापि मेरी शय्या से दूर न कर सकेंगे अर्थात् सदा ये दोनों मेरी शय्या के समीप ही रहेगें आपको मैं कभी नग्न न देखने पाऊँ, एवं केवल घृत ही मेरा भोजन होगा ये तीन मेरी प्रतिज्ञाएँ हैं । अनन्तर राजा उर्वशी के साथ कभी अलका के चैत्र रथ आदि वन में और कभी अत्यन्त रमणीय एवं स्वच्छ कमल आदि से सुशोभित मानस आदि सरोवरों में क्रीड़ा करते हुए प्रतिदिन अनेक प्रकार के आनन्द वृद्धि के साथ साठ हजार वर्ष व्यतीत किये । उर्वशी भी प्रतिदिन राजा के साथ उपभोगसुख से प्रेम को बढ़ाती हुई स्वर्गवासकी इच्छा का भी परित्याग कर दिया । उस समय अप्सरा एवं सिद्धगन्धर्वों को उर्वशी रहित स्वर्गलोक रमणीय नहीं लगता था ॥ २४-२९ ॥

ततश्चोर्व्वशी-पुरूरवसोः समयविद् विश्वावसुर्गन्धर्व्वसमवेतो निशिशयनाभ्यासादेकमुरणकं जहार ॥ ३० ॥

तस्य चाकाशे नीयमानस्योर्व्वशी शब्दमश्रृणोतआह च, ममानाथायाः पुत्रः केनाप्ययपह्रियते, क शरणमुपयामीत्याकंर्ण्य राजा 'नग्न मां देवी द्रक्ष्यती' ति नययौ। अथान्यमप्युरणकमादाय गग्धर्व्वा ययुः। तस्याप्यप ह्रियमाणस्य शब्दमाकर्ण्य आकाशे पुनरपि 'अनाथास्म्यहमभर्त्तृ का कुपुरुषाश्रयेति' आर्त्तराविणी बभूव। राजाप्यमर्षवशादन्ध कारमेतदिति खड्गमदाय दुष्ट! दुष्ट! हतोऽसीति व्याहरन्नभ्यधावत्। तावच्च गन्धर्वैरती वोज्ज्वला विद्युज्जनिता। तत्प्रभया चोर्व्वशी राजानमपगताम्बरं दृष्टा अपवृत्तसमया तत्क्षणादेवापक्रान्ता ॥ ३१ ॥

परित्यज्य तावुरणकौ गन्धर्व्वाः सुरलोकमुपागताः। राजापि तौ मेषा वादाय हृष्टमनाः स्वशयनमायातो नोर्व्वशीं ददर्श ॥ ३२ ॥

उसके बाद उर्वशी और पुरूरवा की प्रतिज्ञा को जानने वाला अन्य गन्धर्वों के साथ विश्वावसु ने रात्रि में सोये हुए पुरूरवा और उर्वशी के समीप से एक मेष को हरण कर लिया। आकाशमार्ग से हरण किये जाते हुए उस मेढेका शब्द सुनकर उर्वशी बोली—मैं अनाथा हूँ कौन व्यक्ति मेरे पुत्र को हरण करता है। मैं किसके आश्रम में जाऊँ। इस बालक को सुनकर भी 'देवी नग्न मुझे देख लेगी' ऐसा विचार कर मेढे का उद्धार करने को राजा नहीं गये। तब तक दूसरे मेढे को भी हरण कर गन्धर्वगण चल दिये। उस समय हरण किये जाते हुए मेढे का शब्द सुनकर पुनः उर्वशी बोली—मैं अनाथा पतिहीना और कुपुरुष के आश्रय में हूँ, कौन मेरी सन्तान की रक्षा करेगा। इस बात को श्रवण कर अभी अन्धकार में मुझे नग्न कौन देख सकेगा ऐसा विचार कर राजा खड्ग लेकर अरे दुष्ट 'तू मारा गया' ऐसा बोलते हुए दौड़ पड़े। उस समय गन्धर्वों ने आकाश में बिजली चमकाना कर दिया। उस विद्युत् के प्रकाश में उर्वशी ने राजा को नग्न देखकर प्रतिज्ञा भङ्ग हो गयी ऐसा कह कर वहाँ से प्रस्थान कर गयी। उस समय गन्धर्वगण मेषद्वय को परित्याग कर स्वर्ग में भाग गये। राजा उन मेषद्वय को ग्रहण कर प्रसन्नता पूर्वक अपनी शय्या के समीप आकर भी उर्वशी को नहीं देख सका ॥ ३०-३२ ॥

ताञ्चापश्यन्नपगताम्बर एवोन्मत्तरूपो बभ्राम, कुरुक्षेत्रे चाम्भोजसरसि अन्याभिश्चतसृभिरप्सरोभिः समवेतामुर्व्वशीं ददर्श। ततश्चोन्मत्तरूपो राजा जायेह तिष्ठ, मनसि घोरे वचसि, इत्यनेकप्रकारं सूक्तम्वोचत् ॥ ३३ ॥

आह चोर्व्वशी, —महाराज अलमनेनाविवेकचेष्टि तेन। अन्तर्व्वत्नी अहम्, अब्दान्ते भवतात्रागन्तव्यम्, कुमारस्ते भविष्यति, एकाञ्च निशामहं त्वया सह वत्स्यामि, इत्युक्तः प्रहृष्टः स्वपुरमाजगाम। तासाञ्चाप्सरसामुर्व्वशी कथयामास, अयं स पुरुषोत्कर्षो, येन अहमेतावन्तं कालमनुरागाकृष्ट मनसा सहोषिता ॥ ३४ ॥

इत्येवमुक्तास्ता अप्सरस ऊचुः—साधु साधु अस्य रूपम्, अनेन सहास्मा कमपि सर्व्वकालमभिरन्तुं स्पृहा भवेदिति ॥ ३५ ॥

अनन्तर पुरुरवा उर्वशी को नहीं देखकर नग्न अवस्था में ही उन्मत्तरूप से भ्रमण करने लगे। बाद में एक दिन कुरुक्षेत्र के कमलसरोवर में राजा ने अन्य चार अप्सराओं के साथ उर्वशी को देखा। देखने के साथ ही उन्मत्त के समान होकर राजा उर्वशी से बोले—हे निर्दये ! इस हमारे हृदय में निवास करो मेरी बात सुनो। इस प्रकार राजा ने अनेक सूक्त वाक्य बोले। पश्चात् उर्वशी बोली—महाराज ! अविवेकी के समान चेष्टा करने से कोई फल नहीं होगा। इस समय मैं गर्भवती हूँ, एक वर्ष के बाद आप इस स्थान पर आये, उस समय एक पुत्र होगा और मैं एक रात्रि आपके साथ निवास करूँगी। उर्वशी से ऐसा कहे जाने पर राजा प्रसन्न होकर अपने नगर में चले गये। तब उर्वशी ने अन्य अप्सराओं से कहा—यही वे पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवा है। प्रेमाकृष्ट होकर मैंने इनके साथ ही इतने दिनों तक निवास किया था। इस प्रकार कहने के बांद अप्सराओं ने कहा—साधु साधु इनके साथ सदा रमण करने की अभिलाषा हम लोगों की भी हो रही है ॥ ३२-३५ ॥

अब्दे च पूर्ण स राजा तत्राजगाम, कुमारञ्चायुषमस्मै तदोर्व्वशी ददौ, एकाञ्च निशां तेन राज्ञा सहोषित्वा पञ्चपुत्रोत्पत्तये गर्भमाप ॥ ३६ ॥

उवाच चैनं राजानम्, —अस्मत्प्रीत्या महाराजाय सर्व्व एव गन्धर्व्वा वरदाः संवृत्ताः, तस्माद् व्रियतां वर इति ॥ ३७ ॥

अह राजा च विजित-सकलारातिरहतेन्द्रिय सामर्थ्यो बन्धुमानमितलकोषः, नान्यदस्माकमुर्व्वशी सालोक्याद अप्राप्यमस्ति, तदहमनया सहोर्व्वश्या कालं नेतुमभिलषामि ॥ ३८ ॥

इत्युक्ते गन्धर्व्वा राज्ञेऽग्निस्थाली ददुः ॥ ३९ ॥

ऊचुश्च एनमग्निमाम्नायानुसारी भूत्वा त्रिधा कृत्वा उर्व्वशीसलोकताम-नोथमुद्दिश्य सम्यग् यजेथाः । ततोऽवश्यमभिलषितमवाप्स्यसि ॥ ४० ॥

इत्युक्तस्तामग्निस्थालीमादायाजगाम, अन्तरटव्यामचिन्तयत्—अहा म अतिमूढ़ता, यदग्निस्थाली मयानीता नोर्व्वशीति । अथैनामाटव्यामेवाग्नि स्थालीं तत्याज स्वपुरञ्चाजगाम ॥ ४१ ॥

व्यतीतार्द्धरात्रौ विनिद्रश्चाचिन्तयत्,—ममोर्व्वशी सालोक्यप्राप्त्यर्थम-ग्निस्थाली गन्धर्व्वैर्दत्ता, सा च मया अटव्यां परित्यक्ता । तदहं तत्र तदाहरणाय यास्यामि इत्युत्थाय तत्राप्युपगतो नाग्निस्थालीमपश्यत् । शमी गर्भञ्चाश्वत्थम-ग्निस्थालीस्थाने दृष्ट्वा अचिन्तयत्—मयात्र स्थाली निक्षिप्ता, सा चाश्वत्थः शमी गर्भोऽभूत् । तदेतमेवाहमग्निरूपमादाय स्वपुरमभि गम्य अरणीं कृत्वा तदुत्पन्ना-ग्नेरूपास्तिं करिष्यामीति ॥ ४२ ॥

अनन्तर एक वर्ष पूरा होने पर राजा पुरूरवा उस स्थान पर पहुंचे । उस समय उर्वशी ने उनको आयुनामक एक पुत्र दिया और उनके साथ एक रात्रि निवास भी किया । बाद में पाँच पुत्रों की उत्पत्ति के लिए उसने गर्भधारण किया । अनन्तर राजा से उर्वशी बोली—हमारे साथ प्रेमबन्धन के कारण समस्त गन्धर्वगण आपको वर देने के लिए तैयार हैं, अत आप उस वर की प्रार्थना कीजिये । राजा बोले—हमारे शत्रुगण पराजित हो चुके हैं, इस समय इन्द्रियाँ सामर्थ्यशाली हैं, बढ़ती हुई असंख्य सैन्यशक्ति एवं कोष शक्ति भी परिपूर्ण हैं । इस समय उर्वशी के सहवास के अतिरिक्त मेरे और कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं हैं । अत एव मैं उर्वशी के साथ समय व्यतीत करना चाहता हूँ । ऐसा कहने पर गन्धर्वों ने राजा को अग्निस्थाली प्रदान किया । अग्निस्थाली देकर गन्धर्वो ने कहा कि आप देवताओं के अनुकूल होकर उर्वशी के सहवास की कामना से प्रतिदिन इस अग्नि की तीन भाग करके यज्ञ करे, इस प्रकार करने से अवश्य इच्छित वस्तु प्राप्त करेंगे । इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने अग्निस्थाली को लेकर अपनी नगरी की ओर प्रस्थान किया । आगमन के समय रास्ते में वन में विचार किया कि अहो हमारी कैसी मूर्खता है जो मैं अग्निस्थाली ला रहा हूँ और उर्वशी को नहीं ला रहा हूँ । इस प्रकार विचार करके राजा ने उस अग्निस्थाली को वन में ही परित्याग कर दिया । अपने घर में आने के बाद अर्धरात्रि व्यतीत होने पर जागकर राजा पुनः विचार करने लगे कि उर्वशी के सहवास के लिए गन्धर्वों ने मुझे अग्नि स्थाली प्रदान किया था । मैंने उसे वन में

ही परित्याग कर दिया। अब मैं इसी समय उस अग्निस्थाली को लाने के लिए उस वन में जाऊँगा। ऐसी चिन्ता करते हुए राजा उस वन में पहुंचे, किन्तु अग्निस्थाली नहीं पा सके। अनन्तर जिस स्थान में पहले अग्निस्थाली रखे थे उस स्थान पर शमी के गर्भ में एक अश्वत्थ (पीपल) को देखकर विचार करने लगे, इसी स्थानपर मैंने अग्निस्थाली का निक्षेप किया था, वही स्थाली शमी के गर्भ में अश्वत्थ के रूप में परिणत हो गयी है। अतएव मैं इसी अश्वत्थ को अग्नि के रूप में ग्रहण करके अपने नगर में गमन करूँगा और इसकी अरणी से उत्पन्न हुए अग्नि की ही उपासना करूँगा ॥ ३६-४२ ॥

एवमेव स्वपुरमुपगतोऽरणीं चकार ॥ ४३ ॥

तत्प्रमाणञ्चाङ्गुलैः कुर्व्वन् गायत्रीमपठत्। पठतश्चाक्षरसंख्यान्येवाङ्गुलान्यरण्यभवत् ॥ ४४ ॥

तत्राग्निं निर्म्मथ्याग्नित्रयमाम्नायानुसारी भूत्वा जुहाव, उर्व्वशीसालोक्यं चेह फलमभिसंहितवान्। तेनैवाग्निविधिना बहुविधान् यज्ञान् इष्ट्वा गन्धर्व्वलोकान प्राप्य उर्व्वश्या सह वियोगं नावाप ॥ ४५ ॥

एकोऽग्निरादावभवत्, ऐलेन त्वत्र मन्वन्तरे त्रेता प्रवर्त्तिता ॥ ४६ ॥

ऐसा सोचकर राजा ने अपनी पुरी में पहुंचकर अरणि का निर्माण किया। पश्चात् राजा ने उस काष्ठ को अङ्गुलप्रमाण बनाकर गायत्रीका पठन किया। अनन्तर गायत्री के अक्षर संख्यानुसार अङ्गुलि प्रमाण की अरणि उत्पन्न हुई। इसके बाद राजा उस अरणि को घर्षण करके अग्नित्रय को उत्पन्न कर उससे वेदानुसार हवन करने लगे एवं इस लोक में उर्वशी के सहवासरूप फल की कामना की। अनन्तर राजा ने उसी अग्निविधि से अनेक प्रकार के यज्ञ करके उसके प्रसाद से गन्धर्वलोक प्राप्त किया। पुनः उनको उर्वशी का वियोग नहीं हुआ। पूर्व में एक ही प्रकार का अग्नि था, किन्तु इस मन्वन्तर में इलापुत्र पुरूरवा ने गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण नामक तीन प्रकार के अग्नि का प्रचार किया ॥ ४३-४६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में छठा अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - सातवाँ अध्याय

(पुरूरवा और जह्नु का वंश वर्णन)

तस्याप्यायुर्धीमानमावसु-विश्वावसु-शतायुः-श्रुतायुः । (अयुतायुः) संज्ञाः षड्भवन् पुत्राः ॥ १ ॥

अमावसोर्भीमो नाम पुत्रोऽभवत् । भीमस्य काञ्चनः काञ्चनात् सुहोत्रः, तस्यापि जह्नुः । योऽसौ यज्ञवाटमखिलं गङ्गाम्भसा प्लावितमालोक्य क्रोधसंरक्तनयनो भगवन्तं यज्ञपुरुषमात्मनि परमेण समाधिना समारोप्या खिलामेव गङ्गामपिवत् ॥ २ ॥

अथेनं देवर्षयः प्रसादयामासुः, दुहितृत्वे चास्य गङ्गामनयन् । जह्नोश्च सुजह्नुर्नाम पुत्रोऽभवत् । तस्याप्यजकः, ततो बलाकाश्वः, तस्मात् कुशः, कुशस्य कुशाश्व-कुशनाभामूर्त्तरयामावसवश्चत्वारः पुत्रा बभूवुः ॥ ३ ॥

तेषां कुशाश्वः "शक्रतुल्यो मे पुत्रो भवे" दिति तपश्चचार । तञ्चाग्रतपसमवलोक्य मा भवत्वन्योऽस्मत्तुव्यवीर्य्य'इत्यात्मनैवास्येन्द्रः पुत्रत्वम गच्छत ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—पुरूरवा के आयु, धीमान, अमावसु, विश्वावसु, शतायु और श्रुतायु—ये छः पुत्र हुए । अमावसु के भीम नामक पुत्र हुआ । भीमका पुत्र काञ्चन, उसका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्र का जह्नु नामक पुत्र था । जह्नु ने अपने समस्त यज्ञस्थल को गङ्गाजल से प्लावित देखकर क्रोध से भगवान् यज्ञपुरुष को अपनी आत्मा में समावेश करके समस्त गङ्गा को ही पी लिया । उस समय समस्त देवर्षिओं ने उनको प्रसन्न किया । इसके बाद उन्होंने गङ्गाजी को अपनी पुत्रीस्वरूप माना । जह्नु का सुजह्नुनामक पुत्र हुआ, उसका पुत्र अजक हुआ, अजक से बलाकाश्व, बलाकाश्व का पुत्र कुश, और कुश के कुशाश्व, कुशनाभ, अमूर्तरय, अमावसु—ये चार पुत्र थे । उनमें कुशाश्व ने मुझे इन्द्र के समान पराक्रमवाला पुत्र हो ऐसा संकल्प करके तपस्या करना आरम्भ किया । उनकी उग्र तपस्या को देखकर इन्द्र और कोई

दूसरा मेरे समान पराक्रमवाला न हो ऐसा विचार कर स्वयं ही उनके पुत्ररूप में जन्मग्रहण किया ॥ १-४ ॥

गाधिर्नाम स कौशिकोऽभवत्। गाधिश्च सत्यवतीनाम कन्यामजनयत्। ताञ्च भार्गव ऋचीको वव्रे ॥ ५ ॥

गाधिरप्यतिरोषणाय अतिवृद्धाय च ब्राह्मणाय दातुमनिच्छन्नेकतः श्यामकर्णानामिन्दुवर्च्चसामनिलरंहसामश्वानां सहस्रं कन्याशुल्कमयाचत ॥ ६ ॥

तेनापि ऋषिणा वरुणसकाशादुपलभ्य अश्वतीर्थोत्पन्नं तादृशाश्वसहस्रं दत्तम् ॥ ७ ॥ ततस्तामृचीकः कन्यामुपयेमे। ऋचीकश्च तस्या श्चरुमपत्यार्थं चकार तथा प्रसादितश्च तन्मात्रे क्षत्रवरपुत्रोत्पत्तये चरुमपरं साधयामास ॥ ८ ॥

वह इन्द्र ही कौशिक गाधि नाम से विख्यात हुए। गाधि की सत्यवती नाम की एक कन्या हुई। ऋचिक ऋषि ने सत्यवती की याचना की। अत्यन्त क्रोधी स्वभाववाले अति वृद्ध ब्राह्मण को कन्या दान में अनिच्छुक होकर गाधि ने चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण और वायु के समान वेगवान् श्यामकर्ण एक सहस्र अश्व कन्या के मूल्यस्वरूप उनसे याचना की। उस ऋचीक ऋषि ने भी वरुणदेव के समीप से अश्वतीर्थ में उत्पन्न वैसे एक सहस्र अश्व लाकर राजा को दे दिया। इसके बाद ऋचीक ने उस कन्या के साथ विवाह किया। किसी समय ऋचीक ने सत्यवती के अपत्य (सन्तान) की कामना से चरु (यज्ञीय पायस) बनाया। उस समय सत्यवती ने मुनि को प्रसन्न करके अपनी माता के लिये भी क्षत्रियश्रेष्ठ पुत्रोत्पत्ति के लिए प्रार्थना की। उस मुनि ने एक और चरु प्रस्तुत किया ॥ ५-८ ॥

एष चरुर्भवत्या अयमपरस्त्वन्मात्रा सम्यगुपयोज्य इत्युक्तवा वनं जगाम ॥ ९ ॥

उपयोगकाले च तां माता सत्यवतीमाह, —सर्व्वं एवात्मपुत्रमतिगुणं समभिलषति, नात्म-जायाभ्रातृ गुणेष्वतीवादृतो भवतीत्यतोऽहसि मम त्वमात्मीयञ्चरुं दातुं, मदीयञ्चरुमात्मनोपयोक्तुम् ॥ १० ॥

मत्पुत्रेण हि सकलभूमण्डलपरिपालनं कार्य्यम् ॥ ११ ॥

कियद्ब्राह्मणस्य बलवीर्य्यसम्पदित्युक्ता सा स्वं चरुं मात्रे दत्तवती ॥१२ ॥

अथ वनादभ्यागत्य सत्यवतीमृषिरपश्यत्, आह चैनाम,—अतिपापे! किमिदमकार्य्यं भवत्या कृतम्, अतिरौद्रं ते वपुरालक्ष्यते नूनं त्वया त्वन्मातृ सत्कृतश्चरुरुपयुक्तः, न युक्तमेतत्॥ १३॥

चरु प्रस्तुत हो जाने पर यह चरु तुम्हारा और यह चरु तुम्हारी माता के लिए हैं इस प्रकार दोनों चरु के विषय में अपनी पत्नी सत्यवती को समझाकर मुनि वन को चले गये। अनन्तर चरु लेने के समय में माता ने सत्यवती से कहा—बेटी सभी लोग अपने लिये अति गुणवान् पुत्र की कामना करते है, किन्तु कोई अपनी पत्नी के भ्राता को उस प्रकार आदर नहीं करते अर्थात् समझती हूँ कि हमारे चरु की अपेक्षा तुम्हारा ही चरु उत्तम है। अत एव तुम अपना चरु मुझे दो और मेरा चरु तुम भक्षण करो, क्योंकि हमारे पुत्र को सारे भूमण्डल का पालन करना होगा और ब्राह्मण कुमार को बल, वीर्य तथा सम्पत्ति आदि से क्या आवश्यकता है? माता से ऐसी बात कहे जाने पर सत्यवती ने अपना चरु माता को दे दिया और उसका चरु स्वयं भक्षण किया। अनन्तर ऋषि जब वन से आये तब सत्यवती को देखकर बोले—अयि अतिपापे! तुमने यह क्या अकार्य किया? तुम्हारा शरीर अत्यन्त भयानक दिखाई देता है। मेरे विचार से तुमने अपनी माता का चरु भक्षण किया। सत्यवती! यह तुम्हारा कार्य उचित नहीं हुआ॥ ४-१३॥

मया हि तत्र चरौ सकलैव शौर्य्य-वीर्य्य-बलसम्पदारोपिता, त्वदीये चरावप्यखिलशान्ति-ज्ञान-तितिक्षादिका ब्राह्मणगुणसम्पत्। एतञ्च विपरीतं कुर्व्वत्यास्तवातिरौद्रास्त्रधारण-मारमनिष्ठः क्षत्रियाचारः पुत्रो भविष्यति, अस्याश्चोपशमरुचिर्ब्राह्मणाचारः॥ १४॥

इत्याकर्ण्यैव सा तस्य पादौ जग्राह। प्रणिपत्य च एनमाह,—भगवन्! मयैतदज्ञानादनुष्ठितं, प्रसादं मे कुरु, मैवंविधः पुत्रो भवतु, काममेवंविधः पौत्रो भवतु इत्युक्तो मुनिरप्याह—एवमस्तु इति॥ १५॥

अनन्तरञ्च सा जमदग्निमजीजनत्। तन्माता च विश्वामित्रं जनयामास। सत्यवती च कौशिकी नाम नद्यभवत्। जमदग्निरिक्ष्वाकुवंशोद्भवस्य रेणोस्तनयां रेणुकामुपयेमे। तस्याञ्चाशेषक्षत्रवशहन्तारं परशुरामसंज्ञं भगवतः सकललोकगुरोर्नारायणस्यांशं जमदग्निरजीजनत्॥ १६॥

विश्वामित्रपुत्रस्तु भार्गव एव शुनः शेफो नाम देवैर्दत्तः, ततश्च दवरातनामाभवत्। ततश्च ते मधुच्छन्द-जय-कृतदेव-देवाष्टक-कच्छप-हारीतकाख्या विश्वामित्रपुत्रा बभूवुः ॥ १७ ॥

तेषाञ्च बहूनि कौशिकगोत्राणि ऋष्यन्तरेषु वैवाह्यानि भवन्तीति ॥ १८ ॥

मैंने तुम्हारी माता के चरु में समस्त ऐश्वर्य, पराक्रम, शूरता, बल की सम्पत्ति का समावेश किया था और तुम्हारे चरु में अखिल शान्ति, ज्ञान, बुद्धि और सहनशीलता आदि ब्राह्मणोचित सम्पत्ति का समावेश था। तुमने उसके विपरीत कार्य किया अत एव तुम्हारा पुत्र अति भयानक अस्त्रशस्त्रधारी और मारण आदि कर्म में तत्पर क्षत्रियगुणसम्पन्न होगा एवं तुम्हारी माता का पुत्र शान्तिसम्पन्न ब्राह्मण आचारयुक्त होगा। ऋषिद्वारा ऐसी बात कहे जाने पर सत्यवती ऋषि के दोनों चरण पकड़कर प्रणाम करती हुई बोली—भगवन्! मैंने अज्ञानवश ऐसा कार्य किया मेरें ऊपर प्रसन्न होइये। मेरा पुत्र ऐसा न होकर भले ही पौत्र ऐसा हो जाय। इस पर मुनि ने कहा—अच्छा तुमने जो कहा वही होगा। अनन्तर यथा समय सत्यवती ने जमदग्नि को जन्म दिया एवं उसकी माता ने विश्वामित्र को उत्पन्न किया। बाद में सत्यवती कौशिकी नाम से विख्यात नदी हुई। जमदग्नि ने इक्ष्वाकुवंशीय राजा रेणुकी पुत्री रेणुका से विवाह किया और उस रेणुका के गर्भ से समस्त क्षत्रिय वंश का विनाश करने वाले सकललोक के गुरु नारायण अंशभूत परशुराम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। देवताओं ने भृगुवंशीय शुनः शेप को विश्वामित्र के पुत्ररूप में प्रदान किया। अतएव वह देवरात नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद विश्वामित्र से उत्पन्न पुत्रों का नाम मधुच्छन्द, जय, कृतदेव, देवाष्टक, कच्छप और हारीतक हुआ। उन पुत्रों से कौशिक-गोत्र एवं अन्यान्य ऋषि वंशों में विवाहयोग्य बहुत पुत्र हुए ॥ १५-१८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में सातवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - आठवाँ अध्याय

(धन्वन्तरि की उत्पत्ति)

पुरूरवसो ज्येष्ठः पुत्रो यस्त्वायुर्नामा, स बाहोर्दुहितरमुपयेमे। तस्यां स पञ्च पुत्रान् जनयामास। नहुष-क्षत्त्रवृद्ध-रम्भ-रजिसंज्ञाः, तथैवानेनाः पञ्चमः पुत्रोऽभूत्।

क्षत्त्रवृद्धात् सुहोत्रः पुत्रोऽभूत्। काशलेश-गृत्समदास्तस्य पुत्रास्त्रयोऽभवन्। गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्यप्रवर्त्तयिताऽभूत्॥ १॥

काशस्य काशिराजः, ततो दीर्घतमाः पुत्रोऽभवत्। धन्वन्तरिस्तु दीर्घतमसोऽभूत्। स हि संसिद्धकार्य्यकरणः सकलसम्भूतिष्वशेषज्ञानवित्॥ २॥

पराशर जी बोले—पुरूरवा का ज्येष्ठ पुत्र आयुनाम थे। उन्होंने बाहु की कन्या से विवाह करके पाँच पुत्र उत्पन्न किये। उन पाँच पुत्रों का नाम क्रमशः नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ एवं रजि और पाँचवाँ पुत्र का नाम अनेना था। क्षत्र वृद्ध के सुहोत्र नामक पुत्र हुआ। इस सुहोत्र के काश, लेश और गृत्समद नामके तीन पुत्र हुए। गृत्समद का पुत्र शौनक। यह शौनक चातुर्वर्ण्य का प्रवर्तक हुआ। काशका पुत्र काशीराज, काशीराजका पुत्र दीर्घतमा हुआ और दीर्घतमा के पुत्र धन्वन्तरि हुए। इस धन्वन्तरि का देह और इन्द्रियाँ जरा आदि विकारों से रहित थे और ये समस्त शास्त्रों के विशेषज्ञ थे॥ १-२॥

भगवता नारायणेन च अतीतसम्भूतावस्मै वरो दत्तः॥ ३॥

काशिराजगोत्रेऽवतीर्य्य त्वमष्टधा सम्यगायुर्व्वेदं करिष्यसि, यज्ञभाग् भविष्यसि इति॥ ४॥

तस्य च धन्वन्तरेः पुत्रः केतुमान्। केतुमतो भीमरथः, तस्यापि दिवोदासः, ततः प्रतर्द्दनः। स च मद्रश्रेण्यवंशविनाशादशेषाः शत्रवोऽनेन जिता इति शत्रुजिदभवत्॥ ५॥

तेन च प्रीतिमतात्मपुत्रो वत्स वत्सेत्यभिहितः, ततो वत्सोऽसावभवत्॥६॥

सत्यव्रततया ऋतध्वजसंज्ञामवाप। पुनश्च कुवलयनामानमश्वं लेभे, कुवलयाश्व इत्यस्यां पृतिव्यां प्रथितः॥ ७॥

पूर्वजन्म में भगवान् नारायण ने उनको वर दिया था कि तुम काशीराज के गोत्र में उत्पन्न होकर समस्त आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त करोगे। और यज्ञभाग के भोक्ता भी बनोगे। धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान्, केतुमान् का पुत्र दिवोदास, उसका पुत्र प्रतद्दर्न हुआ। प्रतद्दर्नने समस्त मद्रश्रेण्यवंश का उच्छेद किया था। तथा समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के कारण इनका नाम शत्रुजित् हुआ। उनके पिता दिवोदास उनको वत्स वत्स ऐसा कहकर सम्बोधन करते थे अत एव इसका एक नाम वत्स भी था। तथा यह अत्यन्त सत्यव्रत थे, इससे इनका एक अन्य नाम ऋतध्वज भी था। बाद में इन्होंने कुवलय नामक एक अश्व प्राप्त किया। इस लिए इनका नाम पृथ्वी पर कुवलयाश्व विख्यात हुआ॥ ३-७॥

तस्य च वत्सस्य पुत्रोऽलर्को नामाभवत्। यस्यायमद्यापि श्लोको गीयते।—

षष्टि वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च।
अलर्कादपरो नान्यो बुभुजे मेदिनीं युवा॥ ८॥

तथालर्कस्य सन्नतिर्नामात्मजोऽभवत्। ततः सुनीथः, तस्य सुकेतुः, ततो धर्म्मकेतुः, ततः सत्यकेतुः, तस्माद् विभुः, तत्तनयः सुविभुः, ततश्च सुकुमारः, तस्यापि धृष्टकेतुः, ततश्च वैनहोत्रः, ततश्च भार्गः, भार्गस्य भार्गभूमिः, अतश्चातुर्व्वर्ण्यप्रवृत्तिः, इत्येते काश्यपा भूपतयः कथिताः। रजेस्तु सन्ततिः श्रूयतामिति॥९॥

उस वत्स के अलर्क नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके विषय में श्लोक आज भी कहा जाता है। पूर्वकाल में अलर्क के अतिरिक्त अन्य कोई भी राजा युवावस्था में साठ हजार वर्षों तक पृथिवी का उपभोग न कर सका। उस अलर्क का सन्नति नाम का पुत्र हुआ, उसका पुत्र सुनीत, सुनीत का सुकेतु उसका पुत्र धर्मकेतु,

धर्मकेतु का सत्यकेतु, उसका पुत्र विभु, विभु का सुविभु, उसका पुत्र सुकुमार, सुकुमार का धृष्टकेतु, उसका पुत्र वैनहोत्र, वैनहोत्र का पुत्र भार्ग, भार्ग का भार्गभूमि, इस भार्गभूमि से चातुर्वर्ण्य का प्रचार हुआ । इन काश्यप राजाओं के विषय में तुमसे मैंने कहा अब रजि का वंशवर्णन श्रवण करो ॥ ८-९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में आठवाँ अध्याय समाप्त ।

चतुर्थ अंश - नवाँ अध्याय

(रजि और दैत्यों का युद्ध)

रजेः पञ्चपुत्रशतान्यतुलवीर्य्यसांराण्यासन्। देवासुरसंग्रामारम्भे परस्पर वधेप्सवो देवाश्चासुराश्च ब्रह्माणं पप्रच्छुः ॥ १ ॥

भगवन्! अस्माकमत्र विरोधे कतरः पक्षो जेता भविष्यतीति। अथाह भगवान्,—येषामर्थे रजिरात्तायुधो योत्स्यतीति। अथ दैत्यैरुपेत्य रजि रात्म साहाय्यदानायाभ्यर्थितः प्राह,—योत्स्येऽहं भवता मर्थे, यद्यहममरजयाद् भवतामिन्द्रो भविष्यामि इति। आकर्ण्यैतत् तैरभिहितो न वयमन्यथा वदिष्यामोऽन्यथा करिष्यामः। अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादस्तदर्थमयमुद्यम इत्युक्त्वा गतेष्वसुरेषु देवैरप्यसाववनीपतिरेवमेवोक्तः। तेनापि च तथैवोक्ते देवैरिन्द्रस्त्वं भविष्यसीति समन्वीप्सितम ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—रजि के अतुलित पराक्रमशाली पाँच सो पुत्र थे। किसी समय देवासुर संग्राम में परस्पर वध की इच्छा वाले देवगण और असुरगणने ब्रह्मा जी से पूछा भगवन्! हम दोनों के इस संग्राम में कौन विजयी होगा तब ब्रह्मा जी ने कहा जिसके पक्ष से राजा रजि शस्त्र धारण कर युद्ध करेंगे वही पक्ष विजय लाभ करेगा। इसके बाद दैत्यगण ने आकर राजा रजि से सहायता के लिए प्रार्थना की। अनन्तर राजा रजिने कहा कि यदि आपलोग देवगण पर विजय प्राप्त कर मुझे यदि इन्द्रत्व प्रदान करें तब मैं आपलोगों के निमित्त युद्ध करने के लिए तैयार हूँ। इस बातको सुनकर असुरगण बोले—हमलोग एक बात बोलकर अन्यप्रकार का कार्य नहीं करते। प्रह्लाद हम लोगों का इन्द्र हैं अतएव उन्हीं के लिए हम लोग यह उद्योग करते हैं। यही कारण है कि आपकी यह शर्त स्वीकार नहीं हो सकते। इस प्रकार की बात कह कर असुरगण प्रस्थान किये तो देवगण भी आकर उसी प्रकार प्रार्थना करने लगे। तथा राजा ने भी पहले जिसप्रकार कहा था देवगण को भी उसी

प्रकार कहा। इसके बाद देवगण ने स्वीकार करते हुए कहा कि आप ही हम लोगों के इन्द्र होंगे ॥ १-२ ॥

रजिनापि देवसैन्यसहायेन अनेकैर्महास्त्रैस्तदशेषमसुरबलं निषूदितम्।

अवजितारातिपक्षश्च इन्द्रो रजिचरणयुगलमात्मशिरसा निपीड्याह —भय त्राणदानादस्मत्पिता भवान्, अशेषलोकानामुत्तमो भवान्, यस्याहं पुत्रस्त्रिलोकेन्द्रः ॥ ३ ॥

स चापि राजा प्रहस्याह —एवमेवास्तु, अनतिक्रमणीया हि वैरिपक्षादप्यनेकविधचाटुवाक्यगर्भा प्रणतिः। इत्युक्त्वा स्वपुरमाजगाम् ॥ ४ ॥

अनन्तर रजि ने देवसैन्य के सहायक होकर अनेक महान् अस्त्रों द्वारा असुरगण का संहार किया। जिस समय समस्त शत्रुपक्ष विनष्ट हो गया उस समय इन्द्र रजि के दोनों चरणों का अपने मस्तक से स्पर्श करते हुए बोले—आपने भय से मेरी रक्षा की, अतः आप हम लोगों के पिता हैं। आप इस समय समस्त लोकों में सर्वश्रेष्ठ हुए कारण कि त्रिलोकेश इन्द्र मैं आपका पुत्र हूँ। उस समय राजा रजि भी हँसकर बोले—अच्छा वही हो विरोधिपक्ष का भी अनेक प्रकार के चाटुवाक्यों से युक्त अनुनयविनयका अतिक्रमण करना उचित नहीं और अपने पक्ष में तो यह बात भी नहीं ऐसी बात कहकर राजा अपने नगर को आ गये ॥ ३-४ ॥

शतक्रतुरपीन्द्रत्वं चकार। स्वर्याते च रजो नारदर्षिचोदिता राजसुताः शतक्रतुमात्मपितृपुत्रमाचाराद् राज्यं याचितवन्तः ॥ ५ ॥

अप्रदानं चावजित्येन्द्रमतिबलिनः स्वयमिन्द्रत्वं चक्रुः। ततश्च बहुतिथे काले व्यतीते बृहस्पतिमेकान्ते दृष्ट्वापहृतत्रैलोक्ययज्ञभागः शतक्रतुराह ॥ ६ ॥

वदरीफलमात्रमप्यर्हसि मम आप्यायनाय पुरोडाशखण्डं दातुमित्युक्तो बृहस्पतिरूचे, —यद्येवं पूर्वमेव त्वयाहं चोदितः स्यां, तन्मया त्वदर्थं कि मकर्त्तव्यमिति ॥ ७ ॥

स्वल्पैरेवाहोभिस्त्वां निजं पदं प्रापयिष्यामि इत्यभिधाय तेषामनु दिनाभिचारिकं बुद्धिमोहाय शक्रस्य च तेजोवृद्धये जुहाव। ते चापि तेन बुद्धिमोहेनाभिभूयमाना ब्रह्मद्विषो धर्म्मत्यागिनो वेदवादपराङ्मुखा बभुवुः। ततश्च तानपेतधर्म्माचारान् इन्द्रो जघान पुरोहिताप्यायिततेजाश्च त्रिदिवमाक्रामत्। एतदिन्द्रस्य स्वपदच्यवनारोहणं श्रुत्वा पुरुषः स्वपदभ्रंशं दौरात्म्यं वा न चाप्नोति। रम्भस्त्वन-

पत्योऽभवत् । क्षत्रवृद्धसुतः प्रतिक्षत्रः, ततपुत्रः सञ्जयः, ततश्च विजयः, तस्माच्च यज्ञकृत्, तस्य हर्षवर्द्धनः, हर्षवर्द्धनसुतः सहदेवः, तस्माददीनः, तस्य जयसेनः, ततश्च संहुतिः, तत् पुत्रः क्षत्रधर्म्माः, इत्येते क्षत्रवृद्धस्य । अतो नहुषवंशं वक्ष्यामि इति ॥ ८ ॥

शतक्रतु इन्द्र भी इन्द्रत्व करने लगे । अनन्तर राजा रजि को स्वर्गीय होने पर रजि को पुत्र ने नारद की प्रेरणा से अपने पिताद्वारा स्वीकृत पुत्र इन्द्र के समीप जाकर आचार के अनुसार राज्य की प्रार्थना की । किन्तु इन्द्र द्वारा राज्य नहीं प्रदान करने पर अति बलशाली रजिपुत्रगण इन्द्र को पराजित करके स्वयं इन्द्रत्व करने लगे । अनन्तर बहुत समय व्यतीत होने पर अपहृत हुए त्रैलोक्य यज्ञभागवाले इन्द्र निर्जन स्थान में बृहस्पति से बोले । बदरीफल (बेर) के बराबर घी देकर क्या मुझे तृप्त कर सकेंगे ? इन्द्रद्वारा ऐसी बात कहे जाने पर बृहस्पति बोले—यदि तुम यह बात मुझसे पहले ही कहते तो तुम्हारे लिये मेरे द्वारा कोई भी कार्य अकरणीय नहीं था । अब कुछ दिनों में ही तुम्हें अपने पद पर प्रतिष्ठित करूँगा । ऐसी बात कहकर बृहस्पति ने रजि पुत्रगण की बुद्धि विमोहित करने के लिए प्रतिदिन अभिचारादि क्रिया और इन्द्र की तेजो वृद्धि के लिए होम करना आरम्भ किया । अनन्तर रजि पुत्रगण बुद्धिमोहन क्रिया से अभिभूत होकर ब्राह्मणद्वेषी, धर्मत्यागी और वेद वाद से विमुख हो गये । तब इन्द्र ने अनायास ही धर्माचार विहीन उन रजि पुत्रगण का हनन किया और अपने पुरोहित बृहस्पति की कृपा से तेजस्वी बनकर स्वर्ग पर आक्रमण करके अधिकार किया । इन्द्र की यह पदच्युति और पदप्राप्ति की कथा सुनकर पुरुष अपने पद से भ्रष्ट नहीं होता और दौरात्म्यको प्राप्त नहीं करता । रम्भ को पुत्र अथवा कन्या कोई नहीं था । क्षत्रवृद्ध का पुत्र प्रतिक्षत्र उसका पुत्र सञ्जय, सञ्जय का पुत्र जय, उसका पुत्र विजय, विजय का पुत्र यज्ञकृत्, उसका पुत्र हर्षवर्द्धन, हर्षवर्द्धन का पुत्र सहदेव, उसका पुत्र अदीन, उसका पुत्र जयसेन, जयसेन का पुत्र संभूति, सम्भूति का पुत्र क्षत्रधर्मा । इस प्रकार क्षत्रवृद्धवंशीय राजागण के विषय में कहा गया । इसके बाद नहुषवंश का वर्णन करूँगा ॥ ५-८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में नवाँ अध्याय समाप्त ।

चतुर्थ अंश - दसवाँ अध्याय

(ययातिकी कथा)

यति-ययाति-संयाति-अयाति-वियति-कृतिसंज्ञा नहुषस्य षट् पुत्रा महाबल पराक्रमा बभूवुः । यतिस्तु राज्यं नैच्छत् । ययातिस्तु भूभृदभवत्, उशनसश्च दुहितरं देवयानीं शर्म्मिष्ठाञ्च वार्षपर्व्वणीमुपयेमे ॥ १ ॥

यदुञ्च तुर्व्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत ।

द्रुह्युञ्चानुञ्च पूरुञ्च शर्म्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—यति, ययाति, संयाति, अयाति वियति और कृति—ये छः नहुष के पुत्र थे । ये सभी महाबलशाली और पराक्रमी थे । यतिने राज्य की कामना नहीं की तब ययाति राजा हुए । ययातिने शुक्र की पुत्री देवयानी, वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से विवाह किया । उनके वंश के सम्बन्ध में एक श्लोक है—देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु, तथा पुरुको उत्पन्न किया ॥ १-२ ॥

काव्यशापाच्च अकालेनैव ययातिर्जरामवाप ॥ ३ ॥

प्रसन्नशुक्रवचनाच्च जरां संक्रमयितुं ज्येष्ठं पुत्रं यदुमुवाच,—त्वन्माता महशापादियमकालेनैव जरा मामुपस्थिता । तानहं तस्यैवानुग्रहाद् भवतः सञ्चारयाम्येकं वर्षसहस्त्रम्, न तृप्तोऽस्मि विषयेषु, त्वद्वयसा विषयानह भोक्तुमिच्छामि ॥ ४ ॥

नात्र भवता प्रत्याख्यानं कर्त्तव्यमित्युक्तः स नैच्छत् तां जरामादातुम । तञ्चापि पिता शशापः—त्वत् प्रसूतिनं राज्यार्हा भविष्यतीति ॥ ५ ॥

अनन्तरञ्च द्रह्यु तुर्वसुमनुञ्च पृथिवीपतिर्जर ग्रहणार्थ स्वयौवनप्रदानाय च चोदयामास । तैरप्येकैकश्येन प्रत्याख्यातस्तांश्च शशाप । अथ शम्मिष्ठातनय

मशेषकनीयांसं पुरुं तथैवाह, स चातिप्रवणमतिः प्रणम्य पितरं सबहुमानो महान् प्रसादोऽयमस्माकमित्युदारमभिधाय जरां प्रतिजग्राह। स्वकीयञ्च यौवन पित्रे ददौ।

सोऽपि च नवं यौवनमासाद्य धर्म्माविरोधेन यथाकामं यथाकालोपपन्न यथोत्साहं विषयं चचार। सम्यक प्रजापालनमकरोत् ॥ ६ ॥

शुक्राचार्य के शाप से ययाति असमय में ही वृद्ध हो गये थे। अनन्तर प्रसन्न होकर शुक्राचार्य के वचन से ययाति अपनी वृद्धावस्था को बदलने के लिए ज्येष्ठ पुत्र यदु से बोले—हे पुत्र! तुम्हारे मातामहके शाप के प्रभाव से अकाल में ही मैं वृद्ध हो गया हूं। इस समय उनकी कृपा से ही मैं उसी वृद्धत्व को एक हजार वर्ष के लिए तुमको देने की इच्छा करता हूँ। मैं अभी विषयभोगों से तृप्त नहीं हुआ हूँ, सुतरां मैं विषयभोग करने की इच्छा करता हूँ। इस विषय में तुम मेरा तिरस्कार नहीं करना। राजा से ऐसी बात कहे जाने पर यदु ने वृद्धावस्था को ग्रहण करने की इच्छा नहीं की। तब ययाति ने कहा कि तुम्हारे वंश में कोई भी राज्य करने योग्य न होगा। अनन्तर राजा ने क्रमशः द्रुह्यु, तुर्वसु तथा अनु के समीप भी जाकर उनके सामने यौवन ग्रहणकर अपनी वृद्धावस्था देने का प्रस्ताव रखा, किन्तु एक एक करके सभी पुत्रों ने उनका तिरस्कार ही किया। पिता ने उन सभी को भी शाप देते हुए कहा कि तुम्हारे वंशज राजपद के योग्य नहीं होंगे। अनन्तर महाराज ने सबसे छोटे शर्मिष्ठा के पुत्र पूरुके समीप जाकर पूर्वोक्त विषय कहा। तब अतीव बुद्धिमान् पुरु ने प्रणाम पूर्वक कहा कि मेरे ऊपर आपका यह महान् अनुग्रह है। ऐसा कहकर पिता की वृद्धावस्था स्वयं लेकर अपना यौवन उनको दे दिया। ययाति भी नवीन यौवन प्राप्तकर धर्मानुकूल अपनी इच्छा को यथासमय पूर्ण, तथा सम्यक् प्रकार से प्रजापालन करने लगे ॥ ३-६ ॥

विश्वाच्या सहोपभोगं भुक्तवा कामानामन्तमवाप्स्यामीत्यनुदिनं तन्मनस्को बभूव ॥ ७ ॥

अनुदिनञ्च उपभोगतश्च कामानतीव रम्यान् मेने ॥ ८ ॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९ ॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
एकस्यापि न पर्य्याप्तं तदित्यतितृषं त्यजेत् ॥ १० ॥

यदा न कुरुते भावं सर्व्वभूतेषु पापकम् ।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्व्वा एव सुखा दिशः ॥ ११ ॥

या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्य्यति जीर्य्यतः ।
तां तृष्णां सन्त्यजन् प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्य्यते ॥ १२ ॥

जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः ।
धनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि जीर्य्यति ॥ १३ ॥

पूर्णं वर्षसहस्त्रं मे विषयासक्तचेतसः ।
तथाप्यनुदिनं तृष्णा ममैतेष्वेव जायते ॥ १४ ॥

तस्मादेतामहं त्यक्तवा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।
निर्द्वन्द्वो निर्म्ममो भूत्वा चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १५ ॥

फिर विश्वाची नाम की अप्सरा के साथ नाना प्रकार के उपभोग करते हुए काम समूह का अन्त अब देखूँगा ऐसा प्रतिदिन विचारते हुए तन्मय रहने लगे । एवं प्रतिदिन इस प्रकार उपभोग में रत होकर विषयभोगों को अत्यन्त रमणीय विचार करने लगे । इसके बाद उन्होंने ऐसा कहा— ययाति बोले—विषय भोग की अभिलाषा कदापि उपभोग से शान्त नहीं होती, बल्कि घी की आहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान और बढ़ती ही जाती है । पृथ्वी पर धान्य, यव, सुवर्ण पशु एवं स्त्री जितने भी उपभोग की वस्तुएँ हैं उन समस्त से एक व्यक्ति की भी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती, इन विषयों को विचार करके बुद्धिमान् पुरुष का कर्तव्य है कि इनका परित्याग ही करे । जब पुरुष समस्त जीवों पर समान दृष्टि करके किसी भी प्राणी के लिये पापमय भाव नहीं करता है तब उसके पक्ष में समस्त दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं ॥ दुर्बुद्धि लोग जिसे परित्याग नहीं करते और शरीर के जीर्ण होने पर जो भी जीर्ण नहीं होता बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णा का परित्याग करके ही परम सुख से परिपूर्ण होता है । वृद्ध मनुष्य का केशसमूह वृद्ध (श्वेत) हो जाते हैं समस्त दाँत पुराने होकर टूट जाते हैं, किन्तु धन की आशा और जीवन की आशा कभी वृद्ध नहीं होती । एक हजार वर्ष पूरे हो गये हमारा मन विषयभोग में पूर्णतया आसक्त रहा,

तथापि प्रतिदिन समस्त विषयों में हमारी तृष्णा बढ़ती ही जाती हैं। इन समस्त कारणों से मैं तृष्णा को परित्याग करके ब्रह्म में मन को अर्पित कर द्वन्दहीन और ममता रहित होकर मृगों के साथ वन में विचरण करूँगा ॥ ७-१५ ॥

पुरोः सकाशावादाय जरां दत्त्वा च यौवनम्।
राज्येऽभिषिच्य पुरुञ्च प्रययौ तपसे वनम् ॥ १६ ॥

दिशि दक्षिणपूर्व्वस्यां तुर्व्वसुं प्रत्यथादिशत्।
प्रतीच्याञ्च तथा द्रुह्यु दक्षिणापथतो यदुम् ॥ १७ ॥

उदीच्याञ्च तथैवानुं कृत्वा मण्डलिनो नृपान्।
सर्व्वपृथ्वीपतिं पुरुं सोऽभिषिच्य वनं ययौ ॥ १८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—बाद में राजा ययाति पूरुसे अपनी बुढ़ापा लेकर और उनको यौवन देकर तथा उन्हीं को पुरुको प्रधान राजगद्दीपर अभिषेक करने के बाद तपस्या करने के लिए वन को चले गये। राजा ययाति ने दक्षिण-पूर्व दिशा का राज्य तुर्वसुको, पश्चिम दिशा का राज्य द्रुह्यु को, दक्षिण का राज्य यदु को और उत्तर दिशा का राज्य अनुको प्रदान कर पूरुका समस्त पृथ्वि के आधिपत्य के लिए अभिषेक किया था ॥ १६-१८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में दसवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - ग्यारहवाँ अध्याय

(सहस्त्रबाहु अर्जुन का चरित्र वर्णन)

अतः परं ययातेः प्रथमपुत्रस्य यदोर्वंशमहं कथयामि। यत्राशेषलोक निवासिमनुष्य-सिद्ध-गन्धर्व्व-यक्ष-राक्षस-गुह्यक-किम्पुरुषाप्सर-उरग-विहग-दैत्य-दानव-देवर्षि-द्विजर्षि-मुमुक्षुभिर्धर्म्मार्थ-काम मोक्षार्थिभिस्तत्फललाभाय सदाभिष्टुतापरिच्छेद्यमाहात्म्येनांशेन भगवाननादिनिधनो विष्णुरवततार ॥ १ ॥

यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते।
यत्रावतीर्णं विष्ण्वाख्यं परं ब्रह्म निराकृति ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! इसके बाद मैं ययाति के प्रथम पुत्र यदुके वंश की कथा कहूँगा। समस्त लोक के स्वामी मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व यत्र, राक्षस, गुह्यक, किम्पुरुष, सर्प, पक्षी, दैत्य, दानव, देवर्षि, ब्रह्मर्षिगण, कोई मोक्ष की कामना से, कोई धन की कामना से, कोई धर्म की कामना से जिनकी सदा स्तुति करते हैं वही अनादि निधन भगवान् श्रीविष्णु इस यदुवंश में अपरिमित महत्त्वशाली अपने अंश से अवतीर्ण हुए थे। इस यदुवंश के सम्बन्ध में एक श्लोक है—जिस यदुवंश में निराकार श्रीविष्णुसंज्ञक परब्रह्म अवतीर्ण हुए, उस यदुवंश का वर्णन सुनकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥ १-२ ॥

सहस्त्रजित्-क्रोष्टृ-नल-रघुसंज्ञाश्चत्वारो यदुपुत्रा बभूवुः। सहस्त्रजित् पुत्रः शतजित्। तस्य हैहयवेणुहयास्त्रयः पुत्राः बभूवुः। हेहयाद् धर्म्मनेत्रः ततः कुन्तिः, कुन्तेः साहञ्जिः, तत्तनयो महिष्मान् तस्माद् भद्रश्रेण्यः, ततो दुर्द्दमः, तस्माद् धनकः धनकस्य कृतवीर्य्य-कृताग्नि-कृतवर्म्म-कृतौजसश्चत्वारः पुत्राः। कृतवीर्य्याद-र्ज्जुनः सप्तद्वीपपतिर्बाहु सहस्त्रो जज्ञे। योऽसौ भगवदंशम त्रिकुलप्रसूतं दत्तात्रेया-ख्यमाराध्य बाहुसहस्त्रमधर्म्मसेवानिवारणं धर्म्मेण पृथिवीजयं धर्म्मतश्चानुपालनमरातिभ्योऽपराजयमखिलजगत्प्रख्यातपुरुषाच्च मृत्युम् इत्ये-

तान् वरान् अभिलषितवान्, लेभे च। तेनेयमशेषद्वीपवती पृथ्वी सम्यक् परिपालिता। दशयज्ञसहस्राण्यसावयजत्। तस्य च श्लोकोऽद्यापि गीयते ॥ ३ ॥

नूनं न कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः। यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा प्रश्रयेण दमेन च ॥ ४ ॥

अनष्टद्रव्यता च तस्य राज्येऽभवत् ॥ ५ ॥

यदु के चार पुत्र हुए, जिनका नाम सहस्रजित, क्रोष्टा, नल और रघु था। सहस्रजित् का पुत्र शतजित् था। शतजित् का दृहय, देहय और वेणुमहय नामक तीन पुत्र हुए। दृहयका पुत्र धर्मनेत्र, धर्मनेत्र का कुन्ति, उसका पुत्र साहञ्जि, साहञ्जिका महिष्मान्, उसका पुत्र भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्यका दुद्र्दम, उसका पुत्र धनक और धनक के कृतवीर्य, कृत्याग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा नाम के चार पुत्र हुए। उनमें कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन के एक सहस्र हाथ थे। वह सात द्वीपों का अधिपति था। सहस्रबाहु अर्जुन ने भगवान् के अंशभूत दत्ताश्रेय की आराधना करके अधर्मसेवा का निवारण, धर्मद्वारा पृथिवी का जय और समस्त जगत् के विख्यात पुरुषद्वारा मृत्यु—ये कई वरों की प्रार्थना की और प्राप्त भी किये। सहस्रबाहु अर्जुन ने सप्तद्वीपवती पृथ्वी का सम्यक प्रकार के प्रतिपालन तथा दश हजार यज्ञों के अनुष्ठान सम्पन्न किये। उनके सम्बन्ध में एक श्लोक आज भी कहा जाता है। यज्ञ, दान, तपस्या, विनय एवं इन्द्रियसंयमद्वारा अन्य कोई भी राजा कार्तवीर्य—अर्जुन के समान हो ही नहीं सकता। उनके राज्य में कोई द्रव्य नष्ट नहीं होता था ॥ ३-५ ॥

एवं पञ्चाशीतिसहस्राण्यब्दानव्याहतारोग्यश्रीबलपराक्रमो राज्यमकरोत्। माहिष्मत्यां दिग्विजयाभ्यागतो नर्म्मदाजलावगाहनक्रीड़ा निपानमदाकुलेना यत्नेनेव तेनाशेषदेवदैत्यगन्धर्व्वेशजयोद्भूतमदावलेपोऽपि रावणः पशुरिव बद्धवा स्वनगरैकान्ते स्थापितः ॥ ६ ॥

यः पञ्चाशीतिवर्षसहस्रोपलक्षणकालावसाने भगवन्नारायणांशेन परशुरामेण उपसंहृतः। तस्य पुत्रशतप्रधानाः पञ्च पुत्रा बभूवुः, शूर-शूरसेन-वृषण-मधु-ध्वजसंज्ञाः। जयध्वजात् तालजङ्घः पुत्रोऽभवत्। तालजङ्घस्य पुत्रशतमासीत्। येषां ज्येष्ठो बीतिहोत्रः, तथान्यो भरतः भरताद् वृष-सुजातौ च। वृषस्य पुत्रो मधरभवत्। तस्यापि वृष्णिप्रमुखं पुत्रशतमासीत् यतो वृष्णिसंज्ञामेतद् गोत्रमवाप। मधुसंज्ञाहेतुश्च मधुर भवत्। यादवाश्च यदुनामोपलक्षणात् ॥ ७ ॥

राजा अर्जुन ने इस प्रकार आरोग्य, सम्पत्ति, बल और पराक्रम को सुव्यस्थित रखते हुए पचासी (८५) हजार वर्षों तक राज्य किया। एकदिन वे नर्मदा नदी में जलविहार क्रीड़ा के समय अतिशय मद्यपान के कारण उनमत्त होकर व्याकुल हो गये। उसी समय बहुत देव, दैत्य और गन्धर्वगण के विजय से गर्वयुक्त रावण ने उसकी माहिष्मती नगरी पर आक्रमण किया, उस समय उन्होंने अनायास ही रावण को पशु के समान बाँधकर अपने नगर के एक निर्जन स्थान में रख दिया। वे अर्जुन पचासी हज़ार वर्षों को व्यतीत होने पर भगवान् नारायण के अंशभूत परशुरामजी-द्वारा मारे गये। इनके एक सौ पुत्र थे, जिनमें प्रधान पाँच पुत्रों का नाम शूर, शूरसेन, बृषण, मधुध्वज और जयध्वज था। उनमें जयध्वज का पुत्र तालध्वज था, इस तालध्वज के एक सौ पुत्र थे, उनमें वीतिहोत्र और भरत ज्येष्ठ थे। भरत का पुत्र वृष और सुजात था, वृष का पुत्र मधु था। मधु का भी वृष्णि आदि एक सौ पुत्र थे। इसी कारण यदु कुल का नाम वृष्णि हुआ। और इस कुल के मधु नाम का कारण मधु थे। यदु नाम के कारण इसका नाम यादव हुआ॥ ७॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - बारहवाँ अध्याय

(यदुपुत्रकोष्टु का वंश वर्णन)

क्रोष्टुश्च यदुपुत्रस्यात्मजो वृजिनीवान्। ततश्च स्वाहि ततो रुषद्गुः, रुषद्रोश्चित्ररथः, तत्तनयः शशविन्दुश्चतुर्द्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्त्यभवत्॥ १ ॥

तस्य च शतसहस्रं पत्नीनामभवत्। दशलक्ष सङ्ख्याश्च पुत्राः। तेषाञ्च पृथुयशाः, पृथुकर्म्मा, पृथुजयः, पृथुदानः, पृथुकीर्त्तिः, पृथुश्रवाः, षट् पुत्राः प्रधानाः। पृथुश्रवसः पुत्रस्तमः, तस्मादुशनाः। यो वाजिमेधानां शतमा जहार। तस्य च शितेषुर्नाम पुत्रोऽभूत्, तस्यापि रुक्मकवचः, ततः परावृत्, परावृतो रुक्मेषु-पृथुरुक्म-ज्यामघ-पालित-हरित-संज्ञाः पञ्चात्मजा बभूवुः। अत्राद्यापि ज्यामघस्य श्लोको गीयते॥ २ ॥

भार्य्यावश्यास्तु ये केचिद् भविष्यन्त्यथवा मृताः।
तेषान्तु ज्यामघः श्रेष्ठः शैव्यापतिरभून्नृपः॥
अपुत्रा तस्य सा पत्नी शैव्या नाम तथाप्यसौ।
अपत्यकामोऽपि भयान्नान्यां भार्य्यामविन्दत॥

सं त्वेकदातिप्रभूत-गज-तुरग-सम्मदर्देनातिदारुणे महाहवे युध्यमानः सकलमेवारातिचक्रमजयत्। तच्चारिचक्रमपास्तपुत्रकलत्रबन्धुबलकोषं स्वमधिष्ठानं परित्यज्य दिशः प्रविद्रुतम्॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले यदुपुत्र क्रोष्टु के वृजिनीवान् नामक एक पुत्र हुआ। उसका पुत्र स्वाहि, स्वाहि का रुपद्रु, रुदद्रु का चित्ररथ, उसका शशबिन्दु। शशबिन्दु के समीप चौदह महारत्न थे और वह चक्रवर्ती नरेश था। शशबिन्दु की एक लाख पत्नि और दश लाख पुत्र थे। उन पुत्रों में पृथुयशा, पृथुकर्मा, पृथुजय, पृथुदान, पृथुकीर्ति,—पृथुश्रवा ये छः प्रधान थे। पृथुश्रवा का पुत्र तम, तमका पुत्र उशना। उशना ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उशना का शितेषु नामक पुत्र था, उसका

रुक्मकवच, रुक्मकवचका पुत्र परावृत्, परावृत् के रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित और हरितनामक पाँच पुत्र हुए। उनमें ज्यामघ के विषय में श्लोक कहा जाता है। जो लोग संसार में स्त्री के वशीभूत होकर मृत हुए अथवा आगे जो उत्पन्न होंगे उनमें शैव्यापति राजा ज्यामघ श्रेष्ठ है। जिन्होंने अपनी पत्नी शैव्या की अपुत्रा रहने पर तथा स्वयं सन्तानकामनावाले होने पर भी अन्य स्त्री का पाणि ग्रहण नहीं किया। उस राजा ज्यामघने एक दिन बहुसंख्यक अश्व, हाथी आदि के समूह से सम्बलित अत्यन्त भयङ्कर युद्ध करते करते समस्त शत्रुओं का संहार किया। अनन्तर पराजित शत्रुसमूह पुत्र, स्त्री, बन्धु और कोष आदि को परित्याग कर अपने नगर को छोड़कर दिशा विदिशा में भाग गये॥ १-३॥

तस्मिंश्च विद्रुतेऽतित्रासाल्लोलायतलोचनयुगलं त्राहि तात भ्रात रित्याकुलविलापविधुरं राजकन्या रत्नभद्राक्षीत्॥ ४॥

तद्दर्शनाच्च तस्यामनुरागानुगतान्तरात्मा स भूपोऽचिन्तयत्॥ ५॥

साध्विदं ममापत्यविरहितस्य बन्ध्याभर्त्तुः साम्प्रतं विधिनापत्यकारणं कन्यारत्नमुपपादितम्, तदेतत् समुद्वहामि। अथ चैनां स्यन्दनमारोप्य स्वमधिष्ठानं नयामि॥ ६॥

तथैव देव्याहमनुज्ञातः समुद्वक्ष्यामीति। अथैनां रथमारोप्य स्वनगरमागच्छत्॥ ७॥

शत्रुसमूह के भाग जाने पर राजा ने हे तात ! हे भ्रातः ! हमारी रक्षा करो इस प्रकार विलाप करती हुई एक राजकन्या देखी। अत्यन्त भय से विशालनेत्रों की चञ्चलता से यह कन्या और भी सौन्दर्यशालिनी हो रही थी। इस कन्या को देखकर उसके प्रति प्रेमाकृष्ट चित्तवाले राजा विचार करने लगे—मैं सन्तानहीन और बन्ध्यापति हूँ, अभी विधाता ने सन्तान प्राप्ति के लिये ही यह कन्यारत्न प्रदान किया। मैं इस कन्या के साथ विवाह करूँगा। अतएव इसे अपने नगर में ले चलूँ। पश्चात् वहाँ पर देवी शैव्या से आदेश लेकर इसके साथ विवाह करूँगा। इस प्रकार विचार करके राजा ने उस कन्या को रथ पर बैठाकर अपने नगर को प्रस्थान किया॥ ४-७॥

विजयिनञ्च राजानमशेषपौरभृत्यपरिजनामात्य समवेता शैव्या द्रष्टुमधिष्ठानद्वारमागता॥ ८॥

सा च अवलोक्य राज्ञः सव्यपार्श्ववर्त्तिनीं कन्यामीषदुद्भूताम्रर्षस्फुरदधर पल्लवा राजानमवोचत्, —अतिचपलचित्तात्र स्यन्दने केयमारोपिता इति। असावप्यनालोचितोत्तरवचनोऽतिभयात् तामाह, —स्नुषा ममेयमिति ॥ ९ ॥

नाहं प्रसूता पुत्रेण नान्या पत्न्यभवत् तव।
स्नुषासम्बन्धवाच्यैषा कतमेन सुतेन ते ॥ १० ॥

इत्यात्मेर्ष्याकोप-कलुषित-वचनमुषितविवेकतया दुरुक्तपरिहारार्थमिदभवनीपतिराह— ॥ ११ ॥

यस्ते जनिष्यत्यात्मजः, तस्येयमनागतमेव भार्य्या निरूपिता। इत्याकर्ण्योद्भूतमृदुहासा तथेत्याह प्रविवेश च राज्ञा सहाधिष्ठानमिति ॥ १२ ॥

देवी शैव्या सम्पूर्ण अनुचर, पुरवासी और मन्त्रिगण के साथ विजयी राजा को देखने के लिए नगरद्वारपर उपस्थित हुई। अनन्तर राजा के वामपार्श्व में कन्या को देखकर तत्काल उत्पन्न क्रोध से अपने अधरोष्ठ को कुछ लाल करती हुई राजा से बोली—हे अति चपलचित्त ! रथपर किसे बैठाये हो ! उस समय राजा अतिशय भय से बिना विचार किए ही बोले—यह कन्या हमारी पुत्रवधू है। अनन्तर शैव्या राजा से बोली—मेरा कोई पुत्र नहीं और आपकी दूसरी पत्नी भी नहीं है, तब आप किस पुत्र के सम्बन्ध से इसे पुत्रवधू कहते हैं। श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार अपने प्रति शैव्या के कोप-कलुषित वाक्यों से विवेकनाश होकर कहे गये इस असम्बनध वाक्य को परिमार्जन करते हुए राजा बोले भविष्य में जो तुम्हारा पुत्र होगा, इसे उसकी भार्या के रूप में निश्चय किया है। इस बात को सुनकर शैव्या कुछ हँसती हुई बोली—अच्छा यही होगा। ऐसी बात कहकर शैव्या ने राजा के साथ नगर में प्रवेश किया ॥ ८-११ ॥

अनन्तरञ्चातिशुद्धलग्नहोरांशकावयवोक्त-कृतपुत्र जन्मालापगुणाद् वयसः परिणाममुपगतापि शैव्या स्वल्पैरेवाहोभिर्गर्भमवाप ॥ १३ ॥

कालेन च पुत्रमजीजनत्। तस्य च विदर्भ इति पिता नाम चक्रे। स च तां स्नूषामुपयेमे ॥ १४ ॥

तस्याञ्चासौ कथ-कौशिकसंज्ञौ पुत्रावजनयत्। पुनश्च तृतीयं रोमपादसञ्ज्ञं कुमारमजीजनत्। रोम पादाद् बभ्रुः, बभ्रोः पुत्रो धृतिः। कौशिकस्यापि चेदिः

पुत्रोऽभूत्, यस्य सन्ततौ चैद्या भूपालाः। कथस्य स्नुषापुत्रस्य पुत्रः कुन्तिरभवत्॥१५॥

उस समय राजा और शैव्या का पुत्र जन्म विषयक यह वार्तालाप विशुद्ध लग्न होरा अंश आदि अवयवों से सिद्ध हुआ था। अतएव सन्तानोत्पत्ति की अवस्था बीत जाने पर भी कुछ ही दिनों में शैव्या गर्भवती हुई। समय बीतने पर शैव्या ने पुत्र उत्पन्न किया। पिता ज्यामघ ने उसका नाम विदर्भ रखा। अनन्तर उस विदर्भ ने उसी राजकन्या के साथ विवाह किया। विदर्भ ने उस राजकन्या से क्रथ और कौशिक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। पुनः रोमपादनामक एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। रोमपाद का पुत्र बभ्रु, बभ्रु का धृति नामक पुत्र हुआ। कौशिक को भी चेदि नामक एक पुत्र हुआ। उस चेदि से ही चैघराजागण उत्पन्न हुए। ज्यामघ की पुत्रवधू के पुत्र क्रथ के कुन्ति नामक एक पुत्र हुआ॥ १३-१५॥

कुन्तेर्वृष्णिः, वृष्णेर्निवृतिः, निर्वृतेर्दशार्हः, ततश्च व्योमा, तस्मादपि जीमूतः, तस्याग्पि वंशकृतिः, ततो भीमरथः, तस्माद् नवरथः, ततश्च दशरथः, तस्य शकुनिः, तत्तनयः करम्भिः, करम्भेर्देवरातोऽभवत्। तस्माद् देवक्षत्रः, तस्य मधुः, मधोरनवरथः, अनवरथात् कुरुवत्सः, ततश्चा नुरथः, ततः पुरुहोत्रो जज्ञे। ततश्च अंशः, ततश्च सत्त्वतः, सत्वतादेते सात्वताः॥ १६॥

इत्येतां ज्यामघसन्तति सम्यक् श्रद्धासमन्वितः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १७॥

कुन्ति का पुत्र वृष्णि, वृष्णि का पुत्र निर्वृति, उसका पुत्र दशार्ह, दशार्ह का पुत्र व्योमा, उसका पुत्र जीमूत, जीमूत का पुत्र वंशकृति, उसका पुत्र भीमरथ, भीमरथ का पुत्र नवरथ, उसका पुत्र दशरथ, दशरथ का पुत्र शकुनि, उसका पुत्र करम्भि, करम्भिका पुत्र देवरात हुआ। देवरात का पुत्र देवक्षत्र और उसका पुत्र मधु नामक था। मधु का पुत्र अनवरथ, उसका पुत्र कुरुवत्स, कुरुवत्स का पुत्र अनुरथ, अनुरथ से पुरुहोत्र का जन्म हुआ। पुरुहोत्र का पुत्र अंश, उसका पुत्र सत्यवत, सत्यवत से सात्वतवंश प्रचलित हुआ। इस ज्यामघ वंश का वर्णन जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्रवण करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है॥ १६-१७॥

विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में बारहवां अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - तेरहवाँ अध्याय

(स्यमन्तक मणि का वृत्तान्त।)

भजिन-भजमान-दिव्यान्धक-देवावृध-महाभोज वृष्णिसंज्ञाः सत्वतस्य पुत्रा बभूवुः ॥ १ ॥

भजमानस्य निमि-बृकण-वृष्णयः, तथान्ये तद्वेमात्राः—शताजित्सहस्राजिद्-अयुताजित् संज्ञाः ॥ २ ॥

देवावृधस्यापि बभ्रुः पुत्रोऽभूत्। तस्य च अयं श्लोको गीयते ॥ ३ ॥

श्रीपराशर जी बोले—सत्वत से जो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम—भजिन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महाभोज और वृष्णि। भजमान के पुत्र निमि, वृकण और वृष्णि—ये तीन थे और इनके सौतेले भाई शतजित्, सहस्राजित् एवं अयुताजित् थे। देवावृध का वसु नामक पुत्र था। इस बभ्रु के सम्बन्ध में यह श्लोक कहा जाता है ॥ १-३ ॥

यथैव श्रृणुमो दूरात् सम्पश्यामस्तथान्तिकात्।
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ ४ ॥

पुरुषाः षट् च षष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च। येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ॥ ५ ॥

महाभोजस्त्वतिधर्म्मात्मा। तस्यान्वये भोजा मात्तिकावता बभूवुः ॥ ६ ॥

वृष्णेः सुमित्रो युधाजिच्च पुत्रोऽभवत्। ततश्चानमित्र-शिनी तथा ॥ ७ ॥

अनमित्रान्निघ्नः, निघ्नस्य प्रसेन-सत्राजितौ। तस्य च सत्राजितस्य भगवानादित्यः सखाभवत् ॥ ८ ॥

हम लोग जैसा सुनते हैं समीप आने पर वैसा ही देखते हैं। बभ्रु, मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवताओं के तुल्य हैं। उन देवावृध और बभ्रु से प्रवर्तित

मार्ग को अवलम्बन करके छः हजार चौहत्तर लोगों ने अमरपद प्राप्त किये थे। महाभोज अत्यन्त धर्मात्मा थे, उनके वंश में भोज और मार्तिकावत राजागण हुए। वृष्णि के सुमित्र और युधाजित् नाम के पुत्र हुए। सुमित्र के पुत्र अनमित्र थे। अनमित्र से निघ्न, निघ्न के सत्राजित् और प्रसेन—ये दो पुत्र उत्पन्न हुए। भगवान् श्रीसूर्य सत्राजित् के मित्र थे ॥ ४-८ ॥

एकदा त्वम्भोधेस्तीरसंश्रयः सूर्य्यं सत्राजितस्तुष्टाव। तन्मनस्कतया च भास्वानभिष्ट्यमानोऽग्रस्तस्य तस्थौ, अस्पष्टमुत्तिधरं चैनमालोक्य सत्राजितः सूर्य्यमाह —यथैव व्योम्नि त्वां वह्निपिण्डोपममहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र न किञ्चिद्भगवता प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्यामि ॥ ९ ॥

इत्येवमुक्ते (भगवता) सूर्य्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकनामा मणि वतार्य्य एकान्ते न्यस्तः, ततस्तमाताम्रोज्जवलह्रस्ववपुषम् ईषदापिङ्गलनयन मादित्यमद्राक्षीत्। कृतप्रणिपातस्तवादिकञ्च सत्राजितमाह भगवान्—वरमस्मत्तोऽभिमतं वृणीष्वेति। स च तदेव मणिरत्नमयाचत। स चापि तस्मै तद् दत्त्वा वियति स्वं धिष्णमारुरोह ॥ १० ॥

सत्राजितोऽप्यमल-मणिरतसनाथकण्ठतया सूर्य्य इव तेजोभिरशेषदिगन्त राण्युद्भासयन् द्वारकां विवेश ॥ ११ ॥

द्वारकावासिजनपदस्तु तमायान्तमवेक्ष्य भगवन्त मनादिपुरुषं पुरुषोत्तममवनिभारावतारणायांशेन मानुषरूपधारिणं प्रणिपत्याह—भगवन्! भगवन्तमयं नूनं द्रष्टुमायात्यादित्यः। इत्याकर्ण्य प्रहस्य च तानाह भगवान्, नायमादित्यः सत्राजितोऽयमादित्य दत्तं स्यमन्तकाख्यं महामणि बिभ्रदत्रोपायाति। तदेनं विश्रब्धाः पश्यत, इत्युक्तास्ते ययुः ॥ १२ ॥

स च तं स्यमन्तकाख्यं महामणिमात्मनिवेशने चक्रे ॥ १३ ॥

भोजन-भजमान-दिव्यान्धक-देवावृध-महाभोज-प्रतिदिनञ्च तन्मणिरत्न प्रवरमष्टौ कनकभारान् स्रवति ॥ १४ ॥

तत्प्रभावाच्च सकलस्यैव राष्ट्रस्योपसर्गा अनावृष्टि व्यालाग्निचौरदुभिक्षादि भय न भवति ॥ १५ ॥

एक दिन सत्राजित् समुद्रतीरपर बैठकर सूर्य की स्तुति की। तन्मय होकर सत्राजित् की प्रार्थना करने पर दिवाकर भगवान् उसके समक्ष उपस्थित हुए। अनन्तर

मूर्तिमान् भगवान् श्रीसूर्य को सामने उपस्थित देखकर सत्राजित् बोले—आपको आकाश में जैसा तप्त अग्निपिण्डक समान देखता हूँ वैसा ही समक्ष में भी देख रहा हूँ उससे कोई विशेष तो देखता नहीं। सत्राजित् को ऐसा कहने पर भगवान् श्रीसूर्य ने अपने कण्ठ से स्यमन्तक नामक मणि को निकालकर अलग एक स्थान में रख दिया। इसके बाद सत्राजित् सूर्य को अच्छी प्रकार देख सके। उनके नेत्र कुछ पीले रंग का था, उनका शरीर कुछ ताम्रवर्ण का उज्जवल और छोटा था। अनन्तर प्रणामपूर्वक सत्राजित् द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान् सूर्य बोले—तुम अपनी इच्छानुसार मुझ से वर माँग लो। तब मणि की याचना की। सूर्य भी सत्राजित् को स्यमन्तक मणि देकर आकाश में अपने स्थान को चले गये। बाद में सत्राजित् अपने कण्ठ में उस निर्मल मणि को धारण कर सूर्य के समान देदीप्यमान होता हुआ तथा समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ द्वारका पहुँचा। सत्राजित् को द्वारका में प्रवेश करते हुए देखकर द्वारका वासी जन पृथ्वी के भार उतारने के लिए अपने अंश से अवतीर्ण मनुष्यरूपी अनादि पुरुषोत्तम को प्रणाम करके बोले—भगवान् निश्चय ही भगवान् श्रीसूर्य भगवत्स्वरूप आपका दर्शन करने के लिए आ रहे हैं। इस बात को सुनकर भगवान् हँसते हुए बोले—यह सूर्य नहीं हैं किन्तु सूर्य द्वारा दिये गये स्यमन्तक मणि को धारण करके सत्राजित् आ रहे हैं। तुमलोग विश्वस्त होकर इनका दर्शन करो। भगवान् से ऐसी बात कही जाने पर वे सब चले गये। अनन्तर सत्राजित् ने मणि अपने घर में रख दिया। उस मणि में यह विशेषता थी कि वह प्रतिदिन आठ भार सोना पैदा करती थी और समस्त राज्य में रोग, अनावृष्टि, हिंस्र जन्तु, अग्नि तथा चोर आदि का भय नहीं होता था॥ ९-१५॥

अच्युतोऽपि तद्रत्नमुग्रसेनस्य भूपतेर्योग्यमेतदिति लिप्साञ्चक्रे, गोत्र भेद-भयाच्च शक्तोऽपि न जहार॥ १६॥

सत्राजितोऽप्यच्युतो मामेतद् याचिष्यतीत्यवगत रत्नलोभः स्वभ्रात्रे प्रसेनाय तद्रत्नं दत्तवान्॥ १७॥

तच्च शुचिना ध्रियमाणमशेषसुवर्णस्रावादिकं गुणमुत्पादयति, अन्यथा य एव धारयति, तमेव हन्तीति। असावपि प्रसेनः स्यमन्तकेन कण्ठा सक्ते नाश्वमारुह्याटव्यां मृगयामगच्छत्। तत्र च सिंहाद् वधमवाप। साश्वञ्च तं निहत्य सिंहोऽप्यमलमणि रत्नमास्याग्रेणादाय गन्तुमुद्यतः ऋक्षाधिपतिना जाम्बवता दृष्टो

घातितश्च। जाम्बवानप्यमलं तन्मणिरत्न मादाय स्वविलं प्रविवेश, सुकुमारक संज्ञाय च बालकाय क्रीड़नमकरोत्॥ १८॥

अनागच्छति च तस्मिन् प्रसेने कृष्णो मणिरत्नमभिलषितवान्, न च प्राप्तवान्, नूनमेतदस्य कर्म्म, नान्येन प्रसेनो हन्येत इत्यखिल एव यदुलोकः परस्परं कर्णाकर्ण्यकथयत्॥ १९॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने एकदिन विचार किया कि यह मणि महाराज उग्रसेन के समीप रहना उचित है ऐसा विचारकर उस मणि को पाने के लिए इच्छा की। किन्तु सामर्थ्य रहते हुए भी स्वजातीय भेद के भय से उन्होंने मणि का हरण नहीं किया। सत्राजित् ने भगवान् श्रीकृष्ण इस मणि के लिए लोभ कर रहे हैं। अतएव पीछे मणि माँग सकते हैं ऐसा विचार कर अपने भाई प्रसेन को मणि दे दी। उस मणि का यह गुण था कि उसे शुद्धतापूर्वक धारण करने से समस्त सुवर्ण आदि उत्पन्न करता था। किन्तु अशुद्धावस्था में इसे धारण करने पर धारण करने वाले का प्राणान्त करता था। एक दिन प्रसेन स्यमन्तक मणि को अपने कण्ठ में धारण करके और अश्वपर चढ़कर शिकार करने के लिए वन में गये। वहाँ एक सिंह ने उनका वध किया। अश्व के साथ प्रसेन को मारकर सिंह उस मणि को लेकर भागने के लिए तैयार हुआ। ठीक उसी समय ऋक्षराज जाम्बवान् ने देखकर ही सिंह को मार दिया। बाद में जाम्बवान् ने उस सुन्दर मणिराज को लेकर अपने गुफा में प्रवेश कर अपने सुकुमार नामक बालक को खेलने के लिए मणि दे दिया। अब प्रसेन को वन से नहीं आने पर समस्त यदुकुल में इस प्रकार कानाकानी बात फैलने लगी कि भगवान् श्रीकृष्ण भी इस मणि की अभिलाषा करते थे किन्तु उन्होंने मणि नहीं पाया निश्चय प्रसेन का वध उन्होंने ही किया है यह इन्हीं का काम है॥ १६-१९॥

विदितलोकापवादवृत्तान्तश्च भगवान् यदुसैन्यपरिवारः प्रसेनाश्वपद वीमनुससार, ददर्श चाश्वसमेतं प्रसेनं निहतं सिंहेन। अखिलजनपद मध्ये सिंहपददर्शनकृतपरिशुद्धिः सिंहपदमनुससार॥ २०॥

अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण भी लोकापवाद वृत्तान्त को सुनकर यादवसेना के साथ प्रसेन के अश्वमार्ग का अनुगमन करने लगे। बाद में उन्होंने देखा कि अश्व के साथ प्रसेन सिंह मारे गये हैं। अब सिंह के चरण चिन्ह को देखकर सभी ने निश्चय किया कि अवश्य प्रसेन को सिंह ने ही वध किया। कृष्ण का यह कार्य

नहीं है। भगवान् भी सिंह के चरण चिन्ह को देखकर विशुद्धभाव से सिंह के चरणचिन्ह के अनुसरण कर आगे चले ॥ २० ॥

ऋक्षविनिहतञ्च सिंहमप्यल्पे भूमिभागे दृष्ट्वा ततश्च तद्रत्नगौरवादृक्षस्यापि पदान्यनुययौ। गिरितटे च सकलमेव यदुसैन्यमवस्थाप्य तत्पदानुसारी ऋक्षविलं प्रविवेश। अर्द्धप्रविष्टश्च धात्र्याः सुकुमारकमुल्लापयन्त्या वाणीं शुश्राव ॥ २१ ॥

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक ! मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥ २२ ॥

इत्याकर्ण्य लब्धस्यमन्तकोदन्तोऽन्तःप्रविष्टः कुमार क्रीड़नकीकृतञ्च धात्री हस्ते तेजोभिर्ज्जाज्वल्यमानं स्यमन्तकं ददर्श ॥ २३ ॥

तञ्च स्यमन्तकाभिलाषचक्षुषमपूर्व्वं पुरुषमागत मवेक्ष्य धात्री त्राहि त्राहीति व्याजहार ॥ २४ ॥

तदार्त्तनादश्रवणानन्तरञ्चामर्षपूर्णहृदयः स जाम्बवान् आजगाम, तयोश्च परस्परं युध्यतोर्द्वयोर्युद्धमेकविंशतिं दिनान्यभवत्। ते च यदुसैनिकास्तत्र सप्ताष्टदिनानि तन्निष्क्रान्तिमुदीक्षमाणस्तस्थुः। अनिष्क्रममाणे च मधुरिपौ असाववश्यमत्र विलेऽत्यन्तनाशमाप्तो भविष्यत्यन्यथा तस्य कथमेतावन्ति दिनानि शत्रुजये व्याक्षेपो भवतीति कृताध्यवसाया द्वारकामागता हतः कृष्ण इति कथयामासुः ॥२५ ॥

अनन्तर थोड़ी ही दूर जाने पर देखा कि सिंह एक भल्लूकद्वारा मारा गया पड़ा है। तब उस ऋक्ष के चरण चिन्ह को अनुगमन करते हुए आगे चलने लगे। उसके बाद उन्होंने एक पर्वत के समीप समस्त सेना को बैठाकर ऋक्ष के चरण चिन्ह के अनुसार चलते हुए उस ऋक्ष के गुफा में प्रवेश किया। उस बिल के भीतर में आधा प्रवेश करते ही भगवान् श्रीकृष्ण ने एक सुन्दर बालक के प्रलोभन के लिए किसी धात्री से कहा गया नीचे लिखे वचन सुना। सिंह ने प्रसेन का वध किया। जाम्बवान् ने उस सिंह का विनाश किया। हे सुकुमार ! तुम रोदन मत करो, यह स्यमन्तकमणि तुम्हारा ही है। ऐसी बात सुनते ही भगवान् श्रीकृष्ण ने स्यमन्तक मणि के विषय में जानकर गुफा में प्रवेश करके देखा कि बालक की क्रीड़ानिमित धात्री के हाथ में स्थित स्यमन्तक मणि अपने तेज से अत्यन्त प्रकाशित हो रहा है।

उस समय धात्री ने स्यमन्तक मणि की प्राप्ति के निमित इच्छावाले उस नवीन पुरुष को आये हुए देखकर त्राहि त्राहि स्वर से चित्कार करने लगी। उसका आर्तस्वर सुनकर क्रोधयुक्त जाम्बवान् वहां आया। फिर रोष बढ़ जाने से श्रीकृष्ण और जाम्बवान् का युद्ध आरम्भ हुआ। उन दोनों का परस्पर युद्ध होते होते इक्कीस दिन बीत गये। इस ओर यादवसैनिकगण भगवान श्रीकृष्ण के गुफा से निकलने के लिए सात-आठ दिनों तक प्रतीक्षा करके परस्पर में विचार करने लगे कि निश्चय भगवान् मधुसूदन इस गुफा के भीतर विनष्ट हो गये। यदि ऐसी बात नहीं होती तो उनको शत्रु विजय में इतने दिनों का विलम्ब होता नहीं। ऐसा स्थिर करके वे सब द्वारका में आकर प्रचार करने लगे कि श्रीकृष्ण मारे गये॥ २१-२५॥

तद्बान्धवाश्च तत्कालोचितमखिलमुपरतक्रियाकलापं चक्रुः॥ २६॥

तत्र चास्य युध्यमानस्यातिश्रद्धादत्तविशिष्टपात्रोपयुक्तान्नतोयादिना कृष्णस्य बलप्राणपुष्टिरभूत्॥ २७॥

इतरस्यानुदिनमतिगुरुपुरुषभिद्यमानस्याति निष्ठुरप्रहारपीड़िताखिलावयवस्य निराहारतया बलहानिः। निर्ज्जितश्च भगवता जाम्बवान् प्रणिपत्याह— असुरः सुर-यक्ष-गन्धर्व्व-राक्षसादिभिरप्यखिलैर्भगवान् न जेतुं शक्यः, किमुतावनिगोचरैरल्पवीर्य्यैर्नरावयवभूतैश्च तिर्य्यग्योन्यनुसृतिभिः, कि पुनरस्मद्विधैरवश्यं भगवतोऽस्मत्-स्वामिनो नारायणस्य सकलजगत्परायण स्यांशेन भगवता भवितव्यमित्युक्तः॥ २८॥

तस्मै भगवानखिलमवनिभारावतारमाचचक्षे॥ २९॥

प्रीत्याञ्जितकरतलस्पर्शनेन चैनमपगतयुद्धखेदं चकार॥ ३०॥

स च प्रणिपत्यैनं पुनरपि प्रसाद्य जाम्बवतीं नाम कन्यां गृहागमनार्घ्यभूता ग्राहयामास॥ ३१॥

अनन्तर श्रीकृष्ण के बान्धवगण ने उस काल के लिए उचित उनका समस्त प्रेत क्रिया आदि सम्पन्न किया। यहाँ बान्धवगण द्वारा अति श्रद्धा से दिये गये अन्न, जल आदि से युद्ध में भगवान् के बल और प्राण की परिपुष्टि हुई। और निष्ठुर प्रहार से पीड़ित, तथा आहार के अभाव से जाम्बवान् की बलहानि होने लगी। इस प्रकार भगवान् ने जाम्बवान् को पराजित किया। पराजित होने पर प्रणामपूर्वक जाम्बवान् ने कहा—देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व और राक्षसादि समस्त मिलकर भी

भगवान् को पराजित नहीं कर सकते भूमण्डलपर विहार करने वाले और मनुष्य के क्रीड़ाभूत अल्प पराक्रम तथा तिर्यग् योनि में जन्म लिये हुए मेरे समान का कहना ही क्या है आप निश्चय ही मेरे स्वामी समस्त जगत् की गति नारायण हैं इसमें कोई सन्देह नहीं । जाम्बवान् से ऐसी बात कहे जाने पर भगवान् ने पृथिवी के भार हरण के लिए अपने अवतार का विषय कहा और प्रेम के साथ उसके शरीर को स्पर्श करके उसको युद्धपीड़ा से रहित कर लिया । अनन्तर जाम्बवान् ने पुन: प्रणाम करके अपने घर में आने के कारण अर्ध्यदानरूप अपनी कन्या जाम्बवती उनको पत्नीरूप में ग्रहण कराया ॥ २६-३१ ॥

स्यमन्तकमणिमप्यसौ प्रणिपत्य तस्मै प्रददौ। अच्युतोऽप्यतिप्रणतात् तस्मादग्राह्यमपि तन्मणि रत्नमात्मशोधनाय जग्राह ॥ ३२ ॥

सह जाम्बवत्या द्वारकामाजगाम।

भगवदागमनोद्भूतहर्षोत्कर्षस्य द्वारकावासिजनस्य कृष्णावलोकनानु क्षणमेवातिपरिणतवयसोऽपि नवयौवनमिवाभवत्। आनकदुन्दुभिश्च दिष्ट्या दिष्ट्येयति च सकलयादवा: स्त्रियश्च सभाजयामासु: ॥ ३३ ॥

भगवानपि यथानुभूतमशेषयादवसमाजे यथावदाचचक्षे, स्यमन्तकञ्च सत्राजिताय दत्त्वा मिथ्याभि—शस्तिविशुद्धिमवाप, जाम्बवतीञ्चान्त:पुरे निवेशया मास।

सत्राजितोऽपि मयास्याभूतमलिनमारोपितमिति जातसन्त्रासा स्वसुतां सत्यभामां भगवते भार्य्यां ददौ ॥ ३४ ॥

ताञ्चाक्रूर-कृतवर्म्म-शतधन्वप्रमुखा यादवा: पूर्व्वं वरयामासु: । ततस्तत् प्रदानादवज्ञातमात्मान मन्य माना: सत्राजिते वैरानुबन्धं चक्रु: । अक्रूर-कृत-वर्म्म-प्रमुखाश्च शतधन्वानमूचु:, अयमतिदुरात्मा सत्राजितो योऽस्माभिर्भवता चाभ्य-र्थितोऽप्यात्मजामस्मान् भवन्तं चाविगणय्य कृष्णाय दत्तवान्, तदल मनेन जीवता। घातयित्वैनं तन्महारत्नं त्वया किं न गृह्यते? वयम प्यभ्युपपत्स्याम: यद्यच्युतस्तवापि वैरानुबन्धं करिष्यतीति ॥ ३५ ॥

फिर प्रणाम करके उनको स्यमन्तक मणि भी दे दिया । उस समय भगवान् ने अतिनम्र जाम्बवान् से लेने योग्य न होने पर भी मणिरत्न आत्मशुद्धि निमित्त ग्रहण किया । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण जाम्बवती के साथ द्वारका आये । श्रीकृष्ण को

देखने के बाद दूसरे ही क्षण द्वारकावासीगण भगवान् के आगमन से उत्पन्न हर्षातिरेक से उस प्रकार हो गये जिस प्रकार वृद्धावस्था छोड़कर कोई युवक हो गया हो । उस समय समस्त यदुकुलोत्पन्न पुरुष तथा स्त्रीगण मिलकर अहो भाग्य, अहो भाग्य इस प्रकार कहकर वसुदेवजी का अभिनन्दन करने लगे । भगवान् कृष्ण ने जो जो घटना घटी थी उन समस्त को यादव समाज में कहकर तथा सत्राजित् को स्यमन्तक मणि देकर मिथ्या कलङ्क से अपने को शुद्ध किया एवं जाम्बवती को अन्तःपुर में बसाया । सत्राजित् ने भी मैंने श्रीकृष्णपर मिथ्या कलङ्क आरोपण किया ऐसा विचारकर भयभीत होकर अपनी कन्या सत्यभामा को कृष्ण को भार्यारूप में प्रदान की । किन्तु पहले अक्रूर, कृतवर्मा और शतधन्वा प्रभृति यादवगण ने उस कन्या (सत्यभामा) की याचना की थी । अब भगवान् को सत्यभामा देने पर सत्राजित् ने हम लोगों का अपमान किया ऐसा विचार कर वे लोग सत्राजित् से शत्रुता रखने लगे । अक्रूर, कृतवर्मा प्रभृति यादवगण शतधन्वा से बोले—यह सत्राजित् अति दुरात्मा है क्योंकि हम लोगों ने इससे कन्या माँगी थी किन्तु हम लोगों का और आपका भी अपमान करके इस दुष्ट ने अपनी कन्या श्रीकृष्ण को दे दी । अत एव इसे जीवित रखने से क्या प्रयोजन है ? आप इसे वधकर महारत्न क्यों नहीं ले लेते ? यदि कृष्ण इसके लिए शत्रुता करेंगे तो हम सभी लोग आपकी सहायता करेंगे ॥ २६-३५ ॥

एवमुक्तस्तथेत्यसावप्याह । जतुगृहदग्धानाञ्च पाण्डुनन्दनानां विदितपरमार्थोऽपि भगवान् दुर्य्योधन प्रयत्नशैथिल्यार्थं कुल्यकरणाय वारणावतं गतः ॥३६ ॥

गते च तस्मिन् सुप्तमेव सत्राजितं शतधन्वा जघान, मणिरत्नञ्चा ददे । पितृवधामर्षपूर्णा च सत्यभामा शीघ्रं स्यन्दनमारूढ़ा वारणावतं गत्वा भगवतेऽहं प्रतिपादितेति अक्षान्तिमता शतधन्वना अस्मत्पिता व्यापादितः, तच्च स्यमन्तकमणिरत्नमपहृतम् । तदियमस्यावहासना । तदालोच्य यदत्र युक्तं, तत् क्रियतामिति कृष्णमाह ॥ ३७ ॥

तया चैवमुक्तः परितुष्टान्तःकरणोऽपि कृष्णः, सत्यभामाममर्षताम्रलोचनः प्राह, —सत्ये ! ममैषा वहासना, नाहमेतां तस्य दुरात्मनः सहिष्ये ॥ ३८ ॥

न ह्यनुलङ्घ्य वरपादपं तत्कृतनीड़ाश्रयिणो विहङ्गा वध्यन्ते ॥ ३९ ॥

तदलमत्यर्थममुनास्मतपुरतः शोकप्रेरितवाक्य परिकरेण, इत्युक्त्वा द्वारका मभ्येत्य बलदेवमेकान्ते वासुदेवः प्राह, —मृगयागतं प्रसेनमटव्यां मृगपतिर्जघान। सत्राजितोऽप्यधुना शतधन्वना निधनं प्रापितः। तदुभय विनाशात् तन्मणिरत्नमावाभ्यां सामान्यं भविष्यति ॥ ४० ॥

उन लोगों की ऐसी बात सुनकर शतधन्वा बोला—अच्छा वही करूँगा। इसी समय भगवान् श्रीकृष्ण लाक्षागृह दाह के बाद पाण्डवों के समस्त वृत्तान्त जानते हुए भी दुर्योधन के कार्य में शैथिल्य सम्पादन और कुलोचित सौजन्य दर्शनार्थ वारणावत नगर में गये। श्रीकृष्ण को वारणावत नगर में जाने के बाद शतधन्वाने सोये हुए सत्राजित् को मारकर मणिरत्न ले लिया। अनन्तर पितृवध से क्रोधित पूर्ण हृदयवाली सत्यभामा रथपर बैठकर शीघ्रता पूर्वक वारणावत पहुंचकर भगवान् श्रीकृष्ण से बोली—पिता ने मुझे आपके हाथ में अर्पण किया, अतः क्रुद्ध होकर शतधन्वा ने मेरे पिताका वध करदिया और उस स्यमन्तक मणिका भी अपहरण कर लिया। वह इस रूप में अपमान किया अत एव विचारकर जो उचित हो वही करे। सत्यभामाद्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मन में सन्तुष्ट होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष में क्रोध से रक्तनेत्र होकर सत्यभामा से बोले—सत्य है शतधन्वा ने यह मेरा ही अपमान किया है। मैं उसका यह अपमान कदापि सहन नहीं कर सकता। प्रकाण्ड वृक्ष को उल्लंघन किये बिना उस वृक्ष के घोंसले में रहने वाले पक्षियों का वध कदापि नहीं किया जा सकता। हमारे सामने इस प्रकार शोकयुक्त वचन और क्यों कहती हो, शोक त्याग दो। मैं इसका प्रतिशोध लूँगा। सत्यभासा से ऐसी बात कहकर भगवान् द्वारका में आये और एकान्त में बलराम जी से बोले—वन में आखेट (शिकार) के लिए गये हुए प्रसेन को सिंह ने मारा और अब शतधन्वा ने सत्राजित् का वध किया। सुतराँ कोई अधिकारी न होने से यह मणिरत्न अब हम दोनों की सम्पत्ति होगी ॥ ३६-४० ॥

तदुत्तिष्ठ, आरुह्यतां रथः, शतधनुर्निधनायोद्यमं कुरु, इत्यभिहितस्तथेति समन्वीप्सितवान्।

कृतोद्योगौ च तावुभावुपलभ्य शतधन्वा कृतवर्माणमुपेत्य पार्ष्णिपूरण कर्मनिमित्तमचोदयत्। आह चैनं कृतवर्मा, नाहं बलभद्र-वासुदेवाभ्यां सह विरोधायालम्, इत्युक्तश्चाक्रूरमचोदयत्। आह चासावपि, —नहि कश्चिद् भगवता पादप्रहारपरिकम्पितजगत्त्रयेण असुरवरवनितावैधव्यकारिणा प्रबलरिपुचक्रा-

प्रतिहतचक्रेण चक्रिणा, मदमुदित नयनावलोकितारिबलविशात नेन अतिगुरु-वैरिवारणाकर्षणाविष्कृत-महिमोरुसीरेण सीरिणा च सह सकलजगद्वन्द्यानाममरवराणामपि योद्धुं समर्थः किमुताहम्। तदन्यतः शरणमभिलष्यताम् ॥ ४१ ॥

इत्युक्तः शंतधनुराह,—यद्यस्मत्परित्राणासमर्थं भवानात्मानमवगच्छति तदयमस्मन्मणिः संगृह्य रक्ष्यताम्। इत्युक्तः सोऽप्याह,—यद्यन्त्यायामप्यवस्थायां न कस्मैचिद्भवान् कथयिष्यति, तदहमेनं ग्रहीष्यामि। तथेत्युक्ते अक्रूरस्तन्मणिरत्नं जग्राह ॥ ४२ ॥

अतएव अब रथपर चढ़कर शतधन्वा के वध के लिए प्रयत्न कीजिए। भगवान् की ऐसी बात सुनकर बलराम जी ने भी उसे स्वीकार किया। अनन्तर शतधन्वा ने भगवान् वासुदेव और बलदेव दोनों को अपने वध के लिए उद्यत है ऐसी बात जानकर कृतवर्मा के समीप जाकर उससे सहायता की याचना की। तब कृतवर्मा ने कहा कि मैं वासुदेव। एवं बलभद्र से विरोध करने में समर्थ नहीं हूँ। कृतवर्मा की ऐसी बात सुनकर शतधन्वा ने अक्रूर से प्रार्थना की। किन्तु अक्रूर बोले जिनके पादप्रहार से तीनों लोक कम्पित होता है जो असुर श्रेष्ठ की पत्नीयों को वैधव्य प्रदान करते हैं और जिनका शत्रुमण्डलपर अप्रतिहत चक्र रहता है उन चक्रधारी कृष्ण के साथ अथवा मद से घूर्णितनेत्र द्वारा ही जो समस्त शत्रुबल को दमन करते हैं जो अतिबलशाली हैं और जो शत्रुरूप हाथी को आकर्षित करने के लिए प्रकटित महत्त्ववाले प्रकाण्ड हल को धारण करते हैं उन बलराम के साथ युद्ध करने के लिए कौन समर्थ हो सके, मेरा तो सामर्थ्य है ही नहीं। अतएव आप किसी अन्य की शरण में जायँ। जब अक्रूरने ऐसा कहा तब शतधन्वा बोला—यदि आप मेरी रक्षा करने में असमर्थहैं तो इस मणि को ही लेकर इसकी रक्षा करे। शतधन्वा के ऐसा कहने पर अक्रूर बोले—मैं इस मणि को तब रख सकता हूँ जब कि आप मरणपर्यन्त भी इसके विषय में किसी से नहीं कहें। अनन्तर शतधन्वा बोला—अच्छा यही होगा। शतधन्वा द्वारा ऐसा कहे जाने पर अक्रूर ने मणि को ले लिया ॥४१-४२ ॥

शतधनुरप्यतुलवेगां शतयोजनवाहिनीं वड़वा मारुह्यापक्रान्तः।

शैव्य-सुग्रीव-मेधपुस्प-बलाहकाश्वचतुष्टययुक्तरथावस्थितौ बलदेव-वासुदेवौ तमनुप्रयातौ ॥ ४३ ॥

सा च वड़वा शतयोजनप्रमाणं मार्गमतीत्य पुनरपि वाह्यमाना मिथिला वनोद्देशे प्राणनुत्ससर्ज्ज। शतधनुरपि तां परित्यज्य पदातिरेवाद्रवत्॥ ४४॥

कृष्णोऽपि बलभद्रमाह,—तावदत्रैव स्यन्दने भवता स्थेयम्। अहमेनम धमाचारं पदातिरेव पदातिमनुगम्य यावद् घातयामि। अत्र हि भूभागे दृष्टदोषा हयाः, नैतेऽशवा भवतेमं भूमिभागमुल्लङ्घ्य नेयाः॥ ४५॥

तथेत्युक्त्वा बलभद्रो रथ एव तस्थौ। कृष्णोऽपि द्विक्रोशमात्र भूमि भागमनुसृत्य दूरस्थस्यैव चक्रं क्षिप्त्वा शतधनुषः शिरश्चिच्छेद। तच्छरी राम्बरादिषु च बहुप्रकारमन्विष्यन्नपि स्यमन्तकं मणि नावाप यदा, तदोप गम्य बलभद्रमाह,—वृथैवास्माभिर्घातितः शतधनुः न प्राप्तमखिलजगत्सार भूतं तन्मणि रत्नम्। इत्याकर्ण्य उद्भूतकोपो बलदेवो वासुदेवमाह—धिक् त्वां यस्त्वमर्थलिप्सुः। एतच्च ते भ्रातृन्वात्मर्षये तदयं पन्थाः, स्वेच्छया गम्यताम्, न मे द्वारकया, न त्वया, न बन्धुभिः कार्य्यम्। अलमेभिर्ममाग्रतोऽलीकशपथैः। इत्याक्षिप्य तं तथा प्रसाद्यमानोऽपि न तस्थौ, विदेहपुरीं प्रविवेश॥ ४६॥

बाद में शतधन्वा अतुल वेगवाली एवं सौ योजन जाने वाली घोड़ी पर चढ़कर भाग गया। शैव्या, सुग्रीव, मेघपुष्प, वलाहक नामक चार घोड़ों से युक्त रथपर आरूढ होकर बलराम और वासुदेव भी उसके पीछे चले। वह घोड़ी भी सौ योजन प्रमाण मार्ग समाप्त करने के बाद पुनः ढोने के लिए नियुक्त होने पर मिथिला के बाग में जाकर मर गयी। शतधन्वा उसे छोड़कर पैदल ही भागा। श्रीकृष्ण बलराम जी से बोले—तबतक आप यहीं रथपर रहे, मैं पैदल ही दुराचारी शतधन्वा का वध करता हूँ। हमारे रथ के अश्वगण मरी हुई घोड़ी का शरीर आदि देख चुके हैं अतएव लांघकर इनको आगे ले जाना आपके लिए उचित नहीं। यही हो ऐसा कहकर बलरामजी रथपर बैठे रहे। भगवान् श्रीकृष्ण ने दो कोशमात्र भूमिपर जाने के बाद दूर से ही शतधन्वाको देखकर चक्र फेंक कर उसका शिर छेदन कर दिया। अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका शरीर और वस्त्र में अच्छी प्रकार मणि की खोज करने पर स्यमन्तक मणि नहीं पाया। पश्चात् बलराम के समीप जाकर बोले—व्यर्थ ही मैंने शतधन्वा का वध किया। उसके पास समस्त संसार के सारभूत स्यमन्तक मणि नहीं था। इस बात को सुनकर बलराम जी क्रोध के साथ भगवान् श्रीकृष्ण से बोले—तुम को धिक्कार है, तुम धनके लोलुप हो, तुम भाई हो ऐसा विचार कर मैं तुम्हारे इस अपराध को क्षमा करता हूँ। यह रास्ता है, तुम इच्छानुसार चले जाओ।

तुमसे, बन्धुगण से अथवा द्वारका से मेरा प्रयोजन नहीं । तुम क्यों मेरे सामने असत्य वचन कहते हो । बलरामजी इस प्रकार से कृष्ण को तिरस्कार करने लगे । भगवान् नारायण श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रसन्न करने की अनेक चेष्टायें कीं, किन्तु वे उस स्थान पर ठहरे भी नहीं विदेहनगर को चले गये ॥ ४३-४६ ॥

जनकश्चार्घ्यपूर्व्वकमेवैनं गृहं प्रवेशयामास । स तत्रैव च तस्थौ । वासुदेवोऽपि द्वारकामाजगाम । यावच्च जनकराजगृहे बलभद्रोऽवतस्थे, तावद् धार्तराष्ट्रो दुर्य्योधनस्तत्सकाशाद् गदाशिक्षामशिक्षत ॥ ४७ ॥

वर्षत्रयान्ते च बभ्रुग्रसेनप्रभृतिभिर्यादवैर्न तद्रत्नं कृष्णेनापहृतमिति कृतावगतिर्विदेहपुरीं गत्वा बलदेवः संप्रत्याय्य द्वारकामानीतः ॥ ४८ ॥

अक्रूरोऽप्युत्तममणिसमुद्भूतसुवर्णध्यानपरस्ततो यज्ञानीजे ॥ ४९ ॥

सवनगतौ हि क्षत्रियवैश्यौ निघ्नन् ब्रह्महा भवतीत्यतो दीक्षा कवचं प्रविष्ट एव तस्थौ द्विषष्टि वर्षाणि ॥ ५० ॥

एवं तन्मणिरत्नप्रभावात् तत्रोपसर्गदुर्भिक्षमरकादिकं नाभूत् ॥ ५१ ॥

अथाक्रूरपक्षीयैर्भोजैः शत्रुघ्ने सात्वतस्य प्रपौत्रे व्यापादिते भोजैः सहाक्रूरो द्वारकामपहाय अपक्रान्तः ॥ ५२ ॥

विदेहराज जनक अर्घ्यादि से उनका सत्कार करके अपने घर में ले गये । बलरामजी भी वहाँ निवास करने लगे । भगवान् वासुदेव भी द्वारका आ गये । जिस समय बलराम जी जनक राजा के यहाँ निवास कर रहे थे उसी समय दुर्योधन ने उनसे गदायुद्ध की शिक्षा प्राप्त की । अनन्तर तीन वर्षों के बाद वभ्रु एवं उग्रसेन आदि यादवगण विदेहपुरी में जाकर शपथपूर्वक बलराम से बोले—श्रीकृष्ण ने मणिरत्न का अपहरण नहीं किया, अतएव मणि के विषय में उनके प्रति आपका सन्देह उचित नहीं । इस प्रकार विश्वास उत्पन्न कराने पर बलराम जी द्वारका आये । और यहाँ पर अक्रूर इस उत्तम मणिद्वारा उत्पन्न सुवर्ण से कौनसा कार्य किया जाय ऐसा विचार करके अनेक यज्ञ करने लगे । यज्ञ में दीक्षित क्षत्रिय अथवा वैश्य का वध करने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है । इसलिए यज्ञ में दीक्षित अवस्थावाले अक्रूरका वध कर मणि लेना श्रीकृष्ण ने कदापि उचित नहीं समझा । इसी विचार से अक्रूर, भी बासठ वर्षों तक यज्ञ करते रहे । इस प्रकार उस मणिरत्न के प्रभाव से द्वारका में किसी प्रकार उपसर्ग, दुर्भिक्ष अथवा मरण आदि का भय भी उपस्थित

नहीं हुआ। अनन्तर अक्रूर-पक्षीय भोजगण द्वारा सात्वत के प्रपौत्र शत्रुघ्न के वध करने के बाद उन भोजगण के साथ अक्रूर द्वारका छोड़कर भाग गये ॥ ४७-५२ ॥

तदपक्रान्तिदिनादारभ्य तत्रोपसर्गव्यालानावृष्टिमरकाद्युपद्रवा बभूवुः। अथ यादव-बलभद्रोग्रसेन समवेतोऽमन्त्रयद् भगवानुरगारिकेतनः,—कियादिदमेकदैव प्रचुरोपद्रवागमनमेतदालोच्यताम् ॥ ५३ ॥

इत्युक्ते अन्धकनामा यदुवृद्धः प्राह,—अस्याक्रूरस्य पिता श्वफल्को नाम यत्र यत्राभूत्, तत्र तत्र दुर्भिक्ष-मरकानावृष्ट्यादिकं नाभूत् ॥ ५४ ॥

काशिराजस्य विषयेऽत्यन्तानावृष्ट्यां श्वफल्कोऽनीयत, ततस्तत्क्षणादेव देवो ववर्ष। काशिराजस्य पत्न्याश्च गर्भे कन्या पूर्व्वमासीत् ॥ ५५ ॥

सापि पूर्णेऽपि प्रसूतिकाले नैव निश्चकाम। एवञ्च तस्य गर्भस्य द्वादश वर्षाण्यनिष्क्रामतो ययुः। काशिराजस्तु तामात्मजां गर्भस्थामाह,—पूत्रि! कस्मान्न जायसे? निष्क्रम्यताम्, आस्यन्ते द्रष्टुमिच्छामि। स्वकाञ्च मातरं किमिति चिरं क्लेशयसि इत्युक्ता सा गर्भस्थैव व्याजहार—तात! यद्येकै कां गाँ दिने दिने ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छसि, तदाहमन्यैस्त्रिभिर्वर्षैरस्माद् गर्भात् तावदवश्यं निष्क्रमिष्यामीति। एतच्च तद्वचनमाकर्ण्य राजा ब्राह्मणाय दिने दिने गां प्रादात्, सापि तावता कालेन जाता। ततस्तस्याः पिता गान्दिनीति नाम चकार। ताञ्च गान्दिनीं कन्यां श्वफल्कायोपकारिणे गृहगतायार्घ्यभूतां प्रादात्, सा च गान्दिनी प्रतिदिनं यावज्जीवं ब्राह्मणाय गां दत्तवती। तस्यामयमक्रूरःश्वफल्काज्जज्ञे। तस्यैवंगुणमिथुनादुत्पत्तिः ॥ ५६ ॥

अक्रूर जिस दिन द्वारका से भागे उसी दिन से द्वारका में उपसर्ग, हिंसक जन्तुओं का भय, अनावृष्टि और मरण आदि उपद्रव प्रारम्भ हो गया। तब भगवान् गरुड़ध्वज यादव बलभद्र और उग्रसेन आदि के साथ मिलकर बोले—एक ही दिन इस प्रकार के अनेक उपद्रव क्यों उपस्थित हुए, इस कारण की खोज करना उचित है। भगवान् द्वारा ऐसी बात कही जाने पर अन्धक नामक एक वृद्ध यदुवंशी बोला—अक्रूर के पिता श्वफल्क जहाँ जहाँ निवास करते थे वहाँ वहाँ मारण अनावृष्टि आदि का भय नहीं होता। किसी समय काशी राजा के राज्य में अनावृष्टि हुई थी। उस समय वे वहाँ श्वफल्कको ले गये थे। श्वफल्क को वहाँ जाते ही देवराज ने जल वर्षन किया। और उस समय काशीराज की पत्नी गर्भवती थी तथा उस गर्भ में कन्या थी॥ प्रसवकाल

उपस्थित होने पर भी वह कन्या गर्भ से बाहर नहीं आई। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये। फिर भी कन्या गर्भ से नहीं निकली। बाद में एक दिन काशीराज ने गर्भस्थ बालिका को सम्बोधन करके कहा—हे पुत्रि! तुम जन्म क्यों नहीं ग्रहण करती हो? गर्भ से बाहर जाओ, तुम्हारा मुख देखना चाहता हूँ। अपनी माता को क्यों चिरकालतक कष्ट दे रही हो। राजा का ऐसा कहने पर वह गर्भस्थ बालिका ने कहना आरम्भ किया। यदि आप प्रतिदिन ब्राह्मणों को एक एक गाय प्रदान करें और यह क्रम तीन वर्षों तक चलता रहे तब मैं तीन वर्षों के बाद गर्भ से बाहर होऊँगी। इस बात को सुनकर राजा ने प्रतिदिन ब्राह्मणों को एक एक गाय देना आरम्भ किया। तीन वर्षों के बाद वह कन्या गर्भ से बाहर हुई। पिता ने उसका नाम गान्दिनी रखा। पुनः काशीराज ने घर में आये हुए उपकारी श्वफल्क को अध्यस्वरूप उस कन्या को प्रदान किया। अनन्तर वह गान्दिनी भी यावज्जीवन प्रतिदिन एक एक गाय ब्राह्मण को देती रही। उससे श्वफल्क ने अक्रूर नामक पुत्र उत्पन्न किया। इस प्रकार गुणविशिष्ट दम्पत्ति से अक्रूर की उत्पत्ति हुई है॥ ५३-५६॥

तत् कथमस्मिन्नपक्रान्तेऽत्र मरकदुर्भिक्षाद्युपद्रवा न भविष्यन्ति। तदय मानीयतामिति अलमत्रातिगुणवत्यपराधान्वेषणेन इति॥ ५७॥

सुतरां उस अक्रूर के चले जाने पर द्वारका में क्यों नहीं मरण, दुर्भिक्ष आदि उपद्रव होंगे? अत एव इसी क्षण अक्रूर को बुलाइये। अत्यन्त गुणवान् अक्रूर का दोष देखना व्यर्थ है॥ ५७॥

यदुवृद्धस्यान्धकस्य एतद्वचनमाकर्ण्य केशवोग्रसेन बलभद्रपुरोगमैर्यदुभिः कृतापराधतितिक्षाभवमभयं दत्त्वा श्वाफल्किः स्वपुरमानीतः, तत्र चागत एव तत्स्थ-स्यमन्तकमणेरनुभावादनावृष्टि-मरक-दुर्भिक्ष-व्यालाद्यू पद्रवः शशाम कृष्णश्च चिन्तयामास,—स्वल्पमेतत् कारणं, यदयं गान्दिन्यां श्वफल्केनाक्रूरो जनितः, सुमहांश्चायमनावृष्टिदुर्भिक्षमरकाद्युपशमनकारी प्रभावः॥ ५८॥

तन्नूनमस्य सकाशे स महामणिः स्यमन्तकाख्यस्तिष्ठति। तस्य ह्येवं विधाः प्रभावाः श्रूयन्ते। अयमपि यज्ञादनन्तरमन्यत् क्रत्वन्तरं तस्माद् यज्ञान्तर यजतीति। अल्पोपादानञ्चास्य। असंशय मत्रासौ वरमणिस्तिष्ठतीति कृताध्यव-सायोऽन्यत् प्रयोजनमुद्दिश्य सकलयादवसमाजमात्मगेहे एवाचीकरत्। तत्र चोप-

विष्टेष्वखिलेषु यादवेषु पूर्व्वप्रयोजनमुपन्यस्य पर्य्यवसिते च तस्मिन् प्रसङ्गागतपरिहास कथामक्रूरेण सह कृत्वा जनादर्दनस्तमक्रूरमाह ॥ ५९ ॥

दानपते ! जानीम एव वयं—यथा शतधन्वना अखिलजगत्सारभूतं स्यमन्तकरत्नं भवतः सकाशे समर्पितम् । तदेतद्राष्ट्रोपकारकं भवतः सकाशे तिष्ठतीति तिष्ठतु, सर्व्व एव वयं तत्प्रभावफलभुजः, किन्त्वेष बलभद्रोऽस्माना शङ्क्तिवान् । तदस्मतप्रीतये दर्शय, इत्यभिहितः सरत्नः सोऽचिन्तयत् । किमत्रानुष्ठेयम् ? अन्यथा चेत् ब्रवीम्यहं, तत् केवलाम्बरतिरोधानमन्विष्यन्तो रत्नमेते द्रक्ष्यन्तीति अतोऽन्वेषणं न क्षेममिति सञ्चिन्त्य तमखिलजगत्कारणभूतं नारायणमाहाक्रूरः,—भगवन् ! ममैतत् स्यमन्तकमणिरत्नं शतधनुषा समर्पितम् ॥ ६० ॥

अपगते च तस्मिन् अद्य श्वः परश्वो वा भगवान् मां याचिष्यतीति कृतमतिरतिकृच्छ्रेणैतावन्तं कालमधारयम्, अस्य च धारणक्लेशेनाहमशेषोपभोगेष्वसङ्गिमानसो न वेद्मि स्वसुखकलामपि ॥ ६१ ॥

एतावन्मात्रमशेषराष्ट्रोपकारि धारयितुं न शक्नोतीति मां भगवान् मंस्यत इत्यात्मना न चोदितम् ॥ ६२ ॥

यदुवृद्ध अन्धक की बात सुनकर श्रीकृष्ण, उग्रसेन, बलराम आदि प्रमुख यादवगण उसके स्यमन्तक का अपराध हम लोग क्षमा करेंगे । इस प्रकार अभयदान देकर श्वफल्क पुत्र अक्रूर को द्वारका में बुलाया । अक्रूर के द्वारका में आते ही उस स्यमन्तक मणि के प्रभाव से अनावृष्टि, मरण, दुर्भिक्ष, हिंसक जन्तु आदि के उपद्रव सब शन्त हो गये । अब श्रीकृष्ण विचारने लगे—अक्रूर श्वफल्क के द्वारा गान्दिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए यह एक साधारण कारण है और अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, मरण आदि उपद्रव इससे गुरुतर प्रभाव वाले हैं । अतएव निश्चय इसके पास वह महामणि स्यमन्तक है क्योंकि उस मणि का ही ऐसा प्रभाव सभी से सुना है । और भी कारण है कि एक ही व्यक्ति एक यज्ञ के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा इस प्रकार अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया । किन्तु उसके समीप वैसा कोई विशेष बल भी नहीं हैं, सुतरां वही श्रेष्ठ एवं स्वर्ण प्रदान करने वाला मणिरत्न इसके घर में है । भगवान् ने इस प्रकार निश्चय करके किसी प्रयोजन से अपने घर में समस्त यदुवंशियों की एक सभा बुलायी । समस्त यादवगण भी आकर विराज मान हुए तब अपने प्रयोजन सबों के समीप सुनाया और उसे समाप्त कर हास्यपूर्वक अक्रूर से बोले—हे दानपते ! हमलोग यह जानते हैं कि शतधन्वाने संसार के सारभूत

स्वमन्तक मणि आपको ही समर्पित किया है और वह राज्योपकारी रत्न आपके ही समीप है भी रहे, उससे हानि क्या है ? हम सभी लोग उस रत्न के प्रभाव का उपभोग भी करते हैं । किन्तु मेरे भाई बलराम जी का सन्देह है कि यह महारत्न मेरे पास हैं अतएव आप मेरी प्रसन्नता के लिए एक बार उसे उनको दिखा दीजिये । भगवान् से ऐसा कहे जाने पर वहीं पर अपने पास उस रत्न के रहने पर भी अक्रूर ने विचार किया कि अब इस परिस्थिति में क्या करना उचित है ? यदि मैं असत्यभाषण करूं तो भगवान् खोज करके केवल वस्त्र में छिपाये हुए उस रत्न को देख सकते हैं । अतएव भगवान् द्वारा खोजकर रत्न को प्राप्त करना कदापि मङ्गल नहीं होगा । ऐसा विचारकर समस्त जगत् के कारणभूत भगवान् से बोले—हे भगवन् ! यही वह स्यमन्तकमणि है, शतधन्वाने ही मुझे दिया है । और उस शतधन्वा की मृत्यु के बाद मैंने विचार किया कि आप मुझसे आज या कल इस मणि को ले लेंगे ऐसा विचार करते हुए आज तक इसको अनेक कष्ट के साथ छिपा रखा है । इसके रखने से जो क्लेश मुझे हुआ उससे आजतक मेरा मन शान्ति पूर्वक उपभोग्य वस्तुओं का भी व्यवहार नहीं किया । अतएव मैं अद्यावधि अंशमात्र भी सुख का अनुभव नहीं कर सका । पश्चात् भगवान् ने विचार किया कि यह व्यक्ति राज्य का बहुत उपकारी है और अल्पभारवाली वस्तु भी धारण करने में असमर्थ हैं, ऐसा विचारकर उसने स्वयं कुछ कहा नहीं ॥ ५८-६२ ॥

तदिदं स्यमन्तकरत्नं गृह्यताम्, इच्छया यस्याभि मतं तस्यसमर्प्यताम् । ततः सोऽधरवस्त्रनिगोपितातिलघुकनकसमुद्गकं प्रकटीकृतवान् ॥ ६३ ॥

ततश्च निष्क्राम्य स्यमन्तकमणि तत्र यदुसमाजे मुमोच । मुक्तमात्रे च तेनातिकान्त्या तदखिलमास्थानमुद्द्योतितम् ॥ ६४ ॥

इसके बाद अक्रूर ने कहा । अब आप इस स्यमन्तक मणि को ग्रहण कीजिये । आपकी इच्छा जिसे देने की हो उसे ही दे दीजिये । अक्रूर ने ऐसी बात कहकर अपने निचले वस्त्र में छिपाये हुए अत्यन्त छोटा सुवर्ण खण्ड बाहर किया । बाहर निकलकर यादव समाज के समक्ष रख दिया । रखते ही वह मणिरत्न ने अपने तेज से समस्त सभास्थल को प्रकाशित कर दिया ॥ ६३-६४ ॥

अथाहाक्रूरः,—स एष मणिर्यः शतधन्वनास्माकं समर्पितः, यस्यायं, स एनं गृहणात्विति ।

तन्मणिरत्नमालोक्य सर्व्वयादवानां साधु साध्विति विस्मितमनसां वाचोऽश्रूयन्त। तमालोक्य ममाय मच्युतेनैव सामान्यः समन्विच्छित इति बलभद्रः सस्पृहोऽभवत्॥ ६५॥

ममैवेदं पितृधनमित्यतीव च सत्यभामापि स्पृहयाञ्चकार। बलसत्याननावलोकनात् कृष्णोऽप्यात्मानं चक्रान्तरावस्थितमिव मेने॥ ६६॥

सकलयादवसमक्षञ्चाक्रूरमाह,—एतद्धि मणिरत्नमात्मशोधनायैषां यदूनां दर्शितम्। एतच्च मम बलभद्रस्य च सामान्यं, पितृधनञ्चैतत् सत्यभामाया नान्यस्य॥ ६७॥

एतच्च सर्व्वकालं शुचिना ब्रह्मचर्य्यगुणवता ध्रियमाणमशेषराष्ट्रस्योपकारकम्, अशुचिना ध्रियमाणमाधारमेव हन्ति॥ ६८॥

अतोऽहमस्य षोड़शस्त्रीसहस्रपरिग्रहादसमर्थो धारणे॥ ६९॥

अनन्तर अक्रूर बोले—शतधन्वा ने मुझे यह स्यमन्तक मणि दिया था। अब इस मणि पर जिसका अधिकार हो वह ले ले। उस समय मणि को देखकर विस्मित समस्त यदुवंशियों के मुख से निकला हुआ 'साधु, साधु' ऐसा शब्द सुना गया। अनन्तर उस मणि को देखकर श्रीकृष्ण के साथ मेरा भी इस मणि के लिए बराबर उद्योग रहा है ऐसा कह बलदेव जी ने भी उसके लिए अभिलाषा की। यह मेरे पिता का धन है ऐसा कहकर सत्यभामा ने भी उस मणिरत्न को लेना चाहा। बलभद्र और सत्यभामा इन दोनों के मुख देखकर भगवान् श्रीकृष्ण चक्रमध्यस्थित के समान हुए। अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण समस्त यादवगण के समक्ष अक्रूर से बोले—मेरे अपवाद प्रक्षालन के लिये यादवगण के समक्ष यह रत्न प्रदर्शित हो चुका, इससे मेरी आत्मशुद्धि हो गयी। इस रत्न पर मेरा और बलराम जी का समान अधिकार है, तथा सत्यभामा का यह पैतृक धन है, अन्य किसी का इस पर अधिकार नहीं है। सदा पवित्रतापूर्वक एवं ब्रह्मचर्य के साथ इसे धारण करना होता है। इस प्रकार धारण करने से समस्त राज्य का उपकार भी है इसके विपरीत अपवित्रतापूर्वक धारण करने से धारण करने वालों का विनाश निश्चित है। किन्तु मैं सोलह हजार स्त्रियों के साथ विवाह कर चुका हूँ सुतरां इसे धारण करने में असमर्थ हूँ॥ ६५-६९॥

कथञ्चैतत् सत्यभामा स्वीकरोतु? आर्य्येण बलभद्रेणापि मदिरापानाद्यशेषोपभोगपरित्यागः कथं कार्य्यः तदयं यदुलोकोऽयं बलभद्रोऽहं सत्या च त्वां

दानपते ! प्रार्थयामः, एतद् भवानेव धारयितुं समर्थः, त्वत्स्थञ्चास्य राष्ट्रस्योपकारकं, तद्भवानशेषराष्ट्रोपकार निमित्तमेतत् पूर्व्ववद् धारयतु। त्वयान्यथा न वक्तव्यमित्युक्ते दानपतिस्तथेत्युक्तवा जग्राह तन्महा मणिरत्नम्। ततः प्रभृति चाक्रूरः प्रकटेनैवातीव तेजसा जाज्वाल्यमानेनात्मकण्ठासक्तेनादित्य इवांशुमाली चचार ॥ ७० ॥

इत्येतां भगवतो मिथ्याभिशस्तिक्षालनां यः स्मरति, न तस्य कदाचिदस्यापि मिथ्याभिशस्तिर्भवति अव्याहतेन्द्रियश्चाखिलपापमोक्षम वाप्नीति ॥ ७१ ॥

इस कारण से सत्यभामा भी इसे कैसे स्वीकार करेगी? और आर्य बलराम भी मदिरापान आदि उपभोग का परित्याग कैसे करेंगे? अतएव हे दानपते अक्रूर! ये समस्त यादवगण सत्यभामा, बलराम और मैं सभी मिलकर आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप ही इसे धारण करें आप ही समर्थ हैं। तथा आपके पास रहने से यह राज्य के लिए भी उपकारी होगा से इस कारण आप ही समस्त राज्य के उपकारार्थ इसे धारण करे, आप इसके विपरीत कुछ नहीं बोले। भगवान् के ऐसा कहने पर अक्रूर ने ऐसा ही होगा, इस प्रकार कहकर मणि ले लिया। उसके बाद मणि को अपने कण्ठ में धारणकर सूर्य के समान प्रकाशित होते हुए सभी के सामने विचरण करने लगे। यह भगवान् श्रीकृष्ण का मिथ्या अपवाद परिमार्जन का वृत्तान्त जो व्यक्ति सुनेगा उसे किसी भी काल में थोड़ा भी मिथ्या अपवाद नहीं होगा। और उसकी इन्द्रियाँ अकुण्ठित रहेगी, तथा वह समस्त पापों से मुक्त हो जायगा ॥ ७०-७१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - चौदहवाँ अध्याय

(अन्धक के वंश का वर्णन)

अनमित्रस्यानुजः शिनिर्नामाभवत्। तस्यापि सत्यकः, सत्यकात् सात्यकिर्युयुधाननामा, ततोऽप्य सङ्गः, तत्पुत्रश्च तूणिः, तूणेर्युगन्धर इति शैनेयाः ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनमित्र के शिनि नामक एक भाई था। शिनिका पुत्र सत्यक, उसका पुत्र सात्यकि, जिसका दूसरा नाम युयुधान था। उसका पुत्र असङ्ग; असङ्ग का पुत्र तूणि, उसका पुत्र युगन्धर यह युगन्धर ही शैनेय नाम से विख्यात हुआ ॥ १ ॥

अनमित्रस्यैवान्वये पृश्निः, तस्माच्च श्वफल्कः। तत्प्रभावः कथित एव। श्वफल्कस्य कनीयांश्चित्रको नामाभवद् भ्राता, श्वफल्कादक्रूरो गान्दिन्यामभवत्। तथोपमद्गु-मृदर-विशारि-मेजय-गिरि-क्षत्रोपक्षत्र-शत्रुघ्न-विमर्द्दनधर्म्मधृग्दृष्टशर्म्म-गन्धभोजा-वाह-प्रतिवाहाख्याःपुत्राः सुताराख्या च कन्या। देववान् उपदेवश्च अक्रूरपुत्रौ। पृथु-विपृथु-प्रमुखाश्चित्रकस्य पुत्रा बहवोऽभवन् ॥२ ॥

कुकुर-भजमान-शुचि-कम्बलबर्हिषाख्यास्तथान्धकस्य चत्वारः पुत्राः ॥३ ॥

अनमित्र के वंश में पृश्नि ने जन्म लिया, उनका पुत्र श्वफल्क था। इस श्वफल्क का प्रभाव पहले ही कहा गया है। चित्रक नामक श्वफल्कका एक छोटा भाई था। श्वफल्क के गान्दिनी से अक्रूर का जन्म हुआ और श्वफल्क की सुतारा नाम का एक कन्या थी तथा दूसरे स्त्री से अन्य भी कई पुत्र थे। यथा—उपमदुगु, मृदर, विशारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शत्रुघ्न, विमर्दन, धर्मधृक्, दृष्टशर्म, गन्धमोज, वाह और प्रतिवाह। अक्रूर के देववान् और उपदेव नाम के दो पुत्र थे। पृथु, विपृथु

आदि चित्रक के अनेक पुत्र थे । कुकुर, भजमान्, शुचिकम्बल, बर्हिष—ये चार पुत्र अन्धक के थे ॥ २-३ ॥

कुकुराद् धृष्टः तस्माच्च कपोतरोमा, ततश्च विलोमा, तस्मादपि तुम्बुरुसखा भवसंज्ञकश्चन्दनोदकदुन्दुभिः । ततश्चाभिजित्, ततः पुनर्वसुः, तस्याप्याहुकः पुत्रः आहुकी कन्याभूत् ॥ ४ ॥

आहुकस्य देवकोग्रसेनौ द्वौ पुत्रौ । देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितो देवकस्यापि चत्वारः पुत्राः तेषाञ्च वृकदेवा उपदेवा देवरक्षिता श्रीदेवा शान्ति देवा सहदेवा देवकी च सप्त भगिन्यः । ताश्च सर्व्वा एव वसुदेव उपयेमे । उग्रसेनस्यापि कंस न्यग्रोध-सुनाम-कङ्क-शङ्क-स्वभूमि-राष्ट्रपालयुद्धमुष्टि-तुष्टिमत्संज्ञाः पुत्राः, कंसा कंसवती सुतनू राष्ट्रपाली कङ्की चोग्रसेनतनुजाः ॥ ५ ॥

भजमानाच्च विदूरथः पुत्रोऽभवत् । विदूरथात् शूरः, शूरात् शमी, शमिनः प्रतिक्षत्रः, तस्मात् स्वयम्भोजः, ततश्च हृदिकः ॥ ६ ॥

ततश्च कृतवर्म्मा, तस्मात् शतधनुर्देवमीढुषाद्या बभूवुः ॥ ७ ॥

देवमीढुषस्य शूरः, शूरस्यापि मारिषा नाम पत्न्यभवत् ॥ ८ ॥

कुकुर का पुत्रधृष्ट, उसका पुत्र कपोतरोमा, कपोतरोमा का पुत्र विलोमा, उसका पुत्र भव नामक था जो तुम्बुरु का मित्र हुआ । उसका एक और नाम चन्दनोदक दुन्दुभि था । भवका पुत्र अभिजित् हुआ । उसका पुत्र आहुक और आहुकी नाम की कन्या थी । देवक और उग्रसेन—ये दो पुत्र आहुक के थे । देवक के देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित—ये चार पुत्र हुए। इन चार पुत्रों की वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी—ये सात बहिनें थीं । वसुदेव ने सातों के साथ विवाह किया । उग्रसेन के पुत्रों का नाम कंस, न्यग्रीध, सुनाम, कङ्क, शम्भु, श्वभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि और तुष्टिमान् था । उनकी कन्याओं का नाम कंसा, कंसवती, सुतनु, राष्ट्रपाली और कङ्की । भजमान का विदूरथ नामक एक पुत्र हुआ, विदूरथ का पुत्र शूर, उसका पुत्र शमी, उसका पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज, उसका पुत्र हृदिक, हृदिकका पुत्र कृतवर्मा, उसके पुत्र शतधनु और देवमीढुष आदि थे । देवमीढुषका शूर नामक एक पुत्र हुआ । जिसकी पत्नी मारिषा थी ॥ ५-८ ॥

अस्याञ्चासौ दश पुत्रानजनयद् वासुदेवपूर्व्वान्। वासुदेवस्य जातमात्रस्यैव एतद्गृहे भगवदंशावतार मव्याहतदृष्ट्या पश्यद्भिर्देवैदिव्या आनका दुन्दुभयश्च वादिताः ॥ ९ ॥

ततस्तदैवानकदुन्दुभिसंज्ञामवाप। तस्यापि देवभाग-देवश्रवोऽनाधृष्टिक-रुन्धक-वत्सबालक-सृञ्जय-श्याम-शमीक-गण्डूषसंज्ञा नव भ्रातरो बभू, पृथा श्रतुदेवा श्रुतकीर्त्तिः श्रुतश्रवाः राजाधिदेवी च वसुदेवादीनां पञ्चभगिन्योऽभवन्।

शूरस्य च कुन्तिभोजनामा सखाभवत्। तस्मै चापुत्राय पृथामात्मजां विधिना शूरोऽददात्। ताञ्च पाण्डुरुवाह। तस्याञ्च धर्म्मानिलशक्रैर्युधिष्ठिर-भीमार्ज्जुनाख्यास्त्रयः पुत्राः समुत्पादिताः। पूर्व्वमनूढ़ायाश्च भगवता भास्वता कर्णाख्यः कानीनः पुत्रोऽजन्यत ॥ १० ॥

मारिषा के गर्भ से शूर ने वसुदेव आदि दस पुत्र उत्पन्न किये। वसुदेव के जन्म के समय ही भविष्य द्रष्टा देवगण अव्याहत दृष्टि से देखे कि इनके घर में भगवान् का अंशावतार होगा। अतएव उन लोगों ने आनक और दुन्दुभि नामक बाजे बजाये थे। इसलिए वसुदेव का एक नाम आनक दुन्दुभि हुआ। वसुदेव के नौ भाई और पाँच बहने थीं। जैसे—देवभोग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, करुन्धक, वत्सबालक, सृञ्जय, श्याम, शमीक और गण्डूष—ये नौ भाई थे। और पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा, राजाधिदेवी—ये पाँच बहनें थीं। वसुदेव के पिता शूर के कुन्तिभोज नामक एक मित्र थे। कुन्तिभोज का कोई पुत्र नहीं था। अतएव शूर ने शास्त्र विधान के अनुसार पोष्य कन्या के रूप में अपनी कन्या पृथा उन्हें समर्पित की। इस पृथा के साथ पाण्डुका विवाह हुआ। इस पृथा के गर्भ से धर्म, वायु और इन्द्र ने यथाक्रम युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। एवं विवाह के पूर्व भगवान् श्रीसूर्य ने पृथा के गर्भ से कर्ण नामक एक कानीन (विवाह के पूर्व कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र कानीन जाता है) पुत्र उत्पन्न किया ॥ ९-१० ॥

तस्याश्च सपत्नी माद्री नामाभवत्। तस्याञ्च नासत्यदस्राभ्यां नकुल सहदेवौ पाण्डोः पुत्रौ जनितौ।

श्रुतदेवान्तु वृद्धशर्म्मा नाम कारूष उपयेमे। तस्यां दन्तवक्रो नाम महासुरो जज्ञ। श्रुतकीर्त्तिमपि कैकेयराज उपयेमे। तस्यां सन्तर्द्दनादयः पञ्च कैकेयाः पुत्रा बभूवुः। राजाधि देव्यामावन्त्यौ विन्दानुविन्दौ जज्ञाते ॥ ११ ॥

श्रुतश्रवसमपि चेदिराजो दमघोषनामा उपयेमे। तस्यां शिशुपालमुत्पादयामास। स हि पूर्व्व मप्यनाचारविक्रमसम्पन्नो दैत्यादिपुरुषो हिरण्य कशिपुरभूत्॥ १२॥

यश्च भगवता सकललोकगुरुणा घातितः, पुनरप्यक्षतवीर्य्यशौर्य्यसम्पत पराक्रमगुणः समाक्रान्त सकलत्रैलोक्येश्वरप्रभावो दशाननोऽभवत्॥ १३॥

बहुकालोपभुक्त-भगवत्सकाशादेवाप्त-शरीर-पातोद्भवपुण्यफलोऽथ भगवतैव राघवरूपिणा सोऽपि निधनमुपनीतः, पुनश्चेदिराज-दमघोषपुत्रः शिशु पालनामाभवत्॥ १४॥

पृथा की माद्री नाम की एक सपत्नी थी, उसके गर्भ से अश्विनीकुमार द्वयने दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम नकुल और सहदेव था। श्रुतदेवा के साथ वृद्धशर्मा नामक कारूष ने विवाह किया। उससे दन्तवक्र नामक महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रुतकीर्ति के साथ कैकेयराज ने विवाह किया। उसके गर्भ से सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र हुए जो कैकेय नाम से विख्यात हुए। अवन्तिराज ने राजाधिदेवी के साथ विवाह किया, जिनके विन्द और अनुविन्द नामक दो पुत्र थे। चेदिराज दमघोष ने श्रुतदेवा के साथ विवाह करके शिशु पाल नामक पुत्र उत्पन्न किया। यह शिशुपाल ही पूर्वजन्म में अनाचार एवं पराक्रम सम्पन्न दैत्यों का आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था। यह हिरण्यकशिपु समस्त लोकों के गुरु भगवान् श्रीविष्णु द्वारा मारा गया था। एवं दूसरे जन्म में यही हिरण्यगर्भ कशिपु अक्षतवीर्य एवं शौर्यसम्पन्न समस्त त्रैलोक्य में प्रतापशाली दशानन रावण हुआ। वह रावण भी बहुतकाल पर्यन्त नाना प्रकार भोग्य वस्तुओं के उपभोग करके भगवान् के हाथ से ही मृत्यु प्राप्तकर इस प्रकार पुण्य के बल से भगवान् राम द्वारा मारा गया। पश्चात् वही रावण दमघोष का पुत्र शिशुपाल हुआ॥ ११-१४॥

शिशपालत्वे च भगवतो भूभारावतारणायावतीर्णांशस्य पुण्डरीकनयनाख्यस्य उपरि द्वेषानुबन्धनमतितरां चकार। भगवता च निधनमुपनीत स्तत्रैव परमात्मभूते मनसंस्तदेकाग्रतया तत्रैव सायुज्यमवाप॥॥ १५॥

भगवान हि प्रसन्नो यथाभिलषितं ददाति, अप्रसन्नोऽपि निघ्नन् दिव्यमनुपमं स्थानं प्रयच्छति॥ १६॥

यह शिशुपाल जन्म से ही भूभारहरणार्थं अंशरूप से अवतीर्ण कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अत्यन्त द्वेष करता था। अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा

वह मारा गया और परमात्मास्वरूप भगवान् के प्रति सदा अपने मनकी एकाग्रता के कारण उसने सायुज्य मुक्ति पायी। भगवान् प्रसन्न होने से जैसे इच्छित वर प्रदान करते हैं वैसे ही अप्रसन्न होने पर मृत्यु उपरान्त अनुपम स्थान प्रदान करते हैं॥ १५-१६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - पन्द्रहवाँ अध्याय

(शिशुपाल के पूर्व जन्मों का वृत्तान्त)

मैत्रेय उवाच।

हिरण्यकशिपुत्वे रावणत्वे च विष्णुना।
अवाप निहतो भोगानप्राप्यानमरैरपि॥

न लयं तत्र तेनैव निहतः स कथं पुनः।
सम्प्राप्तः शिशुपालत्वे सायुज्यं शाश्वते हरौ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्व्वधर्म्मभृतां वर!
कौतूहलपरेणैतत् पृष्टो मे वक्तमर्हसि॥ १॥

मैत्रेय जी बोले—हे मुने! आप समस्त धर्मज्ञों में श्रेष्ठ हैं, अतएव कौतुहलवश मैं एक विषय सुनना चाहता हूँ, आप कृपा करके मुझे श्रवण कराइये। यह विषय यह है कि शिशुपाल हिरण्यकशिपु और रावण होकर पूर्व में भी भगवान् द्वारा मारा गया और अनेक प्रकार के देव-दुर्लभ भोगसमूह लाभ किया, किन्तु भगवान् द्वारा मारे जाकर उसी जन्म में भगवान् में क्यों नहीं विलीन हुआ इसका क्या कारण था? और शिशुपाल जन्म में उसी भगवान् के द्वारा मारे जाकर उन सनातन में क्यों विलीन हुआ अर्थात् सायुज्य मुक्त हुआ इसका क्या कारण था?॥ १॥

दैत्येश्वरस्य तु वधायाखिललोकोत्पत्तिस्थितिपर्व्वतनुं गृहणता नृसिंहरूपमाविष्कृतम्। तत्र हिरण्यकशिपोर्व्विष्णुरयमित्येवं न मनस्यभूत्॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—पूर्वकाल में दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वध के लिए समस्त लोकों की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले भगवान् ने शरीर ग्रहण के

समय नृसिंहरूप प्रकट किया था। उस समय हिरण्यकशिपु के मन में यह नृसिंह ही श्रीविष्णु हैं ऐसा विचार उत्पन्न नहीं हुआ ॥ २ ॥

निरतिशयपुण्यजातसम्भूतमेतत् सत्त्वमिति रजो द्रेकप्रेरितंकाग्रमति भद्राश्व-भद्रबाह-दुर्दृम-भूताद्या वधहेतुकां निरतिशयामेवाखिलत्रैलोक्याधिक्य-धारिणीं दशाननत्वे भोगसम्पदमवापः ॥ ३ ॥

नातस्तस्मिन्ननादिनिधने परब्रह्मभूते भगवत्यनालम्बनीकृतेमनसस्तत्रल-यम ॥ ४ ॥

दशाननत्वेऽप्यनङ्गपराधीनतया जानकीसमासक्त चेतसो दाशरथिरूपधा रिणस्तद्रूपदर्शनमेवासीत्, नायमच्युत इत्यासक्तिर्विपद्यतोऽन्तःकरणस्य मानूष-बुद्धिरेव केवलमभूत् ॥ ५ ॥

पुनरच्युतविनिपातमात्रफलमखिल-भूमण्डलश्लाघ्य चेदिराजकुलजन्मा-व्याहतश्चैश्वर्य्य शिशुपालत्वे चावाप ॥ ६ ॥

किन्तु यह अत्यन्त पुण्यसमूहयुक्त प्राणी है इस प्रकार रजोगुण की प्रेरणा से एकाग्रबुद्धि होकर मृत्यु के समय उसने उस प्रकार की याचना की थी, अतएव ईश्वरीय भावना न रहने से भगवान् द्वारा मारे जाने के कारण त्रैलोक्य के मध्य में अधिकारिणी अतिशय भोगसम्पति को रावण के रूप मे उसने प्राप्त की। इसी कारण हिरण्यकशिपु का मन उस अनादि निधन परमब्रह्मस्वरूप भगवान् में न लगाने के कारण वह उन्हीं में लीन नहीं हुआ। अनन्तर रावण होने पर मन काम के पराधीन होने से जानकी में ही आसक्त था। दाशरथिरूप भगवान् का दर्शन मात्र ही हुआ, किन्तु श्रीरामचन्द्र ही स्वयं अच्युत भगवान् हैं इस प्रकार का विचार उसके मनमें कभी उत्पन्न नहीं हुआ था। अन्तकरण में उनके प्रति केवल मानव बुद्धि हो रही। पुनः भगवान् के ही हाथ से मारे जाकर समस्त भूमण्डल में प्रशंसनीय चेदिराजकुल में शिशुपालरूप से जन्म लेकर अक्षय ऐश्वर्य पाया ॥ ३-६ ॥

तत्र त्वखिलान्येव भगवन्नामकारणान्यभवन्। ततश्च तत्कारणकृतानां तेषामशेषाणामेवाच्युत नाम्नामनवरतमनेकजन्मसंवर्द्धितविद्वेषानुबन्धिचित्तो विनिन्दन् सन्तर्ज्जनादिषु उच्चारणमकरोत् ॥ ७ ॥

तच्च रूपमुत् फुल्लपद्मदलामलाक्षमत्युज्जवलपीतवस्त्रधारि अमल-किरीट-केयूर-कटकोपशोभितमुदारपीवरचतुर्बाहु शङ्ख-चक्र-गदासिधरमतिप्रौ-

द्वैरानु भावाटन-भोजन-स्नानासन-शयनादिष्ववस्थान्तरेषु नैवा पययावस्यात्म-चेतसः ॥ ८ ॥

ततस्तमेवाक्रोशेषूच्चारयन् तमेव हृदये धारयन्नात्मवधाय भगवदस्त चक्रांशुमालोज्जवलभक्षयतेजः-स्वरूपं परमब्रह्मस्वरूपमपगतरागद्वेषादिदोषं भगवन्तमद्राक्षीत् तावच्च भगवच्चक्रेणाशु व्यापादितः। तेन तत्स्मरणदग्धा खिलाघसञ्चयो भगवतैवान्तमुपनीतस्तस्मिन्नेव लयमुपययौ ॥ ९ ॥

एतत् तवाखिलं मयाभिहितम्। भगवानिह कीर्त्तितः संस्मृतश्च द्वेषानुबन्धेनाप्यखिलसुरासुरादिदुर्लभं फलं प्रयच्छति किमुत सम्यग् भक्तिमताम् ॥ १० ॥

और भी शिशुपालजन्म में अनेक कारण थे, जिससे वह प्रायः भगवान् का नाम स्मरण करता रहता था। अनेक जन्मों से भगवान् के प्रति चित्त में द्वेष रखकर तिरस्कार आदि में भी भगवान् की निन्दा के छल से अच्युत के अनेक नामों का उच्चारण प्रायः करता ही रहता था। उस समय शत्रुता के कारण शिशुपालका चित्त भोजन, स्नान, आसन और शयन आदि अवस्थाओं में भी विकसित कमल दल के समान स्वच्छनेत्रवाले, अति उज्जवल पीतवस्त्रधारी, सुन्दर केयूर कटक-किरीटद्वारा सुशोभित, उदारपुष्ट चार हाथों से शंख-चक्र-गदा और खड्ग धारण करने वाले भगवान् के स्वरूप में लगा रहता था। बाद में शिशुपाल निन्दा के समय भी भगवान् का नाम उच्चारण करता हुआ उनका ही चिन्तन करने लगा और सभी समय देखने लगा कि मेरे वध के लिए चक्र चलाया है एवं उस चक्र के तेज राशि में उज्जवल परमब्रह्मस्वरूप रागद्वेषादि दोषों से रहित अक्षय तेजः स्वरूप भगवान् विराजमान हैं। शिशुपाल की ऐसी मानसिक भावना रहती थी और उसी अवस्था में भगवान् ने चक्र चलाकर उसका वध किया। इसी कारण से भगवान् द्वारा मारा गया शिशुपाल समस्त पापों से मुक्त होकर भगवान् में ही विलीन हो गया। मैंने तुमसे समस्त विषय कहा। द्वेष से भी यदि भगवान् का नामस्मरण और कीर्तन आदि किया जाय तो भी भगवान् सुर-असुर दुर्लभ फल प्रदान करते हैं और भक्तिपूर्वक स्मरण आदि करने पर भी कहना ही क्या है? ॥ ७-१० ॥

वसुदेवस्यानकदुन्दुभोः पौरवी-रोहिणी-मदिरा-भद्रा-देवकी-प्रमुखा बह्वयः पत्न्योऽभवन् बलभद्र-शारण-शठ-दुर्म्मदादीन् पुत्रान् रोहिण्यामानकदुन्दु-

भिरूत्पादयामास। बलभद्रोऽपि रेवत्यां निशठोल्मुकौ पुत्रावजनयत्। मार्ष्टि-मार्षिम-च्छिशि शिशु-सत्यधृतिप्रमुखाः शारणस्यात्मजाः ॥ ११ ॥

भद्राश्व-भद्रबाहु-दुर्द्दम-भूताद्या रोहिण्याः कुलजाः ॥ १२ ॥

नन्दोपनन्दकृतकाद्या मदिरायास्तनयाः। भद्रायाश्चोपनिधि-गदाद्याः। वैशाल्यां च कौशिकमेकमजनयदानकदुन्दुभिः। देवक्यामपि कीर्त्तिमत्सुषेणोदापि-भद्रसेन-ऋजुदास-भद्रदेहाख्याः षट् पुत्रा जज्ञिरे। तांश्च सर्व्वानेव कंसो घातितवान्॥ १३ ॥

आनकदुन्दुभि वसुदेव के पौरवी, मदिरा, भद्रा और देवकी आदि अनेक स्त्रीयाँ थी। आनकदुन्दुभि ने रोहिणी के गर्भ से बलभद्र, शारण, शठ और दुर्मद आदि अनेक पुत्र उत्पन्न किये। बलभद्र ने रेवती के गर्भ से निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। मार्ष्टि, मार्षिमान्, शिशि, शिशु और सत्यधृति आदि शारण के अनेक पुत्र थे। भद्राश्व, भद्रबाहु, दुर्दम और भूतप्रमुख रोहिणी के कुल में उत्पन्न हुए थे। नन्द, उपनन्द और कृतक आदि मदिरा के पुत्र थे। उपनिधघि और गद आदि भद्रा के पुत्र थे। आनकदुन्दुभि ने वैशालि के गर्भ से कौशिक नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। देवकी के गर्भ से कीर्तिमान्, सुषेण, उदापि, भद्रसेन, ऋजुदास और भद्रदेह नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए। कंस ने छः पुत्रों का विनाश किया ॥ ११-१३ ॥

अनन्तरञ्च सप्तमं गर्भमर्द्धरात्रे भगवत्प्रहिता योगनिद्रा रोहिण्या जठरमपकृष्य नीतवती ॥ १४ ॥

कर्षणाच्चासावपि सङ्कर्षणायमवाप ॥ १५ ॥

ततः सकलजगन्महातरूमूलभूतो भूतातीतभविष्यदादिसकल-सुरासुर-मुनिमनुज-मनसा-मप्यगोचरोऽब्जभवप्रमुखैरनलप्रमुखैश्च प्रणम्यावनिभारावतारणाय प्रसादितो भगवाननादिमध्यो देवकीगर्भे समवततार वासुदेवः ॥ १६ ॥

तत्प्रसादविवर्द्धितमानाभिमाना च योगनिद्रा नन्दगोपपत्न्या यशोदाया गर्भमधिष्ठिवती ॥ १७ ॥

सुप्रसन्नादित्यचन्द्रादिग्रहमव्यालादिभयं सुस्थमानसमखिलमवैतज्जगदपास्ता धर्म्ममभवत् तस्मिंश्च पुम्डरीकनयने जायमाने। १८ ॥

पुनः सातवाँ गर्भाधान होने पर आधीरात के समय भगवान् से प्रेरित योगनिद्रा देवकी के गर्भ से सन्तान को आकर्षण (खींच) कर राहिणी के उदर में ले गयी। आकर्षण के कारण उस बालक का नाम संकर्षण हुआ। बाद में सम्पूर्ण जगत्स्वरूप महावृक्ष के मूलभूत भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालीन समस्त सुर, और मुनिगण से अगोचर आदि एवं मध्य विहीन भगवान् वासुदेव पृथ्वी के भारहरण निमित्त अग्नि आदि प्रधान समस्त देवताओं के प्रसन्नता के साथ सुप्रसन्न होकर देवकी के गर्भ से अवतीर्ण हुए (अवतार लिये)। भगवान् की कृपा से वृद्धिप्राप्त मान और अभिमान के साथ योगनिद्रा भी नन्दगोपकी पत्नी यशोदा के गर्भ में अधिष्ठित हुई। कमललोचन भगवान् के जन्म लेने पर संसार का अधर्म समाप्त हुआ, सूर्यचन्द्र आदि ग्रह प्रसन्न हुए, हिंसक जन्तुओं का भयदूर हुआ और सम्पूर्ण लोक ही निश्चिन्त हो गया ॥ १४-१८ ॥

जातेन च तेनाखिलमेवैतत् सन्मार्गवर्त्ति जगदक्रियत। भगवतोऽप्यत्र मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य षोडशसहस्राण्येकोत्तरशताधिकानि स्त्रीणामभवन्। तासाञ्च रुक्मिणी-सत्यभामा-जाम्बवती-जालहासिनी-प्रमुखा अष्टौ पत्न्यः प्रधानाः। तासु चाष्टायुतानि लक्षञ्च पुत्राणां भगवानखिलमुर्त्तिरनादिमानजनयत् ॥ १९ ॥

जन्म ग्रहणकर भगवान् ने सम्पूर्ण जगत् को सन्मार्ग में प्रवृत्त किया। इस संसार में अवतीर्ण हुए भगवान् को सोलह हजार एक सौ पत्नियाँ थीं। उन पत्नियों में रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती और जालहासिनी प्रभृति आठ पत्नियाँ प्रधान थीं। आदि मध्यरहित भगवान् ने उन पत्नियों में एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १९ ॥

तेषाञ्च प्रद्युम्न-चारुदेष्ण-साम्बादयस्त्रयोदश प्रधानाः। प्रद्युम्नो हि रुक्मिणस्तनयां ककुद्वतीं नामोपयेमे। तस्यामस्यानिरुद्धो जज्ञे। अनिरुद्धोऽपि रुक्मिण एव पौत्रीं सुभद्रां नामोपयेमे। तस्यामस्य वज्रोऽभवत्। वज्रस्य प्रतिबाहुः तस्यापि सुचारुः।

एवमनेकशतसाहस्रपुरुषसङ्घस्य यदुकुलस्य पुरुषसंख्या वर्षशतैरपि ज्ञातुं न शक्यते। यतो हि श्लोकावत्र चरितार्थो ॥ २० ॥

तिस्रः कोठ्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च।
कुमाराणां गृहाचार्य्याश्चापयोग्यासु ये रताः ॥ २१ ॥

सङ्ख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम्।
यत्रायुतानामयुतं लक्षेणास्ते शताधिकम्॥ २२॥

देवासुरहता ये तु दैतेयाः सुमहाबलाः।
ते चोत्पन्ना मनुष्येषु जनोपद्रवकारिणः॥ २३॥

तेषामुत्सादनार्थाय भुवि देवो यदोः कुले।
अवतीर्णः कुलशतं यत्रैकाभ्यधिकं द्विज॥ २४॥

विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः।
निदेशस्थायिनस्तस्य बभूवुः सर्व्वयादवाः॥ २५॥

उन समस्त पुत्रों में प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और साम्ब आदि तेरह पुत्र प्रधान थे। प्रद्युम्न ने रुक्म की पुत्री ककुद्वती के साथ विवाह किया। उसके गर्भ से अनिरुद्ध का जन्म हुआ। अनिरुद्ध का भी रुक्मी की पौत्री सुभद्रा के साथ विवाह हुआ। उनका वज्रनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वज्र का पुत्र प्रतिबाहु, उसका पुत्र सुचारु इस प्रकार अनेक शत सहस्त्र पुरुषसमूह से सुशोभित यदुकुल के पुरुषों की संख्या एक हजार वर्षों में भी ज्ञात नहीं हो सकती। अतएव इस स्थान में ये दो श्लोक ही चरितार्थ हैं। जैसे यदुकुमारों को धनुर्विद्या की शिक्षा देने के लिए तीन करोड़ अट्ठासी लाख गृहशिक्षक सदा नियुक्त रहते थे। उन महात्मा यादवगण की संख्या कौन कह सकता है ? इन यादवों की संख्या लाख अयुत होगी। जो समस्त महाबली दैत्यगण देवासुर संग्राम में मारे गये थे उन सभी ने ही उपद्रव के लिए मनुष्यलोक में राजा होकर अवतार लिया था। हे द्विज ! उनका ही नाश करने के लिए भगवान् वासुदेव यदुकुल में उत्पन्न हुए। इन यदु से एक सौ एक कुल हुए। इन यादवगण के कार्य, अकार्य के नियन्ता और पालक प्रभु श्रीविष्णु थे तथा समस्त यादव उन्हीं के आदेश में अवस्थित रहते थे॥ २०-२५॥

प्रसूति वृष्णिवीराणां यः श्रृणोति नरः सदा।
स सर्व्वपातकैर्मुक्तो विष्णुलोकं प्रपद्यते॥ २६॥

जो मनुष्य इस वृष्णिवंश की कथा सदा सुनता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥ २६॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - सौलहवाँ अध्याय

(तुर्वसुवंश का वर्णन)

पराशर उवाच ।

इत्येष समासतस्ते कथितः, तुर्व्वसोर्वंशमवधारय ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—यह यदुवंश का संक्षिप्त विवरण तुम्हारे समीप मैंने कहा । अब तुर्वसुका वंश श्रवण करो ॥ १ ॥

तुर्व्वसोर्वह्निरात्मजः, वह्नेर्गोभानुः, त्रैशाम्बः, तस्माच्च करन्धमः, तस्मादपि ततश्च मरुत्तः, सोऽनपत्योऽभवत् । ततश्च पौरवं दुष्मन्तं पुत्रमकल्पयत् । एवं ययातिशापात् तद्वंशः पौरवं वंशमाश्रितवान् ॥ २ ॥

तुर्वसु का पुत्र वह्नि, उसका पुत्र गोभानु, गोभानु का पुत्र त्रैशाम्ब, त्रैशाम्ब का पुत्र करन्धम, उसका पुत्र मरुत और मरुत का कोई पुत्र नहीं था, अतएव इन्होंने पुरुवंशीय दुष्मन्त का अपना पुत्र बनाया । इस कारण ययाति के शाप से तुर्वशु का वंश पुरुवंश के आश्रित हुआ ॥ २ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।

चतुर्थ अंश - सत्रहवाँ अध्याय

(द्रुह्युवंश का वर्णन)

द्रुह्योस्तु तनयो बभ्रुः ॥ १ ॥

ततः सेतुः, सेतुपुत्र आरद्वान् नाम, तदात्मजो गान्धारः, ततो धर्म्मः, धर्म्माद् धृतः, धृताद्दुर्गमः, ततः प्रचेताः, प्रचेतसः पुत्रशतमधर्म्म बहुलानां म्लेच्छानामुदीच्यादीनामाधिपत्यमकरोत् ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—द्रुह्यु का पुत्र बभ्रु, बभ्रु का पुत्र सेतु, उसका पुत्र आरद्वान्, उसका पुत्र गान्धार, गान्धार का पुत्र धर्म, उसका पुत्र धृत, धृत का पुत्र दुर्गम, उसका पुत्र प्रचेता, तथा प्रचेता के एक सौ पुत्र अधर्म बहुल उदीच्यादि म्लेच्छगण का आधिपत्य किया ॥ २ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - अट्ठारहवाँ अध्याय

(ययाति के पुत्र अनुका वंशवर्णन)

ययातेश्चतुर्थस्य पुत्रस्य अनाः सभानर-चाक्षुष-परमेक्षुसंज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः; सभानरपुत्रः कालानरः, कालानरात् सृञ्जयः, सृञ्जयात् पुरञ्जयः, तस्माज्जनमेजयः, ततो महामणिः, तस्माच्च महामनाः, तस्मादप्युशीनरतितिक्षू द्वौ पुत्रा वुत्पन्नौ। उशीनरस्यापि शिवि-नृग-नर-कृमिखर्व्वाख्याः पञ्च पुत्रा बभूवुः। वृषदर्भ-सुवीर-कैकयमद्रकश्चत्वारः शिविपुत्राः तितिक्षोरुषद्रथः पुत्रोऽभूत्। ततो हेमः, हेमात् सुतपाः, तस्माद् बलिः यस्य क्षेत्रे दीर्घतमसा अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गसुह्य-पुण्ड्राख्ययं बालेयं क्षत्रमजन्यत॥ १॥

श्रीपराशरजी बोले—ययाति के चतुर्थ पुत्र अनुके सभानर, चाक्षुष और परमेक्षु—ये तीन पुत्र थे। सभानर का पुत्र कालानर, उसका पुत्र सृञ्जय, सृञ्जय का पुत्र पुरञ्जय, उसका पुत्र जनमेजय, जनमेजय का पुत्र महामणि और उसका पुत्र महामना हुआ। महामना का पुत्र उशीनर और तितिक्षु हुए। उशीनर के शिवि, नृग, नर, कृमि और खर्व—ये पाँच पुत्र थे। वृषदर्भ, सुवीर, कैकय और भद्रक—ये चार पुत्र शिवि के थे। तितिक्षु का पुत्र उपद्रथ, उसका पुत्र हेम, हेम का पुत्र सुतपा और उसका पुत्र बलि था। उस बलि के क्षेत्र से दीर्घतमा नामक ऋषि ने अङ्ग, अङ्ग, कलिङ्ग, सुह्य, पुण्ड—ये पाँच बालेय नामक क्षत्रियों को उत्पन्न किया॥ १॥

तन्नामसन्ततिसंज्ञाश्च पञ्च विषया बभूवुः॥ २॥

इस बलिके पुत्र के नामानुसार अङ्ग वङ्ग, आदि देश हुए॥ २॥

अङ्गसुतः पारः, ततो दिविरथः, तस्माद् धर्म्मरथः, ततश्चित्ररथः। रोमपाद संज्ञो यस् पुत्रो दशरथो जज्ञे। यस्मै अजपुत्रो दशरथः शान्ता नाम कन्यामनपत्याय दुहितृत्वे युयोज॥ ३॥

रोमपादाच्च तुरङ्गः, तस्माच्च पृथुलाक्षः, ततश्चम्पः । यश्चम्पां निवेशयामास ॥ ४ ॥

चम्पस्य हर्य्यङ्गः, ततो भद्ररथो बृहद्रथो बृहत्कर्म्मा च बृहत्कर्म्मणश्च बृहद्भानुः, तस्माद् बृहन्मनाः, ततो जयद्रथः, जयद्रथस्तु ब्रह्मक्षत्त्रान्तरालसम्भूत्यां पत्न्यां विजयं नाम पुत्रमजीजनत् ॥ ५ ॥

विजयश्च धृतिं पुत्रमवाप । तस्यापि वृतव्रतः पुत्रोऽभूत् । धृतव्रतात् सत्यकर्म्मा, सत्यकर्म्मणस्त्वधि रथः । योऽसौ गङ्गां गतो मञ्जूषागतं पृथापविद्धं कर्ण पुत्रमवाप ॥ ६ ॥

कर्णाद् वृषसेन इत्येते अङ्गाः ॥ ७ ॥

अतश्च पुरोर्व्वशं श्रोतुमर्हसीति । ८ ॥

अङ्ग का पुत्र पार, पारका पुत्र दिविरथ, उसका पुत्र चित्ररथ, चित्ररथ का पुत्र दशरथ, इस दशरथ का एक और रोमपाद नामक पुत्र था । उन रोमपाद के कई पुत्र थे कन्या नहीं थी, अतएव अजपुत्र दशरथ ने उनको शान्ता कन्या का प्रदान की । पश्चात् रोमपाद का एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम तुरङ्ग था, तुरङ्ग का पुत्र पृथुलाक्ष, उसका पुत्र चम्प, जिसने चम्पापुरी बसायी । चम्पा का पुत्र हर्थङ्ग; उसके भद्ररथ, बृहद्रथ और बृहत्कर्मा हुए। बृहत्कर्मा का पुत्र बृहद्रभानु, उसका पुत्र जयद्रथ, । जयद्रथ ने ब्राह्मण और क्षत्रिय के संसर्ग से उत्पन्न हुई पत्नी के गर्भ से विजय नामक एक पुत्र उत्पन्न किया । विजय को धृति नामक एक पुत्र हुआ, धृतिका पुत्र धृतव्रत, उसका पुत्र सत्यकर्मा, सत्यकर्मा का पुत्र अधिरथ हुआ । उसी अधिरथ को पृथा से परित्यक्त कर्ण नामक पुत्र काष्ठपिञ्जर में प्राप्त हुआ था। कर्णका पुत्र वृषसेन था । बस, इतने अङ्ग वंश कहलाये । अनन्तर पुरु का वंश कहता हूँ श्रवण करो ॥ ३-८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।

चतुर्थ अंश - उन्नीसवाँ अध्याय

(पुरुवंश वर्णन)

पुरोर्जनमेजयः पुत्रस्तस्यापि प्रचिन्वान्, प्रचिन्वतः प्रवीरः, तस्मान्मनस्युः, मनस्योश्चाभयदस्तस्यापि सुद्युम्नः, ततो बहुगवः, तस्य सम्पातिः, सम्पातेरहम्पातिस्ततो रौद्राश्वः। ऋतेयु-कृतेयु-कक्षेयु-स्थण्डिलेयु-धृतेयु-स्थलेयुसन्ततेयु-धनेयु-वनेयुनामानो रौद्राश्वस्य दशात्मजा बभूवुः ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—पुरुका पुत्र जनमेजय, उसका पुत्र प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान् का पुत्र प्रवीर, उसका पुत्र मनस्यु, मनस्यु का पुत्र अभयद, उसका पुत्र सुद्यु, उसका पुत्र बहुगव, बहुगव का पुत्र सम्पाति (अहंयाति), अहंयाति का पुत्र रौद्राश्व, रौद्राश्व के पुत्र ऋतेयु, कृतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, धृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धनेयु और वनेयु—ये दस पुत्र थे ॥ १ ॥

ऋतेयो रन्तिनारः पुत्रोऽभूत्। तंसुमप्रतिरथं ध्रुवञ्च रन्तिनारः पुत्रानवाप। अप्रतिरथात् कण्व स्तस्यापि मेधातिथिः, यतः काण्वायना द्विजा बभूवुः। तंसोरैनिलः, ततो दुष्मन्ताद्याश्चत्वारः पुत्रा बभूवुः, दुष्मन्ताच्चक्रवर्त्ती भरतोऽभवत्। यन्नामहेतुर्देवैः श्लोको गीयते ॥ २ ॥

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ ३ ॥

रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव ! यमक्षयात्।
त्वच्चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ ४ ॥

ऋतेयु के रन्तिनार नामक एक पुत्र था। रन्तिनार के तंशु, अप्रतिरथ और ध्रुव नामक तीन पुत्र थे। अप्रतिरथ का पुत्र कण्व, उसका पुत्र मेधातिथि, उस मेधातिथि से काण्वायन नामक ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए। तंशु का पुत्र अनिल, अनिल के दुष्यन्त आदि चार पुत्र थे। दुष्यन्त के पुत्र भरत चक्रवर्ती राजा थे। देवगण

जिसके नामके हेतुभूत एक श्लोक गान करते हैं । माता केवल चर्ममय पात्र के समान है, पुत्र के प्रति पिता का ही अधिकार है, पुत्र जिसके औरससे जन्म लिया वह उसी का स्वरूप है । हे दुष्यन्त ! तुम पुत्र का भरण पोषण करो, शकुन्तला का अपमान मत करो । हे नरेश ! औरस (आत्मज) पुत्र यमगृह से पिता का उद्धार करता है, तुम इस पुत्र को धारण करने वाले हो, शकुन्तला यह बात सत्य कहती हैं ॥ २-४ ॥

भरतस्य च पत्नीनां ये नव पुत्रा बभूवुः, नैते ममानुरूपाः पुत्रा इत्यभिहिता स्तन्मातरो जघ्नुः । परित्यागभयात् ॥ ५ ॥

ततोऽस्य पुत्रजन्मनि वितथे पुत्रार्थिनो मरुत्स्तोमयाजिनो दीर्घतमसा पार्ष्ण्यपास्तबृहस्पति वीर्य्यदुतथ्यपत्नी-ममतासमुत्पन्नो भरद्वाजाख्यः पुत्रो मरुद्भिर्दत्तः तस्यापि नामनिर्व्वचनश्लोकः पठ्यते ॥ ६ ॥

मूढ़े ! भरद्वाजमिमं भरद्वाजं बृहस्पते !
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ७ ॥

भरत के तीन स्त्रियाँ थीं जिनसे उनके नौ पुत्र हुए (ये पुत्र मेरे समान नहीं हैं) भरतद्वारा ऐसा कहे जाने पर अपने को परित्याग के भय से माताओं ने उन पुत्रों का वध कर दिया । अनन्तर पुत्रजन्म विफल होने पर भरत ने मरुत्स्तोत्र नामक यज्ञ आरम्भ किया । उस समय मरुद्गण ने उनको भरद्वाज नामक एक पुत्र प्रदान किया । दीर्घतमा मुनि के पादप्रहार से क्षिप्त (फेंका गया) बृहस्पति के वीर्य द्वारा उतथ्य की पत्नी ममता के गर्भ से इस भरद्वाज का जन्म हुआ था । उस भरद्वाज के नामके कारणभुत एक श्लोक हैं । भरद्वाज के जन्म के बाद बृहस्पति ने ममता से कहा—हे मूढ़े ! ममते ! यह पुत्र हम दोनों से उत्पन्न हुआ है तुम इसका पालन करो, तब ममता बोली—हे बृहस्पति ! यह पुत्र इस दोनों से उत्पन्न हुआ है । अतएव तुम इसका पोषण करो । परस्पर पिता और माता ने ऐसा कहकर प्रस्थान किया अनन्तर पुत्र का नाम भरद्वाज हुआ ॥ ५-७ ॥

भरद्वाजश्च तस्य वितथे पुत्रजन्मनि मरुद्भिर्द्दत्तः ततो वितथसंज्ञामवाप वितथस्य भवन्मन्युः पुत्रोऽभूत् । बृहत्क्षत्र-महावीर्य्य-नर-गर्गाद्या भवन्म न्युपुत्राः । नरस्य संकृतिः, संकृतेः रुचिरधी-रन्तिदेवौ । गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्याः शैन्याः क्षत्रोपेता द्विजातयो बभूवुः ॥ ९ ॥

महावीर्य्यादुरुक्षयो नाम पुत्रोऽभूत्। तस्य त्रय्यारुण-पुष्करिण्यौ कपिलश्च पुत्रत्रयमभूत्। तच्च त्रितयमपि पश्चात् विप्रतामुपजगाम। बृहत् तत्रस्य सुहोत्रः, सुहोत्राद् हस्ती, य इदं हस्तिनापुरमारोपचामास। अजमीढ़-द्विमीढ़-पुरुमीढ़ास्त्रयोहस्तिनस्तनयाः अजमीढ़ात् कण्वः, कण्वाद् मेधा तिथिः, यतः काण्वायना द्विजाः ॥ १० ॥

बाद में पुत्रजन्म व्यर्थ होने पर मरुद्गण द्वारा यही भरद्वाज पुत्र रूप से भरत को दिया गया। (भरत के पुत्र जन्म वितथ (व्यर्थ) होने पर इसका एक नाम वितथ भी था। वितथ का पुत्र भवन्मन्यु नामक था। भवन्मन्यु के बृहत्क्षेत्र, महावीर्य, नर और गर्ग आदि अनेक पुत्र थे। नरका पुत्र संकृति, संकृति के दो पुत्र हुए जिनके नाम रुचिरथी और रन्तिदेव था। गर्ग का पुत्र शिनि, इस शिनि से गार्ग्य और शैन्य नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मणगण हुए। महावीर्य का उरुक्षय नामक एक पुत्र हुआ। इस उरुक्षय के त्रयय्यारुण, पुष्करिण्य और कपिल—ये तीन पुत्र हुए। पश्चात् इन तीनों पुत्रों ने ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया। बृहत्क्षेत्र का पुत्र सुहोत्र, सुहोत्र का पुत्र हस्ती था। इसी हस्ती ने हस्तिना नामकी एक पुरी बसायी। हस्ती के अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ नाम के तीन पुत्र थे। अजमीढ का पुत्र कण्व और कण्व का पुत्र मेधातिथि था। इस मेधातिथि से ही काण्वायन ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए ॥ ८-१० ॥

अजमीढ़स्यान्यः पुत्रो बृददिषुः, बृहदिषोर्बृहद्वसुः, ततश्च बृहत्कर्म्मा, तस्माज्जयद्रथः। ततोऽपि विश्वजित्, ततश्च सेनजित् रुचिराश्व-काश्य-दृढ़ धनुर्वत्सहनुसंज्ञाः सेनजितः पुत्राः। रुचिराश्वतः पृथुसेनः, तस्मात् पारः, पाराद् नीपः। तस्यैक शतं पुत्राणाम्, तेषां प्रधानः काम्पिल्या धिपतिः समरः ॥ ११ ॥

समरस्यापि पार-सम्पार-सदश्वास्त्रयः पुत्राः। पारात् पृथुः, पृथोः सुकृतिः सुकृतेर्विभ्राजः ततश्चानुहः। स च शुकदुहितरं कीर्त्तिं नामोपयेमे ॥ १२ ॥

अनुहाद् ब्रह्मदत्तः, ततो विष्वक्सेनः, तस्योदकसेनः, ततो भल्लाटः, तस्यात्मजो द्विमीढः, द्विमीढ़स्य यवीनरसंज्ञः, तस्यापि धृतिमान्, ततः सत्यधृतिः, ततश्च दृढ़नेमिः, तस्माञ्च सुपार्श्वः, ततः सुमतिः, ततश्च सन्नतिमान्, सन्नतिमतः, कृतोऽभूत्। यं हिरण्यनाभोयोगमध्यापयामास, यश्चतुर्व्विंशतिं प्राच्यसामगानां चकार संहिताः ॥ १३ ॥

कृताच्चोग्रायुधः, येन प्राचुर्य्येण नृपक्षयः कृतः ॥ १४ ॥

अजमीढ के एक अन्य पुत्र का नाम बृहदिषु था, बृहदिषु के पुत्र का नाम बृहद्वसु, उसका पुत्र बृहत्कर्मा, बृहत्कर्म का पुत्र विश्वजित्, विश्वजित् का पुत्र सेनजित् । सेनजित् के रुचि राश्व, काश्य, दृढ, धनु और वत्सहनु-ये चार पुत्र हुए । रुचि राश्व का पुत्र पृथुसेन, उसका पुत्र पार, पारका पुत्र नीप था । नीप के एक सौ पुत्रों में काम्पिल्य अधीश्वर समर श्रेष्ठ था । समर के पार, सम्पार और सनश्व—ये तीन पुत्र हुए । पार का पुत्र पृथु, पृथु का पुत्र सुकृति, उसका पुत्र विभ्राज, विभ्राज का पुत्र अनूह, अनूह ने शुक की पुत्री कीर्त्ति के साथ विवाह किया था । अनूह का पुत्र ब्रह्मदत्त, उसका पुत्र भल्लाट, भल्लाट का पुत्र द्विमर्तढ, उसका पुत्र यवीनर, यवीनर का पुत्र धृतिमान्, उसका पुत्र सुपार्श्व, सुपार्श्व का पुत्र सुमति, उसका पुत्र सन्नतिमान्, सन्नतिमान् का पुत्र कृत नामक हुआ । इस कृत को हिरण्यनाभ ने योगशास्त्र का अध्ययन कराया तथा उसने प्राच्यसामगण के श्रुतियों की चौबीस संहिताओं का निर्माण किया । कृतका पुत्र उग्रायुध, इस उग्रायुध ने अनेक राजवंशीय क्षत्रियों का विनाश किया ॥ ११-१४ ॥

उग्रायुधात क्षेम्यः, तस्मात् सुवीरः, तस्य नृपञ्जयः ततो बहुरथः । इत्येते पौरवाः ।

अजमीढ़स्य नीलिनी नाम पत्नी, तस्यां नीलसंज्ञः पुत्रोऽभवत् । तस्मादपि शान्तिः शान्तेः सुशान्तिः, सुशान्तेः पुरूजानुः ततश्चक्षुः, ततो हर्य्यश्वः, तस्माद् मुद्गल सृञ्जय-बृहदिषु-प्रवीर-काम्पिल्याः । पञ्चानामेतेषां विषयाणां रक्षणायालमेते मत्पुत्राः इति पित्राभि हिताः, अतस्ते पाञ्चालाः ॥ १५ ॥

मुद्गलाच्च मौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयो बभूवुः । मुद्गलाद् वृद्धश्वः, वृद्धश्वाद् दिवोदासः-अहल्या च मिथुनमभूत् । शरद्वतोऽहल्यायां शतानन्दोऽभवत् । शतानन्दात् सत्यधृतिः धनुर्वेदान्तगो जज्ञे । सत्यधृतेस्तु वराप्सरसमुर्व्वशी दृष्ट्वा रेतः स्कन्नं शरस्तम्बे पपात ॥ १६ ॥

तच्च द्विधागतमपत्यद्वयं कुमारः कन्यका च अभवत् । मृगयामुपागतः शान्तनुर्दृष्ट्वा कृपया जग्राह ॥ १७ ॥

ततः स कुमारः कृपः, कन्या चाश्वत्थाम्नो जननी कृपी द्रोणपत्न्यभवत् दिवोदासस्य मित्रयुः, मित्रयोश्च्यवनो नाम राजा, च्यवनात् सुदासः, ततः सौदासः सहदेवः, तस्यापि सोमकः, ततो जन्तुः शतपुत्र ज्येष्ठोऽभवत् । तेषां यवीयान् पृषतः, पृषताद् द्रुपदः, तस्माद् धृष्टद्युम्नः, तस्माद् धृष्टकेतुः । अजमीढ़स्यान्य

ऋक्षनामा पुत्रोऽभूत्। ऋक्षात् संवरणः, संवरणात् कुरुः, य इदं धर्म्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं चकार ॥ १८ ॥

सुधनुर्जह्नुपरिक्षित्-प्रमुखाः कुरोः पुत्रा बभूवुः। सुधनुषः सुहोत्रः, तस्माच्च्यवनः च्यवनात् कृतकः ततश्चोपरिचरो वसुः। बृहद्रथप्रत्यग्र-कुशाम्ब-मावेल्ल-मत्स्यप्रमुखा वसोः पुत्राः सप्ताजायन्त। बृहद्रथात् कुशाग्रः, तस्माद्वृषभः, ततः पुष्पवान्, तस्मात् सुधन्वा, तस्य च जन्तुः।

बृहद्रथाच्चान्यः शकलद्वयजन्मा जरया सन्धितो जरासन्धो नाम। तस्मात् सत्यधृतः, तस्मात् सहदेवः, ततः सोमापिः ततः श्रुतश्रवाः। इत्येते मागध भूभृतः ॥ १९ ॥

अग्रायुध का पुत्र क्षेम्य, उसका पुत्र सुवीर, सुवीर का नृपञ्जय, उसका पुत्र बहुरथ इतने पुरुवंशीय राजागण हुए। अजमीढ की नीलिनी नाम की एक पत्नी थी। उसके गर्भ से नील नामक एक पुत्र हुआ। नील का पुत्र शान्ति, उसका पुत्र सुशान्ति, सुशान्तिका पुत्र पुरुजानु, उसका पुत्र चक्षु, चक्षु का पुत्र हर्यश्व। हर्यश्व के मुद्गल, सृञ्जय, बृहदिषु, प्रवीर और काम्पिल्य—ये पांच पुत्र थे। एक समय पिता ने कहा ये हमारे पाँच पुत्र हमारे अधीन पाँच देशों की रक्षा करने में समर्थ हैं, इस प्रकार अपने पुत्रों के उद्देश्य से कहे जाने के कारण पाञ्चाल नाम हुआ। मुद्गल से उत्पन्न क्षत्रियगण किसी कारण ब्राह्मणत्व लाभ करने के कारण मौद्गल्य नाम से प्रसिद्ध हुए। मुञ्जल का पुत्र वृद्धश्व उसका पुत्र दिवोदास हुआ, तथा अहल्या नामकी एक कन्या हुई। अहल्या के गर्भ से गौतम का आत्मज पुत्र शतानन्द हुए, शतानन्द का पुत्र सत्यधति, ये सत्यधृति, धनुर्वेद के पारदर्शी थे। एक दिन अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी को देखकर महाधृतिका वीर्य स्खलित होकर शरकण्डे में गिरा। अनन्तर यह वीर्य दो भागों में विभक्त होकर एक पुत्र और एक कन्या के रूप में परिणत हुआ। इसी समय राजा शन्तनु आखेट के लिए वहाँ आये। उन्होंने पुत्र और कन्या को देखकर कृपापूर्वक उन दोनों को ग्रहण किया। पश्चात् वह कुमार कृपनाम से प्रसिद्ध हुआ और कन्या कृपी हुई। यह कृपी अश्वत्थामा की माता और द्रोणाचार्य की पत्नी थी। दिवोदास का पुत्र मित्रेयु, उसका पुत्र राजा च्यवन, च्यवन का पुत्र सुदास, उसका पुत्र सहदेव, सहदेव का पुत्र सोमक, सोमक के एक सौ पुत्रों में जह्नु सर्वश्रेष्ठ और पृषत सर्वकनिष्ठ पुत्र थे। पृषत का पुत्र द्रुपद, द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न, उसका पुत्र धृष्टकेतु। अजमीढ का ऋक्षनामक एक और पुत्र था। ऋक्ष का पुत्र

संवरण, संवरण के पुत्र कुरु हुए, जिन्होंने धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की स्थापना की । सुधनु, जह्नु और परिक्षित् प्रभृति इनके अनेक पुत्र थे । जह्नु का पुत्र सुहोत्र, उसका पुत्र च्यवन, च्यवन का कृतक, कृतक के पुत्र उपरिचर वसु थे । उपरिचरवसु के सात पुत्र थे जिनमें बृहद्रथ, प्रत्यग्र, कुशाख, मावेल्ल और मत्स्य प्रधान थे । बृहद्रथ का पुत्र कुशाग्र, उसका पुत्र ऋषभ, ऋषभ का पुत्र पुष्पवान्, उसका पुत्र सत्यधृत, सत्यधृत का पुत्र सुधन्वा उसका पुत्र जम्भ था । बृहद्रथ का एक और पुत्र था जो जन्म के समय में दो भागों में विभक्त था । पश्चात् जरा नाम की राक्षसी ने उन दोनों खण्डों को एक में मिला दिया, अतएव इस पुत्र का नाम जरासन्ध हुआ । जरासन्ध का पुत्र सत्यधृत, उसका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि, उसका पुत्र श्रुतश्रवा इतने मगध के राजागण हुए ॥ ११-१९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।

चतुर्थ अंश - बीसवाँ अध्याय

(कुरु के वंश का वर्णन)

परिक्षितो जनमेजय-श्रुतसेनोग्रसेन-भीमसेनाश्चत्वारः पुत्राः ॥ १ ॥

जह्नोस्तु सुरथो नामात्मजो बभूव ॥ २ ॥

तस्य विदूरथः, विदूरथस्य सार्व्वभौमः सार्व्वभौमाज्जयसेनः, तस्मा दारावी, ततश्चायुतायुः, अयुतायोरक्रोधनः, तस्माद् देवातिथिः, ततश्च ऋक्षोऽन्यः ॥ ३ ॥

ऋक्षाद् भीमसेनः, ततश्च दिलीपः दिलीपात् प्रतीपः तस्यापि देवापि-शान्तनु-बाह्लीकसंज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः देवापिर्बाल्य एवारण्यं विवेश ॥ ४ ॥

शान्तनुरवनीपतिरभवत्। अयञ्च तस्य श्लोकः पृथिव्यां गीयते ॥

यं य कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः।
शान्तिञ्चाप्नोति येनाग्र्यां कर्म्मणा तेन शान्तनुः ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—परिक्षित् के जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन—ये चार पुत्र थे। जह्नु का सुरथ नामक पुत्र था। सुरथ का विदूरथ, विदूरथ का सार्वभौम नामक पुत्र हुआ। सार्वभौम का जयसेन नामक एक पुत्र हुआ, उसका पुत्र आरावी, आरावी का पुत्र अयुतायु, उसका पुत्र अक्रोधन, अक्रोधन का पुत्र देवातिथि, उसका पुत्र ऋक्ष था। (यह ऋक्ष अजमीढ के पुत्र ऋक्ष से भिन्न था। ऋक्ष का पुत्र भीमसेन, उसका पुत्र दिलीप, दिलीप का पुत्र प्रतीप, प्रतीप के देवापि, शान्तनु और बाह्लीक—ये तीन पुत्र हुए। देवापि ने बाल्यकाल में ही वन में प्रवेश किया। अत एव शान्तनु राजा हुए। संसार में उन शान्तनु के विषय में एक श्लोक प्रसिद्ध है—राजा शान्तनु अपने दोनों हाथों से जिसको जिसको स्पर्श करते थे वह वृद्ध भी युवक हो जाता था। उनके स्पर्श से प्राणिवर्ग अपूर्व शान्तिलाभ करते थे, अतएव उसका नाम शान्तनु हुआ ॥ १-५ ॥

तस्य शान्तनो राष्ट्रे द्वादशवर्षाणि देवो न ववर्ष ॥ ६ ॥

ततश्चाशेषराष्ट्रविनाशमवेक्ष्यासौ राजा ब्राह्मणनपृच्छत्—भोः ! कस्मादस्मिन् राष्ट्रे देवो न वर्षति, को ममापराध इति। ते तमूचुः—अग्रजस्य तेऽर्हेयमवनिस्त्वया भुज्यते, परिवेत्ता त्वम्, इत्युक्तः। स पुनस्तानपृच्छत्, किं मया विधेयमिति। ते तमूचुः यावद् देवापिर्न पतनादिभि र्दोषैरभिभूयते, तावत्तस्यार्हं राज्यं, तदलमेतेन, तस्मै दीयताम्, इत्युक्ते तस्य मन्त्रिप्रवरेणाश्मसारिणा तत्रारण्ये तपस्विने वेदवादविरोधवक्तारः प्रयोजिताः ॥ ७ ॥

तैरप्यत्युजुमतेर्महीपतिपुत्रस्य बुद्धिर्वेदविरोधं मार्गानुसारिण्यक्रियत ॥ ८ ॥

राजा च शान्तनुर्द्विजवचनोत्पन्नपरिवेदनशोकस्तान् ब्राह्मणानग्रणीकृत्य अग्रजराज्यप्रदानायारण्य जगाम। तदाश्रममुपगताश्च तमवनीपतिपुत्रं देवा पिमुपतस्थुः। ते ब्राह्मणा वेदवादानुबद्धानि वचांसि राज्यमग्रजन कर्त्तव्यं मित्यर्थवन्ति तमूचुः। असावपि वेदवादविरोधियुक्तिदूषितमनेकप्रकार तानाह। ततस्ते ब्राह्मणाः शान्तनुमूचुः, आगच्छ भो राजन। अलमत्राति निर्बन्धेन, प्रशान्त एवासावनावृष्टिदोषः पतितोऽयमनादिकाल-महितवेदवचन दूषणोच्चारणात्। पतिते चाग्रजे नैव परिवेद्यं भवति, इत्युक्तः शान्तनुः स्वपुरमागत्य राज्य-मकरोत्। वेदवादविरोधिवचनोच्चारणदूषिते च ज्येष्ठेऽस्मिन् भ्रातरि देवापावखलशस्यनिष्पत्तये ववर्ष भगवान् पर्ज्जन्यः ॥ ९ ॥

उस शान्तनु के राज्य में बारह वर्षों तक वर्षा नहीं हुई। अनन्तर राजा शान्तनु ने समस्त राज्य का विनाश देखकर ब्राह्मणों से पूछा—हे ब्राह्मणगण ! हमारे राज्य में वर्षा क्यों नहीं होती हैं ? मैंने क्या अपराध किया ? तब ब्राह्मणों ने कहा यह पृथिवी आप के बड़े भाई का है और आप इसका भोग करते हैं, अत एव आप परिवेत्ता हैं इस दोष से वर्षा नहीं हो रही है। बाद में राजा शान्तनु बोले—तब मुझे क्या करना चाहिये ? ऐसा पुनः ब्राह्मणों से पूछने पर ब्राह्मणगण बोले—आपके ज्येष्ठभ्राता देवापि जब तक किसी प्रकार पतित न हो तब तक यह राज्य उन्हीं का है अतः राज्य उन्हीं को दे दीजिये। इससे आपका क्या प्रयोजन ? ब्राह्मणों द्वारा ऐसा वचन कहे जाने पर शान्तनु के मन्त्री अश्मसारी ने वन में निवास करने वाले देवापि के समीप वेद विरुद्ध वक्ताओं को भेजा। वे वेद विरुद्ध वक्तागण भी अत्यन्त सरल स्वभाववाले राजपुत्र देवापि की बुद्धि को वेदविरुद्धमार्ग के अनुकूल कर दिये। इधर राजा शान्तनु भी ब्राह्मणों के वचन से अत्यन्त दुःख और शोकयुक्त

होकर ब्राह्मणों को आगे करके अपने बड़े भाई को राज्य देने के लिए वन में गये। वहाँ पहुंचकर ब्राह्मणगण राजपुत्र देवापि के समीप उपस्थित होकर 'बड़े भाई को ही राज्य करना उचित है' इत्यादि वेदसम्मत अनेक प्रकार के वचन कहने लगे। तब देवापि ने युक्ति से दूषित और वेदमार्ग विरुद्ध अनेक प्रकार की बातें कहीं। अनन्तर ब्राह्मणों ने कहा हे राजन्! इस विषय में अधिक आग्रह करने का कोई प्रयोजन नहीं। आप चलिये अनावृष्टि दोष शान्त हो गया। यह व्यक्ति अनादिकाल से पूजित वेदवाक्यों के विरुद्ध बोलने से पतित हो गया है। अतः बड़े भाई के पतित होने पर छोटा भाई परिवेत्ता नहीं होता। उन लोगों से ऐसा कहे जाने पर शान्तनु अपने नगर में आकर पुनः राज्य करने लगे। इस प्रकार ज्येष्ठ भाई देवापि वेदवाद के विरुद्ध वचन उच्चारण करके दूषित होने पर समस्त कृषि उत्पन्न होने के लिए मेघ भी जलवर्षण करने लगे॥ ६-९॥

बाह्लीकस्य सोमदत्तः पुत्रोऽभूत् सोमदत्तस्यापिभूरि-भूरिश्रवः शल्यसंज्ञास्त्रयः पुत्राः। शान्तनो रप्यमरनद्या गङ्गायामुदारकीर्त्तिरशेषशास्त्रार्थविद् भीष्मः पुत्रोऽभूत्। सत्यवत्याञ्च चित्राङ्गद-विचित्रवीर्य्यौ पुत्रावजनयत् शान्तनुः। चित्राङ्गदस्तु बाल एव चित्राङ्गदेन गन्धर्व्वेणाहवे विनिहतः। विचित्रवीर्य्योऽपि काशिसजतनये अम्बिकाम्बालिके उपयेमे। तदुपभोगादिखेदाच्च यक्ष्मणा गृहीतः पञ्चत्वमगमत्। सत्यवतीनियोगाच्च मत्पुत्रः कृष्णद्वैपायनो मातृर्वचनमनतिक्रमणीयमिति विचित्रवीर्य्यक्षेत्रे धृतराष्ट्र-पाण्डू तत्प्रहितभुजिष्या याञ्च विदुरमुत्पादयामास॥ १०॥

धृतराष्ट्रोऽपि दुर्य्योधन-दुःशासनादिप्रधानं पुत्रशतं (गान्धार्य्याम्) उत्पादयामास। पाण्डोरप्यरण्ये मृगशापोपहतप्रजाजननसामर्थ्यस्य धर्म्म-वायुशक्रैर्युधिष्ठिर-भीमसेनार्ज्जुनाः कुन्त्यां, नकुल-सहदेवौ च अश्विभ्यां माद्रयां पञ्च पुत्राः समुत्पादिताः। तेषां द्रौपद्यां पञ्च पुत्रा बभूवुः। युधिष्ठिरात् प्रतिविन्ध्यः, भीमसेनात् सुतसोमः, श्रुतकीर्त्तिररर्ज्जुनात्, शतानीको नकुलात्, श्रुतकर्म्मा सहदेवात्। अपरे च पाण्डवानामात्मजाः, तद्यथा यौधेयी युधिष्ठिराद् देवक पुत्रमवाप। हिडिम्बा घटोत्कचं भीमसेनात् पुत्रमवाप। काशी च भीमसेनादेव सर्व्वत्रगं पुत्रमवाप। सहदेवाच्च विजया सुहोत्रं नाम पुत्रं प्राप्तवती। करेणुमत्याञ्च नकुलोऽपि निरमित्रमजीजनत्। अर्ज्जुनस्याप्युलूप्यां नागकन्यायामिरावान् नाम पुत्रोऽभूत्। मणिपुरपतिपुत्रयाञ्च पुत्रिकाधर्म्मेण बभ्रुवाहनं नाम पुत्रमजीजनत्॥ ११॥

सुभद्राचाञ्चार्भकत्वेऽपि योऽसावतिबलपराक्रम समस्तारातिरथविजेत। सोऽभिमन्युरजायत। अभिमन्योरुत्तरायां परिक्षीणेषु कुरुष्वश्वत्थामप्रयुक्तब्र- ह्मास्त्रेण गर्भ एव भस्मीकृतो भगवतः सकलसुरा-सुरवन्दित- चरणयुगल- स्यात्मेच्छाकारणमानुषरूप-धारिणोऽनुभावात् पुनर्ज्जीवितमवाप्य परिक्षित् जज्ञे ॥ १२ ॥

योऽयं साम्प्रतमेतद् भूमण्डलमखण्डितायति धर्म्मेण पालयतीति ॥ १३ ॥

बाह्लीक के पुत्र सोमदत्त और सोमदत्त के भूरि, भूरिश्रवा और शल्य—ये तीन पुत्र हुए। शान्तनु के देवनदी गङ्गा के गर्भ के उदारकीर्ति और समस्त शास्त्रों के तत्वज्ञानी भीष्म नामक एक पुत्र हुआ। तथा शान्तनु ने दूसरी पत्नी सत्यवती के गर्भ से विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद नामक दो पुत्र ऊत्पन्न किये। चित्राङ्गद बाल्यकाल में ही चित्राङ्गद नामक एक गन्धर्व से मारे गये। विचित्रवीर्य ने काशीराज की कन्या अम्बिका और अम्बालिका से विवाह किया। किन्तु इन दोनों कन्याओं के साथ अतिशय रमण करने से असमय में ही क्षीण होकर यक्ष्मारोग से ग्रस्त होकर विचित्रवीर्य मृत्यु को प्राप्त हुए। अनन्तर सत्यवती के नियुक्त करने से मेरा पुत्र कृष्णद्वैपायन ने माता का वचन उल्लंघन न करना चाहिये ऐसा विचार करके विचित्रवीर्य की पत्नी में धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, तथा उनकी भेजी हुई दासी के गर्भ से विदुर को उत्पन्न किंया। धृतराष्ट्र ने गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र उत्पन्न किये। पाण्डु वनमें ऋषि के शाप के प्रभाव से जनन सामर्थ्यहीन हो गये थे अतएव उनकी पत्नी कुन्ति के गर्भ से धर्म, वायु और इन्द्र ने यथाक्रम से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को उत्पन्न किया एवं उनकी पत्नी माद्री के गर्भ से अश्विनीकुमारों ने नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया। उन युधिष्ठिर आदि पाँच पाण्डवों ने द्रौपदी के गर्भ से पाँच आत्मज पुत्र उत्पन्न किये। उनमें युधिष्ठिर के पुत्र प्रतिविन्ध्य, भीमसेन के सुतसोम, अर्जुन के श्रुतकीर्ति, नकुल के शातानीक और सहदेव के पुत्र श्रुतकर्मा था। पाण्डवों के और भी अनेक पुत्र थे जैसे—यौधेयी का युधिष्ठिर से देवक नामक पुत्र हुआ। भीमसेन का हिडिम्बा के गर्भ से घटोत्कच और काशी के गर्भ से सर्वत्रग नामक पुत्र था। विजय ने सहदेव से सुहोत्र नामक पुत्र लाभ किया। करेणुमती का नकुल से निरमित्र नामक पुत्र हुआ। अर्जुन ने नागकन्या उलूपीके गर्भ से इरावान् नामक पुत्र उत्पन्न किया। और मणिपुर नरेश की पुत्री से अर्जुन ने पुत्रिका धर्मानुसार बभ्रुवाहन नामक एक पुत्र उत्पन्न

किया। उन्होंने बालक होने पर भी पराक्रमशाली और अपने समस्त शत्रुओं को जीतने वाले अभिमन्यु नामक एक पुत्र सुभद्रा से उत्पन्न किया। अनन्तर कुरुकुल के क्षीण होने पर अश्वत्थामा द्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र से सम्भूत उत्तराके गर्भ मे ही जो भस्मीभूत हो गया था, किन्तु समस्त सुर असुर जिनके चरण की वन्दना करते हैं, तथा जो अपनी इच्छा से ही मायामानव स्वरूप धारण करते हैं उन भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव से उस गर्भ को जीवित होने पर परिक्षित् उत्पन्न हुए। ये परिक्षित् आगे के समय के लिए भी शुभमय है तथा अभी भी धर्मपूर्वक समस्त भूमण्डल का शासन करते हैं ॥ १०-१३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में बीसवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - इक्कीसवाँ अध्याय

(भावी राजाओं का वर्णन)

अतः परं भविष्यानहं भूमिपालान कीर्त्तयिष्ये । योऽयं साम्प्रतमवनीपतिः, तस्यापि जनमेजय-श्रुतसेनोग्रसेन-भीमसेनाः पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति ॥ १ ॥ तस्यापरः शतानीको भविष्यति । योऽसौ याज्ञवल्क्याद् । वेदमधीत्य कृपादस्त्रा-ण्यवाप्य विषय विरक्तचित्तवृत्तिश्च शौनकोपदेशादात्मविज्ञानप्रवणः परं निर्व्वा-णमवाप्स्यति ॥ २ ॥

शतानीकादश्वमेधदत्तो भविता तस्मादप्यधिसीमकृष्णः, अधिसीमकृ-ष्णाद् निचक्षुः, यो गङ्गायापहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्यां निवत्स्यति । तस्या प्युष्णः पुत्रो भविता । उष्णाच्चित्ररथः, ततः शुचिरथः, तस्माद् वृष्णिमान्, ततः सुषेणः, तस्मादपि सुनीथः, सुनीथादृचः, ततो नृचक्षुः, तस्यापि सुखाबलः, तस्मात् परि-प्लवः, ततश्च सुनयः, ततो मेधावी, मेधाविनो नृपञ्जयः, ततो मृदुः, तस्मात् तिग्मः तिग्माद् बृहद्रथः, तस्माद् वसुदानः, ततोऽप्यपरः शतानीकः ॥ ३ ॥

तस्माच्च उदयनः, उदयनादहीनरः, ततश्च खण्डपाणिः, ततो निरमित्रः, तस्माच्च क्षेमकः । तत्रायं श्लोकः ।

ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो राजर्षिसत्कृतः ।
क्षेमकं प्राप्य राजानं स संस्थां प्राप्स्यते कलौ ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद भावी राजाओं का विषय कहूँगा, श्रवण करो । जो इस समय राजा हैं उनके जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन—ये चार पुत्र होंगे । जनमेजय का शतानीक नामक पुत्र होगा । यह शतानीक याज्ञवल्क्य से वेदाध्ययनकर कृपाचार्य से अस्त्रविद्याका अध्ययन करने के पश्चात् विषयसमूह से विरक्त होकर और शौनक के उपदेश से आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद निर्वाण प्राप्त करेगा । शतानीक का अश्वमेधदत्तनामक एक पुत्र होगा, उसका पुत्र अधि-

सीमकृष्ण, उसका निचक्षु नामक एक पुत्र होगा। यह निचक्षु गङ्गा की धारा से हस्तिनापुर के डूबने पर होने पर कौसाम्बी में जाकर निवास करेगा। उसका उष्ण नामक एक पुत्र होगा, उष्ण का पुत्र चिश्ररथ, उसका पुत्र शुचिरथ, शुचिरथ का पुत्र वृष्णिमान्, उसका पुत्र सुषेण, सुषेण का पुत्र सुनीथ, उसका पुत्र ऋच, ऋच का पुत्र नृचक्षु, उसका पुत्र सुखाबल, सुखाबल का पुत्र परिप्लव, उसका पुत्र सुनय, सुनय का पुत्र मेधावी, उसका पुत्र नृपञ्जय, नृपञ्जय का पुत्र मृदु, उसका पुत्र तिरक, तिग्मका बृहद्रथ, उसका वसुदान, वसुदान का पुत्र शतानीक। यह शतानीक जनमेजय पुत्र शतानीक से अलग है। शतानीक का पुत्र उदयन, उसका पुत्र अहिनर, अहिनर का खण्डपाणि, उसका पुत्र निरमित्र निरमित्र का पुत्र क्षेमक होगा। इस क्षेमक के विषय में एक श्लोक कहता हूँ। जो वंश ब्राह्मण और क्षत्रियों की उत्पत्ति के कारणस्वरूप है तथा जिस वंश में अनेक राजर्षिगण उत्पन्न हो चुके हैं वही वंश क्षेमक राजा के समय में समाप्त हो जायेगा॥ १-४॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - बाईसवाँ अध्याय

(भविष्यकाल में होने वाले इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वर्णन)

अतश्चेक्ष्वाकवो भविष्याः पार्थिवाः कथ्यन्ते। बृहद्बलस्य पुत्रो बृहत्क्षणः ॥ १ ॥

तस्माद् गुरुक्षेपः ततो वत्सः वत्साद वत्सव्यूहः, ततः प्रतिव्योमः, तस्यापि दिवाकरः तस्माद् सहदेवः ॥ २ ॥

ततो बृहदश्वः, तत्सूनुभोनुरथः, तस्यापि सुप्रतीकः, ततो मरुदेवः, मरुदेवात् सुनक्षत्रः, तस्मात् किन्नरः, किन्नरादन्तरिक्षः, तस्मात् सुवर्णः, ततश्चामित्र जित्, ततश्च बृहद्राजः, तस्यापि धर्म्मो, धर्म्मिणः, कृतञ्जयः, कृतञ्जयाद् रणञ्जयः, रणञ्जयात् सञ्जयः, तस्मात्शाक्यः, शाक्यात् शुद्धोदनः, तस्माद् रातुलः, ततः प्रसेनजित् ततश्च क्षुद्रकः, ततः कुण्डकः तस्मादपि सुरथः, ततश्च सुमित्रोऽन्यः,—इत्येते चेक्ष्वाकवो बृहद् बलान्वयाः अत्रानुवंशश्लोकः।

इक्ष्वाकूणामयं वशः सुमित्रान्तो भविष्यति।
यतस्तं प्राप्य राजानं स संस्थां प्राप्स्यते कलौ ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद भावी इक्ष्वाकुवंशीय भूपालों का विषय कहूँगा। बृहद्बल का बृहत्क्षण नामक एक पुत्र होगा। उसका पुत्र गुरुक्षेप, गुरुक्षेप का पुत्र वत्स, वत्स का पुत्र वत्सव्यूह, उसका पुत्र प्रतिव्योम, प्रतिव्योम से, दिवाकर, उसका पुत्र सहदेव, सहदेव का पुत्र बृहदश्व, उसका पुत्र भानुरथ, भानुरथ का पुत्र सुप्रतीक, उसका पुत्र मरुदेव, मरुदेव का पुत्र सुनक्षत्र, उसका पुत्र किन्नर, किन्नर का पुत्र अन्तरिक्ष, उसका पुत्र सुवर्ण, सुवर्ण का पुत्र अमित्रजित्, उसका पुत्र धर्मी, धर्मी का पुत्र कृतञ्जय, उसका पुत्र रणञ्जय, रणञ्जय का पुत्र सञ्जय, उसका पुत्र शाक्य, शाक्य का पुत्र शुद्धोदन, उसका पुत्र राहुल, राहुल का पुत्र कुन्तक, उसका सुरथ,

सुरथ का पुत्र सुमित्र इतने इक्ष्वाकुवंशीय बृहद्बल के वंशज होंगे। इस वंश के विषय में एक श्लोक कहा जाता है यह प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंश सुमित्र पर्यन्त ही रहेगा। कारण इक्ष्वाकुवंश सुमित्र नामक राजा को प्राप्तकर समाप्त होगा ॥ १-३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में बाईसवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - तेईसवाँ अध्याय

(मगधवंश का वर्णन)

मागधानां बार्हद्रथानां भविष्याणामनुक्र कथयामि ॥ १ ॥

अत्र हि वंशे महाबला जरासन्धप्रधाना बभूवुः ॥ २ ॥

जरासन्धसुतात् सहदेवात् सोमापिः, तस्मात् श्रुतवान्, तस्याप्ययुतायुः, ततश्च निरमित्रः तत्तनयः सुक्षत्रः, तस्मादपि बृहत्कर्म्मा, ततश्च सेनजित्, तस्माच्च श्रुतञ्जयः, ततो विप्रः, तस्य च पुत्रः शुचिनामा भविष्यति। तस्यापि क्षेम्यः, ततश्च सुव्रताद् धर्म्मः, ततः सुश्रमः, ततो दृढ़सेनः, ततः सुमतिः तस्मात् सुबलः, तस्य सुनीतो भविता। ततः सत्यजित्, सत्यजितो विश्वजित, तस्यापि रिपुञ्जयः पुत्रः, इत्येते बाहद्रथा भूपतयो वर्षसहस्त्रमेकं भविष्यन्ति ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अब मैं मगधदेशीय बृहद्रथ की भावी राजाओं का वर्णन यथाक्रम कहता हूँ। इस वंश में जरासन्ध आदि राजागण प्रधान थे। जरासन्ध का पुत्र सहदेव, सहदेव के सोमापि नामक एक पुत्र होगा, उसका पुत्र श्रुतवान्, श्रुतवान् का निरमित्र, निरमित्र का सुक्षेत्र, उसका पुत्र बृहकर्मा बृहत्कर्मा का पुत्र सेनजित्, उसका पुत्र श्रुतञ्जय, श्रुतञ्जय का पुत्र विप्र, उसका शुचि नामक पुत्र होगा। शुचि का पुत्र क्षेम्य, उसका पुत्र सुव्रत, सुव्रत का पुत्र धर्म, उसका पुत्र सुश्रय, सुश्रय का पुत्र दृढसेन, उसका पुत्र सुमति, सुमति का सुबल, उसका पुत्र सुनीति होगा। सुनीति का पुत्र सत्यजित्, उसका पुत्र विश्वजित्, विश्वजित् का पुत्र रिपुञ्जय होगा। इस प्रकार बृहद्रथवंशीय राजागण एक हजार वर्षतक राज्य करेंगे ॥ १-३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में तेईसवाँ अध्याय समाप्त।

चतुर्थ अंश - चौबीसवाँ अध्याय

(कलियुग के नरेशों का और कलिधर्मों का वर्णन)

योऽयं रिपुञ्जयो नाम बार्हद्रथोऽन्त्यः, तस्य सुनिको नामामात्यो भविष्यति ॥ १ ॥

स चैनं स्वामिन हत्वा स्वपुत्रं प्रद्योतनामानमभिषेक्ष्यति । तस्यापि पालकनामा पुत्रो भविता । ततश्च विशाखयूपः, तत्पुत्रो जनकः, तस्य च नन्दिवर्द्धनः, इत्येते अष्टत्रिंशदुत्तरमब्दशतं पञ्च-प्रद्योताः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ॥ २ ॥

ततश्च शिशुनागः, तत्पुत्रश्च काकवर्णो भविता । तत्पुत्रः क्षेमधर्म्मा, तस्यापि क्षत्रौजाः, तत्पुत्रो विद्मसारः, ततश्चाजातशत्रुः, तस्माच्च दर्भकः, दर्भकाच्चोदयाश्वः, तस्मादपि नन्दिवर्द्धनः ततो महानन्दी, इत्येते शैशुनागा दशभूमिपालास्त्रीणि वर्षशतानि द्विषष्ट्यधिकानि भविष्यन्ति ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—बृहद्रथवंश में जो रिपुञ्जय नामक राजा होगा । उसका शुनक नामक एक मन्त्री होगा । यह मन्त्री अपने स्वामी रिपुञ्जय की हत्या करके अपने पुत्र प्रद्योत का राज्याभिषेक करेगा । प्रद्योत का पालक नामक एक पुत्र होगा, उसका पुत्र विशाखयूप, विशाख-यूप का पुत्र जनक, उसका पुत्र नन्दिवर्धन । प्रद्योतवंश के—ये पाँच राजागण एक सौ अड़तीस वर्षों तक पृथिवी का उपभोग करेंगे । नन्दिवर्धन का पुत्र शिशुनाग, उसका पुत्र काकवर्ण, काकवर्णन का क्षेमधर्मा, उसका पुत्र क्षत्रौजा, क्षत्रौजा का पुत्र विद्मसार, उसका पुत्रअजातशत्रु, अजातशत्रु का पुत्र दर्भक, उसका उदयाश्व, उदयाश्वका नन्दिवर्धन, उसका महानदी—ये शिशुनागवंशीय दस राजागण तीन सौ बासठ वर्षों तक राज्य करेंगे ॥ १-३ ॥

महानन्दिसुतः शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धो महापद्मानन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रान्तकारी भविता ॥ ४ ॥

ततः प्रभृति शूद्रा भूमिपाला भविष्यन्ति, स वैकच्छत्रामनुल्लङ्घित्त शासनो महापद्मः पृथिवीं भोक्ष्यति ॥ ५ ॥

तस्याप्यष्टौ सुताः सुमात्याद्या भवितारः । तस्य च महापद्मस्यानु पृथिवीं भोक्ष्यन्ति । महापद्मस्तत्पुत्राश्च एकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति । नवैव तान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति ॥ ६ ॥

तेषामभावे मौर्य्याश्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति। कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ ७ ॥

महानन्दि का शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न महापद्मानन्द नामक एक पुत्र होगा। यह दूसरा परशुराम के समान समस्त क्षत्रियों का विनाश करने वाला होगा। उस समय से शूद्रगण इस पृथिवी का भोग करेंगे। वह महापद्म शास्त्रप्रतिपादित राजधर्म को उल्लंघन करके समस्त पृथिवी का भोग करेगा। उसके सुमाली आदि आठ पुत्र होंगे और महापद्म की मृत्यु के बाद वे ही पृथ्वी का भोग करेंगे। महापद्म और उसके पुत्रों का राज्यकाल एक सौ वर्षों तक रहेगा। कौटिल्य (चाणक्य) नामक एक ब्राह्मण इन नौ नन्दों का विनाश करेगा। नन्दवंश का उच्छेद होने पर मौय शूद्रगण पृथिवी का भोग करेंगे। कौटिल्य ही मौर्य-वंशीय चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक करेगा ॥४-७ ॥

तस्यापि पुत्रो बिन्दुसारो भविष्यति। तस्यापि अशोकवर्द्धनः, ततः सुयशाः, ततो दशरथः, ततः सङ्गतः, ततः शालिशुकः, तस्मात् सोमशर्म्मा, तस्मात् शतधन्वा, तस्याप्यनु बृहद्रथनामा भविता। एवं मौर्य्या दश भूपतयो भविष्यन्ति अब्दशतं सप्तत्रिंशतदुत्तरम्।

तेषामन्ते पृथिवीं शुङ्गा भोक्ष्यन्ति ॥ ८ ॥

ततः पुष्पमित्रः सेनापतिः स्वामिनं हत्वा राज्यं करिष्यति ॥ ९ ॥

चन्द्रगुप्त का बिन्दुसार नामक एक पुत्र होगा, बिन्दुसार का अशोकवर्द्धन, उसका पुत्र सुयशा, सुयशा का पुत्र दशरथ, उसका पुत्र सङ्गत, सङ्गत का पुत्र शान्तिशुक्र, उसका पुत्र सोमशर्मा, सोमशर्मा का पुत्र शतधन्वा, उसका पुत्र बृहद्रथ। इस प्रकार दश मौर्य राजागण एक सौ सैंतीस वर्षों तक राज्य करेंगे। उनके बाद शुङ्गवंशीय राजागण पृथिवी का भोग करेंगे। अनन्तर सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामी की हत्या करके राज्य करेगा ॥ ८-९ ॥

अस्यात्मजोऽग्निमित्रः, तस्मात् सुज्येष्ठः, ततो वसुमित्रः, तस्मादप्यार्द्रकः, ततः पुलिन्दकः, ततो घोषवसुः, तस्मादपि वज्रमित्रः ततो भागवतः ॥ १० ॥

तस्माद् देवभूतिः, इत्येते दश शुङ्गा द्वाहशोत्तरं वर्षशत पृथिवीं भोक्ष्यन्ति। ततः कण्वानेषा भूर्यास्यति ॥ ११ ॥

इस पुष्पमित्र का पुत्र अग्निमित्र, उसका पुत्र सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठ का पुत्र वसुमित्र, उसका पुत्र आर्द्रक, आर्द्रक का पुत्र पुलिन्दक, उसका पुत्र घोषवसु, घोषवसु का पुत्र वज्रमित्र, उसका पुत्र भागवत एवं भागवत का पुत्र देवभूति होगा। ये दस शुङ्गवंशीय राजागण एक सौ बारह वर्षों तक राज्य करेंगे। अनन्तर यह पृथिवी कण्ववंशीय राजाओं के आधीन होगी ॥ १०-११ ॥

देवभूतिस्तु शुङ्गराजान व्यसनिनं तस्यैवामात्यः कण्वो वसुदेवनामा निपात्य स्वयमवनीं भोक्ता। तत्पुत्रो भूमिमित्रः, तस्यापि नारायणः, नारायणस्य सुशर्म्मा, एते काण्वायनाश्चत्वारः पञ्चचत्वारिंशद्वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति।

सुशर्म्माणं कण्वञ्च भृत्यो बलात् शिप्रकनामा हत्वा अन्धजातीयो वसुधां भोक्ष्यति। ततश्च कृष्णनामा तद्भ्राता भपतिर्भावी। तस्य श्रीकान्तकर्णिः तस्यापि पुर्णोत्सङ्गः, ततपुत्रश्च शातकर्णिः, तस्माच्च लम्बोदरः, तस्माद् द्विविलकः ततो मेघस्वातिः, ततः पटुमान्, ततश्च अरिष्टकर्म्मा, ततो हालः, हालात् पुत्तलकः, ततः प्रविल्लसेनः, ततः सुन्दरः स्वल्पायुषो शातकर्णी, तस्माच्चकोरः शातकर्णी ॥१२ ॥

ततः शिवस्वातिः, ततश्च गोमतीपुत्रः, तत्पुत्रः पुलिमान्, तस्यापि शातकर्णी शिवश्रीः, ततः शिवस्कन्धः ततो यज्ञश्रीः, ततो विजयः ततश्चन्द्रश्रीः, तस्यापि पुलोमाचिः, ऐवमेते त्रिंशच्चत्वार्य्यब्दशतानि षट् पञ्चाशदधिकानि पृथिवीं भोक्ष्यन्ति अन्ध्रभृत्याः।

सप्ताभीरा दश गर्द्दभिला भूभुजो भविष्यन्ति ॥ १३ ॥

ततः षोडश शका भूभुजो भवितारः। ततश्च अष्टौ यवनाः, चतुर्द्दश तुखाराः, मुण्डाश्च त्रयोदश, एकादश मौनाः, एते पृथिवीं त्रयोदश वर्षशतानि नवनवत्यधिकानि भोक्ष्यन्ति ॥ १४ ॥

अनन्तर शुङ्गवंश का एक मन्त्री कण्ववंशीय देवभूति नामक व्यसनासक्त राजा को मार करके स्वयं ही पृथिवी का भोग करेगा। देवभूति का पुत्र भूमिमित्र,

उसका पुत्र नारायण, नारायण का पुत्र सुशर्मा कण्वंशीय—ये चार राजा यथासम्भव पैंतालीस वर्षों तक राज्य करेंगे। अन्धजातीय शिप्रक नाक एकभृत्य (दास) कण्ववंशीय सुशर्मा को वधकर स्वयं राजा होगा। उसके बाद शिप्रक का भाई कृष्ण राजा होगा। कृष्ण का पुत्र श्रीशान्तकर्णी, उसका पुत्र पूर्णोत्संग, पूर्णोत्संग का पुत्र शतकर्णी, उसका पुत्र लम्बोदर, लम्बोदर का पुत्र द्विविलक, उसका पुत्र मेघस्वाति, मेधस्वातिका पुत्र पटुमान्, उसका पुत्र अरिष्टकर्मा, अरिष्टकर्मा का पुत्र हाल, उसका पुत्र पुत्तलक, पुत्तलक का पुत्र प्रविल्लसेन, उसका पुत्र सुन्दर, सुन्दर का पुत्र शातकर्णी, उसका पुत्र चकोर शातकर्णी, चकोर शातकर्णी का पुत्र शिवस्वाति, उसका पुत्र गोमतीपुत्र, गोमती पुत्र का पुत्र पुलिमान्, उसका पुत्र शातकर्णी शिवश्री, शातकर्णी शिवश्री का पुत्र शिवस्कन्ध उसका पुत्र यक्षी, यक्षश्री का पुत्र विजय, उसका पुत्र चन्द्र श्री, चन्द्रश्री का पुत्र पुलोमाचि। ये आन्ध्रजातीय भृत्य (दास) वंश के तीस राजा यथासम्भव चार सौ छप्पन वर्षों तक राज्य करेगें। उसके बाद सात आभीर राजागण और दश गर्धभिलसंज्ञक राजागण राज्य करेंगे। अनन्तर सोलह शक राजागण होंगे। इसके बाद आठ यवन, चौदह तुषार, तेरह मुण्ड और ग्यारह मौन जातीय राजागण होंगे। ये सभी तेरह सौ निनानबे वर्षों तक राज्य करेंगे ॥ १२-१४ ॥

ततश्च पौरा एकादश भूपतयोऽष्टशतानि त्रीमि महीं भोक्ष्यन्ति ॥ १५ ॥

तेषूच्छन्नेषु कैलकिला यवना भूपतयो भविष्यन्ति। मूर्द्धाभिषिक्तस्तेषां विन्ध्यशक्तिः ॥ १६ ॥

अनन्तर ग्यारह पौरवंशीय राजागण तीन सौ वर्षों तक राज्य करेंगे। बाद में उनका विनाश होने पर कैलकिल नामक यवनगण राजा होंगे। उनमें विन्ध्यशक्ति नामक राजा प्रधान होगा ॥ १५-१६ ॥

ततः पुरञ्जयः, ततो रामचन्द्रः, तस्माद् धर्म्मः, धर्म्माद् वराङ्गः, कृत नन्दनः, सुषिनन्दिः नन्दियशाः शिशकप्रवारी च। एते वर्षशतं षड वर्षाणि च भविष्यन्ति। ततस्तत्पुत्रास्त्रयोदशैव, वाह्लीकाश्च त्रयः, ततः पुष्पमित्र-पढुमित्र-पद्ममित्रास्त्रयः, दश मेकलाश्च, सप्तकोशलायान्त नवैव भूपतयो भविष्यन्ति। नैषधास्तु तावन्त एव भूपतयो भविष्यन्ति ॥ १७ ॥

मागधायां विश्वस्फटिकसंज्ञोऽन्यान् वर्णान् करिष्यति कैवर्त्त-कटु-पुलिन्द-ब्राह्मण्यान् राज्ये स्थापयिष्यन्नुत्साद्याखिलक्षत्त्रजातिम्।

नव नागाः पद्मावत्यां कान्तिपुर्य्यां मथुरायामनुगङ्गाप्रयागं मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति। कोशलोड्र (पुराड्रक) ताम्रलिप्तान् समुद्रतटपुरीश्च देवरक्षितो रक्षिष्यति। कलिङ्गमाहिषिकमाहेन्द्रभीमा गुहां भोक्ष्यन्ति, नैषाद-नैनीषिक-कालतोयान् जनपदान् मणिधारवंशा भोक्ष्यन्ति। स्त्रीराज्य-(त्रैराज्य) मूषिकजनपदान् कनकाह्वया भोक्ष्यन्ति। सौराष्ट्रावन्तिशूद्रानर्वुदमरुभूमिविषयांश्च व्रात्या द्विजाभीर शूद्राद्या भोक्ष्यन्ति। सिन्धुतटदार्व्वीकोर्व्वी-चन्द्रभागाकाश्मीरविषयान् व्रात्या म्लेच्छादयः शूद्रा भोक्ष्यन्ति।

एते च तुल्यकालाः सर्व्वे पृथिव्यां भूभृतो भविष्यन्ति। अल्पप्रसादा बृहत्कोपाः सर्व्वकालमनृताधर्म्मरुचयः स्त्री-बाल-गो-वधकर्त्तारः परस्वादा नरुचयोऽल्पसारा उदितास्तमितप्रायाः स्वल्पायुषो महेच्छा अल्पल्पधर्म्माश्च भविष्यन्ति॥ १८॥

तैश्च विमिश्रा जनपदास्तच्छीलवर्त्तिनो राजा श्रयशुष्मिणो म्लेच्छा श्चार्य्याश्च विपर्य्ययेण वर्त्तमानाः प्रजाः क्षपयिष्यन्ति॥ १९॥

ततश्चानुदिनमल्पाल्पह्रासाद् व्यवच्छेदाद् धर्म्मार्थयो र्जगतः संक्षेपो भविष्यति॥ २०॥

विन्ध्यशक्ति का पुत्र पुरञ्जय, उसका पुत्र रामचन्द्र, रामचन्द्र का पुत्र धर्म से वराङ्ग; कृतनन्दन, सुषिनन्दी, नन्दियशा और शिशक प्रवारी उत्पन्न होंगे। ये सब यथासम्भव एक सौ छः वर्षों तक राज्य करेंगे। अनन्तर तेरह इनके वंश के और तीन राजा होंगे। बादमें तेरह पुष्यमित्र, पटुमित्र एवं पद्ममित्र आदि तथा मेकल देशोत्पन्न सात भूपतिगण राजा होंगे। नौ राजा कोशलपुरी में राज्य करेंगे। पश्चात् निषधदेशक भी ये ही राजा होंगे। अनन्तर मगधपुरी में विश्वस्फटिक नामक एक राजा अन्य वर्णों को प्रवर्तित करके समस्त क्षत्रियजातिका उच्छेद करके कैवर्त, कटु पुलिन्द और ब्राह्मणगण को राज्य में स्थापित करेगा। पद्मावतीपुरी में नागवंशीय नौ राजा गङ्गा और प्रयाग के समीप कान्तिपुरी, तथा मथुरा में मागधागण, तथा गुप्त राजालोग पृथिवी का भोग करेंगे। देवरक्षित नामक एक व्यक्ति कोशल, उड् (ओड़िसा) एवं ताम्रलिप्त जनपदसमूह, तथा समुद्रतीरवर्ती समस्त पुरी की रक्षा करेगा। कलिङ्ग; माहिषीक, माहेन्द्र और भीमगण गुहापुरी की रक्षा करेंगे। मणिधार वंशीयजन नैषाद, नैनिषिक और कालतोय प्रभृति जनपद का भोग करेंगे। कनक वंशीयराजा स्त्रीराज्य (त्रैराज्य) और मूषिक जनपद का भोग करेंगे। पतित ब्राह्मणादि

आभार और शूद्र प्रभृति उस समय सौराष्ट्र, अवन्ति, शूद्र, अर्बुद, मरुभूमि आदि राज्य समूह को भोग करेंगे । सिन्धुतट, दार्वीकोवी, चन्द्रभागा, काश्मीर आदि समस्त देशों को म्लेच्छ, व्रात्य और शूद्रगण भोग करेंगे । ये सभी एक ही समय पृथिवीपर राज्य करेगें । ये समस्त राजागण सदा अप्रसन्न, अत्यन्त क्रोधी, सर्वदा मिथ्या और अधर्मों में निरत, स्त्री बालक एवं गौका वध करने वाले, दूसरे का धन ग्रहण के उद्योग करने वाले तथा उदय और अस्त के समान अल्पायु होंगे । इनकी इच्छा बहुत बड़ी होगी किन्तु धर्मकार्य अति अल्प करेंगे । इनके द्वारा समस्त जनपद परस्पर में मिल जायगा । और उन राजाओं के आश्रय से बलवान् तथा उन्हीं के स्वभाव का अनुकरण करने वाले म्लेच्छ, तथा आर्य प्रतिकूल आचरण करते हुए सारी प्रजा को नष्ट कर देंगे । तदनन्तर दिन प्रति दिन धर्म और अर्थ का थोड़ा थोड़ा ह्रास, एवं क्षय होने के कारण संसार का क्षय हो जायगा ॥ १७-२० ॥

ततश्चार्थ एवाभिजनहेतुः धनमेवाशेषधर्म्महेतुः, अभिरुचिरेव दाम्पत्यसम्बन्धहेतुः, अनृतमेव व्यवहारजय हेतुः, स्त्रीत्वमेवोपभोगहेतुः, रत्नताम्रभागितैव पृथिवीहेतुः, ब्रह्मसूत्रमेव विप्रत्वहेतुः, लिङ्गधारणमेवाश्रम हेतुः, अन्याय एव वृत्तिहेतुः ॥ २१-२ ॥

दौर्बल्यमेव अवृत्तिहेतुः, भयगर्भोच्चारणमेव पाण्डित्यहेतुः ॥ २३ ॥

दानमेव धर्म्महेतुः, आढ्यतैव साधुत्वहेतुः ॥ २४ ॥

उस समय धन ही कुलीनता का कारण होगा, बल ही समस्त धर्मो का कारण, परस्पर की रुचि दाम्पत्य सम्बन्ध की हेतु होगी, मिथ्या भाषण ही व्यवहार में जयका हेतु होगा, स्त्रीत्व ही उपभोग का हेतु होगा (अर्थात् स्त्री की जाति कुल आदि का विचार न होगा) रत्न और ताम्र (अर्थ) जिसको जितना होगा वह उतना प्रमाण पृथिवी का उपभोग करेगा । यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्व का हेतु होगा, चिन्ह धारणमात्र ही आश्रम का हेतु और अध्याय ही जीविकानिर्वाह का हेतु होगा । दुर्बलता ही अवृति (बेकारी) का हेतु होगा और भयप्रदर्शनपूर्वक चित्कार ही पाण्डित्य का कारण होगा । दान ही धर्म का हेतु, सम्पन्नता ही साधुत्व का हेतु होगा ॥ २१-२४ ॥

स्नानमेव प्रसाधनहेतुः, स्वीकरणं विवाहहेतुः, सद्वेशधार्य्येव, पात्रं दूरायतनोदमेव तीर्थमित्येव मनेकदोषोत्तरे भूमण्डले सर्व्ववर्णेष्वेव यो यो बलवान् स स भूपतिर्भविष्यति । एवञ्चातिलुब्धकरभारासहाः शैलाना मन्तरा द्रोणीः प्रजाः संश्रयिष्यन्ति । मधुशाकमूलफलपत्रपुष्पाहाराश्च भविष्यन्ति, तरुवटकलचीरप्रा-

वरणाश्चातिबहुप्रजाः शीतवातातपवर्षसहा भविष्यन्ति। न च कश्चित् त्रयोविंशति वर्षाणि जीविष्यति। अनवरतं चात्र कलियुगे क्षयमायात्यखिलमेवैष जनः क्षयमुपैष्यति ॥ २५ ॥

श्रौतस्मार्त्तधर्म्मे विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेषजगत्स्रष्टुश्चराचरगुरोरादिमयस्यान्तमयस्य सर्व्वमयस्य ब्रह्ममयस्यात्मस्वरूपिणो भगवतो वासुदेवः स्यांशः सम्भलग्रामप्रधानब्राह्मणविष्णुयशसो गृहे अष्टगुणर्द्धिसमन्वितः कल्किरूपी जगत्यत्रावतीर्य्य सकलम्लेच्छदस्युदुष्टाचरणचेतसामशेषाणामपरिच्छिन्न माहात्म्यशक्तिः क्षयं करिष्यति ॥ २६ ॥

स्वधर्म्मेषु चाखिलं जगत् संस्थापयिष्यतीति। अनन्तरञ्चाशेषकलेरवसाने प्रबुद्धानां तेषामेव जनपदानाममलस्फटिकविशुद्धमतयो भविष्यन्ति ॥ २७ ॥

तेषाञ्च बीजभूतानामशेषमनुष्याणां परिणतानामपि तत्कालकृतानामपत्य प्रसूतिर्भविष्यति ॥ २८ ॥

तानि च तदपत्यानि कृतयुगधर्म्मानुसारीणि भविष्यन्तीति ॥ २९ ॥

यदा चन्द्रश्च सूर्य्यश्च तथा तिष्य-बृहस्पती।
एकराशौ समेष्यन्ति भविष्यति तदा कृतम् ॥ ३० ॥

स्नान ही प्रसाधन का हेतु होगा, स्वीकार कर लेना ही विवाह का हेतु होगा (संस्कार आदि की अपेक्षा न करके पारस्परिक प्रेम बन्ध से ही दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित होगा। भली प्रकार वनठन कर रहने वाला ही सुपात्र समझा जायगा, दूरदेश का जल ही तीर्थजल का हेतु माना जायगा, छद्मवेश धारण ही गौरव का कारण होगा। इस प्रकार समस्त भूमण्डल बहु दोषमय हो जाने पर जो बलवान् होंगे वही भूमिपति होंगे। समस्त प्रजागण अतिलोभी राजा के करभार को बहन करने में असमर्थ होकर गिरिकन्दरा में आश्रय लेंगे और मधु, शाक, मूल, फल, पत्र एवं पुष्प भोजन करेंगे। उस समय प्रजाओं के लिये तरु वल्कल वस्त्र होगा एवं शीत, वायु और धूप एवं वर्षा आदि के कष्ट सह्य करेंगे। कोई व्यक्ति तेईस वर्ष पर्यन्त जीवित रहेगा। इस प्रकार कलियुग जितना ही अन्तिम अवस्था को प्राप्त होगा उतना समस्त लोक भी क्रमशः क्षय को प्राप्त होगा। श्रौत और स्मार्त धर्म भी अत्यन्त विनाश को प्राप्त होगा एवं समाप्तप्राय कलियुग में जो चराचर के गुरु हैं, आदि भूत हैं, जो अन्तमय, सर्वमय, ब्रह्ममय और परमात्मस्वरूप हैं उन भगवान् वासुदेव का अंश

सम्भल ग्राम के प्रधान ब्राह्मण विष्णुयशा के घर में अष्टैश्वर्य सम्पन्न, असीमशक्ति एवं माहात्म्यशालीं कल्किरूप से अवतीर्ण होकर समस्त म्लेच्छ, दस्यु एवं दुरात्माओं का संहार करेंगे। भगवान् कल्किरूप धारण करके समस्त जगत् को अपने अपने धर्म में स्थापित कर अनन्तर कलियुग के समाप्त होने पर वे समस्त जनपदवासी प्रजागण पुनः प्रबुद्ध होंगे एवं उनकी बुद्धि स्फटिक के समान विशुद्ध होगी। तत्काल उत्पन्न उन समस्त बीजभूत से समस्त मनुष्यगण वृद्धि को प्राप्त होंगे और उनकी सन्तान उत्पन्न होगी। और वही समस्त सन्तान उस समय सत्ययुग के धर्ममार्ग में प्रवृत्त होगी। इस विषय में कहा जाता है कि जिस समय चन्द्रमा, सूर्य बृहस्पति एक राशिपर पुष्यनक्षत्र में एकत्रित होंगे उस समय सत्ययुग का आगमन होगा॥ २५-३०॥

अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये।
एते वंशेषु भूपालाः कथिता मुनिसत्तम॥ ३१॥

यावत् परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चदशोत्तरम्॥ ३२॥

सप्तर्षीणाञ्च यौ पूर्वौ दृश्येते उदितो दिवि।

हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने तुम्हारे समीप—ये समस्त भूत, भविष्य और वर्तमान नरेशों का विवरण सुनाया। परिक्षित् के जन्म से लेकर नन्द के अभिषेक पर्यन्त एक हजार पाँच सौ वर्ष का समय जानना चाहिये॥ ३१-३२॥

तयोस्तु मध्यनक्षत्रं दृश्यते यत् समं निशि।
तेन सप्तर्षयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्॥ ३३॥

ते तु पारीक्षिते काले मघास्वासन् द्विजोत्तम!
तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः॥ ३४॥

यदैव भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज!
वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैव कलिरागतः॥ ३५॥

यावत् स पादपद्माभ्यां पस्पर्शेमां वसुन्धराम्।
तावत् पृथ्वीपरिष्वङ्गे समर्थो नाभवत् कलिः॥ ३६॥

सप्तर्षियों में जो (पुलस्त्य और क्रतु) दो नक्षत्र आकाश में पहले दिखायी देते हैं, उनके बीच में रात्रि के समय जो (दक्षिणोत्तर रेखापर) समदेश में स्थित (अश्विनी आदि) नक्षत्र हैं उनमें से प्रत्येक नक्षत्रपर सप्तर्षिगण एक एक सौ वर्ष रहते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ ! परिक्षित् के जन्म के समय वे सप्तर्षिगण मघानक्षत्र पर थे। उसी समय बारह सौ वर्ष प्रमाणवाला कलियुग आरम्भ हुआ था। हे द्विज ! जिस समय श्रीविष्णु का अंशावतार एवं वसुदेवजी के वंशधर भगवान् श्रीकृष्ण अपने धाम को पधारे थे उसी समय पृथिवी पर कलियुग का आगमन हुआ था। भगवान् श्रीकृष्ण जितने दिनों तक अपने चरणकमलों से पृथ्वी को स्पर्श करते रहे उतने दिनों तक कलियुग पृथ्वी को स्पर्श करने में समर्थ नहीं हुआ ॥ ३३-३६ ॥

गते सनातनस्यांशे विष्णोष्त्तत्र भुवो दिवम्।
तत्याज सानुजो राज्यं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥

विपरीतानि दृष्ट्वा च निमित्तानि स पाण्डवः।
याते कृष्णे चकाराथ सोऽभिषेकं परीक्षिते ॥ ३८ ॥

प्रयास्यन्ति यदा ते च पूर्व्वाषाढ़ां महर्षयः।
तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिर्बृद्धिं गमिष्यति ॥ ३९ ॥

अनन्तर जिस समय सनातन भगवान् श्रीविष्णु के अंश पृथिवी का परित्याग करके स्वर्ग गमन करने पर पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने अपने भाईयों के साथ राज्य का परित्याग कर दिया। श्रीकृष्ण के स्वर्ग जाने के बाद राजा युधिष्ठिर ने अमङ्गलसूचक समस्त विपरीत लक्षण को देखकर परीक्षित का राज्याभिषेक किया। उस समय ये सप्तर्षिगण पहले कहे हुए क्रम से पूर्वाषाढा नक्षत्रपर जायेंगे उस समय से आरम्भकर नन्दराज्यकाल तक कलियुग का प्रभाव बढ़ेगा ॥ ३७-३९ ॥

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे ॥ ४० ॥

त्रीणि लक्षाणि वर्षाणां द्विज ! मानुषसंख्यया।
षष्टिश्चैव सहस्राणि भविष्यत्येष वै कलिः ॥ ४१ ॥

शतानि तानि दिव्यानि सप्त पञ्च च संख्यया।
निःशेषेण ततस्तस्मिन् भविष्यति पुनः कृतम् ॥ ४२ ॥

जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वर्ग गमन किया उसी दिन कलियुग भूतलपर उपस्थित हुआ । अब मुझ से कलियुग की संख्या श्रवण करो । हे विप्र ! मनुष्य संख्या के अनुसार तीन लाख साठ हजार वर्षों तक कलियुग वर्तमान रहेगा । अनन्तर कलियुग की समाप्ति होने पर दिव्य संख्या के अनुसार बारह सौ वर्षों तक सत्ययुग वर्तमान रहेगा ।। ४०-४२ ।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम !
युगे युगे महात्मानः समतीताः सहस्रशः ।। ४३ ।।

बहुत्वान्नामधेयानां परिसंख्या कुले कुले ।
पुनरुक्तबहुत्वात्तु न मया परिकीर्त्तिता ।। ४४ ।।

देवापिः पौरवो राजा मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
महायोगबलोपेतौ कलापग्रामसंश्रयौ ।। ४५ ।।

कृते युग इहागत्य क्षत्रप्रावर्त्तकौ हि तौ ।
भविष्यतो मनोर्वंशे बीजभूतौ व्यवस्थितौ ।। ४६ ।।

एतेन क्रमयोगेन मनुपुत्रैर्वसुन्धरा ।
कृतत्रेतादिसंज्ञानि युगानि त्रीणि भुज्यते ।। ४७ ।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य जाति के महात्मागण हो चुके हैं । उन प्रत्येक को असंख्य होने के कारण मैंने उनका नाम कीर्तन नहीं किया । महायोगी पुरुवंशीय राजा देवापि और इक्ष्वाकुवंशीय राजा अरु—ये दोनों सत्ययुग के आने पर कलापग्राम में आश्रय ले क्षत्रिय वंश को पुनः प्रवर्तित करेंगे । ये दो भविष्यत् मनुवंश के बीजरूप से विराजमान हैं । इस प्रकार ये मनुपुत्रगण सत्य, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगों में पृथिवी का भोग करते हैं ।। ४३-४७ ।।

कलौ तु बीजभूतास्ते केचित् तिष्ठन्ति भूतले ।
यथैव देवापि-मरू साम्प्रतं समयस्थितौ ।। ४८ ।।

फिर कलियुग में उन्हीं से कोई आगामी मनुसन्तान के बीजरूप से स्थित रहते हैं जिस प्रकार की आजकल देवापि और पुरु हैं ।। ४८ ।।

एष तूद्देशतो वंशस्तवोक्तो भूभुजां मया।
निखिलो गदितुं शक्यो नैव जन्मशतैरपि ॥ ४९ ॥

एते चान्ये च भूपाला यैरत्र क्षितिमण्डले।
कृतं ममत्वं मोहान्धैर्नित्येऽनित्यकलेवरैः ॥ ५० ॥

कथं ममेयमचला मत्पुत्रस्य कथं मही।
मद्वंशस्येति चिन्तार्त्ता जग्मुरन्तमिमे नृपाः ॥ ५१ ॥

तेभ्यः पूर्व्वतराश्चान्ये तेभ्यस्तेभ्यस्तथापरे।
भविष्याश्चैव यास्यन्ति तेषामन्ये च येऽप्यनु ॥ ५२ ॥

विलोक्यात्मजयोद्योग-यात्राव्यग्रान् नराधिपान्।
पुष्पप्रहासैः शरदि हसतीव वसुन्धरा ॥ ५३ ।

मैने तुम्हारे समीप सम्पूर्ण राजाओं के वंश का वर्णन संक्षेप से किया, विशेषरूप से समस्त राजवंशों का वर्णन सौ जन्मों में भी नहीं हो सकता। अनित्य शरीरवाले—ये समस्त राजागण मोहान्ध होकर अपने को नित्य समझते हुए कल्पान्त स्थायी इस भूमण्डलपर ममत्व करके यहाँ से चले गये। यह पृथिवी किस प्रकार मेरे, पुत्रों के, तथा मेरे वंशजों के आधीन होकर रहेगी इस प्रकार विचार करते समस्त राजागण विनाश को प्राप्त हो गये। तथा इनके पूर्व के समस्त राजागण भी इसी प्रकार के विचार करते करते मृत्युमुख में गिरे एवं भावी राजागण भी इसी प्रकार की चिन्ता में विनाश को प्राप्त होंगे। प्रतिवर्ष समस्त राजागण को अपने जयलाभ के लिए उद्योगी बनकर युद्धयात्रा में व्यग्र देखकर पृथिवी शरद् ऋतु में विकसित पुष्पों से हँसती हुई के समान दिखायी देती है ॥ ४९-५३ ॥

मैत्रेय ! पृथिवीगीताः श्लोकाश्चात्र निबोध तान्।
यानाह धर्मध्वजिने जनकायासितो मुनिः ॥ ५४ ॥

कथमेष नरेन्द्राणां मोहो बुद्धिमतामपि।
येन फेनसधर्माणोऽप्यतिविश्वस्तचेतसः ॥ ५५ ॥

पूर्व्वमात्मजयं कृत्वा जेतुमिच्छन्ति। मन्त्रिणः।
ततो भृत्यांश्च पौरांश्च जिगीयन्ते तथा रिपून् ॥ ५६ ॥

क्रमेणानेन जेष्यामो वयं पृथ्वीं ससागराम्।
इत्यासक्तधियो मृत्युं न पश्यन्त्यविदूरगम्॥ ५७॥

हे मैत्रेय ! इस विषय में पृथिवीद्वारा कहे गये कुछ श्लोक हैं उनको तुम श्रवण करो। प्राचीन काल में असित मुनि ने धर्मध्वजी जनक के समीप कुछ श्लोक कहे थे। पृथिवी कहती है—इन बुद्धिमान् नरेशों को भी यह मोह क्यों उत्पन्न होता है? अहो फेन के समान अल्पकाल स्थायी होकर भी ये किस प्रकार अपनी स्थिरता के विषय में विश्वास रखते हैं? ये नरपतिगण सर्वप्रथम इन्द्रियजय करके मन्त्रिगणपर विजयकी इच्छा करते हैं। अनन्तर क्रमसे भृत्य और पुरवासीगणको जीतकर प्रश्चात् शत्रुपर विजयपानेकी अभिलाषा करते हैं। वे सब क्रमशः समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको जीत सकते हैं। इस प्रकारकी चिन्तामें आसक्त होकर ये राजा लोग समीपवर्ती अपनी मृत्युको नहीं देखते ॥ ५४-५७ ॥

समुद्रावरणं याति मन्मण्डलमथो वशम्।
कियदात्मजयादेतन्मुक्तिरात्मजये फलम्॥ ५८॥
उत्सृज्य पूर्व्वजा याता यां नादगाय गतः पिता।
तां ममेति विमूढत्वाज्जेतुमिच्छन्ति पार्थिवाः ॥ ५९ ॥
मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणाञ्चापि विग्रहाः।
जायन्तेऽत्यन्तमोहेन ममताधृतचेतसाम्॥ ६०॥
पृथ्वी ममेयं सकला ममैषा ममान्वयस्यापि च शाश्वतेयम्।
यो यो मृतो ह्यत्र बभूव राजा कुबुद्धिरासीदिति तस्य तस्य॥ ६१ ॥
दृष्ट्वा ममत्वादृतचित्तमेकं विहाय मां मृत्युपथ व्रजन्तम्।
तस्यान्वयस्थस्य कथं ममत्वं हृद्यास्पदं मत्प्रभवं करोति॥ ६२ ॥
पृथ्वी ममैषाशु परित्यजैनां वदन्ति ये दूतमुखैः स्वशत्रुम्।
नराधिपास्तेषु ममातिहासः पुनश्च मूढेषु दयाभ्युपैति॥ ६३ ॥

समुद्र से घिरा हुआ पृथिवी मण्डल यदि अपने वश में हो गया तथापि आत्मजय के समक्ष इसका क्या मूल्य है? कारण मोक्ष प्राप्त करना ही आत्मजय का प्रधान फल है। पिता और पितामह आदि जिस पृथिवी का परित्याग करके गये हैं किन्तु अपने साथ कोई इसे न ले जा सके। अहो! राजागण मूर्ख बनकर किस

प्रकार उसी धरती को अपना समझकर कैसे जीतने की इच्छा करते हैं। मेरी पृथिवी है इस प्रकार अपने प्रति ममतासक्त होकर राजागण अत्यन्त मोहयुक्त होने के कारण पिता, पुत्र और भाई के साथ भी परस्पर में युद्ध करते हैं। इस पृथिवी पर जो जो राजा हुए उन सभी को इस प्रकार की कुबुद्धि रही जिससे ये सभी यह समस्त पृथिवी मेरी है एवं यह पृथिवी हमारे वंशजों के अधिकार में भी सदा रहेगी ऐसा समझते रहे। इस प्रकार मेरे प्रति ममता करने वाले एक को मृत्युमुख में गिरते देखकर उसके वंशजगण के हृदय में किस प्रकार से ममता रहती है यह मेरी भूमि है अतएव 'तुम इसको शीघ्रता से छोड़ दो' ऐसा वचन दूत के मुख से अपने शत्रु को कहलाते हैं उन समस्त राजाओं को लक्ष्य करके मुझे हँसी आती है शत्रु द्वारा भूमि नहीं परित्याग करने पर पुनः युद्ध करके मृत्यु प्राप्त करते हैं ॥ ५८-६३ ॥

इत्येते धरणीगीता श्लोका मैत्रेय ! यैः श्रुताः।
ममत्वं विलयं याति तापन्यस्तं यथा हिमम् ॥ ६४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! पृथिवी से कहे गये इन श्लोक समूह को जिन लोगों ने सुना जिस प्रकार सूर्य के ताप से हिम (बर्फ) पिघल जाता है उस प्रकार उन सभी राजाओं का ममत्व भी समाप्त हो जायगा ॥ ६४ ॥

इत्येष कथितः सम्यङ्मनोर्व्वंशा मया तव।
यत्र स्थितिप्रवृत्तस्य विष्णोरंशांशका नृपाः ॥ ६५ ॥

शृणुयाद् य इमं भक्तया मनुवंशमनुक्रमात्।
तस्य पापमशेषं वै प्रणश्यत्यमलात्मनः ॥ ६६ ॥

धनधान्यर्द्धिमतुलां प्राप्नोत्यव्याहतेन्द्रियः।
श्रुत्वैवमखिलं वंशं प्रशस्तं शशिसूर्य्ययोः ॥ ६७ ॥

इक्ष्वाकु-जह्नु-मान्धातृ-सगरा-विक्षितान् रघून्।
ययाति-नहुषाद्यांश्च ज्ञात्वा निष्ठामुपागतान्।
महाबलान् महावीर्य्यानन्तधनसञ्चयान् ॥ ६८ ॥

कृतान् कालेन बलिना कथाशेषान् नराधिपान्।
श्रुत्वा न पुत्रदारादौ गृहक्षेत्रादिके तथा।
द्रव्यादौ च कृतप्रज्ञो ममत्वं कुरुते नरः ॥ ६९ ॥

तप्तं तपो यैः पुरुषप्रवीरैरुद्बाहुभिर्वर्षगणाननेकान् ।
इष्टाश्च यज्ञा बलिनोऽतिवीर्य्याः कृतास्तु कालेन कथावशेषाः ॥ ७० ॥
पृथुः समस्तान् प्रचचार लोकानव्याहतो योऽरिविदारिचक्रः ।
स कालवाताभिहतो विनष्ट क्षिप्त यथा शाल्मलितूलमग्नौ ॥७१ ॥
यः कार्तवीर्य्यो बुभूजे समस्तान् द्वीपान् समाक्रम्य हतारिचक्रः ।
कथाप्रसङ्गे त्वभिधीयमानः स एव सङ्कल्पविकल्पहेतुः ॥ ७२ ॥

मैंने तुमसे सम्यक् प्रकार से मनुवंश कहा। मनुवंश के समस्त राजागण श्रीविष्णु भगवान् के अंश से जन्म लिया है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन मनु-वंशीय राजाओं की कथा श्रवण करेगा उसकी बुद्धि निर्मल होगी और समस्त पाप नष्ट होंगे। जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इन चन्द्र और सूर्यवंश की मङ्गलमय कथा श्रवण करेगा वह अतुल धन-धान्य प्राप्त करेगा। महाबली, पराक्रमशाली अनन्त धनाधिकारी, परम निष्ठावान्, इक्ष्वाकु, जह्नु, मान्धाता, सगर, अविक्षित, (मरुत) तथा रघुवंशीय और ययाति, नहुष आदि जिन राजागण के बलवान् काल के प्रभाव से इस समय कथामात्र ही शेष रह गया है उनका चरित्र श्रवण और धारण करने से मनुष्य कृतप्रज्ञ होता है और पुत्र, स्त्री, गृह, क्षेत्र आदि में उसकी ममता नहीं रहती। जिन समस्त श्रेष्ठ पुरुषों ने उर्ध्वबाहु होकर अनेक वर्षों तक तपस्या और यज्ञ समूह का अनुष्ठान किया है उन समस्त पुरुषों को भी काल ने कथामात्र ही छोड़ दिया है। जिन राजा पृथु ने सर्वत्र अव्याहतगति से विचरण किया और जिनकी सेना ने शत्रुसमूह को विच्छिन्न करके समाप्त किया वे भी कालरूपवायु से प्रेरित होकर अग्निराशि में गिरायी गयी सेमलकी रुई के समान विनष्ट हो गये। जिन कार्तवीर्य अर्जुन ने अपने आक्रमण द्वारा समस्त शत्रुओं को विनाशकर समस्त द्वीपों का उपभोग किया इस समय कथा-प्रसङ्ग में उनका नाम लेने से मन में अनेक प्रकार के संकल्प होते हैं (अर्थात् इस प्रकार सन्देह होता है कि वास्तव में ऐसे थे या नहीं ? ॥ ६५-७२ ॥

दशानना- विक्षित-राघवाणामैश्वर्य्यमुद्भासितदिङ्मुखानाम् ।
भस्मापि जातं न कथं क्षणेन भ्रूभङ्गपातेन धिगन्तकस्य ॥ ७३ ॥
कथाशरीरत्त्वमवाप यद् वै मान्धातृनामा भुवि चक्रवर्ती ।
श्रुत्वापि तं कोऽपि करोति साधुर्ममत्वमात्मन्यपि मन्दचेताः ॥ ७४ ॥

भगीरथाद्याः सगरः ककुत्स्थो दशाननो राघव-लक्ष्मणौ च।
युधिष्ठिराद्याश्च बभूवुरेते सत्यं न मिथ्या क्व नु ते न विद्मः ॥ ७५ ॥
ये साम्प्रतं ये च नृपा भविष्याः प्रोक्ता मया विप्रवरोग्रवीर्य्याः।
ये ते तथान्ये च तथाभिधेयाः सर्व्वे भविष्यन्ति यथैव पूर्व्वे ॥ ७६ ॥
एतद् विदित्वा न नरेण कार्य्यं ममत्वमात्मन्यपि पण्डितेन।
तिष्ठन्तु तावत् तनयात्मजाद्याः क्षेत्रादयो ये तु शरीरतोऽन्ये ॥ ७७ ॥

दिङ्मण्डल के सौन्दर्य बढ़ाने वाले रावण, अविक्षित (मरुत) और रामचन्द्र आदि के ऐश्वर्य भी यम के भ्रूभङ्ग पात से क्षणमात्र में क्या भस्म नहीं हो गया? (अर्थात् भस्म हो गया) अतएव ऐश्वर्य को धिक्कार है। समस्त भूण्डल के चक्रवर्ती राजा मान्धाता भी जब कथा शेष रह गये। तब इस प्रकार सुनकर कौन मन्दबुद्धि अपने शरीर में ममता करेगा। भगीरथ, एवं सगर, ककुत्स्थ, रावण, राम, लक्ष्मण और युधिष्ठिर आदि राजागण थे। यह सत्य है मिथ्या नहीं किन्तु इस समय में सब कहाँ हैं यह नहीं जानता। हे विप्रवर! वर्तमान एवं भविष्यकालीन जिन समस्त राजाओं की कथा मैंने कही वे समस्त और उनके अतिरिक्त भी जो समस्त राजागण होंगे वें सभी पूर्वकालीन राजाओं के समान ही मृत्यु को प्राप्त करेंगे कोई भी चिरस्थायी नहीं होंगे। पण्डितगण इन सभी विषयों को जानकर अपने शरीर से भी मोह न करें और शरीर से भिन्न कन्या, पुत्र और क्षेत्र आदि जो है उनसे भी ममता न करें ॥ ७३-७७ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।

श्रीविष्णु महापुराण

पञ्चम अंश - पहला अध्याय

(वसुदेव-देवकी का विवाह)

मैत्रेय उवाच ।

नृपाणां कथितः सर्व्वो भवता वंशविस्तरः ।

वंशानुचरितञ्चैव यथावदनुवर्णितम् ॥ १ ॥

अंशावतारो ब्रह्मर्षे योऽयं यदुकुलोद्भवः ।

विष्णोस्तं विस्तरेणाहं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ २ ॥

चकार यानि कर्म्माणि भगवान् पुरुषोत्तमः ।

अंशांशेनावतीर्य्योर्व्व्यां तत्र तानि मुने ! वद ॥ ३ ॥

मैत्रेयजी बोले—आपने राजाओं का सम्पूर्ण वंशविस्तार और उनके चरित्रों का क्रमशः यथावत् वर्णन किया । हे ब्रह्मर्षे ! यदुकुल में उत्पन्न विष्णु भगवान् का अंशावतार जो हुआ, उसकी कथा यथार्थ रूप से विस्तार पूर्वक मैं सुनने की इच्छा करता हूँ । हे मुने ! भगवान् ने पुरुषोत्तम अंशरूप से पृथिवीपर अवतीर्ण होकर जो समस्त कार्य किये थे उसको मुझे सुनाइये ॥ १-३ ॥

पराशर उवाच ।

मैत्रेय ! श्रूयतामेतद् यत् पृष्टोऽहमिदं त्वया ।

विष्णोरंशांश-सम्भूति-चरितं जगतो हितम् ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! तुमने जो मुझसे जिज्ञासा की वह जगत् के हितकारी विष्णु अंशावतार का चरित्र तुम श्रवण करो ॥ ४ ॥

देवकस्य सुतां पूर्व्वं वसुदेवो महामुने !
उपयेमे महाभागां देवकीं देवतोपमाम् ॥ ५ ॥

कंसस्तयोर्वररथं चोदयामास सारथिः ।
वसुदेवस्य देवक्याः संयोगे भोजवर्द्धनः ॥ ६ ॥

अथान्तरीक्षे वागुच्चैः कंसमाभाष्यसादरम् ।
मेघगम्भीरनिर्घोषं समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ ७ ॥

यामेतां वहसे मूढ़ ! सह भत्रो रथे स्थिताम् ।
अस्यास्ते चाष्टमो गर्भः प्राणानपहरिष्यति ॥ ८ ॥

इत्याकर्ण्य समादाय खड्गं कंसो महाबलः ।
देवकीं हन्तुमारब्धो वसुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ ९ ॥

न हन्तव्या महाबाहो ! देवकी भवता तव ।
समर्पयिष्ये सकलान् गर्भानस्योदरोद्भवान् ॥ १० ॥

तथेत्याह च तं कंसो वसुदेवं द्विजोत्तम !
न घातयामास च तां देवकीं तस्य गौरवात् ॥ ११ ॥

हे महामुने ! प्राचीनकाल में वसुदेव ने देवक की कन्या देवोत्तमा देवकी के साथ विवाह किया । वसुदेव एवं देवकी के विवाह से भोजवंशवर्धन राजा कंस सारथि बनकर उस नवदम्पति के रथ का सञ्चालन कर रहा था । उसी समय आकाश में आदर के साथ मेघगम्भीर देववाणी कंस को सम्बोधन करके हुई । अरे मूढ़ ! पति के साथ जिसको रथ पर बैठाकर तुम ले जाते हो उसी के आठवें गर्भ से जो बालक जन्म लेगा उसी से तुम्हारी मृत्यु होगी । श्रीपराशरजी बोले—महाबली कंस इस वाक्य को श्रवणकर खड़ग से देवकी की हत्या करने के लिए तैयार हुआ । उस समय वसुदेवजी बोले । हे महाबाहो ! आप देवकी का वध न करें, इसके गर्भ से जो बालक उत्पन्न होंगे उन सभी को मैं आपको समर्पित कर दूँगा । श्रीपराशरजी

बोले—हे द्विजोत्तम ! कंस ने वसुदेव का वचन सुनकर हो हो ऐसा कहकर देवकी का वध नहीं किया ॥ ५-११ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु भूरिभारावपीड़िता ।
जगाम धरणी मेरौ समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥ १२ ॥

सब्रह्मकान् सुरान् सर्व्वान् प्रणिपत्याह मेदिनी ।
कथयामास तत् सर्व्वं खेदात् करुणभाषिणी ॥ १३ ॥

इसी समय पृथिवी भार से पीड़ित होकर सुमेरु पर्वत पर देवताओं के समीप गयी । वहाँ उसने ब्रह्मा जी के सहित समस्त देवताओं को प्रणाम करके करुणस्वर से बोलती हुई अपना सारा वृत्तान्त सुनाया ॥ १२-१३ ॥

अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्य्यः परो गुरुः ।
ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो गुरुः ॥ १४ ॥

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा पूर्व्वेषामपि पूर्व्वजः ।
कला-काष्ठा-निमेषात्मा कालश्चाव्यक्तमूर्त्तिमान् ॥ १५ ॥

तदंशभूतः सर्व्वेषां समूहो वः सुरोत्तमाः ।
आदित्या मरुतः साध्या रुद्रा वस्वश्वि-वह्नयः ॥ १६ ॥

पितरो ये च लोकानां स्रष्टारोऽत्रिपुरोगमाः ।
एतत् तस्याप्रमेयस्य रूपं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥

यक्ष-राक्षस-दैतेयाः पिशाचोरग-दानवाः ।
गन्धर्व्वाप्सरश्चैव रूपं विष्णोर्महात्मनः ॥ १८ ॥

ग्रहर्क्षतारकाचित्र-गगनाग्निजलानिलाः ।
अहञ्च विषयाश्चैतत् सर्व्वं विष्णुमयं जगत् ॥ १९ ॥

पृथिवी बोली—जिस प्रकार अग्नि सुवर्ण का तथा सूर्य गौ (किरण) समूह का परमगुरु है उसी प्रकार समस्त लोकों के गुरु श्रीनारायण मेरे परम गुरु हैं । वे प्रजापतियों के भी पति और पूर्वजों के भी पूर्वज हैं तथा वे ही कला, काष्ठा और निमेष आदि के रूप से प्रतीत होने वाला अव्यक्त कालस्वरूप भी है । हे

देवश्रेष्ठगण ! आप सभी उनके अंश से उत्पन्न हुए हैं । आदित्य, मरुत्, साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार अग्नि, पितृगम एवं समस्त लोकों के सृष्टिकर्ता के अत्रि आदि प्रजापतिगण उसी अप्रमेय महात्मा श्रीविष्णु के ही रूप हैं । यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, सर्प, दानव, गन्धर्व एवं अप्सरागण उन्हीं महात्मा विष्णु के रूप हैं । ग्रह, नक्षत्र तथा तारकागण, चित्रित आकाश, अग्नि जल, वायु एवं मैं तथा अन्य समस्त जगत् विष्णुमय ही हैं ॥ १४-१९ ॥

तथाप्यनेकरूपस्य तस्य रूपाण्यहर्निशम् ।
बाध्यबाधकता यान्ति कल्लोला इव सागरे ॥ २० ॥

तत् साम्प्रतमिमे दैत्याः कालनेमिपुरोगमाः ।
मर्त्यलोकं समाक्रम्य बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः ॥ २१ ॥

तथापि बहुरूप उन विष्णु के रूपसमूह सागर में तरङ्ग के समान दिन-रात्रि बाध्य-बाधक भाव से स्थित हैं । इस समय कालनेमि आदि दैत्यगण मर्त्यलोक पर आक्रमण करके रातदिन समस्त प्रजाओं को क्लेश दे रहे हैं ॥ २०-२१ ॥

कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना ।
उग्रसेनसुतः कंसः सम्भूतः स महासुरः ॥ २२ ॥

अरिष्टो धेनुकः केशी प्रलम्बो नरकस्तथा ।
सुन्दोऽसुरस्तथात्युग्रो वाणश्चापि बलेः सुतः ॥ २३ ॥

तथान्ये च महावीर्य्या नृपाणां भवनेषु ये ।
समुत्पन्ना दुरात्मानस्तान् न संख्यातुमुत्सहे ॥ २४ ॥

अक्षौहिण्योऽत्र बहुला दिव्यमूर्त्तिधृतां सुराः ।
महाबलानां दृप्तानां दैत्येन्द्राणां ममोपरि ॥ २५ ॥

तद्भूरिभारपीड़ार्त्ता न शक्नोम्यमरेश्वराः !
विभर्त्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि वः ॥ २६ ॥

क्रियतां तन्महाभागाः ! मम भारावतारणम् ।
यथा रसातलं नाहं गच्छेयमिति विह्वला ॥ २७ ॥

पूर्वकाल में इसी कालनेमि को सर्वशक्तिमान् श्रीविष्णु ने विनाश किया था। उसी महान् असुर ने इस समय उग्रसेन के पुत्र कंस के रूप में जन्म लिया है। अरिष्ट, धेनुक, प्रलम्ब, नरक, सुन्द एवं बलिपुत्र बाणासुर और महापराक्रमी दुरात्मा राजाओं के घर में उत्पन्न हुए हैं। मैं उनकी गणना करने में समर्थ नहीं हूँ। हे दिव्य मूर्तिधारण करने वाले देवगण ! इस समय महाबलवान् और अभिमानी दैत्यगण की अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ मेरे ऊपर स्थित हैं। उनके द्वारा अत्यन्त पीड़ित हो रही हूँ मैं आप सबको सूचित करती हूँ कि मैं अब अपने को धारण नहीं कर सकती। अतएव हे महाभाग ! आपलोग मेरे इस भारको समाप्त कीजिये, मुझे भय है कि मैं रसातल में न चली जाऊँ ॥ २२-२७ ॥

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषं त्रिदशैस्ततः।
भुवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह प्रचोदितः ॥ २८ ॥

यथाह वसुधा सर्व्वं सत्यमेतद्दिवौकसः।
अहं भवो भवन्तश्च सर्व्वं नारायणात्मकम् ॥ २९ ॥

विभूतयस्तु यास्त्स्य तासामेव परस्परम्।
आधिक्यन्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्त्तते ॥ ३० ॥

श्रीपराशरीरजी बोले—पृथिवी की इस बात को सुनकर पृथिवी के भार उतारने के निमित्त देवगण से प्रेरित होकर ब्रह्मा जी ने बोलना आरम्भ किया। ब्रह्माजी बोले—हे देवगण ! पृथिवी जो बोली है वह सब सत्य है मैं, शिव और आप सभी नारायण स्वरूप हैं। उनकी जो समस्त विभूतियाँ हैं वह न्यून और अधिक भाव से परस्पर बाध्य बाधक रूप से विराजमान हैं ॥ २८-३० ॥

तदागच्छत गच्छामः क्षीराब्धेस्तटमुत्तरम्।
तत्राराध्य हरिं तस्मै सर्व्वं विज्ञापयाम वै ॥ ३१ ॥

सर्व्वदैव जगत्यर्थे स सर्व्वात्मा जगन्मयः।
स्वल्पांशेनावतीर्य्योर्व्व्यां धर्म्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्र ! सह देवैः पितामहः।
समाहितमतिश्चैवं तुष्टाव गरुड़ध्वजम् ॥ ३३ ॥

अतएव आईये हमलोग क्षीरसमुद्र के उत्तर तीर पर चलें और वहाँ भगवान् श्रीविष्णु की आराधना करके उनको निवेदन करें। वे ही सर्वस्वरूप जगन्मय जगत् के लिये अल्पांश रूप से पृथिवी पर अवतार लेकर सर्वदा धर्म की रक्षा करते हैं। पराशरजी बोले—हे विप्र ! ऐसा कहकर ब्रह्माजी क्षीर समुद्र के तीर पर गये और एकाग्रचित्त होकर गरुड़ध्वज की स्तुति करने लगे ॥ ३१-३३ ॥

द्वे विद्ये त्वमनाम्नाय परा चैवापरा तथा।

ते एव भवतो रूपे मूर्त्तामूर्त्तात्मके प्रभो ॥ ३४ ॥

द्वे ब्रह्मणी त्वणीयोऽतिस्थूलात्मन् ! सर्व्व सर्व्ववित्।

शब्दब्रह्म परञ्चैव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य यत् ॥ ३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे प्रभो ! हे अनाम्नाय ! वेद से अगोचर परा और अपरा—ये दो विद्याएँ आपका मूर्त एवं अमूर्तात्मक स्वरूप है। हे सूक्ष्म ! हे अति सूक्ष्मात्मन् ! हे सर्व ! हे सर्वज्ञ ! शब्दब्रह्म और परब्रह्म—ये दो प्रकार के ब्रह्म आपके ही स्वरूप हैं ॥ ३४-३५ ॥

ऋग्वेदस्त्वं यजुर्व्वेदः सामवेदस्त्वथर्व्व च।

शिक्षा कल्पो निरुक्तञ्च छन्दो ज्योतिषमेव च ॥ ३६ ॥

इतिहास-पुराणे च तथा व्याकरण प्रभुः।

मीमांसा न्यायकं तत्त्वं धर्म्मशास्त्राण्यधोक्षज ॥ ३७ ॥

आत्मात्मदेहगुणवद् विचाराचारि यद्वचः।

तदप्यादिपते नान्वदध्यात्मात्मस्वरूपवत् ॥ ३८ ॥

त्वमव्यक्तमनिद्र्देश्यमचिन्त्यानामवर्णवत्।

अपाणिपादरूपञ्च शुद्धं नित्यं परात्परम् ॥ ३९ ॥

शृणोष्यकर्णः परिपश्यसि त्वमचक्षुरेको बहुरूपरूपः।

अपादहस्तो जवनो ग्रहीता त्वं वेत्सि सर्व्वं न च सर्व्ववेद्यः ॥ ४० ॥

अणोरणीयांसमसत्स्वरूपं त्वां पश्यतोऽज्ञाननिवृत्तिरग्रया।

धीस्थ धीर्यस्य बिभर्त्ति नान्यदवरेण्य-रूपात् परतः परात्मन् ॥ ४१ ॥

आप ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद स्वरूप हैं एवं आप ही शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्दः, ज्योतिष स्वरूप हैं। हे अधोक्षज ! आप ही इतिहास, पुराण, व्याकरण, मीमांसा, न्यायशास्त्र एवं धर्मशास्त्र हैं। जीवात्मा, परमात्मा, स्थूल, सूक्ष्मदेह जो है और उनका जों अव्यक्त कारण है इन समस्त विचारों से युक्त अन्तरात्मा के स्वरूप का बोधक जो वेदान्तवाक्य है वह आपसे भिन्न नहीं है। आप अव्यक्त, अचिन्त्य, अनिर्देश नाम एवं वर्ण से रहित पाणिपाद और रूपविहीन, तथा शुद्ध, नित्य एवं प्रकृति से परे हैं। आप कर्णरहित होकर भी श्रवण करते हैं एवं नेत्रहीन होकर भी देखते हैं, एक होकर भी बहुत रूपों में विराजमान रहते हैं, चरण रहित होकर सर्वत्र गमन करते हैं, हस्त रहित होकर भी सब वस्तुओं को ग्रहण करते हैं, आप समस्त ज्ञानस्वंरूप हैं तथा सबके अवेद्य होकर भी सबको जानने वाले हैं। हे परमात्मन् ! जिस धीर व्यक्ति की बुद्धि आपके श्रेष्ठतम स्वरूप से अतिरिक्त और कुछ नहीं ग्रहण करती, जो अणु से भी अणुतर आपके अदृश्य स्वरूप का दर्शन करता है उसी व्यक्ति का अज्ञान निवृत्त होता है ॥ ३६-४१ ॥

त्वं विश्वनाभिर्भुवनस्य गोप्ता सर्व्वाणि भूतानि तवान्तराणि।
यद्भूतभव्यं तदणोरणीयः पुमांस्त्वमेकः प्रकृतेः परस्तात्॥ ४२ ॥
एकश्चतुर्द्धा भगवान् हुताशो वर्च्चो विभूति जगतो ददासि।
त्वं विश्वतश्चक्षुरनन्तमूर्त्ते ! त्रेधा पदं संनिदधे विधातः ॥ ४३ ॥
यथाग्निरेको बहुधा समिध्यते विकारभेदैरविकाररूपः।
तथा भवान् सर्व्वगतैकरूपो रूपाण्यशेषाण्यनुपुष्यतीश ॥ ४४ ॥
एकस्त्वमग्रयं परमं पदं यत् पश्यन्ति त्वां सूरयो ज्ञानदृश्यम्।
त्वत्तो नान्यत् किञ्चिदस्ति त्वयीह यद्वा भूतं यच्च भाव्यं परात्मन्॥ ४५ ॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं समष्टिव्यष्टिरूपवान।
सर्व्वज्ञः सर्व्वदृक् सर्व्वशक्तिज्ञानबलर्द्धिमान्॥ ४६ ॥
अन्यूनश्चाप्यवृद्धिश्च स्वाधीनो नादिमान वशी।
क्लम-तन्द्रा-भय-क्रोध-कामादिभिरसंयुतः ॥ ४७ ॥

आप समस्त विश्व के आश्रय, तथा समस्त भुवन की रक्षा करने वाले हैं और समस्त भुवन आप में ही स्थित है। जो भूत और भविष्य वस्तु है वह आपसे ही उत्पन्न हुई है और होगी, अतएव आप अणु से अणुतर, तथा प्रकृति से स्वतन्त्र

एकमात्र पुरुष हैं। आप ही चार प्रकार के अग्निरूप से जगत् को तेज एवं ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। हे अनन्तमूर्ते ! चारों दिशाओं में आपका नेत्र प्रकाशित करता है। हे विधातः ! (आप ही त्रिविक्रम रूप से) तीन पाद द्वारा तीनों लोकों की स्थापना की है। हे ईश ! जैसे अविकारी अग्नि विकार के भेद से अनेक प्रकार प्रज्वलित होता है वैसे ही सर्वव्यापी आप भी एक रूप होने पर भी अनन्तरूप धारण करते हैं। जो सर्वश्रेष्ठ परमपद है वह भी आप ही हैं, तथा ज्ञानी पुरुष ज्ञानदृष्टि से आपका ही दर्शन करते हैं। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हे परमात्मन् ! इस जगत् में भूत अथवा भविष्य जो कुछ भी पदार्थ है वे समस्त आपसे ही उत्पन्न है। आप ही व्यक्त और अव्यक्त एवं समष्टि-व्यष्टि स्वरूप हैं, आप ही सर्वज्ञ और सभी के द्रष्टा हैं तथा समस्त शक्ति, ज्ञान एवं ऐश्वर्य से युक्त हैं। आपमें न्यूनता या वृद्धि नहीं होती, आप स्वाधीन, अनादि, तथा जितेन्द्रिय हैं, श्रम, आलस्य, भय, क्रोध एवं कामादि दोषों से रहित हैं ॥ ४२-४७ ॥

निरवद्यः परप्रीतो निरनिष्टोऽक्षरक्रमः ।
सर्व्वेश्वरः पराधारो धाम्नां धामात्मकोऽक्षयः ॥ ४८ ॥

सकलावरणातीत ! निरालम्बनभावन !
महाविभूतिसंस्थान ! नमस्ते पुरषोत्तम ॥ ४९ ॥

नाकारणात् कारणाद् वा कारणाकारणान्न च ।
शरीरग्रहणं वापि धर्म्मत्राणाय ते परम् ॥ ५० ॥

आप निर्मल, परोपकारी, दूसरों के अनुकूल और अक्षर हैं। हे सर्वेश्वर ! आप ही तेज समूह के अक्षय प्रकाशक हैं। हे निराबलम्बन ! हे भावन ! हे महाविभूति के आश्रय ! हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। आप अकारण अथवा किसी कारण से, कारण अकारण के हेतु से शरीर धारण नहीं करते, किन्तु केवल धर्म की रक्षा निमित्त ही शरीर धारण करते हैं ॥ ४८-५० ॥

इत्येवं संस्तुतिं श्रुत्वा मनसा भगवानजः ।
ब्रह्माणमाह प्रीतात्मा विश्वरूपधरो हरिः ॥ ५१ ॥

भो भो ब्रह्मन् ! त्वया मत्तः सह देवैर्यदिष्यते ।
तदुच्यतामशेषं वः सिद्धमेवावधार्य्यताम् ॥ ५२ ॥

श्रीपराशरजी बोले—विश्वरूप अजन्मा हरि इस प्रकार की स्तुति सुनकर प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी से बोले। श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! ये समस्त देवगण और आप हमारे से जो अभिलाषा करते हैं वह कहिये और वह सब सिद्ध हो चुके हैं यह भी निश्चय रूप से जानें ॥ ५१-५२ ॥

ततो ब्रह्मा हरेर्दिव्यं विश्वरूपमवेक्ष्य तत्।

तुष्टाव भूयो देवेषु साध्वसावनतात्मसु ॥ ५३ ॥

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्त्रमूर्त्ते! सहस्त्रवाहो! बहवक्त्रपाद!

नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाश-संस्थानकराप्रमेय ॥ ५४ ॥

सूक्ष्मातिसूक्ष्मातिबृहत्प्रमाण! गरीयसामप्यतिगौरवात्मन्!

प्रधानबुद्धीन्द्रियवत्-प्रधानमूलात् परात्मन्! भगवन्! प्रसीद ॥ ५५ ॥

एषा मही देव! महीप्रसूतैर्महासुरैः पीड़ित-शैलबन्धा।

परायणं त्वां जगतामुपैति भारावतारार्थमपारसारम् ॥ ५६ ॥

एते वयं वृत्ररिपुस्तथायं नासत्यदस्त्रौ वरुणो यमश्च।

इमे च रुद्रा वसवः ससूर्य्याः समीरणाग्निप्रमुखास्तथान्ये ॥ ५७ ॥

सुराः समस्ताः सुरनाथ! कार्य्य मेभिर्मया यच्च सदीश सर्व्वम्।

आज्ञापयाज्ञां प्रतिपालयन्तस्तथैव तिष्ठाम सदास्तदोषाः ॥ ५८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—उसके बाद भगवान् के उस विश्वरूप को दर्शन करके देवता गण भय से अपना शरीर नम्रकर पुनः स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी बोलें—हे सहस्त्रमूर्ते! हे सहस्त्रबाहो! हे अनेक मुख और अनेक चरणवाले! आपको नमस्कार है। हे जगत् के सृष्टि, स्थिति, विनाश करने वाले। हे अप्रमेय! आपको नमस्कार है। हे सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म! हे अतिविशाल प्रमाण! हे गौरवशालीयों में भी अतिगौरवसम्पन्न! हे प्रकृति, बुद्धि और अहङ्कार के मूलपुरुष से भी परात्मन्! हे भगवन्! आप प्रसन्न होइये। हे देव! यह पृथिवी हैं। पृथिवी से उत्पन्न कितने महासुरों के उपद्रव से इसका पर्वतरूपी मूलबन्धन शिथिल हो चुका है। अतएव इसका भार उतारने के निमित्त अपारशक्तिशाली एवं जगत् के एकमात्र गति आपके समीप यह आयी है। हे सुरनाथ! यह इन्द्र है, ये अश्विनीकुमार हैं, यह वरुण है, ये यम, रुद्रगण, सूर्य सहित वसुगण एवं वायुअग्नि प्रभृति हम सब हैं और ये

अन्यान्य देवगण हैं इनका अथवा मेरा जो कर्त्तव्य है उन्हें आप आज्ञा दीजिये, हे ईश ! आप ही की आज्ञा का पालन करते हुए हम सब सदा निर्दोष होकर निवास करेंगे ॥ ५३-५८ ॥

एव सस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः ।
उज्जहारात्मनः केशौ सित-कृष्णौ महामुने ॥ ५९ ॥

उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले !
अवतीर्य्य भुवो भार-क्लेशहानिं करिष्यतः ॥ ६० ॥

सुराश्च सकलाः स्वांशैरवतीर्य्य महीतले ।
कुर्व्वन्तु युद्धमुन्मत्तैः पूर्व्वोत्पन्नैर्महासुरैः ॥ ६१ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने ! इस प्रकार की स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर अपने श्वेत और कृष्ण दो प्रकार के केश उखाड़कर देवगण से बोले—हमारे ये दोनों केश पृथिवीपर अवतीर्ण होकर पृथिवी के भार से उत्पन्न क्लेश को दूर करेंगे । और देवगण भी अपने अपने अंश से पृथिवी पर जन्म लेकर पहले उत्पन्न हुए उन्मत्त महासुरों के साथ युद्ध करें ॥ ५९-६१ ॥

ततः क्षयमशेषास्ते दैतेया धरणीतले ।
प्रयास्यन्ति न सन्देहो मद्दृक्पातविचूर्णिताः ॥ ६२ ॥

वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा ।
तस्यायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुराः ॥ ६३ ॥

अवतीर्य्य च तत्रायं कंसं घातयिता भुवि ।
कालनेमि समुद्भूतमित्युक्तवान्तर्दधे हरिः ॥ ६४ ॥

अदृश्याय ततस्तेऽपि प्रणिपत्य महात्मने !
मेरुपृष्ठ सुरा जग्मुरवतेरुश्च भूतले ॥ ६५ ॥

तब पृथिवी ये समस्त दैत्य समूह मेरे दृष्टिपातमात्र से ही चूर्णित होकर विनष्ट हो जायेंगे इसमें सन्देह नहीं । हे देवगण ! वसुदेव जी की देवी के समान देवकी नामकी पत्नी है उसके अष्टम गर्भ से हमारा यह केश उत्पन्न होगा । यहाँ जन्म लेकर

यह कंस रूप से उत्पन्न कालनेमि दैत्यका विनाश करेगा इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। इसके बाद देवगण उनको प्रणाम करके सुमेरु पर्वतपर आ गये और पृथिवी पर क्रमशः जन्म ग्रहण करने लगे।

कंसाय चाष्टमो गर्भो देवक्यां धरणीधरः।
भविष्यतीत्याचचक्षे भगवान् नारदो मुनिः ॥ ६६ ॥

कंसोऽपि तदुपश्रुत्य नारदात् कुपितस्ततः।
देवकीं वसुदेवञ्च गृहे गुप्तावधारयत् ॥ ६७ ॥

जातं जातञ्च कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा।
तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमर्पितवान् द्विज ॥ ६८ ॥

भगवान् नारद मुनि ने कंस से कहा—देवकी के अष्टम गर्भ से भगवान् का जन्म होगा। नारद से ऐसी बात सुनकर कंस क्रोधित हुआ तथा देवकी और वसुदेव को गुप्तरूप से घर में बाँधकर रखा। और हे द्विज! वसुदेवजी भी अपने पूर्वकथनानुसार प्रत्येक पुत्र उत्पन्न होने पर कंस को समर्पित करने लगे ॥ ६६-६८ ॥

हिरण्यकशिपोः पुत्राः षड्गर्भा इति विश्रुताः।
विष्णुप्रयुक्ता तान् निद्रा क्रमाद् गर्भे न्ययोजयत् ॥ ६९ ॥

योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहितं यया।
अविद्यया जगत् सर्व्वं तामाह भगवान् हरिः ॥ ७० ॥

निद्रे! गच्छ ममादेशात् पातालतल-संश्रयान्।
एकैकत्वेन षड्गर्भान् देवकीजठरं नय ॥ ७१ ॥

हतेषु तेषु कंसेन शेषाख्योऽशंस्ततो मम।
अंशांशेनोदरे तस्याः सप्तमः सम्भविष्यति ॥ ७२ ॥

गोकुले वसुदेवस्य भार्य्यान्या रोहिणी स्थिता।
तस्याः स सम्भूतिसमं देवि! नेयस्त्वयोदरम् ॥ ७३ ॥

सप्तमो भोजराजस्य भयाद् रोधोपरोधतः ।
देवक्याः पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति ॥ ७४ ॥

गर्भसङ्कर्षणात् सोऽथ लोके सङ्कर्षणेति वै ।
संज्ञामवाप्यस्यते वीरः श्वेताद्रिशिखरोपमः ॥ ७५ ॥

ततोऽहं सम्भविष्यामि देवकीजठरे शुभे ।
गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम् ॥ ७६ ॥

ऐसा सुना जाता है कि ये छः पुत्र पूर्वजन्म में हिरण्यकशिपु के पुत्र थे । विष्णुभगवान् से प्रेरित योगनिद्रा ने उनको क्रमशः देवकी के गर्भ में स्थापना की थी । जिसके द्वारा समस्त जगत् मोहित रहता है वही अविद्यारूपिणी योगनिद्रा श्रीविष्णु की महामाया है । भगवान् ने उसे कहा—हे निद्रे ! तुम मेरी आज्ञा से पाताल में स्थित छः गर्भों को एक एक करके देवकी के जठर में स्थापित करो । उन सबको ही कंस से मारे जाने पर शेष नामक मेरा अंश अंशांशभाव से देवकी के जठर में सप्तम गर्भ के रूप में स्थित होगा । और गोकुल में रोहिणी नाम की वसुदेवकी एक पत्नी है । भोजराज कंस के भय के कारण कारागार से उस देवकी के सप्तम गर्भ को निकालकर तुम रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर देना । लोग देवकी का गर्भपात हो गया ऐसा कहेंगे इस गर्भ को सम्यक् रूप से आकर्षण करने के कारण श्वेत पर्वतशिखर के समान उस वीर का नाम संसार में 'संकर्षण' प्रसिद्ध होगा । उसके बाद मैं देवकी के मङ्गलमय जठर में प्रवेश करूंगा और तुम भी समयानुसार विलम्ब न करके यशोदा के गर्भ में चली जाना ॥ ६९-७६ ॥

प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि ।
उत्पत्स्यामि नवम्याञ्च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि ॥ ७७ ॥

यशोदाशयने मान्तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते !
मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो नयिष्यति ॥ ७८ ॥

वर्षाकाल के भाद्रमास में कृष्णपक्ष की अष्टमी को आधीरात के समय मैं जन्म लूंगा और तुम भी नवमी को जन्म ग्रहण करना । तथा वसुदेव मेरी शक्ति से प्रेरित होकर मुझे यशोदा के शयनगृह में एवं तुमको देवकी की शय्या पर ले जायेंगे ॥ ७७-७८ ॥

कंसश्च त्वामुपादाय देवि ! शैलशिलातले ।
प्रक्षेप्स्यत्यन्तरीक्षे च त्वं स्थानं समवापस्यसि ॥ ७९ ॥

ततस्त्वां शतदृक् शक्रः प्रणम्य मम गौरवात् ।
प्रणिपातानतशिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति ॥ ८० ॥

हे देवि ! कंस तुमको लेकर पत्थरपर पटकने को तैयार होगा किन्तु तुम उससे पटकी न जाकर आकाश मार्ग में विराजमान हो जाओगी । उस समय सहस्रनेत्र इन्द्र मेरी मर्यादा से तुमको प्रणाम करके भगिनी (बहन) बोलकर ग्रहण करेंगे ॥ ७९-८० ॥

ततः शुम्भनिशुम्भादीन् हत्वा दैत्यान् सहस्रशः ।
स्थानैरनेकैः पृथिवीमशेषां मण्डयिष्यसि ॥ ८१ ॥

त्वं भूतिः सन्नतिः कीर्त्तिः क्षान्तिर्द्यौः पृथिवी धृतिः ।
लज्जा पुष्टिरुषा या च काचिदन्या त्वमेव सा ॥ ८२ ॥

उसके बाद तुम शुम्भ, निशुम्भ आदि बहुत दैत्यों का विनाश करके विन्ध्य, जालन्धर प्रभृति स्थानों से समस्त पृथिवी को विभूषित करेगी । तुम विभूति, सन्नति (गुरुशुश्रुषा), कीर्ति, क्षान्ति, स्वर्ग, भूमि, पृथ्वी, धृति, लज्जा, पुष्टि उषा हो और जो कुछ अन्य है वह समस्त तुम ही हो ।

ये त्वामार्य्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेति च ।
भद्रेति भद्रकालीति क्षेम्या क्षेमङ्करीति च ॥ ८३ ॥

प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः ।
तेषां हि प्रार्थितं सर्व्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ८४ ॥

सुरामांसोपहारैस्तु भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता ।
नृणामशेषकामांस्त्वं प्रसन्ना सम्प्रदास्यसि ॥ ८५ ॥

ते सर्व्वे सर्व्वदा भद्रे ! मत्प्रसादादसंशयम् ।
असन्दिग्धा भविष्यन्ति गच्छ देवि ! यथोदितम् ॥ ८६ ॥

जो कोई मनुष्य प्रातः एवं सायं काल में भक्तिपुर्वक आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या (क्षेमङ्करी) आदि नामों से तुम्हारी स्तुति करेगा। मेरी कृपा से उसकी सभी अभिलाषाएँ सिद्ध होगी। सुरा, मांस, भक्ष्य भोज्यद्वारा की गयी पूजा से प्रसन्न होकर तुम मनुष्यगण को समस्त इच्छित विषय प्रदान करोगी। हे भद्रे ! तुम्हारे द्वारा दिया गया वरदान समूह हमारी प्रसन्नता से निश्चय परिपूर्ण होगा। हे देवि ! तुम यथोचित स्थान को गमन करो ॥ ८३-८६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में पहला अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - दूसरा अध्याय

(देवताओं द्वारा देवकी की स्तुति)

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वै तदा।
षड् गर्भ-गर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम्॥ १॥

सप्तमे रोहिणीं प्राप्ते गर्भे गर्भ ततो हरिः।
लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश वै॥ २॥

योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव ततो दिने।
सम्भूता जठरे तद्वद् यथोक्तं परमेष्ठिना॥ ३॥

ततो ग्रहगणः सम्यक् प्रचचार दिवि द्विज।
विष्णोरंशे भुवं याते ऋतवश्चाभवन् शुभाः॥ ४॥

श्रीपराशरजी बोले—तब जगद्धात्री योगनिद्रा ने श्रीविष्णु ने जैसा कहा था तदनुसार छः गर्भों को देवकी के गर्भ में स्थापित किया और सातवें गर्भ का आकर्षण किया। सप्तम गर्भ को रोहिणी के जठर में स्थापन करने पर भगवान् हरि ने तीनों लोकों के उपकार के लिए देवकी के गर्भ में प्रवेश किया। योगनिद्रा ने भी उसी दिन परमेश्वर के आदेशानुसार यशोदा के गर्भ में प्रवेश किया। हे द्विज! श्रीविष्णु के अंश को पृथिवीपर आने से आकाश में ग्रहगण ठीक-ठीक से विचरण करने लगे और समस्त ऋतुगण मंगलमय रूप धारण कर शोभा पाने लगे॥ १-४॥

न सेहे देवकीं द्रष्टुं कश्चिदप्यतितेजसा।
जाज्वल्यमानां तां दृष्ट्वा मनांसि क्षोभमाययुः॥ ५॥

अदृष्टां पुरुषैः स्त्रीभिर्देवकीं देवतागणाः।
बिभ्राणां वपुषा विष्णुं तुष्टुवुस्तामहर्निशम्॥ ६॥

प्रकृतिस्त्व परा सूक्ष्मा ब्रह्मगर्भाभवः पुरा।
ततो वाणी जगद्धातुर्व्वेदगर्भासि शोभने ॥ ७ ॥

सूर्य्यस्वरूपगर्भासि सृष्टिभूता सनातनि !
बीजभूता तु सर्व्वस्य यज्ञभूताभवस्त्रयी ॥ ८ ॥

फलगर्भा त्वमेवेज्या वह्निगर्भा तथारणिः।
अदितिर्देवगर्भा त्वं दैत्यगर्भा तथा दितिः ॥ ९ ॥

ज्योत्स्ना वासरगर्भा त्वं ज्ञानगर्भासि सन्ततिः।
नयगर्भा परा नीतिर्लज्जा त्वं प्रश्रयोद्वहा ॥ १० ॥

कामगर्भा तथेच्छा त्वं तुष्टिः सन्तोषगर्भिणी।
मेधा च बोधगर्भासि धैर्य्यगर्भोद्वहा धृतिः ॥ ११ ॥

अत्यन्त तेज से जाज्वल्यमान देवकी को कोई भी देखने में समर्थ न हो सका और उसे देखकर विपक्षियों का मन भी क्षुब्ध होने लगा। तथा वहाँ के स्त्री और पुरुषगण से अदृश्य देवतागण विष्णु गर्भ में धारण करने वाली देवकी जी की दिनरात प्रार्थना करने लगे। देवगण बोले—हे शोभने ! पहले तुम ब्रह्म-प्रतिबिम्ब को धारण करने वाली सूक्ष्म प्रकृति हुई थी पश्चात् वेदगर्भा वाणी हुई। हे सनातने ! तुम ही सूर्यस्वरूपगर्भवाली होकर सृष्टिरूप में विराजमान होती हो एवं तुम ही सबकी बीजस्वरूपा वेदत्रयी यज्ञस्वरूपा भी हो। तुम फलगर्भा यज्ञस्वरूपिणी और अग्निगर्भा अरणि स्वरूपा भी हो, तुम ही देवगर्भा अदिति एवं दैत्यगर्भादिति हो। तू ही दिनगर्भा प्रभा एवं ज्ञानगर्भा गुरुशुश्रुषा है। तू ही न्यायमयी परमनीति और विनायकी मूलभूता लज्जा है। तू ही काममयी इच्छा, सन्तोषमयी तुष्टि बोधगर्भा प्रज्ञा एवं धैर्यधारिणी धृति है ॥ ५-११ ॥

ग्रहर्क्षतारकागर्भा द्यौरस्यखिलहैतुकी।
एता विभूतयो देवि ! तथान्याश्च सहस्रशः ॥ १२ ॥

तथासङ्ख्या जगद्धात्रि ! साम्प्रतं जठरे तव।
समुद्राद्रि-नदी-द्वीप-वन-पत्तनभूषणा ॥ १३ ॥

ग्राम-खर्व्वट-खेटाढ्या समस्ता पृथिवी शुभे !
समस्तवह्नयोऽम्भांसि सकलाश्च समीरणाः ॥ १४ ॥

ग्रहर्क्षतारकाचित्रं विमानशतसङ्कुलम् ।
अवकाशमशेषस्य यद्ददातिनभःस्थलम् ॥ १५ ॥

भूर्लोकश्च भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महर्ज्जनः ।
तपश्च ब्रह्मलोकश्च ब्रह्माण्डमखिलं शुभे ॥ १६ ॥

तदन्तरे स्थिता देवा दैत्य-गन्धर्व्व-चारणाः ।
महोरगास्तथा यक्षा राक्षासाः प्रेतगुह्यकाः ॥ १७ ॥

मनुष्याः पशवश्चान्ये ये च जीवा यशस्विनि !
तैरन्तस्थैरनन्तोऽसौ सर्वेशः सर्व्वभावनः ॥ १८ ॥

रूपकर्म्मस्वरूपाणि न परिच्छेदगोचरे ।
यस्याखिलप्रमाणानि स विष्णुर्गर्भगस्तव ॥ १९ ॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा विद्या सुधा त्वं ज्योतिरम्बरे ।
त्वं सर्व्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥ २० ॥

प्रसीद देवि ! सर्व्वस्य जगतः शं शुभे ! कुरु ।
प्रीत्या त्वं धारयेशानं धृतं येनाखिलं जगत् ॥ २१ ॥

ग्रह-नक्षत्र तथा तारा समूह को धारण करने वाला एवं (वृष्टि आदि के द्वारा इस अखिल विश्व के) कारणस्वरूप आकाश तुम ही हो । हे जगद्धात्रि ! हे देवि ! ये समस्त तथा और भी सहस्रों विभूतियाँ इस समय तेरे उदर में स्थित हैं । हे शुभे समुद्र, पर्वत, नदी, द्वीप, वन और नगरों से सुशोभित तथा ग्राम, खर्वट (पर्वत सभी परवर्ती ग्राम एवं खेट कृषकका ग्राम) आदि से सम्पन्न समस्त पृथिवी, सम्पूर्ण अग्नि और जल, समस्त वायु, ग्रह, नक्षत्र एवं तारागणों से चित्रित और सभी को अवकाश देनेवाला है वह सैकड़ों विमानों से विभूषित आकाश भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा मह, जन और ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड एवं उसके अन्तर्गत देव, असुर, गन्धर्व चारण, नाग, यक्ष, राक्षस, प्रेत, गुह्यक, मनुष्य, पशु एवं अन्यान्य जीव हैं, हे यशस्विनि ! वे समस्त अपने भीतर होने के कारण जो अनन्त सर्वगामी और

सर्वभावन हैं तथा जिनके रूप कर्म, स्वभाव, तथा समस्त मर्यादा के विश्व नहीं हो सकते वे ही श्रीविष्णु भगवान् तुम्हारे गर्भ में विराजमान हैं । तुम ही स्वाहा, स्वधा, विद्या, सुधा, और आकाशस्थिता ज्योति हो । समस्त लोकों की रक्षा निमित्त तुमने पृथिवीपर अवतार लिया है । हे देवि ! तुम प्रसन्न हो, हे शुभे ! तुम समस्त जगत् का कल्याण करो । जिसने समस्त जगत् को धारण किया है उस प्रभु को तुम अपने गर्भ में धारण करो ॥ १२-२१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में दूसरा अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - तीसरा अध्याय

(योगमाया द्वारा कंस की वञ्चना)

एवं संस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत्।
गर्भेण पुण्डरीकाक्षं जगतस्त्राणकारणम्॥ १॥

ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना।
देवकीपूर्व्वसन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना॥ २॥

तज्जन्मदिनमत्यर्थमाह्लाद्यमलदिङ्मुखम्।
बभूव सर्वलोकस्य कौमुदी शशिनो यथा॥ ३॥

सन्तः सन्तोषमधिकं प्रशमं चण्डमारुतः।
प्रसादं निम्नगा याता जायमाने जनार्द्दने॥ ४॥

सिन्धवो निजशब्देन वाद्यं चक्रुर्मनोहरम्।
जगुर्गन्धर्व्वपतयो नभृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ५॥

ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवा भुव्यन्तरीक्षगाः।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जायमाने जनार्द्दने॥ ६॥

मध्यरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने।
मन्द्रं जगर्ज्जुर्जलदाः पुष्पवृष्टिमुचो द्विज॥ ७॥

श्रीपराशरजी बोले—देवताओं द्वारा स्तुति की जाने पर देवकी जगत् की रक्षा के कारण उस कमललोचन भगवान् को गर्भ में धारण करने लगी। अनन्तर अखिल जगत् रूप कमल को विकास के लिए देवकीरूपी पूर्वसन्ध्या से महात्मा विष्णुरूप सूर्य प्रकट हुए। चन्द्रमा की किरण जिस प्रकार समस्त लोकों के लिए आनन्दकारक होती है उसी प्रकार भगवान् का जन्मदिन समस्त लोकों को अतिशय

आनन्ददायक हुआ और उस समय समस्त दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो गयी थी। भगवान् जनार्दन के जन्मग्रहण के समय साधुगण ने अत्यन्त सन्तोष प्राप्त किया, प्रचण्ड वायु ने शान्तभाव धारण किया, गन्धर्वों ने गान एवं अप्सराओं ने नृत्य किया, तथा नदियाँ प्रसन्न (स्वच्छ) हो गयीं, समुद्र ने अपने शब्दों में मनोहर वाद्यध्वनि की। जनार्दन के प्रकट होने पर देवताओं ने आकाश से पृथिवीपर पुष्पवर्षा की और अग्निसमूह शान्तभाव से प्रज्वलित होने लगे। हे द्विज ! मध्यरात्रि के समय सर्वाधार श्रीविष्णुकी उत्पत्ति के समय समस्त मेघगण पुष्पवर्षा के साथ मन्द मन्द गर्जन करने लगे ॥ १-७ ॥

फुल्लेन्दीवरपत्राभं चतुर्बाहुमुदीक्ष्य तम्।
श्रीवत्सवक्षसं जातं तुष्टावानकदुन्दुभिः ॥ ८ ॥

अभिष्टूय च तं वाग्भिः प्रसन्नाभिर्महामतिः।
विज्ञापयामास तदा कंसाद्भीतो द्विजोत्तम ॥ ९ ॥

वसुदेव जी विकसित कमल के समान सुशोभित चतुर्भुज और श्रीवत्स चिन्ह से अङ्कित वक्षःस्थलवाले उत्पन्न श्रीविष्णु भगवान् का दर्शन करके स्तुति करने लगे। हे द्विजश्रेष्ठ ! महामति वसुदेवजी विशुद्ध वाक्य समूह से जगत्पति की स्तुति करके कंस के भय से भीत होकर उस समय भगवान् को निवेदन करते हुए बोले ॥ ८-९ ॥

ज्ञातोऽसि देवदेवेश ! शङ्ख-चक्र-गदाधर।
दिव्यरूपमिदं देव प्रसादेनोपसंहर ॥ १० ॥

अद्यैव देव ! कंसोऽयं कुरुते मम घातनम्।
अवतीर्ण इति ज्ञात्वा त्वमस्मिन मम मन्दिरे ॥ ११ ॥

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो गर्भेषु लोकान् वपुषा बिभर्त्ति।
प्रसीदतामेष स देवदेवः स्वमाययाविष्कृतबालरूपः ॥ १२ ॥

उपसहर सर्व्वात्मन ! रूपमेतच्चतुर्भुजम्।
जानातु मावतारं ते कंसोऽयं दितिजाधमः ॥ १३ ॥

हे देवदेवेश ! मैं आपको जान गया हूँ। हे देव ! आप प्रसन्न होकर शंख-चक्र-गदाधारी अपने इस दिव्यरूप को समाप्त कीजिये। मेरे इस घर में आपको अवतार लिये हुए जानकर कंस आज ही मेरा सर्वनाश कर देगा। देवकी बोली—जो अनन्तरूप एवं अखिल—विश्वरूप हैं तथा जो जगत् समूह को धारण करते हैं वे ही ये देवदेव अपनी माया से बालक रूप में विराजमान होकर हम पर प्रसन्न हों। हे सर्वात्मन् ! आप इस चतुर्भुज रूप को संवरण कीजिये, क्योंकि राक्षस के अंश से उत्पन्न यह कंस आप अवतीर्ण हुए हैं ऐसा जान न सके ॥ १०-१३ ॥

ततोऽहं यत् त्वया पूर्व्वं पुत्रार्थिन्या तदद्य ते।
सफलं देवि ! सञ्जातं जातोऽहं यत् तवोदरात् ॥ १४ ॥

इत्युक्त्वा भगवांस्तूष्णीं बभूव मुनिसत्तम !
वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहिः ॥ १५ ॥

मोहिताश्चाभवंस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया।
मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥ १६ ॥

वर्षतां जलदानाञ्च तोयमत्युल्वणं निशि।
संछाद्यानुययौ शेषः फणेनानकदुन्दुभिम् ॥ १७ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवि ! तुमने प्राचीनकाल में पुत्रार्थिनी होकर मुझसे प्रार्थना की थी। वह तुम्हारी प्रार्थना आज सफल हुई कारण मैं तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ। हे मुनिसत्तम ! ऐसी बात कहकर भगवान् मौन हो गये एवं वसुदेवजी भी उसी रात्रि में उनको लेकर बाहर हुए। वसुदेव के जाने के समय वहाँ रक्षकगण एवं मथुरा के द्वारपालगण योगनिद्राद्वारा मोहित हो गये थे। उस रात्रि में वर्षा करते हुए मेघसमूह की भयङ्कर जलधारा से उनको ढँक कर शेष भगवान् वसुदेवजी के पीछे पीछे चलने लगे ॥ १४-१७ ॥

यमुनां चातिगम्भीरां नानावर्त्तसमाकुलाम्।
वसुदेवो वहन् विष्णुं जानुमात्रवहां ययौ ॥ १८ ॥

कंसस्य करमादाय तत्रैवाभ्यागतांस्तटे।
नन्दादीन् गोपवृन्दांश्च यमुनाया ददर्श सः ॥ १९ ॥

तस्मिन् काले यशोदापि मोहिता योगनिद्रया ।
तामेव कन्यां मैत्रेय ! प्रसूता मोहिते जने ॥ २० ॥

वसुदेवोऽपि विन्यस्य बालमादाय दारिकाम् ।
यशोदाशयने तूर्णमाजगामामितद्युतिः ॥ २१ ॥

ददृशे च प्रबुद्धा सा यशोदा जातमात्मजम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं ततोऽत्यर्थं मुदं ययौ ॥ २२ ॥

वसुदेवजी श्रीविष्णु को धारण करते हुए अतिशय गम्भीर और अनेक भँवर से युक्त यमुना को जंघे प्रमाण जल से ही पार कर गये और कंस के निमित्त कर लेकर आये हुए यमुनातीर पर नन्द प्रभृति गोपगण का दर्शन किया । हे मैत्रेय ! उस समय योगनिद्राद्वारा सबलोगों के मोहित होने पर यशोदा ने भी उस कन्या को उत्पन्न किया । अतिशय कान्तिमान् वसुदेवजी भी यशोदा की शय्यापर बालक को रखकर और कन्या को लेकर शीघ्रतापूर्वक लौट आये । उसके बाद यशोदा जागृत होकर नील कमलपत्र के समान श्यामवर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ है यह देखकर अत्यन्त आनन्दित हुई ॥ १८-२२ ॥

आदाय वसुदेवोऽपि दारिकां निजमन्दिरम् ।
देवकीशयने न्यस्य यथापूर्व्वमतिष्ठत ॥ २३ ॥

ततो बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षिणः सहसोत्थिताः ।
कंसायावेदयामासुर्देवकीप्रसवं द्विज ॥ २४ ॥

कंसस्तूर्णमुपेत्यैनां ततो जग्राह बालिकाम् ।
मुञ्च मुञ्चेति देवक्या सन्नकण्ठ्या निवारितः ॥ २५ ॥

चिक्षेप च शिलापृष्ठे सा क्षिप्ता वियति स्थितम् ।
अवाप रूपञ्च महत् सायुधाष्टमहाभुजम् ॥ २६ ॥

प्रजहास तथैवोच्चैः कंसञ्च रुषिताब्रवीत् ।
किं मया क्षिप्तया मूढ़ ! जातो यस्त्वां वधिष्यति ॥ २७ ॥

सर्व्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्युः पुरा स ते ।
तदेतत् सम्प्रधार्य्याशु क्रियतां हितमात्मनः ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ देवी दिव्यस्रग्-गन्ध-भूषणा ।
पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धैर्विहायसि ॥ २९ ॥

वसुदेवजी उस कन्या को ले जाकर देवकी की शय्या पर रखकर पूर्ववत् स्थित हो गये । हे द्विज ! रक्षकगण सहसा बालक के शब्द सुनकर उठ गये और कंस के समीप जाकर देवकी की प्रसववार्ता का निवेदन किया । इसके बाद कंश ने शीघ्रतापूर्वक आकर देवकीद्वारा 'छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये' इस प्रकार रोकने पर भी उस कन्या को लेकर पत्थरपर फेंक दिया । कंस द्वारा फेंकी गयी वह कन्या आकाश में जाकर अस्त्रों के साथ अष्टभुजा धारण करके उच्च हास्य करती हुई रुष्ट होकर कंस से बोली—अरे मूर्ख ! मुझे पटकने से तुम्हारा क्या होगा ? जो तुम्हारा वध करेंगे वह देवताओं के सर्वस्वभूत परमपुरुष जन्म ले चुके हैं । वही पूर्वजन्म में भी तुम्हारे मृत्युस्वरूप थे । इस बात को विचारकर शीघ्र तुम अपने हित का उपाय करो । भोजराज के समक्ष यह बात कहकर दिव्यमाला और चन्दन से विभूषित वह देवी सिद्धगण से प्रार्थना की जाती हुई आकाशमार्ग में अन्तर्ध्यान हो गयी ॥ २३-२९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में तीसरा अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - चतुर्थ अध्याय

(कृष्ण जन्म के बाद कंस की सोच)

कंस्ततोद्विग्नमनाः प्राह सर्व्वान् महासुरान् ।
प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहूयासुरपुङ्गवान् ।। १ ।।

हे प्रलम्ब ! महाबाहो ! केशिन् ! धेनुक ! पूतने !
अरिष्टाद्यैस्तथा चान्यैः श्रूयतां वचनं मम ।। २ ।।

मां हन्तुममरैर्यत्नः कृतः किल दुरात्मभिः ।
मद्वीर्य्यतापितैर्वीरो न त्वेतान् गणयाम्यहम् ।। ३ ।।

किमिन्द्रेणाल्पवीर्य्येण किं हरेणैकचारिणा ।
हरिणा वापि किं साध्यं छिद्रेष्वसुरघातिना ।। ४ ।।

किमादित्यैः किं वसुभिरल्पवीर्य्यैः किमग्निभिः ।
किञ्चान्यैरमरैः सर्व्वैर्मद्बाहुबलनिर्ज्जितैः ।। ५ ।।

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद उद्विग्नमनवाला कंस प्रलम्ब, केशी आदि समस्त असुर प्रधान को बुलाकर कहने लगा। कंस बोला—हे महाबाहो प्रलम्ब ! हे केशिन् ! हे धेनुक ! हे पूतने ! अरिष्ठ आदि अन्यान्य असुरों के साथ आपलोग मेरी बात सुने। हमारी शक्ति से पराजित होकर दुरात्मा देवगण मेरा वध करने के लिए प्रयत्न करते हैं किन्तु मैं स्वयं वीर हूँ सुतरां इन सभी की गणना नहीं करता। अल्प पराक्रमवाले इन्द्र से, तपस्वी महादेव से एवं छिद्रान्वेषणपूर्वक असुरगण को विनाश करने वाले विष्णु से भी क्या होने वाला है अथवा वसुगण के साथ स्वल्पपराक्रमवाले आदित्यसमूह या अग्नि एवं मेरे बाहुबल से पराजित समस्त देवगण से ही क्या होने वाला है ? १-५ ।।

किं न दृष्टोऽमरपतिर्मया संयुगमेत्य सः ।
पृष्ठेनैव वहन् वाणानपागच्छन्न वक्षसा ।। ६ ।।

मद्राष्टे वारिता वृष्टिर्यदा शक्रेण किं तदा।
मद्बाणभिन्नैर्जलदैरापोऽमुक्ता यथेप्सिताः ॥ ७ ॥

किमुर्व्व्यामवनीपाला मद्बाहुबलभीरवः।
न सर्व्वे सन्नतिं याता जरासन्धमृते गुरुम् ॥ ८ ॥

अमरेषु च मेऽवज्ञा जायते दैत्यपुङ्गवाः।
हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥ ९ ॥

तथापि खलु दुष्टानां तेषामभ्यधिकं मया।
अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥ १० ॥

तद् ये यशस्विनः केचित् पृथिव्यां ये च यज्विनः।
कार्य्यो देवापकाराय तेषां सर्व्वात्मना वधः ॥ ११ ॥

उत्पन्नश्चापि मुत्युर्मे भूतपूर्व्वः स वै किल।
इत्येतद् बालिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा ॥ १२ ॥

तस्माद् बालेषु परमो यत्नः कार्य्यो महीतले।
यत्रोद्रिक्तं बलं बाले स हन्तव्यः प्रयत्नतः ॥ १३ ॥

आपलोगों ने क्या नहीं देखा है कि सुरपति इन्द्र मेरे साथ युद्ध करते समय छाती से नहीं पृष्ठपर ही बाण-समूह की बौछार सहता हुआ भाग गया था। इन्द्र ने जिस समय मेरे राज्य में वर्षा नहीं बरसायी उस समय मेरे बाणों द्वारा छिन्न भिन्न होकर मेघों ने क्या वर्षा नहीं की? केवल मेरे गुरु जरासन्ध को छोड़कर हमारे बाहुबल से भयभीत होकर पृथिवीतल के समस्त राजागण क्या नतमस्तक नहीं होते हैं? हे दैत्य श्रेष्ठगण! देवताओं के प्रति मेरे चित्त में अवज्ञा है किन्तु हे वीरगण! उनको भी मेरी मृत्यु के लिये यत्नशील देखकर मुझे हंसी भी आती है। हे दैत्यपुङ्गवो! तथापि उन दुष्ट एवं दुरात्मागण के संहार के लिए हम लोगों को विशेष प्रयत्न करना चाहिये। अत एव पृथिवीपर जो कोई यशस्वी एवं यज्ञशील हैं देवगण को संहार के लिए सर्वथा उन प्रत्येक का वध करना ही होगा। देवकी के गर्भ से उत्पन्न बालिका यह बात बोलती है कि मेरा भूतपूर्व मृत्युकर्त्ता पुनः उत्पन्न हो चुका

है, अतएव पृथिवीपर उत्पन्न बालकों के ऊपर विशेष दृष्टि रखनी होगी। जिस बालक का अधिक बल देखा जाय उसी को यत्लपूर्वक वध करना होगा ॥ ६-१३ ॥

इत्याज्ञाप्यासुरान् कंसः प्रविश्यात्मगृहं ततः।
मुमोच वसुदेवञ्च देवकीञ्च निरोधतः ॥ १४॥

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाधुना।
कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥ १५ ॥

तदलं परितापेन नूनं तद्भाविनो हि ते।
अर्भका युवयोर्दोषाच्चायुषो यद्वियोजिताः ॥ १६ ॥

इत्याश्वास्य विमुक्तवा च कंसस्तौ परिशङ्कितः।
अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश पुनः स्वकम् ॥ १७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—कंस ने असुरगण को ऐसा आदेश देकर अपने गृह में प्रवेशकर वसुदेव और देवकी को कारागृह से मुक्त करके ऐसा कहा मैंने व्यर्थ में ही आपलोगों को कष्ट दिया और गर्भसमूह को विनाश किया मेरे विनाश के लिये अन्य कोई बालक उत्पन्न हो चुका है। अतएव आप लोगों को परिताप करना व्यर्थ है क्योंकि यह निश्चय ही होने वाला था। आप दोनों के दोष से ही उन बालकों के भाग्य में इसी प्रकार की मृत्यु निश्चित थी। हे द्विजश्रेष्ठ ! कंस ने इस प्रकार वसुदेव और देवकी को आश्वासन देकर अत्यन्त शङ्कित मन से अपने घर में प्रवेश किया ॥ १४-१७ ॥

श्रीविष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में चौथा अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - पाँचवाँ अध्याय

(पूतना-वध)

विमुक्तो वसुदेवोऽस्य नन्दस्य शकटं गतः ।
प्रहृष्टं दृष्टवान् नन्दं पुत्रो जातो ममेति वै ॥ १ ॥

वसुदेवोऽपि तं प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सादरम् ।
वार्द्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥ २ ॥

दत्तो हि वार्षिकः सर्व्वो भवद्भिर्नृपतेः करः ।
यदर्थमागतास्तस्मान्नावस्थेयं महाधनाः ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—कारागार से मुक्त होकर वसुदेवजी नन्दकी गाड़ी के समीप गये और पुत्रजन्म से आनन्दित नन्दजी का दर्शन किया । वसुदेवजी ने नन्दजी से आदर के साथ कहा कि इस वृद्धावस्था में आपको पुत्र उत्पन्न हुआ है यह बड़े भाग्य की बात है । आप राजा को समस्त वार्षिक कर प्रदान कर चुके हैं । हे महाधनवर्ग ! यहाँ निवास मत कीजिये ॥ १-३ ॥

यदर्थमागताः कार्य्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते ?
भवद्भिर्गम्यतां नन्द ! तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥ ४ ॥

ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि यः ।
स रक्षणीयो भवता यथायं तनयो निजः ॥ ५ ॥

इत्युक्ताः प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः ।
शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महाबलाः ॥ ६ ॥

आप जिस कार्य के लिए आये थे वह पूर्ण हो चुका अब क्यों यहाँ ठहरे हुए हैं । हे नन्दजी ! आप अब शीघ्र गोकुल में चले जाये । रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न

हुआ जो मेरा बालक वहाँ है आप अपने इस बालक के समान ही उसकी भी रक्षा करेंगे। श्रीपराशरजी बोले—वसुदेवजी द्वारा ऐसा कहे जाने पर नन्द आदि महाबली गोपगण राजा को प्राप्य कर देने के बाद बर्तनों को गाड़ी पर रखकर गोकुल को चल दिये ॥ ४-६ ॥

वसतां गोकुले तेषां पूतना बालघातिनी।
सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ तस्मै ददौ स्तनम् ॥ ७ ॥

यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सम्प्रयच्छति।
तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यते ॥ ८ ॥

कृष्णस्तस्याः स्तनं गाढ़ं कराभ्यामवपीड़ितम्।
गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ कोपसमन्वितः ॥ ९ ॥

सा विमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना।
पपात पूतना भूमौ म्रियमाणातिभीषणा ॥ १० ॥

तन्नादश्रुतिसन्त्रासात् प्रबुद्धास्ते व्रजौकसः।
ददृशुः पूतनोत्सङ्गे कृष्णं ताञ्च निपातिताम् ॥ ११ ॥

वे सब जब गोकुल में निवास कर रहे थे तब किसी एक रात्रि में बालघातिनी पूतना ने सोये हुए कृष्ण को गोद में उठाकर अपना स्तन प्रदान किया। रात्रिकाल में पूतना जिस जिसबालक के मुख में अपना स्तन प्रदान करती कुछ ही क्षणों में उन समस्त बालकों का शरीर मृत प्राय हो जाता था। भगवान् श्रीकृष्ण क्रोधित होकर हाथ से दृढ़ता पूर्वक उसका स्तन पकड़कर पूतना के प्राणों के साथ पीने लगे। उस समय शरीर के स्नायुबन्धन को विछिन्न होने से अत्यन्त भीषण स्वरूपवाली पूतना मरणशील होकर महा भयङ्कर चीत्कार करती हुई पृथ्वी पर गिर गयी। उस भयङ्कर चीत्कार को सुनकर भय से जागे हुए व्रजवासियों ने देखा कि पूतना की गोद में श्रीकृष्ण विराजमान हैं ॥ ७-११ ॥

आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदापि द्विजोत्तम!
गोपुच्छं भ्राम्य हस्तेन बालदोषमपाकरोत् ॥ १२ ॥

गोः करीषमुपादय नन्दगोपोऽपि मस्तके ।
कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वंश्चैतदुदीरयन् ॥ १३ ॥

रक्षतु त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः ।
यस्य नाभिसमुद्भूतपङ्कजादभवज्जगत् ॥ १४ ॥

येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत् ।
वराहरूपधृग् देवः स त्वां रक्षतु केशवः ॥ १५ ॥

नखाङ्कुरविनिर्भिन्न-वैरिवक्षःस्थलो विभुः ।
नृसिंहरूपी सर्व्वत्र स त्वां रक्षतु केशवः ॥ १६ ॥

वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणाद्भूत् ।
त्रिविक्रमः क्रमाकान्त-त्रैलोक्यः स्फुरदायुधः ॥ १७ ॥

शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः ।
गुह्यञ्च जठरं विष्णुर्जङ्घा-पादौ जनार्द्दनः ॥ १८ ॥

मुखं बाहू प्रबाहू च मनः सर्व्वेन्द्रियाणि च ।
रक्षत्वव्याहतैश्वर्य्यस्तव नारायणोऽव्ययः ॥ १९ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय यशोदा ने भययुक्त होकर श्रीकृष्ण को गोद में उठाकर अपने हाथों से उनके चारों ओर गायकी पूंछ भ्रमण कराकर दोष निवारण किया । उस समय नन्द भी गोबर का चूर्ण लेकर आगे लिखे हुए मन्त्रों को उच्चारण करते हुए रक्षा विधान पूर्वक कृष्ण के मस्तकपर प्रदान किया । नन्दगोप बोले— जिनकी नाभि से उत्पन्न कमलद्वारा समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है तथा जो समस्त भूतों की उत्पत्ति के कारण है वही हरि तुम्हारी रक्षा करें । जिनके दाँतों के अग्रभागपर स्थित पृथिवी सम्पूर्ण जगत् को धारण करती है वही वराहरूपी भगवान् केशव तुम्हारी रक्षा करें । जिन्होंने अपने नखों द्वारा शत्रु का वक्षः स्थल चीर डाला वही सर्वव्यापी नृसिंहरूपी केशव सदा तुम्हारी रक्षा करें । जिन्होंने क्षणभर में पादस्थापन के द्वारा त्रैलोक्य को आक्रान्त करके अस्त्रों के साथ विराजमान त्रिविक्रमरूप धारण किया था वही वामनदेव सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें । गोविन्द तुम्हारे मस्तक की रक्षा करें, केशव तुम्हारे कण्ठ की रक्षा करें, विष्णु तुम्हारे गुह्य एवं जठर की रक्षा करें,

जनार्दन तुम्हारे जंघे और चरणों की रक्षा करें। अविनाशी एवं अकुण्ठित ऐश्वर्य-शाले भगवान् नारायण तुम्हारे मुख, बाहु, प्रबाहु, मन तथा इन्द्रियों की रक्षा करें।। १२-१९ ॥

शाङ्‌र्ग-चक्र-गदा-खड्ग-शङ्खानादहताः क्षयम्।
गच्छन्तु प्रेत-कुष्माण्ड-राक्षसा ये तवाहिताः ॥ २० ॥

त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः।
हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः ॥ २१ ॥

एवं कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालकः।
शायितः शकटस्याधो बालकपर्य्यङ्किकातले ॥ २२ ॥

ते च गोपा महद् दृष्ट्वा पूतनायाः कलेवरम्।
मृतायाः परमं त्रासं विस्मयं परमं ययुः ॥ २३ ॥

जो तुम्हारे अनिष्टकारी हैं ये सब प्रेत, कुष्माण्ड एवं राक्षससमूह भगवान् श्रीविष्णु के शाङ्‌र्ग (श्रृङ्गी) धनुष, चक्र, गदा, खड्ग और शङ्खध्वनि से निहत होकर विनष्ट हो जायँ। वैकुण्ठ समस्त दिशाओं में तुम्हारी रक्षा करें, मधुसूदन समस्त दिशा के कोणों में तुम्हारी रक्षा करें, हृषीकेश आकाश में एवं महीधर पृथिवी पर तुम्हारी रक्षा करें। नन्दगोप ने इस प्रकार स्वस्तिवाचन करके शकट (गाड़ी) के नीचे बालक के पलंग पर श्रीकृष्ण को सुला दिया। वे समस्त गोपगण मरी हुई पूतना के विशाल शरीर को देखकर अत्यन्त भयभीत तथा विस्मित हुए ॥ २०-२३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - छठा अध्याय

(बलदेव और श्रीकृष्ण का नामकरण)

कदाचिच्छकटाधस्ताच्छयानो मधुसूदनः ।
चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तन्यार्थी प्ररुरोद च ॥ १ ॥

तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्त्तितम् ।
विध्वस्तकुम्भभाण्डं वै विपरीतं पपात च ॥ २ ॥

ततो हाहाकृतं सर्व्वो गोपगोपीजनो द्विज !
आजगामाथ ददृशे बालमुत्तानशायिनम् ॥ ३ ॥

गोपाः केनेति केनेदं शकटं परिवर्त्तितम् ।
तत्रैवं बालकाश्चोचुर्बालेनानेन पातितम् ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—किसी समय शकट के नीचे शयन किये हुए मधुसूदन माता के दूध पीने की इच्छा से दोनों चरणों को ऊपर करते करते रोदन करने लगे । उनके पादप्रहार से शकट उलट गया और उसके ऊपर रखे हुए समस्त भाण्ड फूट गये । हे द्विज ! उस समय समस्त गोप एवं गोपीगण ने हाहाकार करते हुए आकर देखा कि बालक उल्टा होकर शयन कर रहा है । उस समय वे लोग किसने शकट उलट दिया इस प्रकार बारबार जिज्ञासा करने लगे तब बालकों ने कहा कि इसी बालक ने शकट उलट दिया है ॥ १-४ ॥

रुदता दृष्टमस्माभिः पादविक्षेपताडितम् ।
शकटं परिवृत्तं वै नैतदन्यस्य चेष्टितम् ॥ ५ ॥

ततः पुनरतीवासन् गोपा विस्मितचेतसः ।
नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मितः ॥ ६ ॥

यशोदा शकटारूढ़भग्नभाण्डकपालिकाः ।
शकटं चार्च्चयामास दधि-पुष्प-फलाक्षतैः ॥ ७ ॥

हम लोगों ने देखा कि रोदन करते करते अपने चरण प्रहार से शकट को उलट दिया किसी अन्य का कार्य भी नहीं है । अब गोपगण और भी अधिक विस्मित हुए एवं नन्दजी ने भी अत्यन्त विस्मय में पड़कर बालक को गोद में ले लिया । और यशोदा दधि, पुष्प, फल और माँ अक्षत से फूटे हुए भाण्डों की एवं शकटकी पूजा करने लगे ॥ ५-७ ॥

गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रणोदितः ।
प्रच्छन्न एव गोपानां संस्कारानकरोत् तयोः ॥ ८ ॥

ज्येष्ठञ्च राममित्याह कृष्णञ्चैव तथापरम् ।
गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो नाम कुर्व्वन् महामतिः ॥ ९ ॥

स्वल्पेनैव हि कालेन रिङ्गिणौ तौ तदा व्रजे ।
धृष्टजानुकरौ तौ हि बभूवतुरुभावपि ॥ १० ॥

करीषभस्मदिग्धाङ्गौ भ्रममाणवितस्ततः ।
न निवारयितुं शेके यशोदा न च रोहिणी ॥ ११ ॥

गोवाटमध्ये क्रीड़न्तौ वत्सवाटगतौ पुनः ।
तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ ॥ १२ ॥

इसी समय गोकुल गाँव में वसुदेव जी से प्रेरित होकर गर्ग मुनि ने समस्त गोपों से छिपकर उन दोनों बालकों का संस्कार किया । ज्ञानियों में श्रेष्ठ महाबुद्धि-मान् गर्गमुनि ने बड़े का नाम राम और छोटे का नाम कृष्ण रखा । थोड़े ही समय के बाद वे दोनों बालक जानु और हाथों से व्रज में इधर उधर विचरने लगे । जिस समय वे दोनों बालक गोबर और राख समस्त शरीर में लगाकर इधर उधर विचरण करते थे उस समय यशोदा अथवा रोहिणी भी उनको रोक नहीं सकती थी । वे दोनों बालक कभी गोपियों के घर में और कभी सद्योजात गाय के बच्चों की पूंछ पकड़कर क्रीड़ा करने लगे ॥ ८-१२ ॥

यदा यशोदा तौ बालावेकस्थानचरावुभौ ।
शशाक नो वाररितुं क्रीडन्तावतिचञ्चलौ ॥ १३ ॥

यशोदा यष्टिमादाय कोपेनानुगता च तम् ।
कृष्णं कमलपत्राक्षं तर्ज्जयन्ती रुषा तदा ॥ १४ ॥

दाम्ना बद्ध्वा तदा मध्ये निबध्याथ उदूखले ।
कृष्णमक्लिष्टकर्म्माणमाह चेदममर्षिता ॥ १५ ॥

यदि शक्नोषि गच्छ त्वमतीचञ्चलचेष्टित !
इत्युक्त्वा च निजं कर्म्म सा चकार कुटुम्बिनी ॥ १६ ॥

व्यग्रायामथ तस्या स कर्षमाण उदूखलम् ।
यमलार्ज्जुनमध्येन जगाम कमलेक्षणः ॥ १७ ॥

कर्षता वृक्षयोर्मध्ये तिर्य्यग्गतमुदूखलम् ।
भग्नावुत्तुङ्गशाखाग्रां समाकर्ण्य च कातरः ।
आजगाम व्रजजनी ददृशे च महाद्रुमौ ॥ १९ ॥

भग्नस्कन्धौ निपतितौ भग्नशाखौ महीतले ।
नवोद्गताल्पदन्तांशु-सितहासञ्च बालकम् ॥ २० ॥

तयोर्मध्यगतं बद्धं दाम्ना गाढ़ं तथोदरे ।
ततश्च दामोदरतां स ययौ दामबन्धनात् ॥ २१ ॥

एक दिन यशोदा एक साथ खेल में लगे हुए अत्यन्त चञ्चल उन दोनों बालकों को रोकने में समर्थ नहीं हुई तब क्रोधित होकर लाठी लेकर कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण के समीप में जाकर उनको डाँटती हुई रस्सी से ऊखल में बाँधकर रखा एवं निर्दोषकार्य करने वाले श्रीकृष्ण को क्रोध के साथ कहने लगी—अरे अत्यन्त चपल ! यदि अब तुम्हारी शक्ति है तो जाओ । इस प्रकार, कहकर वह यशोदा अपने घर के काम करने लगी । यशोदा को गृहकर्म में व्यस्त श्रीकृष्ण ऊखल को खीचते हुए दो अर्जुन वृक्षों के बीच में होकर जाने लगे । उन दोनों वृक्षों के बीच में कुछ टेढ़ा हुए ऊखल को खेंचने पर ऊँची शाखावाले वे दोनों अर्जुन वृक्ष टूट

कर गिर गये। व्रजवासिगण उस अत्यन्त भयङ्कर कटकट शब्द को सुनकर कातरभावसे वहाँ जाकर टूटे हुए, स्कन्ध एवं शाखावाले दोनों वृक्षों को भूमिपर गिरे हुए अत्यन्त स्वच्छ हास्यवाले तथा टूटे हुए दो वृक्षों के मध्य में स्थित और रस्सीद्वारा दृढ़तापूर्वक बँधे हुए उदरवाले बालक को देखा। रस्सी द्वारा बन्धन होने के कारण उसी समय से बालक का नाम दामोदर हुआ ॥ १३-२१ ॥

गोपवृद्धास्ततः सर्व्वे नन्दगोपपुरोगमाः ।
मन्त्रयामासुरुद्विग्ना महोत्पातातिभीरवः ॥ २२ ॥

स्थानेनेह न नः कार्य्यं गच्छामोऽन्यन्महावनम् ।
उत्पाता बहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतवः ॥ २३ ॥

पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्य्ययः ।
विना वातादि-दोषेण द्रुमयोः पतनं तथा ॥ २४ ॥

वृन्दावनमितः स्थानात् तस्माद् गच्छाम मा चिरम् ।
यावद्भौममहोत्पात-दोषो नाभिभवेद् व्रजम् ॥ २५ ॥

इसके बाद बड़े बड़े उपद्रवों से अतिशय भयभीत नन्द जी प्रभृति गोपवृद्धगण व्याकुल होकर मन्त्रणा करने लगे। इस स्थान में हम लोगों को निवास करने का कोई प्रयोजन नहीं, अतएव हम अन्य वन में चले। यहाँ पर मृत्यु के कारणस्वरूप पूतना का विनाश, शकट भङ्ग, तथा बिना वायु के दोनों अर्जुन वृक्षों का पतन आदि अनेक उपद्रव देखे जा रहे हैं। अतएव विलम्ब न करके जब तक कोई भूमि सम्बन्धी उपद्रव में व्रज का विध्वंस नहीं होता उसके पहले ही इस स्थान को छोड़कर हम लोग वृन्दावन चले ॥ २२-२५ ॥

इति कृत्वा मतिं सर्व्वे गमने ते व्रजौकसः ।
ऊचुः स्वं स्वं कुलं शीघ्रं गम्यतां मा विलम्ब्यताम् ॥ २६ ॥

ततः क्षणेनः प्रययु शकटैर्गोधनैस्तथा ।
यूथशो वत्सबालांश्च कालयन्तो व्रजौकसः ॥ २७ ॥

द्रव्यावयवनिर्द्धूतं क्षणमात्रेण तत् तथा ।
काक-काकी-समाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विज ॥ २८ ॥

वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्म्मणा ।
शुभेन मनसा ध्यातं गर्वां वृद्धिमभीप्सता ॥ २९ ॥

ततस्तत्रातिरूक्षेऽपि घर्म्मकाले द्विजोत्तम !
प्रावृट्काल इवोद्भूतं नवं शस्यं समन्ततः ॥ ३० ॥

इस प्रकार स्थिरबुद्धि होकर व्रजवासिगण अपने अपने परिवार वर्ग से बोले—शीघ्र चलो विलम्ब मत करो । अनन्तर व्रजवासिगण शीघ्र ही गाड़ी और गोधन के सहित दल बनाकर गोवत्स और बालक समूह को चलते हुए स्वयं भी चलने लगे । हे द्विज ! उस समय द्रव्यों के अवशिष्ट अंश से भरी हुई वह व्रजभूमि कौवा से भर गयी । उस समय निर्दोष कर्म करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण गोसमूह की वृद्धि की इच्छा से विशुद्धमन होकर वृन्दावन का चिन्तन करने लगे । हे द्विजोत्तम ! इसके बाद चारों ओर ग्रीष्मकाल के समान अत्यन्त रूक्ष भी वृन्दावन वर्षा काल के समान नूतन शस्यश्यामल दीखने लगा ॥ २६-३० ॥

स समावासितः सर्व्वो व्रजो वृन्दावने ततः ।
शकटीवाटपर्य्यन्तश्चन्द्रार्द्धाकारसंस्थितिः ॥ ३१ ॥

इसके बाद समस्त वृन्दावन चारों ओर अर्धचन्द्राकार छकड़ों की बाड़ लगाकर स्थित हुए व्रजवासियों से बस गया ॥ ३१ ॥

वत्सपालौ च संवृत्तौ राम-दामोदरौ ततः
एकस्थानस्थितौ गोष्ठे चेरतुर्बाललीलया ॥ ३२ ॥

बर्हिपत्रकृतापीड़ौ वन्यपुष्पावतंसकौ ।
गोपवेणुकृतातोद्य-पत्रवाद्यकृतस्वनौ ॥ ३३ ॥

काकपक्षधरौ बालौ कुमाराविव पावकी ।
हसन्तै च रमन्तौ च चेरतुस्तौ महाबलौ ॥ ३४ ॥

क्वचिद्धसन्तावन्योन्यं क्रीड़मानौ तथापरैः ।
गोपपुत्रैः समं वत्सांश्चारयन्तै विचेरतुः ॥ ३५ ॥

कालेन गच्छता तौ तु सप्तवर्षौ महाव्रजे ।
सर्व्वस्य जगतः पालौ वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३६ ॥

बलराम एवं दामोदर श्रीकृष्ण बछड़ों के रक्षक होकर एकत्रित रूप से बाल लीला करते हुए गोष्ठ के मध्य में विचरण करने लगे। महाबली राम और श्रीकृष्ण मस्तकपर मयूरपुच्छ और कान में नवीन पुष्प धारण करके गोपों के मध्य वेणुद्वारा मृदङ्ग का वाद्य एवं पत्रमय वाद्ययन्त्रद्वारा नानाप्रकार के वाद्य करके काकपक्ष धारणपूर्वक स्कन्ध के अंशभूत शाख-विशाख कुमारों के साथ हँसते और खेलते हुए उस महावन में विचरने लगे। कभी कभी एक दूसरे को अपनी पीठपर ले जाते हुए खेलते, तथा कभी अन्य ग्वालवालों के साथ खेलते हुए बछड़ों को चराते हुए साथ साथ घूमते थे। इस प्रकार उस महाव्रज में रहते रहते कुछ समय बीतने पर सात वर्ष की अवस्था में निखिल लोकपालक वत्स पालक हो गये॥ ३२-३६॥

प्रावृट्कालस्ततोऽतीव मेघौघस्थगिताम्बरः।
बभूव वारिधाराभिरैक्यं कुर्व्वन् दिशामिव॥ ३७॥

तब मेघगण से आकाश को आच्छादित करता हुआ तथा अत्यन्त जलधाराओं से दिशाओं को एकरूप करता हुआ वर्षाकाल आ गया॥ ३७॥

प्ररूढ़नवशस्याढ्या शक्रगोपाचिता मही।
तदा मारकतीवासीत् पद्मरागविभूषिता॥ ३८॥

जग्मुरुन्मार्गवाहानि निम्नगाम्भांसि सर्व्वतः।
मनांसि दुर्व्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव॥ ३९॥

न रेजेऽन्तरितश्चन्द्रो निर्म्मलो मलिनैर्घनैः।
सद्वाक्यवादो मूर्खाणां प्रगल्भाभिरिवोक्तिभिः॥ ४०॥

निर्गुणेनापि चापेन शक्रस्य गगने पदम्।
अवाप्यताविवेकस्य नृपस्येव परिग्रहे॥ ४१॥

मेघपृष्ठे बलगकानां रराज विमला ततिः।
दुर्वृत्ते वृत्तचेष्टेव कुलीनस्यातिशोभना॥ ४२॥

न बबन्धाम्बरे स्थैर्य्यं विद्युदत्यन्तचञ्चला।
मैत्रीव प्रवरे पुंसि दुर्ज्जनेन प्रयोजिता॥ ४३॥

मार्गा बभूवुरस्पष्टा नवशस्यचयावृताः ।
अर्थान्तरमनुप्राप्ताः प्रजड़ानामिवोक्तयः ॥ ४४ ॥

उस समय दूर्वा के बढ़ जाने से और इन्द्रगोप से व्याप्त हुई पृथिवी उस समय पद्मरागमणि से विभूषित मरकतमणि के समान हो गयी । नवीन सम्पत्तिशाली दुष्टों के मनके समान नदी की जलधारा उन्मार्गगामिनी होकर बहने लगी । मूर्खों के धृष्टतापूर्ण वचन के सामने सुन्दर वचन का उच्चारण जिस प्रकार शोभा नहीं पाता उसी प्रकार निर्मल चन्द्रमा कृष्णवर्ण मेघों से आच्छादित होकर शोभा विहीन हो गया । अविवेकी राजा की राजसभा में गुणहीन पुरुष की प्रतिष्ठा के समान आकाशमण्डल में गुणहीन इन्द्र धनुष स्थान लाभ करने लगा । दुराचारी पुरुषों के बीच में कुलीन व्यक्ति की निष्कपट सुन्दर चेष्टा के समान मेघपृष्टपर वकपँक्ति सुशोभित हो रही थी । सच्चरित्र पुरुषों के साथ दुर्जन पुरुष की क्षणस्थायी मित्रता के समान अत्यन्त चञ्चल विद्युत् आकाशमण्डल में स्थित नहीं रहती थी । दुर्जनों की अर्थान्तर पूर्ण (व्यङ्ग) उक्तियों के समान समस्त मार्ग नवीन शस्य समूह से आच्छादित होकर अस्पष्ट रूप से दिखाई देता था ॥ ३८-४४ ॥

उन्मत्तशिखिसारङ्गे तस्मिन् काले महावने ।
कृष्ण-रामौ मुदा युक्तौ गोपालैश्चेरतुः सह ॥ ४५ ॥

क्वचिद् गोपैः समं रम्यं गेयनृत्यरतावुभौ ।
चेरतुः क्वचिदत्यर्थं शीतवृक्षतलाश्रयौ ॥ ४६ ॥

उस समय उन्मत्त मयूर एवं देवगण से सुशोभित वन में राम और कृष्ण गोपगण के साथ आनन्दपूर्वक विचरण करने लगे । किसी समय गोपगण के साथ रमणीय गीत और नृत्य में निरत होते थे । कभी शीतल वृक्ष के आश्रय में दोनों विचरण करते थे ॥ ४५-४६ ॥

क्वचित् कदम्बस्रक्-चित्रौ मयूरस्रग्धरौ क्वचित् ।
विचित्रौ क्वचिदास्येतां विविधैर्गिरिधातुभिः ॥ ४७ ॥

पर्णशय्यासु संसुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरैषिणौ ।
क्वचिद् गर्ज्जति जीमूते हाहाकाररवाद्वतौ ॥ ४८ ॥

गायतामन्यगोपानां प्रशंसापरमौ क्वचित् ।
मयूरकेकानुगतौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥ ४९ ॥

इति नानाविधैर्भावैरुत्तमप्रीतिसंयुतौ ।
क्रीड़ासक्तौ वने तस्मिन् चेरतुः प्रीतमानसौ ॥ ५० ॥

विकाले तु समं गोभिर्गोपवृन्दसमन्वितौ ।
आजग्मतुः कृष्ण-बलौ गोपवेशधरावुभौ ॥ ५१ ॥

विकाले च यथाजोषं व्रजमत्य महाबलौ ।
गोपैः समानैः सहितौ चिक्रीड़ातेऽमराविव ॥ ५२ ॥

वे कभी कदम्ब की माला, कभी मयूर के पङ्ख और विविध धातुओं के रङ्ग से विभूषित होकर विचित्रवेश में विराजमान होते थे । कभी निद्रालाभ की इच्छा से पत्तों की शय्यापर शयन करते । कभी वे दोनों मेघ की गर्जन श्रवण करके हाहाकार करते थे, कभी मयूर के केकास्वर का अनुकरण करते । कभी गोपगण के साथ बाँसुरी बजाते हुए इस प्रकार नाना प्रकार के भाव में परम प्रसन्नतापूर्वक क्रीड़ासक्त होकर दोनों ही प्रसन्न मन से वन में विचरण करने लगे । सायंकाल होने पर गौ और गोपगण के साथ गोपवेषधारी राम और कृष्ण व्रज में आ जाते थे । यथा समय व्रज में आकर समवयस्क गोपगण के साथ मिलकर महाबली राम और कृष्ण दो देवताओं के समान क्रीड़ा करने लगते थे ॥ ४७-५२ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में छठा अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - सातवाँ अध्याय

(कालीय-दमन)

एकदा तु विना रामं कृष्णो वृन्दावनं ययौ।
विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पस्त्रगुज्जवल: ॥ १ ॥

स जगामाथ कालिन्दीं लोलकल्लोलशालिनीम्।
तीरसंलग्नफेनौघैर्हसन्तीमिव सर्व्वत: ॥ २ ॥

तस्यां चातिमहाभीमं विषाग्निश्रृतवारिणम्।
ह्रदं कालियनागस्य ददृशेऽतीव भीषणम् ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—एक समय श्रीकृष्ण बलराम जी को साथ में न लेकर वृन्दावन में चले गये एवं वनपुष्पों की माला से विभूषित होकर गोपगण के साथ विचरण करते करते चञ्चल तरङ्गवाली यमुना के तीर पर पहुंचे और वहाँ उन्होंने देखा कि तीरपर एकत्रित फेनों के द्वारा यमुना हंसती हुई। दिखाई दे रही है। विषाग्निद्वारा जिसका जल सन्तप्त हो रहा है उस कालीयनाग का अत्यन्त भयानक ह्रद (कुण्ड) यमुनाजी में देखा ॥ १-३ ॥

विषाग्निना विसरता दग्धतीरमहातरुम्।
वाताहताम्बुविक्षेप-स्पर्शदग्धविहङ्गमम् ॥ ४ ॥

तमतीव महारौद्रं मृत्युवक्त्रमिवापरम्।
विलोक्य चिन्तयामास भगवान् मधुसूदन: ॥ ५ ॥

अस्मिन् वसति दुष्टात्मा कालियोऽसौ विषायुध:।
यो मया निर्ज्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्ट: पयोनिधिम् ॥ ६ ॥

तेनेयं दूषिता सर्व्वा यमुना सागर गता ।
न गोपैर्गोधनैर्वापि तृष्णार्त्तैरुपयुज्यते ॥ ७ ॥

तदस्य नागराजस्य कर्त्तव्यो निग्रहो मया ।
निस्त्रासास्तु सुखं येन चरेयुर्व्रजवासिनः ॥ ८ ॥

एतदर्थं नृलोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।
यदेषामुत्पथस्थानां कार्य्या शास्तिर्दुरात्मनाम् ॥ ९ ॥

तदेनं नातिदूरस्थं कदम्बमुरुशाखिनम् ।
अधिरुह्योत्पतिष्यामि ह्रदेऽस्मिन्ननिलाशिनः ॥ १० ॥

उस हृद से निकले हुए विषके अग्नि से तटवर्त्ती विशाल वृक्ष समूह भी जल गये हैं और वायुद्वारा ऊपर उठते हुए जल के स्पर्श से आकाशस्थित पक्षिगण भी जल गये हैं। द्वितीय मृत्युमुख के समान उस भयङ्कर हृद को देखकर भगवान् मधुसूदन विचार करने लगे—यह दुष्ट मेरे गरुड़ से पराजित होकर तथा समुद्र को परित्यागकर यहाँ भाग आया है और विष ही जिसका अस्त्र है वही कालीयनाग यहाँ निवास करता है। इसके द्वारा सागरगामिनी यह यमुना भी दूषित हो रही है। गौ अथवा गोपगण अत्यन्त तृषित होने पर भी इसका जलपान नहीं करते। अतएव मुझे इस नागराज का दमन करना चाहिये जिससे व्रजवासिगण निर्भय होकर सुखपूर्वक इसका उपयोग कर सके। इन समस्त कुमार्गगामी दुरात्माओं को शान्त करना चाहिये, यही जन्म का उद्देश्य है। अतएव समीपवर्ती इस कदम्ब वृक्ष के सर्वोपरी शाखापर चढ़कर मैं इस वायुभक्षी नागराज के हृद (जलाशय) में कूद पड़ता हूँ॥ ४-१० ॥

इत्थं विचिन्त्य बद्ध्वा च गाढं परिकरं ततः ।
निपपात ह्रदे तत्र सर्पराजस्य वेगितः ॥ ११ ॥

तेनापि पतता यत्र क्षोभितः स महाह्रदः ।
अत्यर्थं दूरजातांस्तु समसिञ्चन्महीरुहान् ॥ १२ ॥

ते हि दुष्टविषज्वालातप्ताम्बुपवनोक्षिताः ।
जज्वलुः पादपाः सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः ॥ १३ ॥

आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागह्रदे भुजम्।
तच्छब्दश्रवणाच्चाशु नागराजोऽप्युपागमत्॥ १४॥

आताम्रनयनो दुष्ट-विषज्वालाकुलैर्मुखैः।
वृतो महाविषैश्चान्यैरुरगैरनिलाशिभिः॥ १५॥

नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिताः।
प्रकम्पिततनुक्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः॥ १६॥

ततः प्रवेष्टितः सर्पैः स कृष्णो भोगबन्धनैः।
ददंशुश्चापि ते कृष्णं विषज्वालाविलैर्मुखैः॥ १७॥

तं तत्र पतितं दृष्ट्वा सर्पभोगनिपीड़ितम्।
गोपा व्रजमुपागम्य चुक्रुशुः शोकलालसाः॥ १८॥

एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो वै कालियह्रदे।
भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत पश्यत॥ १९॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा विचारकर भगवान् श्रीकृष्ण दृढरूप से वस्त्रादि बाँधकर वेग के साथ सर्पराज के उस हृद में कूद गये। भगवान् श्रीकृष्ण के उस हृद में कूदने के बाद समस्त वृक्षों को जल-प्लावित कर दिया। उस सर्प के विषम विषकी ज्वाला से सन्तप्त जलवाही वायु के द्वारा आर्द्र होकर वे वृक्ष समूह उसी क्षण जलने लगे और उसकी ज्वालायें समस्त दिशाओं में फैल गयी। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण नागहृद में बाहु को ठोकने लगे, उस शब्द को सुनकर नागराज शीघ्रगति से वहाँ आ गया। नागराज की आँखें क्रोध से रक्तवर्ण हो गयीं और विषज्वाला से मुखद्वारा अग्नि के फलक निकलने लगे। एवं महाविषवाले वायुभक्षी सर्पगण से वह नागराज घिरा हुआ था। उसके साथ मनोहरहारों से सुशोभित एवं शरीर की चञ्चलता से चञ्चल केश की शोभा युक्त अतिशय सुन्दर सैकड़ों नागपत्नियाँ भी वहाँ पहुंची। उस समय कुण्डलीकृत शरीर से श्रीकृष्ण को (आबद्ध) कर नागराज विषज्वाला परिपूर्ण मुखों से काटने लगा। गोपगण कालीयह्रद में कृष्ण को गिरा और सर्प कुण्डलद्वारा पीड़ित देखकर व्रज में आकर शोक से चीत्कार करते हुए बोलने लगे कि कृष्ण कालीयह्रद में मूर्च्छित होकर पड़ा है साँप उनको डस रहा है अतएव तुम लोग शीघ्र आओ॥ १२-१९॥

तच्छ्रुत्वा ते तदा गोपा वज्रपातोपमं वचः ।
गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्यशोदाप्रमुखा ह्रदम् ॥ २० ॥

हा हा क्वासाविति जनो गोपीनामतिविह्वलः ।
यशोदया स सम्भ्रान्तो द्रुतं प्रस्खलितं ययौ ॥ २१ ॥

नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ।
त्वरितं यमुनां जग्मुः कृष्णदशनलालसाः । २२ ॥

दद्दृशुश्चापि ते तत्र सर्पराजवशं गतम् ।
निष्प्रयत्नीकृतं कृष्णं सर्पभोगेन वेष्टितम् ॥ २३ ॥

नन्दगोपश्च निश्चेष्टो न्यस्य पुत्रमुखे दृशौ ।
यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तम ॥ २४ ॥

गोप्यस्त्वन्या रुदन्त्यश्च दद्दृशुः शोककातराः ।
प्रोचुश्च केशवं प्रीत्या भयकातर्य्यगद्गदम् ॥ २५ ॥

सर्व्वा यशोदया सार्द्धं विशामोऽत्र महाह्रदे ।
नागराजस्य नो गन्तुमस्माकं युज्यते व्रजे ॥ २६ ॥

दिवसः को विना सूर्य्यं विना चन्द्रेण का निशा
विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रजः ॥ २७ ॥

विनाकृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ।
अरण्यं नापि सेव्यञ्च वारिहीनं यथा सरः ॥ २८ ॥

यत्र नेन्दीवरदलप्रख्यकान्तिरयं हरिः ।
तेनापि मातुर्वासेन रतिरस्तीति विस्मयः ॥ २९ ॥

गोपगण और यशोदा आदि गोपीगण वज्र के समान उस वाक्य को सुन करके शीघ्रतापूर्वक कालीय हृदपर दौड़ आयी। यशोदासहित समस्त गोपीगण अत्यन्त विह्वलभाव से 'हाय! कृष्ण कहाँ हैं? इस प्रकार कहते हुए अतिशय व्याकुल चित्त से प्रस्खलितपद से शीघ्रतापूर्व वहाँ पहुंचे। नन्दगोप तथा अन्यान्य गोपजन भी अद्‌भुत विक्रम शाली राम और कृष्ण को दर्शन करने के लिए शीघ्र यमुनाजी पर गये। वहाँ जाकर वे लोग सर्पराज के वशीभूत और सर्प कुण्डल से आवृत तथा निश्चेष्टभाव से स्थित श्रीकृष्ण को देखे। हे मुनिश्रेष्ठ! नन्दगोप और महाभागा यशोदा कृष्ण का मुख देखकर निश्चेष्ट हो गये। अन्यान्य गोपीगण भी शोक से कातर होकर रोने लगे एवं प्रीति के साथ श्रीकृष्ण का दर्शन करते हुए भय एवं कातरता से गद्गद होकर कहने लगे कि हम सब भी यशोदा के साथ नागराज के इस महाहृद में प्रवेश कर जायँ अब हम लोगों का व्रज में जाना ठीक नहीं है। सूर्य के बिना दिन का क्या मूल्य है? चन्द्रमा के बिना रात्रि का क्या सौन्दर्य है? साँड के बिना गौओं की क्या शोभा? इसी प्रकार श्रीकृष्ण के बिना व्रज की क्या शोभा रहेगी?। जिस प्रकार जलविहीन सरोवर के तीर पर कोई नहीं जाता उसी प्रकार कृष्ण के बिना व्रज गोकुल भी हम लोगों के निवास योग्य नहीं रहा। जहाँ कमलदल के समान कान्तिवाले श्यामसुन्दर हरि नहीं हैं उस मातृगृह में भी निवास करना ही दुःख है ॥ २०-२९ ॥'

उत्फुल्ल-पङ्कज-दलस्पष्ट-कान्तिविलोचनम्।
अपश्यन्तां हरिं दीनाः कथं गोष्ठे भविष्यथ ॥ ३० ॥

अत्यन्तमधुरालापहृताशेषमनोधनाः।
न विना पुण्डरीकाक्षं यास्यामो नन्दगोकुलम् ॥ ३१ ॥

भोगेनावेष्टितस्यापि सर्पराजेन पश्यत।
स्मितशोभि मुखं गोप्यः कृष्णस्यास्मद्विलोकने ॥ ३२ ॥

तुमलोग विकसित कमल के समान कान्तिवाले नेत्रों से सुशोभित हरि को नहीं देखकर गोष्ठ में किस प्रकार निवास करोगी?। अत्यन्त मधुर आलापद्वारा जो सभी के मनों को हरण करते हैं उन पुण्डरीकाक्ष के बिना हम लोग गोकुल में नहीं जायेंगी। देखो सर्पराज के फणद्वारा आवृत होने पर भी हम लोगों को देखकर श्री कृष्ण का इषत् हास्यपूर्ण मुख कैसी शोभा पा रहा है ॥ ३०-३२ ॥

इति गोपवीचः श्रुत्वा रौहिणेयो महाबलः ।
गोपांश्च त्रासविधुरान् विलोक्य स्तिमितेक्षणः ॥ ३३ ॥

नन्दञ्च दीनमत्यर्थं न्यस्तदृष्टिं सुतानने ।
मूर्च्छाकुलां यशोदाञ्च कृष्णमाहात्मसंज्ञया ॥ ३४ ॥

किमिदं देवदेवेश !भावोऽयं मानुषस्त्वया ।
व्यज्यतेऽत्यन्तमात्मानं किमनन्तं न वेत्सि यत् ॥ ३५ ॥

त्वमस्य जगतो नाभिरराणामिव संश्रयः ।
कर्त्तापहर्त्ता पाता च त्रैलोक्यं त्वं त्रयीमयः ॥ ३६ ॥

सेन्द्र-रुद्रा-श्वि-वसुभिरादित्यैर्मरुद्ग्निभिः ।
चिन्त्यसे त्वमचिन्त्यात्मन् ! समस्तैश्चैव योगिभिः ॥ ३७ ॥

जगत्यर्थं जगन्नाथ ! भारावतरणेच्छया ।
अवतीर्णोऽत्र मर्त्त्येषु तवांशश्चाहमग्रजः ॥ ३८ ॥

मनुष्यलीलां भगवन् ! भजता भवता सुराः ।
विडम्बयन्तस्त्वल्लीलां सर्व्वे एव समासते ॥ ३९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—महाबली रोहिणीपुत्र बलरामजी गोपीगण की ऐसी बात सुनकर एवं गोपगण को भयविह्वल, नन्द को अतिशय दुःखी, तथा कृष्ण के मुख पर निबद्ध दृष्टि और यशोदा को मूर्च्छित देखकर अपने संकेतद्वारा श्रीकृष्ण से बोले । हे देवदेवेश ! आप क्या अपने को अनन्त नहीं समझते ? क्यों इस प्रकार का मानुष-भाव व्यक्त करते हैं । रथ की नाभि जिस प्रकार समस्त अरों का आश्रयीभूत रहता है उसी प्रकार आप भी इस जगत् के आश्रयकर्ता, अपहर्ता और पालक हैं । आप ही त्रैलोक्यस्वरूप हैं, और आप ही वेदमय हैं । हे अचिन्त्यरूपिन् ! इन्द्र, चन्द्र, वसु, आदित्य, मरुद्गण, अग्नि, अश्विनीकुमार आपही का ध्यान करते हैं । हे जगन्नाथ ! आप ने पृथिवी के भार को उतारने के लिए ही मर्त्यलोक में अवतार लिया है एवं आपही के अंश से मैं भी अवतीर्ण हुआ हूँ । हे भगवन् ! आप मनुष्य लीला करते हैं ये समस्त देवगण आपकी लीला का अनुकरण करते हुए गोप के वेष में अवतीर्ण होकर आपके साथ निवास करते हैं ॥ ३३-३९ ॥

अवतार्य्य भवान् पूर्व्वं गोकुलेऽत्र सुराङ्गनाः ।
क्रीड़ार्थमात्मनः पश्चादवतीर्णोऽसि शाश्वतः ॥ ४० ॥

अत्रावतीर्णा ये कृष्ण ! गोपा एव हि बान्धवाः ।
गोप्यश्च सीदतः कस्मात् त्वं बन्धून् समुपेक्षसे ॥ ४१ ॥

दर्शितो मानुषो भावो दर्शितं बालचापलम् ।
तदयं दम्यतां कृष्ण ! दुरात्मा दशनायुधः ॥ ४२ ॥

आप अपनी लीला के लिये गोकुल में देववधुओं को अवतीर्ण कराकर स्वयं नित्य होते हुए भी पश्चात् जन्म लिया हैं । हे कृष्ण ! गोकुल में अवतीर्ण हुए गोप एवं गोपी जन ही आपका बान्धव हैं क्या कारण है कि आप विपद्ग्रस्त बान्धवों की उपेक्षा करते हैं। हे कृष्ण ! और क्यों मनुष्यभाव दिखलाते हैं ? तथा बालचापल्य प्रदर्शित करते हैं इस समय इस दुरात्मा का दमन कीजिये ॥ ४०-४२ ॥

इति संस्मारितः कृष्णः स्मितभिन्नोष्ठसम्पुटः ।
आस्फोट्य मोचयामास स्वदेहं भोगबन्धनात् ॥ ४३ ॥

आनम्य चापि हस्ताभ्यामुभाभ्यां मध्यमं फणम् ।
आरुह्याभुग्नशिरसः प्रननर्त्तरुविक्रमः ॥ ४४ ॥

व्रणाः फणेऽभवंस्तस्य कृष्णस्याङ्घ्रिनिकुट्टनैः ।
यत्रोन्नतिञ्च कुरुते ननामास्य ततः शिरः ॥ ४५ ॥

मूर्च्छामुपाययौ भ्रान्त्या नागः कृष्णस्य रेचकैः ।
दण्डपातनिपातेन ववाम रुधिरं बहु ॥ ४६ ॥

तन्निर्भिन्नशिरोग्रीवमास्येभ्यः स्रुतशोणितम् ।
विलोक्य शरणं जग्मुस्तत्पत्न्यो मधुसूदनम् ॥ ४७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—बलरामद्वारा इस प्रकार श्रीकृष्ण को स्मरण कराने पर हास्ययुक्त श्रीकृष्ण ने आस्फालनद्वारा अपने शरीर को सर्पबन्धन से छुड़ा लिया । और दोनों हाथों से नागराज का मध्यम फणा को झुका करके उस नतमस्तक सर्प के ऊपर चढ़कर प्रचण्ड पराक्रम से नृत्य करने लगे । उसके मस्तकपर चरण प्रहार

क्षत समूह उत्पन्न हो एवं जिस ओर वह अपना मस्तक उठावें उसी ओर कृष्ण के चरण प्रहार से मस्तक नम्र (झुक) जाता। कृष्ण की भ्रान्ति से चेरनामक नृत्यसम्बन्धी दन्तपात गति विशेषद्वारा नागराज मूर्च्छित होकर रक्त वमन करने लगा। नागराज के मस्तक और ग्रीवा मुख से निरन्तर रक्तस्राव हो रहा है यह देखकर उसकी स्त्रियाँ करुणभाव से मधुसूदन के समीप आयी ॥ ४३-४७ ॥

ज्ञातोऽसि देवदेवेश ! सर्व्वेशस्त्वमनुत्तम !
परं ज्योतिरचिन्त्यं यस्तदंशः परमेश्वरः ॥ ४८ ॥

न समर्थाः सुराः स्तोतुं यमनन्यभवं प्रभुम्।
स्वरूपवर्णनं तस्य कथं योषित् करिष्यति ॥ ४९ ॥

यस्याखिलं मही-व्योम-जलाग्नि-पवनान्तकम्।
ब्रह्माण्डमल्पकांशांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम् ॥ ५० ॥

यतन्तो न विदुर्नित्यं यत् स्वरूपं हि योगिनः।
परमार्थमणोरल्पं स्थूलात् स्थूलं नताः स्म तम् ॥ ५१ ॥

न यस्य जन्मने धाता यस्य नान्ताय चान्तकः।
स्थितिकर्त्ता न चान्योऽस्ति यस्य तस्मै नमः सदा ॥ ५२ ॥

कोपः स्वल्पोऽपि ते नास्ति क्षितिपालनमेव ते।
कारणं कालियस्यास्य दमने श्रूयतामतः ॥ ५३ ॥

स्त्रियोऽनुकम्प्याः साधूनां मूढ़ा दीनाश्च जन्तवः।
यतस्ततोऽस्य दीनस्य क्षम्यतां क्षमतां वर ॥ ५४ ॥

समस्त-जगदाधारी भवानल्पबलः फणी।
त्वया च पीड़ितो जह्यान्मुहूर्त्तार्द्धेन जीवितम् ॥ ५५ ॥

क्व पन्नगोऽल्पवीर्य्योऽयं क्व भवान् भुवनाश्रयः।
प्रीति-द्वेषौ समोत्कृष्ट-गोचरी च यतोऽव्यय ॥ ५६ ॥

नागपत्नीयाँ बोलीं—हे देवदेवेश्वर ! हम लोगें आपको जान लिये आप सर्वज्ञ एवं सर्वश्रेष्ठ हैं जो अचिन्त्य और परमज्योति हैं, आप उन्हीं परमात्मा के अंश हैं। देवगण जिन स्वयम्भू और सर्वव्यापक प्रभु की स्तुति करने में समर्थ नहीं होते हम स्त्रीगण उनके स्वरूप का वर्णन किस प्रकार करें। योगिगण निरन्तर प्रयत्नशील होकर भी जिसको जान नहीं सकते, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल उस परमात्मास्वरूप को हम लोग प्रणाम करते हैं। विधाता जिनके जन्म के कारण नहीं हैं तथा काल जिनके नाश का कारण नहीं हैं अन्य कोई जिनकी स्थिति का कारण नहीं हैं हम लोग सदा उनको प्रणाम करते हैं। इस नागराज के दमन में आपका कुछ भी क्रोध नहीं हैं, किन्तु पृथिवी का पालन ही एकमात्र प्रयोजन है, अतएव आप श्रवण करें स्त्री, मूढ एवं दीनजन के ऊपर साधुलोग कृपा करते हैं। हे क्षमाशीलों में श्रेष्ठ ! इस दीन का भी अपराध आप क्षमा करें। आप सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं और यह सर्प अति अल्पबलवाला है आपके द्वारा पीड़ित होकर यह आधे मुहूर्त में ही प्राणत्याग करेगा। कहाँ यह अल्पपराक्रमवाला सर्प और कहाँ भुवन के आधार आप ? हे अव्यय ! समान से प्रीति और उत्कृष्ट के साथ विरोध श्रेयस्कर होता है ॥४८-५६ ॥

ततः कुरु जगत्स्वामिन् ! प्रसादमवसीदतः ।
प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदायताम् ॥ ५७ ॥

इन दीन के ऊपर प्रसन्न होइये और विलम्ब न करें नागराज अब प्राणत्याग कर रहे हैं आप हमें पतिभिक्षा प्रदान करें ॥ ५७ ॥

इत्युक्ते ताभिराश्वस्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नगः ।
प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्यं शनैः शनैः ॥ ५८ ॥

तवाष्टगुणमैश्वर्य्यं नाथ ! स्वाभाविकं बलम् ।
निरस्तातिशय यस्य तस्य स्तोष्यामि किन्नवहम् ॥ ५९ ॥

त्वं परस्त्व परस्याद्यः परं त्वत्तः परात्मक ।
परस्मात् परमो यस्त्वं ततः स्तोर्ष्यामि किं न्वहम् ॥ ६० ॥

यस्माद् ब्रह्मा च रुद्रश्च चन्द्रेन्द्रमरुतोऽश्विनौ ।
वसवश्च सहादित्यैस्तस्य स्तोष्यामि किं न्वहम् ॥ ६१ ॥

एकावयवसूक्ष्मांशो यस्यैतदखिलं जगत्।
कल्पनावयवस्त्वेष तं स्तोष्यामि कथं न्वहम्॥ ६२॥

सद्रूपिणो यस्य ब्रह्माद्यास्त्रिदशोत्तमाः।
परमार्थं न जानन्ति तस्य स्तोष्यामि किं न्वहम्॥ ६३॥

ब्रह्माद्यैरर्च्च्यते दिव्यैर्यश्च पुष्पानुलेपनैः।
नन्दनादिसमुदभूतैः सोऽर्च्च्यते वा कथं मया॥ ६४॥

यस्यावताररूपाणि देवराजः सदाच्चति।
न वेत्ति परमं रूपं सोऽर्च्च्यते वा कथं मया॥ ६५॥

विषयेभ्यः समाहृत्य सर्व्वाक्षाणि च योगिनः।
समर्च्चयति ध्यानेन सोऽर्च्च्यते वा कथं मया॥ ६६॥

श्रीपराशरजी बोले—नागपत्नीयों द्वारा ऐसा कहे जाने पर नागराज क्लान्त-शरीर होने पर भी आश्वस्त होकर, 'हे देवदेव ! आप प्रसन्न होइये' ऐसी बात बार बार धीरे धीरे कहने लगा। कालीयनाग भी बोला—हे नाथ ! अतिशय अष्टविध ऐश्वर्य जिसका स्वाभाविक बल है उनकी स्तुति में किस प्रकार करूँगा। आप सर्वोत्कृष्ट हैं, आप पर के भी आदि कारण हैं, हे परात्मक ! प्रकृति आपसे ही परिचालित होती है जो पर से भी परम हैं मैं उनकी स्तुति किस प्रकार करूँ ! जिससे ब्रह्मा, रुद्र, चन्द्र, इन्द्र, मरुत्, अश्विनीकुमार एवं आदित्यगण के साथ वसुगण उत्पन्न हुए हैं, मैं उसकी स्तुति किस प्रकार करूँ। यह समस्त जगत् जिसके एक अवयव का सूक्ष्मांश है, मैं कल्पना करके उनकी क्या स्तुति करूँ। ब्रह्मादि देवगण भी जिसका सदसत् (कार्यकारण) स्वरूप का वास्तविक रूप नहीं जानते हैं, मैं उनकी स्तुति किस प्रकार करूँ। ब्रह्मा आदि देवगण नन्दन वन में उत्पन्न दिव्य पुष्पों से जिनकी पूजा करते हैं मैं उनकी पूजा किस प्रकार करूँ। देवराज इन्द्र जिनके अवतारों की पूजा करके भी परमतत्व को नहीं जान सके मैं किस प्रकार उनकी पूजा करूं। योगिजन इन्द्रिय समूह को विषयों से आकर्षितकर ध्यान के द्वारा जिनकी पूजा करते हैं मैं उनकी पूजा किस प्रकार करूं॥ ५८-६६॥

हृदि सङ्कल्प्य यद्रूपं धानेनार्च्चन्ति योगिनः ।
भावपुष्पादिना नाथ ! सोऽर्च्च्यते वा कथं मया ॥ ६७ ॥

सोऽहं ते देवदेवेश ! नार्च्चनायां स्तुतौ न च ।
सामर्थ्यवान् कृपामात्र-मनोवृत्तिः प्रसीद मे ॥ ६८ ॥

सर्पजातिरियं क्रूरा यस्यां जातोऽस्मि केशव !
तत्स्वभावोऽयमत्रास्ति नापराधो ममाच्युत ॥ ६९ ॥

सृज्यते भवता सर्व्वं तथा संह्रियते जगत् ।
जाति-रूप-स्वभावाश्च-सृज्यन्ते जगतां त्वया ॥ ७० ॥

यथाहं भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वर !
स्वभावेन च संयुक्तस्तथेदं चेष्टितं मम ॥ ७१ ॥

यदन्यथा प्रवर्त्तेयं देवदेव ! ततो मयि ।
न्याय्यो दण्डनिपातो वै तवैव वचनं यथा ॥ ७२ ॥

तथापि यज्जगत्स्वामी दण्डं पातितवान् मयि ।
स सोढ़ोऽयं वरं दण्डस्त्वत्तो नान्यत्र मे वरः ॥ ७३ ॥

हतवीर्य्यो हतविषो दमितोऽहं त्वयाच्युत !
जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि किम् ॥ ७४ ॥

हे नाथ ! योगीगण ध्यानद्वारा हृदय में जिनके रूप की कल्पना करके पुष्पादि के द्वारा जिनका पूजन करते हैं मैं उनकी पूजा किस प्रकार करूँ । हे देव देवेश ! मैं आपकी पूजा अथवा स्तुति करने में असमर्थ हूँ । अतएव आप केवलमात्र कृपा करके मेरे ऊपर प्रसन्न होइये । हे केशव ! मैंने जिस जाति में जन्म लिया है वह सर्पजाति अतिशय क्रूर है और उसका स्वभाव भी इसी प्रकार का है, अतएव हे अच्युत ! मेरा कोई अपराध नहीं हैं । हे भगवन् ! आपने ही समस्त जगत् का उत्पन्न किया और आप ही समस्त जगत् का संहार भी करते हैं । जगत् की उत्पत्ति के साथ इसकी जाति स्वभावरूप आदि समस्त का सृजन आपने ही किया है । हे ईश्वर ! आपने मुझे जिस जाति में, जिस रूप में सृजन किया है और जिस प्रकार के रूप एवं

स्वभाव से मुझे संयुक्त किया है मैं उसी रूप का आचरण करता हूँ। हे देवदेव ! यदि मैं अन्यथा आचरण करूँ तब आपही के कथनानुसार मुझे दण्ड देना उचित है। हे जगत्प्रभो ! तथापि आपने जो दण्ड दिया दूसरों के वरदान की अपेक्षा इस दण्ड को मैं उत्तम मानता हूँ। हे अच्युत ! आपके द्वारा दमन किये जाने से मेरी शक्ति और विष नष्ट हो गया अब जीवन की भिक्षा प्रदान करें। आज्ञा कीजिये मैं क्या करूँ ? ॥ ६७-७४ ॥

नात्र स्थेयं त्वया सर्प ! कदाचिद् यमुनाजले ।
सभृत्यपरिवारस्त्वं समुद्रसलिलं व्रज ॥ ७५ ॥

मत्पदानि च ते सर्प ! दृष्ट्वा मूर्द्धनि सागरे ।
गरुड़ः पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥ ७६ ॥

इत्युक्त्वा सर्पराजानं मुमोच भगवान् हरिः ।
प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसां निधिम् ॥ ७७ ॥

पश्यतां सर्व्वभूतानां सभृत्यापत्यबान्धवः ।
समस्तभार्य्यासहितः परित्यज्य स्वकं ह्रदम् ॥ ७८ ॥

ततः सर्व्वे परिष्वज्य मृतं पुनरिवागतम् ।
गोपा मूर्द्धनि गोविन्दं सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ ७९ ॥

कृष्णमक्लिष्टकर्म्माणमन्ये विस्मितचेतसः ।
तुष्टुवुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा शिवजलां नदीम् ॥ ८० ॥

गीयमानः स गोपीभिश्चरितैश्चारुचेष्टितैः ।
संस्तूयमानो गोपैस्तु कृष्णो व्रजमुपागमत् ॥ ८१ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे सर्प ! तुम कदापि इस यमुना जल में निवास नहीं कर करोगे, अपने अनुचर एवं परिवारों के साथ समुद्र जल में चले जाओ। हे सर्प ! समुद्र में तुम्हारे मस्तकपर मेरे पदचिन्ह को देखकर सर्पशत्रु गरुड तुमको क्लेश नहीं देंगे। श्रीपराशरजी बोले—भगवान् ने इस प्रकार की बात कहकर सर्पराज को मुक्तकर दिया। नागराज भी श्रीकृष्ण को प्रणाम करके अपने अनुचर, सन्तान, बान्धव एवं पत्नीगण के साथ सभीलोगों के सामने अपने हृद को परित्यागकर समुद्र

में चला गया । तदनन्तर समस्त गोपजनने पुन: सोये हुए मृत व्यक्ति के समान श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करके नेत्रजल से उनके मस्तक को सिञ्चित कर दिया । अन्यान्य गोपगण नदीजल को विशुद्ध देखकर प्रसन्न एवं विस्मित चित्त होकर लीलाबिहारी श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे । पश्चात् उत्तमकर्मपरायण श्रीकृष्ण ने गोपीजनद्वारा स्वचरित गान और गोपजन से प्रशंसित होते हुए व्रजधाम में प्रवेश किया ॥ ७५-८१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में सातवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - आठवाँ अध्याय

(धेनुकासुर-वध)

गाः पालयन्तौ च पुनः सहितौ बल-केशवौ ।
भ्रममाणौ वने तस्मिन् रम्यं तालवनं गतौ ।। १ ।।

तत्तु तालवनं दिव्यं धेनुको नाम दानवः ।
मृगमांसकृताहारः सदाध्यास्ते खराकृतिः ।। २ ।।

तत्तु तालवनं पक्व-फलसम्पत्समन्वितम् ।
दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलादानेऽब्रुवन् वचः ।। ३ ।।

हे राम ! हे कृष्ण ! सदा धेनुकेनैष रक्ष्यते ।
भूप्रदेशो यतस्तस्मात् पक्वानीमानि सन्ति वै ।। ४ ।।

फलानि पश्य तालानां गन्धामोदितदींशि च ।
वयमत्तुमभीप्सामः पात्यन्तां यदि रोचसे ।। ५ ।।

इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा सङ्कर्षणो वचः ।
कृष्णश्च पातयामास भुवि तालफलानि वै ।। ६ ।।

फलानां पततां शब्दमाकर्ण्य स दुरासदः ।
आजगाम सुदुष्टात्मा कोपाद् दैतेयगदर्दभः ।। ७ ।।

पद्भ्यामुभाभ्यां स तदा पश्चिमाभ्यां बली बलम् ।
जघानोरसि ताभ्याञ्च स च तेनाप्यगृह्यत ।। ८ ।।

गृहीत्वा भ्रामणेनैव सोऽम्बरे गतजीवितम् ।
तस्मिन्नेव च चिक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥ ९ ॥

ततः फलान्यनेकानि तालाग्रान्निपतन् खरः ।
पृथिव्यां पातयामास महावातोऽम्बुदानिव ॥ १० ॥

श्रीपराशर जी बोले—एक दिन गो-पालन में लगे हुए बलराम और केशव वन में भ्रमण करते करते रमणीय तालवन में पहुंचे । वहाँ गर्दभाकार धेनुक नामक दैत्य मृगमांस का आहार करके दिव्यतालवन में सदा निवास करता था । पके हुए फलों से सुशोभित उस तालवन को देखकर फल लेने की इच्छा से गोपगण बलराम जी से बोले—हे राम ! हे कृष्ण ! धेनुकासुर इस भूमिप्रदेश की सदा रक्षा करता है अतएव यह पका हुआ तालफल का समूह सुशोभित है । ये देखिये तालफल पड़े हुए हैं इसके गन्ध से सभी दिशाएँ सुवासित हो रही है हमलोग भी इस फल को खाने की इच्छा करते हैं अतएव आप इनको प्राप्त कराईये । गोपगण की इस बात को सुनकर राम और कृष्ण तालफल को भूमिपर गिराये । गिरते हुए फलों का शब्द सुनकर वह दुरात्मा गर्दभाकार दैत्य क्रोधित होकर वहाँ आया और उसने पीछे के दोनों पाँव से बलरामजी के वक्षःस्थल पर आघात किया । उस समय बलराम ने उसे पकड़ लिया और उसके उन दोनों पाँवों को पकड़कर घुमाना आरम्भ किया । अतएव उसने उसीक्षण आकाश मार्ग में ही अपना प्राण त्याग दिया, उसी समय बलराम ने उसे तालवृक्ष के ऊपर वेगपूर्वक फेंक दिया । उसके बाद उस गर्दभ को तालवृक्ष के अग्रभाग से होकर पृथिवीपर गिरने के समय महावायु से उत्क्षिप्त होकर बहुत तालफल गिर गये ॥ १-१० ॥

अन्यानप्यस्य वै ज्ञातीनागतान् दैत्यगदर्दभान् ।
कृष्णश्चिक्षेप तालाग्रे बलभद्रश्च लीलया ॥ ११ ॥

क्षणेनालङ्कृता पृथ्वी पक्वैस्तालफलैस्तथा ।
दैत्यगदर्दभदेहैश्च मैत्रेय ! शुशुभेऽधिकम् ॥ १२ ॥

ततो गावो निराबाधास्तस्मिंस्तालवने द्विज !
नवशस्यं सुखं चेरुर्यन्न भुक्तमभूत् पुरा ॥ १३ ॥

इस संवाद को सुनकर आये हुए अन्यान्य दैत्यगर्दभ-जातियों को कृष्ण और बलराम अनायास ही तालवृक्ष के अग्रभाग पर फेंकने लगे। हे मैत्रेय ! अल्प समय में ही बहुत से तालफलों से पृथिवी जैसी सुशोभित होने लगी वैसी ही दैत्यगर्दभों के शरीरों से अधिक शोभा पाने लगी। हे द्विज ! तबसे उस तालवन में गौएँ, निर्विघ्न होकर सुखपूर्वक नवीन दास चरने लगीं जो उन्हें पहले कभी चरने को भाग्य में नहीं मिला था ॥ ११-१३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में आठवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - नवाँ अध्याय

(प्रलम्बासुर-वध)

तस्मिन् रासभदैतेये सानुगे विनिपातिते
सेव्यं गो-गोप-गोपीनां रम्यं तालवनं बभौ ॥ १ ॥

ततस्तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ ।
हत्वा धेनुकदैतेयं भाण्डीर-वटमागतौ ॥ २ ॥

क्ष्वेड़मानौ प्रगायन्तौ विचिन्वन्तौ च पादपान् ।
चारयन्तौ च गा दूरे व्याहरन्तौ च नामभिः ॥ ३ ॥

निर्योगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ ।
शुशुभाते महात्मानौ बालशृङ्गाविवर्षभौ ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनुचरों के साथ उस गर्दभासुर का वध करने के पश्चात् गौ-गोप और गोपीजन के स्वच्छन्द विचरण करने के कारण वह मनोहर तालवन अतिशय शोभा पाने लगा । अनन्तर वसुदेवजी के पुत्र राम और कृष्ण दोनों ही धेनुकासुर को विनाश करके भाण्डीर नामक वटवृक्ष के नीचे प्रसन्न मनसे आकर उपस्थित हुए । कन्धे पर गौ बाँधने की रस्सी डाले और वनमाला से विभूषित हुए वे दोनों महात्मा बालक सिंहनाद करते, गाते, वृक्षों पर चढ़ते, दूर तक गौएँ चराते तथा उनका नाम ले लेकर पुकारते हुए नये सींगों वाले बछड़ों के समान सुशोभित होते थे ॥ १-४ ॥

सुवर्णाञ्जनवर्णाभ्यां तौ तदा रुषिताम्बरौ ।
महेन्द्रायुधसंयुक्तौ श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥ ५ ॥

चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीड़ाभिरितरेतरम् ।
समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ ॥ ६ ॥

मनुष्यधर्म्माभिरतौ मानयन्तौ मनुष्यताम् ।
तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीड़ाभिश्चेरतुर्वनम् ॥ ७ ॥

ततः स्यन्दोलिकाभिश्च नियुद्धैश्च महाबलौ ।
व्यायामं चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयैस्तथाश्मभिः ॥ ८ ॥

उन दोनों के वस्त्र क्रमशः सुनहरी एवं श्याम रंग से रंगे हुए थे, अतएव वे इन्द्रधनुषयुक्त श्वेत और श्याम मेघ के समान जान पड़ते थे । वे समस्त लोकपालों के प्रभु पृथिवी पर अवतीर्ण होकर नानाप्रकार की लौकिक लीलाओं के द्वारा क्रीड़ा कर रहे थे । वे दोनों मनुष्य धर्म में तत्पर, होकर मनुष्यता के सम्मानपूर्वक मनुष्यजाति गुण से युक्त होकर नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुए विचरण करते थे । वे दोनों महाबली बालक कभी झूला में झूलकर, कभी परस्पर मल्लयुद्धकर, कभी पत्थर पर फेंक कर नाना प्रकार से व्यायाम करते थे ॥ ५-८ ॥

तल्लिप्सुरसुरस्तत्र ह्युभयो रममाणयोः ।
आजगाम प्रलम्बाख्यो गोपवेशतिरोहितः ॥ ९ ॥

सोऽवगाहत निःशङ्कस्तेषां मध्यममानुषः ।
मानुषं वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥ १० ॥

तयोश्छिद्रान्तरं प्रेप्सुरविषह्यममन्यत ।
कृष्णं ततो रौहिणेयं हन्तुं चक्रे मनोरथम् ॥ ११ ॥
हरिणाक्रीड़नं नाम बालक्रीड़नकं ततः ।
प्रकुर्व्वन्तो हि ते सर्व्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥ १२ ॥

उसी समय उन दोनों खेलते हुए बालकों को उठा ले जाने की इच्छा से प्रलम्बनामक दैत्य गोपवेष में अपने को छिपा कर वहाँ पहुंचा । वह दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब मानव-देह धारण करके निर्भय भाव से उन राम कृष्ण आदि क्रीड़ारत बालकगण के मध्य में घुस गया । उन दोनों की असावधानता का अवसर पाकर दैत्य ने श्रीकृष्ण को तो सर्वथा अजेय समझकर बलराम जी को मारने का निश्चय

किया। तदनन्तर वे सभी बालक मिलकर हरिणाक्रीडन। नामक एक प्रकार की क्रीड़ा आरम्भ करके परस्पर दो-दो बालक मिलकर प्लुतगति से (दौड़ कर लक्ष्य) स्थान को जाना प्रारम्भ किया ॥ ९-१२ ॥

श्रीदाम्ना सह गोविन्दः प्रलम्बेन तथा बलः।
गोपालैरपरैश्चान्ये गोपालाः पुप्लुवुस्ततः ॥ १३ ॥

श्रीदामानं ततः कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः।
जितवान् कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्ये पराजिताः ॥ १४ ॥

ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डीरस्कन्धमेत्य वै।
पुनर्निववृतुः सर्व्वे ये यैश्चात्र पराजिताः ॥ १५ ॥

सङ्कर्षणन्तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः।
न तस्थौ स जगामैव सचन्द्र इव वारिदः ॥ १६ ॥

असहन् रौहिणेयस्य स भारं दानवोत्तमः।
ववृधे सुमहाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥ १७ ॥

सङ्कर्षणस्तु तं दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम्।
स्रग्दामलम्बाभरण मुकुटाटोपमस्तकम् ॥ १८ ॥

रौद्रं शकटचक्राक्षं पादन्यास-चलत्क्षितिम।
ह्रियमाणस्ततः कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

कृष्ण ! कृष्ण ! ह्रियाम्येष पर्व्वतोदग्रमूर्त्तिना।
केनापि पश्य दैत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा ॥ २० ॥

यदत्र साम्प्रतं कार्य्यं मया मधुनिषूदन !
तत् कथ्यतां प्रयात्येष दुरात्मा दानवाधमः ॥ २१ ॥

अनन्तर गोविन्द ने श्रीदाम के साथ बलभद्र ने प्रलम्ब के साथ एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य गोपबालक दूसरे गोपकुमारों के साथ दौड़ना आरम्भ किया। पश्चात् श्रीकृष्ण ने श्रीदामाको, रोहिणीकुमार बलराम ने प्रलम्ब को एवं कृष्णपक्ष के गोपगण ने अन्य गोपगण को पराजित किया। उन पराजित बालकों ने विजयी

बालकों को कन्धे पर उठाकर भाण्डीरवटवृक्ष के समीप ले जाकर पुनः निवृत्त हुए। किन्तु दानव बलदेव को कन्धे पर वहन करते हुआ चन्द्र के साथ मेघ के समान शीघ्रता पूर्वक चलने लगा और लौट कर नहीं आया। दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब ने रोहिणीपुत्र बलराम का भार वहन करने में असमर्थ होकर वर्षाकालीन मेघ के समान अति विशाल शरीर धारण किया। अनन्तर दग्धपर्वत के समान शरीर धारण किये हुए माला और अन्यान्य आभूषणों से युक्त मुकुटधारी भयङ्कर शकट (गाड़ी) के चक्र के समान भयानक नेत्रधारी एवं अपने पाद क्षेप से पृथिवी को कम्पित करने वाले बलराम जी असुरद्वारा अपने को हरण किये जाते हुए देखकर श्रीकृष्ण से बोले—हे कृष्ण ! छद्म छल से गोपवेष धारण करने वाला और पर्वत के समान उन्नत शरीरधारी कोई दैत्य मुझे हरण कर रहा है, तुम देखो। इस समय मुझे जो करना चाहिये वह कहो, यह दुरात्मा दानवाधम चला जा रहा है॥ ९-२१ ॥

तमाह रामं गोविन्दः स्मिताभन्नौष्ठसम्पुटः।
महात्मा रौहिणेयस्य बलवीर्य्यप्रमाणवित्॥ २२ ॥
किमयं मानुषो भावो व्यक्तमेवावलम्ब्यते।
सर्व्वात्मन्! सर्व्वगुह्यानां गुह्यगुह्यात्मना त्वया॥ २३ ॥
स्मराशेषजगद्बीजकारणं कारणाग्रजम्।
आत्मानमेकं तद्वच्च जगत्येकार्णवे च यत्॥ २४ ॥
किन्न वेत्सि यथाहञ्च त्वञ्चैक कारणं भुवः।
भारावतारणार्थाय मर्त्त्यलोकमुपागतौ॥ २५ ॥
नमः शिरस्तेऽम्बुमयी च मूर्त्तिः पादौ क्षितिर्वक्त्रमनन्त! वह्निः।
सोमो मनस्ते श्वसितं समीरो दिशश्चतस्रोऽव्यय! बाहवस्ते॥ २६ ॥
सहस्रवक्त्रोभगवान् महात्मा सहस्रहस्ताङ्घ्रिशरीरभेदः।
सहस्रपद्मोद्भवयोनिराद्यः सहस्रशस्त्वां मुनयो गुणन्ति॥ २७ ॥
दिव्यं हि रूपं तव वेत्ति नान्यो देवैरशेषैरवताररूपम्।
तवार्च्च्यते वेत्सि न किं यदन्ते त्वय्येव विश्वं लयचमभ्युपैति॥ २८ ॥
त्वया धृतेयं धरणी बिभर्त्ति चराचरं विश्वमनन्तमूर्त्ते!
कृतादिभेदैरज! कालरूपो निमेषपूर्व्वो जगदेतदत्सि॥ २९ ॥

अत्तं यथा वाड़ववह्निनाम्बु हिमस्वरूपं परिगृह्य कास्तम्।
हिमाचले भानुमतोऽंशुसङ्गाज्जलत्वमभ्येति पुनस्तदेव ॥ ३० ॥
एव त्वया संहरणेऽत्तमेतज्जगत् समस्तं पुनरप्यवश्यम्।
तवैव सर्गाय समुद्यतस्य जगत्त्वमभ्येत्यनुकल्पमीश ॥ ३१ ॥

श्रीपराशरजी बोले—उस समय बलराम जी के बलवीर्य को जानने वाले श्रीकृष्ण बलराम जी से बोले—हे सर्वात्मन् ! आप सभी प्रकार के गुह्य पदार्थों में भी गुह्य स्वरूप हैं पुन: इस प्रकार स्पष्ट मानुषभाव क्यों अवलम्बन कर रहे हैं । आप अपनी आत्मा को स्मरण करें, आप समस्त बीज के भी कारण हैं और कारण से भी पूर्ववर्ती एवं प्रलयकाल में एकमात्र आप ही स्थित रहते हैं । आप क्या जानते नहीं मैं और आप दोनों जगत् के कारण हैं और पृथिवीका भार उतारने के लिए ही अवतीर्ण हुए हैं । आकाश आपका मस्तक है, आपकी मूर्त्ति जलमयी है, हे अनन्त ! पृथिवी ही आपके दोनों पाँव हैं, अग्नि आपका मुख है एवं चन्द्रमा, मन, वायु आपका नि:श्वास है । हे भगवन् ! आपके हजारों मुख हैं, आपके हाथ, पाँव और शरीर सभी हजारों प्रकार के हैं । आप सहस्त्रों ब्रह्मा के कारण हैं, मुनिजन सहस्त्रों प्रकार आपकी स्तुति करते हैं । अन्य कोई भी व्यक्ति आपके स्वरूप को जानता नहीं । समस्त देवगण आपकी अवतार रूप से पूजा करते हैं । क्या आप जानते नहीं ? कि अन्तकाल में आप में ही समस्त विश्व लीन हो जाता है । हे अनन्तमूर्ते ! आपने धारण किया है इस विषय को जानकर ही पृथिवी समस्त चराचर को धारण करने में समर्थ होती है । हे अज ! आप निमेष आदि कालरूप हैं, आप ही सत्य, त्रेता आदि युग के भेद से इन जगत् को ग्रास करते हैं, बड़वानलद्वारा पीया हुआ जल जिस प्रकार मनोहर हिमस्वरूप को धारण करता है एवं वह हिमालय सूर्य किरण के सम्पर्क के पुन: जो जलरूप धारण करता है, उसी प्रकार प्रलयकाल में आप में लीन हुआ यह विश्व आपके सृष्टि करने के लिए उद्यत होने पर पुन: जगत्स्वरूप को प्राप्त करता है । हे ईश्वर ! प्रत्येक कल्प में आप इसी प्रकार प्रलय के अन्त में इस जगत् की सृष्टि करते हैं ॥ २२-३१ ॥

भवानहञ्च विश्वात्मन्नेकमेव हि कारणम्।
जगतोऽस्य जगत्यर्थे भेदेनावां व्यवस्थितौ ॥ ३२ ॥

तत् स्मर्य्यताममेयात्मन् ! त्वयात्मा जहि दानवम्।
मानुष्यमेवावलम्ब्य बन्धूनां क्रियतां हितम् ॥ ३३ ॥

हे विश्वात्मन् ! आप और मैं दोनों जगत् के एकमात्र कारण हैं । किन्तु मैं जगत् के मङ्गल के लिये भिन्न भिन्न रूप धारण करता हूँ । हे अमेयात्मन् ! अतएव आप अपनी आत्मा को स्मरण कीजिये एवं मनुष्यभाव का अवलम्बनपूर्वक इस दानव का विनाश करके बन्धुगण का कल्याण कीजिये ॥ ३२-३३ ॥

इति संस्मारितो विप्र ! कृष्णेन सुमहात्मना ।
विहस्य पीडयामास प्रलम्बं बलवान् बलः ॥ ३४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—जब महात्मा श्रीकृष्ण ने इस प्रकार बलदेवजी को स्मरण कराया तब बलवान् बलदेव जी हास्यपूर्वक प्रलम्बासुर को पीड़ित करने लगे ॥ ३४ ॥

मुष्टिना चाहनन्मूर्द्धिन कोपसंरक्तलोचनः ।
तेन चास्य प्रहारेण बहिर्याते विलोचने ॥ ३५ ॥

स निष्कासितमस्तिष्को मुखाच्छोणितमुद्वमन् ।
निपपात महीपृष्ठे दैत्यवर्य्यो ममार च ॥ ३६ ॥

प्रलम्बं निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्‌भुतकर्म्मणा ।
प्रहृष्टास्तुष्टुवुगोपाः साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥ ३७ ॥

संस्तूयमानो गोपैस्तु रामो दैत्ये निपातिते ।
प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ॥ ३८ ॥

उस समय क्रोध से रक्तनेत्र वाले बलदेव जी मुष्टि मुक्का द्वारा उसके मस्तकपर प्रहार करने लगे, इस चोट से उस दैत्य के दोनों नेत्र बाहर निकल आये । उस समय उसका मगज निकल गया और मुख से रक्तस्राव करते करते पृथिवी पर गिर गया और उसने मृत्यु को प्राप्त किया । अद्‌भुत कार्य करने वाले बलदेव जी के द्वारा प्रलम्बासुर का वध देखकर अत्यन्त प्रसन्न गोपगण उनकी प्रशंसा करने लगे एवं साधु साधु की ध्वनि की, प्रलम्बासुर के वध के पश्चात् गोपगण द्वारा प्रशंसित होते हुए बलदेव ने कृष्ण के साथ पुनः गोकुल में प्रवेश किया ॥ ३५-३८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में नवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - दसवाँ अध्याय

(गोवर्धन की पूजा)

तयोर्विहरतोस्तत्र राम-केशवयोर्व्रजे ।
प्रावृट् व्यतीता विकसत्-सरोजा चाभवच्छरत् ॥ १ ॥

अवापुस्तापमत्यर्थं शफर्य्यः पल्वलोदके ।
पुत्रक्षेत्रादिसक्तेन ममत्वेन यथा गृही ॥ २ ॥

मयूरा मौनिनस्तस्थुः परित्यक्तमदा वन ।
असारतां परिज्ञाय संसारस्येव योगिनः ॥ ३ ॥

उत्सृज्य जलसर्वस्वं निर्म्मलाः सितमूर्त्तयः ।
तत्यजुश्चाम्बरं मेघा गृहं विज्ञानिनो यथा ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—व्रज में इस प्रकार राम एवं केशव के विहार करते करते वर्षाकाल व्यतीत हुआ और विकसित कमल से सुशोभित शरत्काल उपस्थित हुआ । पुत्र, पत्नी आदि के संसर्ग से उत्पन्न ममताद्वारा जिस प्रकार गृहस्थ व्यक्ति संताप प्राप्त करता है उसी प्रकार गड्ढा के जल में मछलियाँ अतिशय ताप पाने लगीं । जिस प्रकार संसार की असारता को हृदयङ्गम करके योगिजन शान्त होते हैं उसी प्रकार मयूरगण भी वन में मद का परित्यागकर मौन होकर रहने लगे । ज्ञानीगण जिस प्रकार समस्त ममता को परित्यागकर गृह का परित्याग करते हैं उसी प्रकार शुभ्रवर्ण मेघ भी जलरूपी सर्वस्व का परित्याग करके निर्मल आकाश का भी परित्याग कर दिया ॥ १-४ ॥

शरत्सूर्य्यांशुतप्तानि ययुः शोषं संरासि च ।
बह्वालम्बि-ममत्वेन हृदयानीव देहिनाम् ॥ ५ ॥

कुमुदैः शरदम्भांसि योग्यतालक्षणं ययुः ।
अवबोधैर्मनांसीव सम्बन्धममलात्मनाम् ॥ ६ ॥

तारका विमले व्योम्नि रराजाखण्डमण्डलः ।
चन्द्रश्चरमदेहात्मा योगी साधुकुले यथा ॥ ७ ॥

शनकैः शनकैस्तीरं तत्यजुश्च जलाशयाः ।
ममत्वं क्षेत्रपुत्रादिरूढ़मुच्चैर्यथा बुधाः ॥ ८ ॥

पूर्व्वत्यक्तैः सरोऽम्भोभिर्हंसा योगं पुनर्ययुः ।
क्लेशैः कुयोगिनोऽशेषैरन्तरायहता इव ॥ ९ ॥

निभृतोऽभवदत्यर्थं समुद्रः स्तिमितोदकः ।
क्रमावाप्त-महायोगो निश्चलात्मा यथा यतिः ॥ १० ॥

सर्व्वत्रातिप्रसन्नानि सलिलानि तदाभवन ।
ज्ञाते सर्व्वगते विष्णौ मनांसीव सुमेधसाम् ॥ ११ ॥

बभूव निर्म्मलं व्योम शरदा ध्वस्ततोयदम ।
योगाग्निदग्धघक्ले शौघं योगिनामिव मानसम् ॥ १२ ॥

सूर्य्यांशुजनितं तापं निन्ये तारापतिः शमम् ।
अहङ्कारोद्भवं दुःखं विवेकः सुमहानिव ॥ १३ ॥

बहुत पदार्थों के प्रति ममता करने से देह धारियों का हृदय जिस प्रकार सारहीन हो जाता है उसी प्रकार सूर्य किरण से तप्त होकर सरोवर समूह सूखने लगे। निर्मल स्वभाववाले व्यक्तियों का मन जिस प्रकार ज्ञान के द्वारा समता प्राप्त करता है उसी प्रकार शरत्कालीन जलराशि ने कुमुद के साथ योग्य सम्बन्ध प्राप्त किया। ताराओं से विमल आकाशमण्ड में अखण्डमण्डल (पूर्ण) चन्द्र सत्कुलोत्पन्न चरमदेहात्मा योगी के समान शोभा पाने लगा। पण्डितगण जिस प्रकार पुत्रादिकों के ऊपर बढ़ी हुई ममता का क्रमशः परित्याग करते हैं उसी प्रकार समस्त जलाशय क्रमशः तीर का परित्याग करने लगे। जिस प्रकार कुयोगिगण अन्तरायों से (१) विचलित होकर पुनः क्लेशों से (२) युक्त हो जाते हैं उसी प्रकार पूर्व परित्यक्त सरोवर के साथ हंसगण ने पुनः संयोग प्राप्त किया। क्रमशः महायोग (सम्प्रज्ञात-

समाधि) को प्राप्त करके यति जिस प्रकार निश्चलात्मा हो जाता है उसी प्रकार जल के निश्चल होने पर समुद्र अतिशय स्थिर हो गया। सर्वगत श्रीविष्णु को जान लेने पर मेधावी पुरुषों का मन जिस प्रकार अतिशय निर्मल हो जाता है उसी प्रकार उस समय जल अतिशय निर्मल हा गया। शरत्काल को आने पर समस्त मेघों को विनष्ट होने से आकाश योगाग्निद्वारा दग्धक्लेशवाले योगिगण के समान निर्मल हो गया। सुमहान् विवेक जिस प्रकार अहङ्कार से उत्पन्न दुःख को शान्त कर देता है उसी प्रकार चन्द्रमा ने भी सूर्यकिरण से उत्पन्न सन्ताप को शान्त कर दिया ॥ ५-१३ ॥

नभसोऽभ्रान् भुवः पङ्कान् कालुष्यं चाम्भसः शरत्।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रत्याह इवाहरत् ॥ १४ ॥

प्राणायाम इवाम्भोभिः सरसां कृतपूरकैः।
अभ्यस्यतेऽनुदिवसं रेचकाकुम्भकादिभिः ॥ १५ ॥

प्रत्याहर जैसे इन्द्रियों को उनके विषयों से खींच लेता है वैसे ही शरत्काल ने आकाश से मेघों को, पृथ्वी से धूलि को और जल से मल को दूर कर दिया। पानी से भर जाने के कारण मानो तालाबों का जल पूरक कर चुकने के बाद (स्थिर रहने और सूखने से) अब रात दिन कुम्भक एवं क्रियाद्वारा प्राणायाम का अभ्यास कर रहे हैं ॥ १४-१५ ॥

विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाभ्यागतो व्रजम्।
ददर्शेन्द्रमहारम्भायौद्यतांस्तान् व्रजौकसः ॥ १६ ॥

कृष्णस्तानुत्सुकान् दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान्।
कौतूहलादिदं वाक्यं प्राह वृद्धान् महामतिः ॥ १७ ॥

कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगतः।
प्राह तं नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम् ॥ १८ ॥

मेघानां पयसां चेशो देवराजः शतक्रतुः।
तेन सञ्चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बुमयं रसम् ॥ १९ ॥

इस प्रकार सुन्दर आकाश और निर्मल नक्षत्रमय शरत्काल के किसी दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्द्र का उत्सव मनाने के लिए तैयारी करते हुए ब्रजवासियों

को देखा। महामति श्रीकृष्ण ने उन गोपों को उत्सव की उमंग से अत्यन्त उत्साह युक्त देखकर कौतुहलवश अपने बड़े बूढ़ों से पूछा। यह इन्द्र यज्ञ क्या है ? जिससे आप लोग इतने प्रसन्न हैं, इस प्रकार आदर पूर्वक पूछने पर नन्दगोप श्रीकृष्ण से बोले। जो देवराज इन्द्र मेघ और जल के कर्ता हैं वहीं मेधों को प्रेरित करते हैं तब मेघगण जलवर्षण करते हैं ॥ १६-१९ ॥

तद्वृष्टिजनितं शस्यं वयमन्ये च देहिनः ।
वर्त्तयामोपयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥ २० ॥

क्षीरवत्य इमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृताः ।
तेन संवर्द्धितैः शस्यैः पुष्टास्तुष्टा भवन्ति वै ॥ २१ ॥

नाशस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षादिर्दितो जनः ।
दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः ॥ २२ ॥

भौममेतत् पयो दुग्धं गोभिः सूर्य्यस्य वारिदः ।
पर्ज्जन्यः सर्व्वलोकस्य भवाय भुवि वर्षति ॥ २३ ॥

तस्मात् प्रावृषि राजानः सर्व्वे शक्रं मुदा युताः ।
महैः सुरेशमर्च्चन्ति वयमन्ये च मानवाः ॥ २४ ॥

अन्यान्य देहधारीगण और हम सभी उस वृष्टि से उत्पन्न हुए शस्य (अन्न) प्राप्तकर प्राण धारण करते हैं तथा देवताओं को भी तृप्त करते हैं। ये समस्त बछड़ेवाली गायें भी उसी वृष्टि से उत्पन्न और बढ़े हुए तृणद्वारा हृष्टपुष्ट होकर दुग्ध धारण करती हैं और तृप्त रहती हैं। जिस स्थान में वर्षा होती है उस स्थान की भूमि शस्य एवं तृण से रहित नहीं होती और वहाँ के लोग क्षुधा पीड़ित नहीं होते। मेघों के देवता इन्द्र सूर्य किरण के द्वारा पान किये हुए पृथिवी के रस को समस्त लोक के उपकार के लिये पृथिवी पर वर्षा करते हैं। अएव हमलोग, अन्यान्य मनुष्यवृन्द एवं राजागण भी आनन्द के साथ वर्षाकाल में उन सुरेश्वर इन्द्र की यज्ञद्वारा पूजन करते हैं ॥ २०-२४ ॥

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने ।
कोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥ २५ ॥

न वयं कृषिकर्त्तारो वाणिज्यजीविनो न च।
गावोऽस्मद्दैवतं तात! वयं वनचरा यतः ॥ २६ ॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिस्तथापरा।
विद्याचतुष्टयं त्वेतत् वार्त्तामत्र श्रृणुष्व मे ॥ २७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इन्द्र की पूजा के विष में नन्दगोप की ऐसी बात सुनकर दामोदर श्रीकृष्ण देवेन्द्र को क्रोध उत्पन्न कराने के लिए बोले। हे पिताजी! हम लोग कृषि करने वाले अथवा व्यापार करने वाले नहीं हैं किन्तु वनचर हैं सुतरां गौएँ हमारी देवता हैं। आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र), त्रयी (कर्म-काण्ड), वार्ता और दण्डनीति ये चार प्रकार की विद्याएँ हैं इनमें वार्ता किसे कहते हैं वह मुझसे श्रवण कीजिये ॥ २५-२७ ॥

कृषिर्वणिज्या तद्वत्तु तृतीयं पशुपालनम्।
विद्या ह्येता महाभाग! वार्त्ता वृत्तित्रयाश्रया: ॥ २८ ॥

कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम्।
अस्माकं गाः परा वृत्तिर्वार्त्ताभेदैरियं त्रिभिः ॥ २९ ॥

विद्यया यो यया युक्तस्तस्य स दैवतं महत्।
सैव पूज्यार्च्चनीया च सैव तस्योपकारिका ॥ ३० ॥

योऽन्यस्य फलमश्नन् वै पूजयत्यपरं नरः।
इह च प्रेत्य चैवासौ तात! नाप्नोति शोभनम् ॥ ३१ ॥

कृष्यन्ता प्रथिता सीमा सीमान्तञ्च पुनर्वनम्।
वनान्ता गिरयः सर्व्वे ते चास्माकं परा गतिः ॥ ३२ ॥

न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा।
सुखिनः सकले लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥ ३३ ॥

श्रूयन्ते गिरयश्चामी वनेऽस्मिन् कामरूपिणः।
तत्तद्रूपं समास्थाय रमन्ते स्वेषु सानुषु ॥ ३४ ॥

हे महाभाग ! इनमें वार्ता को कृषि वाणिज्य और पशुपालन-ये तीन प्रकार की वृत्तियों के आश्रयभूत होने से त्रिविध कहा जाता है । इनमें कृषि नामक जो वृत्ति है वह कृषकों के लिए है, व्यापार से जीवित रहने वालों के लिए वाणिज्य वृत्ति है और हम लोगों को गाय ही मुख्य अवलम्बन है इस तीन प्रकार के वार्ताभेद में वृत्ति भी तीन प्रकार की है । जिस विद्या के द्वारा जो प्रतिपालित होता है वही विद्या ही उसकी महती देवता है अतएव उसी की पूजा करना उचित है क्योंकि उस विद्या से ही उसे महान् उपकार होता है, जो व्यक्ति एक व्यक्ति से उपकार प्राप्त करके (उसका अनादर पूर्वक) अन्य व्यक्ति की पूजा करता है वह व्यक्ति वर्तमान या भविष्यकाल में भी कल्याण प्राप्त नहीं करता । जहाँ पर खेती होती है उसका नाम है क्षेत्र और भूमि ही उसकी सीमा है तथा भूमि की सीमा वन एवं वनकी सीमा भी पर्वत है वे पर्वत समूह ही हम लोगों की श्रेष्ठ गति है । हमलोग द्वारबन्ध से आवृत होकर निवास करते नहीं, तथा गृह और क्षेत्र में भी सीमित होकर विचरण करते नहीं, सुतरां चक्रचारी मुनियों के समान हम लोगो सुखी हैं (जो मुनिगण गाड़ी आदि के द्वारा भ्रमण करते हैं एवं जिनका कोई निश्चित स्थान नहीं, जहाँ पर सन्ध्या होती वही निवास करते हैं उनका नाम 'चक्रचारी' मुनि है । उनका एक और नाम 'सायंगृह' भी है) । ऐसा सुना गया है कि ये समस्त पर्वत इच्छानुकूल रूपवाले हैं ये उन रूपों को धारण करके इस वन में अपने अपने प्रान्त में विहार किया करते हैं ॥ २८-३४ । ।

यदा चैतेऽपराध्यन्ते तेषां ये काननौकसः ।
तदा सिंहादिरूपैस्तान् घातयन्ति महीधराः ॥ ३५ ॥

गिरियज्ञस्त्वयं तस्माद् गोयज्ञश्च प्रवार्यताम् ।
किमस्माकं महेन्द्रेण गावः शैलाश्च देवताः ॥ ३६ ॥

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षकाः ।
गिरि-गोयज्ञशीलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः ॥ ३७ ॥

तस्माद् गोवर्द्धनः शैलो भवद्भिर्विविधार्हणैः ।
अर्च्चर्यता पूज्यतां मेध्यं पशुं हत्वा विधानतः ॥ ३८ ॥

सर्व्वघोषस्य सन्दोहो गृह्यतां मा विचार्य्यताम् ।
भोज्यन्तां तेन वै विप्रास्तथा ये चाभिवाञ्छकाः ॥ ३९ ॥

समर्च्चिते कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु ।
शरत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः ॥ ४० ॥

एतन्मम मतं गोपाः सम्प्रत्याद्रियते यदि ।
ततः कृता भवेत् प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥ ४१ ॥

एवं जो पर्वतवासी हैं वे जब इन समस्त पर्वत देवताओं के समीप कोई भी अपराध करते हैं तब इन समस्त पर्वत रूपधारी पर्वत देवतागण अपराधियों को विनाशकर देते हैं । अतएव इस इन्द्र यज्ञ को आज से गिरियज्ञ के रूप में प्रवर्तित कीजिये । इन्द्र की पूजा से हमलोगों को क्या लाभ है ? गौएँ और पर्वत ही हमारे देवता हैं । ब्राह्मणगण मन्त्रयज्ञ में, कृषकगण सीता यज्ञ (हलपूजन) में विख्यात हैं उसी प्रकार पर्वत और वन के आश्रय में रहने वाले हमलोग पर्वत तथा गोयज्ञशील बोलकर विख्यात हैं । अतएव हम लोग विविध उपहारों के द्वारा गोवर्धन पर्वत की पूजा एवं अर्चना करें । यथाविधान पवित्र पशुबलिद्वारा भी उसी की पूजा करनी चाहिये । सम्पूर्ण व्रज से ही दुग्ध आदि का संग्रह करें, इस विषय में कोई विचार मत कीजिये, उसी दुग्ध आदि से ब्राह्मण और याचकगण को भोजन कराइये । गोवर्धन पूजा और होम करने के बाद ब्राह्मणों का भोजन हो जाने पर शरत्कालीनपुष्पों से सुसज्जित होकर गोगण स्वच्छन्द विचरण करें । हे गोपगण ! यह हमारा विचार है और आप सभीलोग इसका आदर करें तो गोवर्धन पर्वत और गौएँ अत्यन्त प्रसन्न होंगी ॥ ३६-४१ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते व्रजौकसः ।
प्रीत्युत्फुल्लमुखा विप्र ! साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ४२ ॥

शोभनं ते मतं वत्स ! यदेतद्भवतोदितम् ।
तत् करिष्यामहे सर्व्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्त्यताम् ॥ ४३ ॥

हे विप्र ! नन्द आदि व्रजवासिगण इनकी इस प्रकार की बातें सुनकर प्रसन्नता से उत्फुल्ल मुखवाले होकर साधु साधु ऐसा बोलकर उनकी प्रशंसा करने लगे । नन्दगोप आदि ने कहा—हे वत्स ! तुमने जो कहा वह अत्यन्त युक्तियुक्त है, हम लोग वहीं करेंगे, गिरियज्ञ ही प्रवर्तित हो ॥ ४२-४३ ॥

तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं व्रजौकसः ।
दधि-पायस-मांसाद्यैर्ददुः शैलबलि ततः ॥ ४४ ॥

द्विजांश्च भोजयामासुः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अन्यानप्यागतानित्थं कृष्णेनोक्तं यथा पुरा ॥ ४५ ॥

गावः शैलं ततश्चक्रुश्चाच्चितास्ताः प्रदक्षिणम् ।
ऋषभाश्चापि नर्दन्तः सतोया जलदा इव ॥ ४६ ॥

गिरिमूर्द्धनि कृष्णोऽपि शैलोऽहमिति मूर्त्तिमान् ।
बुभुजेऽन्नं बहु तदा गोपवर्य्याहितं द्विज ॥ ४७ ॥

अन्येन कृष्णो रूपेण गोपैः सह गिरेः शिरः ।
अधिरुह्यार्च्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम् ॥ ४८ ॥

अन्तर्द्धानं गते तस्मिन् गोपा लब्ध्वा ततो वरान् ।
कृत्वा गिरिमहं गोष्ठं निजमभ्याययुः पुनः ॥ ४९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनन्तर समस्त व्रजवासी श्रीकृष्ण के कथनानुसार पर्वतयज्ञ आरम्भ किया और दधि, पायस एवं मांसादि से पर्वत को बलि (पूजोपहार) प्रदान की । श्रीकृष्ण ने जैसा कहा था उसी प्रकार उन सभी ने सैंकड़ों हजारों ब्राह्मणों और अभ्यागतों को भोजन कराया । अनन्तर सुपूजित गौओं और मेघ के समान गर्जना करने वाले साँड़ों (बैल) भी व्रजवासियों के साथ गोवर्धन पर्वत की प्रदक्षिणा की । हे विप्र ! पर्वत के शिखरपर श्रीकृष्ण भगवान् ने मैं ही पर्वत हूँ, इस प्रकार कहते हुए एक विचित्र मूर्ति धारण करके गोपगण से दिये गये अन्न का भोजन करने लगे । और दूसरे रूप से श्रीकृष्ण गोपगण के साथ उस पर्वत शिखरपर चढ़कर पूजा भी करने लगे । अनन्तर गोपगण ने वर प्राप्त किया, इसके बाद पर्वतदेव अन्तर्ध्यान हो गये । समस्त गोप उस पर्वत महोत्सव को समाप्त करके गोष्ठ में लौट आये ॥ ४४-४९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में दसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - ग्यारहवाँ अध्याय

(श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धनपर्वत का धारण)

महे प्रतिहते शक्रो मैत्रेयातिरुषान्वितः ।
संवर्त्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥ १ ॥

भो भो मेघा ! निशम्यैतद् वचनं वदतो मम ।
आज्ञानन्तरमेवाशु क्रियतामविचारितम् ॥ २ ॥

नन्दगोपः सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैः सहायवान् ।
कृष्णाश्रयबलाध्मातो महभङ्गमचीकरत् ॥ ३ ॥

आजीवो यः परस्तेषां याश्च गोपत्वकारणम् ।
ता गावो वृष्टिवातेन पीड्यन्तां वचनान्मम ॥ ४ ॥

अहमप्यद्रिश्रृङ्गाभं तुङ्गमारुह्य वारणम् ।
साहाय्यं वः करिष्यामि वार्य्यम्बूत्सर्गयोजितम् ॥ ५ ॥

इत्याज्ञप्ताः सुरेन्द्रेण मुमुचुस्ते बलाहकाः ।
वातवर्ष महाभीममभावाय गवां द्विज ॥ ६ ॥

ततः क्षणेन धरणी ककुभोऽम्बरमेव च ।
एक धारामहासारपूरणेनाभवन्मुने ॥ ७ ॥

विद्युल्लताकशाघातत्रस्तैरिव घनैर्घनम् ।
नादापूरितदिक्चक्रैर्धारासारमपात्यत ॥ ८ ॥

अन्धकारीकृते लोके वर्षद्भिरनिशं घनैः ।
अधश्चोर्द्ध्वञ्च तिर्य्यक् च जगदाप्यमिवाभवत् ॥ ९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! इस प्रकार अपने यज्ञ बन्द हो जाने से इन्द्र अत्यन्त क्रोधित होकर संवर्तक नामक मेघों से बोले । हे मेघगण ! मैं आदेश देता हूँ, मेरा वचन श्रवण करो । मैं जो कहूँगा वही मेरी आज्ञा होगी उसे बिना विचार किये शीघ्र सम्पादन करना होगा । अत्यन्त दुर्बुद्धि नन्दगोप ने कृष्ण का आश्रय करके उसके कहने से गर्वित होकर अन्यान्य गोपगण के साथ सम्मिलित रूप से मेरा उत्सव भङ्ग किया है । उस मूर्खगोपों की जीविका का कारण एवं गोपत्व का कारण जो गौएँ हैं उनको मेरे कथनानुसार वर्षा और वायु द्वारा पीड़ित करो । मैं पर्वत के समान अपने ऐरावत हाथी पर चढ़कर वायु और जल छोड़ने के समय तेरी सहायता करूँगा । हे द्विज ! इन्द्र के द्वारा इस प्रकार आज्ञा पाकर मेघों ने गोपगण को विनाश करने के लिए अत्यन्त भयानक वायु के साथ वर्षा करना आरम्भ की । हे महामुने ! अनन्तर क्षणभर में उन मेघों से वर्षा की गयी महाजलधारा में पृथ्वी, आकाश और समस्त दिशाएँ एकाकार हो गये । मेघसमूह विद्युल्लतारूपी कोड़े के प्रहार से त्रस्त होकर अपनी गर्जना से दिक्मण्डल को व्याप्त करते हुए धारा पानी परित्याग करने लगे । निरन्तर बरसने से मेघसमूहद्वारा लोक अन्धकारमय हो गया एवं ऊपर, नीचे तथा सब ओर से समस्त दिशाएँ जलमय हो गयीं ॥ १-९ ॥

गावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना ।
धूताः प्राणान् जहुः सन्नत्रिकसक्थिशिरोधराः ॥ १० ॥

क्रोड़ेन वत्सानाक्रम्य तस्थुरन्या महामुने ।
गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापराः ॥ ११ ॥

वत्साश्च दीनवदनाः पवनाकम्पिकन्धराः ।
त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दाः कृष्णमूचुरिवार्त्तकाः ॥ १२ ॥

गौगण उस वायुमयी वर्षा से गिरकर कटि, उरू और ग्रीवा को एकत्रकर प्राणत्याग करने लगे । हे मुने ! कितनी गौएँ अपने बच्चों को गोद में स्थापित करके बैठ गयीं और कितनी गौएँ जलवर्षा से वंशहीना हो गयीं । दीनमुख बछड़ों की ग्रीवा वायु में कम्पित होने लगी और वे सब कातर स्वर में त्राहि त्राहि ऐसा बोलकर श्रीकृष्ण को पुकारने लगे ॥ १०-१२ ॥

ततस्तद् गोकुलं सर्व्वं गो-गोपी-गोपीसंकुलम् ।
अतीवार्त्तं हरिर्दृष्ट्वा मैत्रेयाचिन्तयत् तदा ॥ १३ ॥

एतत् कृतं महेन्द्रेण महभङ्गविरोधिना ।
तदेतदखिलं गोष्ठं त्रातव्यमधुना मया ॥ १४ ॥

इममद्रिमहं धैर्य्यादुत्पाठ्योरुशिलाघनम् ।
धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि ॥ १५ ॥

इति कृत्वा मतिं कृष्णो गोवर्द्धनमहीधरम् ।
उत्पाट्यैककरेणैव धारयामास लीलया ॥ १६ ॥

गोपांश्चाह जगन्नाथः समुत्पाटितभूधरः ।
विशध्वमत्र त्वरिताः कृतं वर्षनिवारणम् ॥ १७ ॥

सुनिर्व्वातिषु देशेषु यथाजोषमिहास्यताम् ।
प्रविश्यतां न भेतव्यं गिरिपातस्य निर्भयैः ॥ १८ ॥

हे मैत्रेय ! उस समय गौ, गोपी और गोपगण से युक्त उस गोकुल को अत्यन्त व्यथित देखकर भगवान् विचारने लगे । यज्ञभङ्ग होने के कारण विरोधी इन्द्र ने ही यह कार्य किया है । जो ही इस समय तो गोकुल की रक्षा करनी चाहिये । मैं धैर्य के साथ इस शिलामय पर्वत को उखाड़कर गोष्ठ के ऊपर महाछत्र के समान धारण करूँगा । श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धन-पर्वत को उखाड़कर एक हाथ से ही लीलापूर्वक उठा लिये । पर्वत को उखाड़कर भगवान् जगन्नाथ गोपगण से बोले—आपलोग निर्भय होकर पर्वत गर्त में आ जायँ मैं वर्षा का निवारण कर रहा हूँ । आपलोग यहाँ पर झंझावात से रहित प्रदेश में प्रवेशकर विशुद्ध भाव से निवास करें, पर्वत को गिरने का भय न करें ॥ १३-१८ ॥

इत्युक्तास्ते ततो गोपा विविशुर्गोधनैः सह ।
शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चासारपीड़िताः ॥ १९ ॥

कृष्णोऽपि तं दधारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् ।
व्रजैकवासिभिर्हर्षविस्मिताक्षैर्निरीक्षितः ॥ २० ॥

गोप-गोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्षणैः ।
संस्तूयमानचरितः कृष्णः शैलमधारयत् ॥ २१ ॥

सप्तरात्रं महामेघा ववर्षुर्नन्दगोकुले ।
इन्द्रेण चोदिता विप्र ! गोपानां नाशकारिणः ॥ २२ ॥

ततो धृते महाशैले परित्राते च गोकुले ।
मिथ्याप्रतिज्ञो वलभिद् वारयामास तान् घनान् ॥ २३ ॥

व्यभ्रे नभसि देवेन्द्रे वितथात्मवचस्यथ ।
निष्क्रम्य गोकुलं सर्व्वं स्वस्थाने पुनरागमत् ॥ २४ ॥

मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्द्धनमहाचलम् ।
स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैस्तु व्रजौकसैः ॥ २५ ॥

कृष्ण के ऐसा कहने पर जलधारा से पीड़ित गोप और गोपीगण छकड़ों से समस्त भाण्डों को रखकर गोधन के साथ उसके भीतर प्रवेश कर गये । व्रजवासियों के हर्ष-विस्मयपूर्णनेत्रों से देखे जाते हुए श्रीकृष्ण भी उस पर्वत को निश्चल भाव से धारण किये रहे । हर्ष एवं प्रेम से विस्फारित नेत्रवाले गोप एवं गोपीगण जिनकी प्रशंसा करते हैं उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण ने पर्वत को धारण किया । हे विप्र ! गोपगण को विनाश करने में समर्थ महामेघसमूह ने इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर सप्तरात्रि पर्यन्त गोकुलपर जलवर्षा की । श्रीकृष्णद्वारा पर्वत धारण कर गोकुल की रक्षा करने पर अपनी प्रतीक्षा व्यर्थ हो जाने से इन्द्र ने मेघसमूह का निवारण कर लिया । आकाश मेघरहित हुआ, इन्द्र का वचन मिथ्या हो गया और समस्त गोकुलवासी वहाँ से निकलकर पुनः अपने स्थान में आ गये । तब आश्चर्य चकित व्रजवासियों से देखे जाते हुए श्रीकृष्ण ने भी महापर्वत को यथास्थान पर स्थापित कर दिया ॥ १९-२५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - बारहवाँ अध्याय

(इन्द्र द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक)

धृते गोवर्द्धने शैले परित्राते च गोकुले ।
रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ॥ १ ॥

सोऽधिरुह्य महानागमैरावतममित्रजित ।
गोवर्द्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशेश्वरः ॥ २ ॥

चारयन्तं महावीर्य्यं गावो गोपवपुर्धरम् ।
कृष्णञ्च जगतो गोपं वृतं गोपकुमारकैः ॥ ३ ॥

गरुड़ञ्च ददर्शोच्चैरन्तर्द्धानगतं द्विज !
कृतच्छायं हरेर्मूर्द्धिन पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवम् ॥ ४ ॥

अवरुह्य स नागेन्द्रादेकान्ते मधुसूदनम् ।
शक्रः सस्मितमाहेदं प्रीतिविस्फारितेक्षणः ॥ ५ ॥

कृष्ण ! कृष्ण ! श्रृणुष्वेदं यदर्थमहमागतः ।
त्वत्समीपं महाभाग ! नैतच्चिन्त्यं त्वयान्यथा ॥ ६ ॥

भारावतारणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतलम् ।
अवतीर्णोऽखिलाधारस्त्वमेव परमेश्वर ॥ ७ ॥

महभङ्गविरुद्धेन मया गोकुलनाशकाः ।
समादिष्टा महामेघास्तैश्चेदं कदनं कतम् ॥ ८ ॥

त्रातास्तात् ! त्वया गावः समुत्पाट्य महागिरिम् ।
तेनाहं तोषितो वीर ! कर्म्मणात्यद्भुतेन ते ॥ ९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—श्रीकृष्ण के द्वारा गोवर्धनपर्वत को धारणकर गोकुल की रक्षा करने पर इन्द्र ने उनके दर्शन की कामना की । अत: शत्रुविजेता देवेश्वर इन्द्र ने महागजराजपर चढ़कर गोवर्धनपर्वत पर आकर श्रीकृष्ण का दर्शन किया । इन्द्र ने देखा कि जो जगत् के रक्षक हैं वही श्रीकृष्ण गोप देह धारण कर एवं गोपकुमारों से परिवेष्टित होकर गौओं को चरा रहे हैं । उन्होंने और भी देखा कि पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ अदृश्यभाव से स्थित होकर अपने पङ्खद्वारा भगवान् हरि के मस्तक पर छाया कर रहे हैं । उस समय गजराज से उतरकर प्रसन्नता से विकसित नेत्रवाले इन्द्र एकान्त में कुछ हँसते हुए भगवान् मधुसूदन से बोले— । हे कृष्ण ! मैं जिस कारण से आपके समीप आया हूँ उसे आप श्रवण करें । हे महाभाग ! इस विषय में आप अन्यथा विचार न करें । समस्त संसार के आश्रय आपने इस पृथिवी का भार उतारने के लिए पृथिवी पर अवतार लिया है । अपने यज्ञ के भङ्ग होने से विरोधी मैंने गोकुल को नाश करने के लिए महामेघों को आज्ञा दी थी एवं उन्होंने यह क्लेश प्रदान किया था । हे तात ! आपने गोवर्धनपर्वत को उठाकर समस्त गोपों की रक्षा की है आपके इस अद्भुत कर्म से मैं सन्तुष्ट हूँ ॥ १-९ ॥

साधितं कृष्ण देवानामहं मन्ये प्रयोजनम् ।
त्वयायमद्रिप्रवरः करेणैकेन यद्धृतः ॥ १० ॥

गोभिश्च चोदितः कृष्ण ! त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्सत्कारकारणात् ॥ ११ ॥

स त्वां कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवां वाक्यप्रचोदितः ।
उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दगस्त्वं भविष्यासि ॥ १२ ॥

हे कृष्ण ! मैं अपने मन में विचार करता हूँ कि आपने एक हाथ से गोवर्धन का धारण किया इससे देवगण का प्रयोजन ही सिद्ध हुआ है । हे कृष्ण ! मैं गौओं से प्रेरित होकर ही आपके सत्कार के लिए आपके समीप आया हूँ । आपने गोवर्धन धारण कर गोओं की रक्षा की है । हे कृष्ण ! इस समय मैं गोओं की प्रेरणा से ही आपको उपेन्द्र वरण करूँगा । आप गोओं के इन्द्र हैं, अतएव आपका नाम 'गोविन्द' होगा ॥ १०-१२ ॥

अथोपवाह्यादादय घण्टामैरावताद्गजात् ।
अभिषेकं तया चक्रे पवित्रजलपूर्णया ॥ १३ ॥

क्रियमाणेऽभिषेके तु गावः कृष्णस्य तत्क्षणात्।
प्रस्त्रवोद्भूतदुग्धार्द्रां सद्यश्चक्रुर्वसुन्धराम्॥ १४॥

इसके बाद इन्द्र ने अपने वाहन ऐरावत से घण्टा उतारकर उसमें पवित्र जल भरकर उससे श्रीकृष्ण का अभिषेक किया। श्रीकृष्ण के अभिषेक के समय समस्त गायों ने अपने स्तन से निकले हुए दूध के द्वारा तत्क्षण पृथिवी को आर्द्रकर दिया ॥ १३-१४॥

अभिषिच्य गवां वाक्याद् देवेन्द्रो वै जनार्दनम्।
प्रीत्या सप्रश्रयं कृष्णं पुनराह शचीपतिः॥ १५॥

गवामेतत् कृतं वाक्यं तथान्यदपि मे शृणु।
यद् ब्रवीमि महाभाग! भारावतरणेच्छया॥ १६॥

ममांशः पुरुषव्याघ्र पृथायां पृथिवीतले।
अवतीर्णोऽर्ज्जुनो नाम स रक्ष्यो भवता सदा॥ १७॥

भारावतारण साह्यं स ते वीरः करिष्यति।
स रक्षणीयो भवता यथात्मा मधुसूदन॥ १८॥

जानामि भारते वंशे जातं पार्थं तवात्मजम्।
तमहं पालयिष्यामि यावदस्मि महीतले॥ १९॥

गोगण के आदेशानुसार इन्द्र जनार्दन का अभिषेक करके पुनः प्रीति और नम्रता के साथ यह बात बोले। हे महाभाग! यह गौओं का वचन पूरा कर दिया, अब और कुछ कहते हैं उसे श्रवण कीजिये! हे पुरुषश्रेष्ठ! पृथिवी के भार हरण निमित्त मेरे अंश ने पृथा के गर्भ से जन्म लिया है और उसका नाम अर्जुन है, आप उसकी रक्षा सदा करें। हे मधसूदन! आपका पृथिवी का भार हरणरूपी कार्यों में अर्जुन सहायता करेगा। अतएव उसकी रक्षा आप अपने शरीर के समान ही करें। श्रीभगवान् बोले—भरतवंश में आपका पुत्र अर्जुन उत्पन्न हुआ है यह बात मैं जानता हूँ। मैं जबतक भूतलपर रहूँगा, तब तक उसका पालन करूँगा ॥१५-१९॥

यावन्महीतले शक्र! स्थास्याम्यहमरिन्दम्!
न तावदर्ज्जुनं कश्चिद् देवेन्द्र! युधु जेष्यति॥ २०॥

कंसो नाम महाबाहुर्दैत्योऽरिष्टस्तथापरः ।
केशी कुवलयापीड़ो नरकाद्यास्तथापरे ॥ २१ ॥

हतेष्वेतेषु देवेन्द्र ! भविष्यति महाहवः ।
तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरणं कृतम् ॥ २२ ॥

स त्वं गच्छ न पुत्रार्थे सन्तापं कर्त्तुमर्हसि ।
नार्ज्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥ २३ ॥

अर्ज्जुनार्थे त्वहं सर्व्वान् युधिष्ठिरपुरोगमान् ।
निवृत्ते भारते युद्धे कुन्त्या दास्याम्यविक्षतान् ॥ २४ ॥

हे शत्रुविनाशक इन्द्र ! मैं जबतक पृथिवीपर रहूँगा तब तक इस भूतलपर अर्जुन को कोई जीत नहीं सकेगा । हे देवेन्द्र ! कंस, अरिष्ट, कुवलयापीड, केशीस नरक आदि अन्यान्य असुरगण को निहत होने के बाद एक भयङ्कर संग्राम उपस्थित होगा । हे सहस्रलोचन ! उसी संग्राम में मैं पृथिवी का भार हरण करूँगा । आप गमन करें, पुत्र के लिये किसी प्रकार की चिन्ता न करें । मेरे रहते हुए कोई भी व्यक्ति अर्जुन के साथ शत्रुता करके सफल मनोरथ नहीं होगा । मैं अर्जुन के लिए ही महाभारतयुद्ध के समाप्त होने पर युधिष्ठिर आदि सभी को अक्षत शरीर से कुन्ती को दूँगा ॥ २०-२४ ॥

इत्युक्तः सम्परिष्वज्य देवराजो जनार्द्दनम् ।
आरुह्यैरावतं नागं पुनरेव दिवं ययौ ॥ २५ ॥

कृष्णोऽपि सहितो गोभिर्गोपालैश्च पुनर्व्रजम् ।
आजगामाथ गोपीनां दृष्टिपूतेन वर्त्मना ॥ २६ ॥

श्रीपराशरजी बोले—श्रीकृष्णद्वारा ऐसी बात कहे जाने पर देवराज इन्द्र जनार्दन का आलिङ्गन करके ऐरावत (हाथी) पर चढ़कर पुनः स्वर्ग चले गये । अनन्तर श्रीकृष्ण भी गोपीगण के दृष्टिपात से पवित्र मार्ग का अवलम्बन करके गोपाल और गौओं के साथ व्रज में आ गये ॥ २५-२६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - तेरहवाँ अध्याय

(श्री कृष्ण की गोपियों के साथ रासलीला)

गते शक्रे तु गोपालाः कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वातेन गोवर्द्धनाचलम्॥ १॥

वयमस्मान्महाबाहो! भवता महतो भयात्।
गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्म्मणा॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—इन्द्र के स्वर्ग लोक में चले जाने पर श्रीकृष्ण ने बिना क्लेश के ही गोवर्धन धारण किया यह देखकर गोपालगण प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे। हे महाबाहो! आज आपने हम लोगों की और गौओं की इस गोवर्धनपर्वत को धारण करके रक्षा की है॥ १-२॥

बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम्।
दिव्यञ्च कर्म्म भवतः किमेतत् तात! कथ्यताम्॥ ३॥

कालियो दमितस्तोये प्रलम्बो विनिपातितः.
धृतो गोवद्‌र्धनश्चायं शङ्कितानि मनांसि नः॥ ४॥

सत्यं सत्यं हरेः पादौ शपामीऽमितविक्रम।
यथा त्वद्वीर्य्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम्॥ ५॥

प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य तव केशव!
कर्म्म चेदमाशक्यं यत् समस्तैस्त्रिदशैरपि॥ ६॥

बालत्वं चातिवीर्य्यञ्च जन्म चास्मास्वशोभनम्।
चिन्त्यमानममेयात्मन्! शङ्कां कृष्ण प्रयच्छति॥ ७॥

देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व्व एव वा।
किं वास्माकं विचारेण बान्धवोऽसि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

आपकी यह अतुलनीय बाललीला और इस प्रकार का दिव्यकर्म एवं निन्दित गोकुल में आपका जन्म यह सब क्या है ? हे तात ! उसे आप हम लोगों के समीप कहिये । आपने यमुना के जल में कालीयनाग का दमन किया, प्रलम्बासुर का विनाश किया और इस गोवर्धनपर्वत को धारण किया । आपके ये समस्त विचित्र कार्य को देखकर हम लोगों के अन्तःकरण में बड़ी शंका हो रही है । हम लोग सत्य भगवान् के चरणों का शपथपूर्वक कहते हैं कि आपके इस प्रकार के विचित्र कार्यों से आपको मनुष्य नहीं मान सकते । हे केशव ! स्त्री तथा कुमारों सहित समस्त व्रजवासियों का आपके ऊपर प्रेम है । आपने जो कर्म किये हैं वह समस्त देवगण भी नहीं कर सकते । हे कृष्ण ! आपके इस प्रकार का बालकभाव और इस प्रकार का पराक्रम एवं हम सबके समान नीच कुल में जन्म—इन सभी का जितना ही विचार करते हैं, उतना ही हम लोग शंका में पड़ते हैं । आप देव हो या दानव हो अथवा यक्ष, गन्धर्व हो हम लोगों को उसका विचार करने का प्रयोजन ही क्या है ? आप तो हमारे मित्र हैं, अतएव आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३-८ ॥

क्षणं भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किञ्चित् प्रणयकोपवान्।
इत्येवमुक्तस्तैर्गोपैः कृष्णोऽप्याह महामुने ॥ ९ ॥

मत्सम्बन्धेन भो गोपा ! यदि लज्जा न जायते।
श्लाघ्यो वाहं ततः किं वो विचारेण प्रयोजनम् ॥ १० ॥

यदि वोऽस्ति मयि प्रीतिः श्लाघ्योऽहं भवतां यदि।
तदात्मबन्धुसदृशी बुद्धिर्वः क्रियतां मयि ॥ ११ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने ! उन समस्त गोपों द्वारा ऐसा कहे जाने के बाद महामति श्रीकृष्ण क्षणभर मौन रहकर पश्चात् प्रणयकोप (प्रेमपूर्वक क्रोध) के साथ कुछ कहने लगे । श्रीभगवान् बोले—हे गोपगण ! हमारे साथ इस प्रकार के सम्बन्ध से आपलोगों को यदि किसी प्रकार की लज्जा न हो तो आपलोगों से मैं प्रशंसनीय हूँ इस विचार से क्या प्रयोजन है । यदि मुझ में आपलोगों का प्रेम है और यदि मैं आपलोगों के लिए प्रशंसनीय हूँ तब आपलोग मुझ में बान्धव के समान ही बुद्धि करें ॥ ९-११ ॥

नाहं देवो न गन्धर्व्वो न यक्षो न च दानवः ।
अहं वो बान्धवो जातो नास्ति चिन्त्यमतोऽन्यथा ॥ १२ ॥

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमौनास्ततो वनम् ।
ययूर्गोपा महाभाग ! तस्मिन् प्रणयकोपिनि ॥ १३ ॥

और भी मैं देव, दानव, यक्ष अथवा गन्धर्व कुछ नहीं हूँ । मैं आपलोगों के बन्धुरूप में उत्पन्न हुआ हूँ, अतएव आपलोगों को इस विषय में कुछ विचार नहीं करना चाहिये । श्रीपराशरजी बोले—हे महाभाग ! भगवान् द्वारा इस प्रकार प्रेमपूर्ण क्रोध से कहे जाने पर वे गोपगण मौन होकर वन में चले गये ॥ १२-१३ ॥

कृष्णस्तु विमलं व्योम शरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम् ।
तथा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् । १४ ॥

वनराजिं तथा कूजद्भृङ्गमालां मनोरमाम् ।
विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥ १५ ॥

सह रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम् ।
जगौ कलपदं शौरिर्नानातन्त्री-कृतव्रतम् ॥ १६ ॥

रम्यं गीतध्वनि श्रुत्वा सन्त्यज्यावसथांस्तदा ।
आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ १७ ॥

शनैः शनैर्ज्जगौ गोपी काचित् तस्य लयानुगम् ।
दत्तावधाना काचित्तु तमेव मनसास्मरत् ॥ १८ ॥

काचित् कृष्णेति कृष्णेति प्रोक्तवा लज्जामुपागता ।
ययौ च काचित् प्रेमान्धा तत्पार्श्वमविलज्जिता ॥ १९ ॥

काचिदावसथस्यान्तः स्थिता दृष्ट्वा बहिर्गुरून् ।
तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ॥ २० ॥

अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने निर्मल आकाश, शरत्कालीन चन्द्रमा की चन्द्रिका, दिशाओं को सुगन्धित करने वाली विकसित कुमुदिनी एवं गुञ्जायमान भ्रमर से मनोहर वनराजी को देखकर गोपीगण के साथ रमण करने की अभिलाषा

की । उस समय बलरामजी के बिना ही भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त अव्यक्त तथा मधुर पदविन्यासपूर्वक गान करना आरम्भ किया । यह गान अत्यन्त मधुर और स्त्रीयों का प्रिय था एवं इसमें नाना प्रकार के तन्त्रीस्वर का सम्मिश्रण हुआ था । अनन्तर उस मधुर गीतध्वनि को श्रवणकर गोपीगण गृहों का परित्यागकर जहाँ मधुसूदन विराजमान थे वहाँ शीघ्रतापूर्वक आना आरम्भ किया । उस समय कोई गोपी गान के लयानुसार धीरे धीरे गान करने लगी, कोई दत्तावधान (सावधान) होकर उन्हीं को मन से स्मरण करने लगी । कोई गोपी कृष्ण, कृष्ण इस प्रकार बारबार बोलकर उनको पुकारने से लज्जिता हो गयी और कोई प्रेमान्धा गोपी लज्जा परित्याग करके श्रीकृष्ण के समीप उपस्थित हो गयी । कोई गोपी बाहर में गुरुजनों को स्थित देखकर घर में ही स्थिरतापूर्वक निमीलितलोचन से तन्मयताद्वारा श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगी ॥ १४-२० ॥

तच्चिन्ताविपुलाह्लाद क्षीणपुण्यचया तथा ।
तदप्राप्ति-महादुःख-विलीनाशेषपातका ॥ २१ ॥

चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
निरुच्छ्वासतया मुक्ति गतान्या गोपकन्यका ॥ २२ ।

गोपीपारेवृतो रात्रिं शरचन्द्रमनोरमाम् ।
मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥ २३ ॥

गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टास्वायत्तमूर्त्तयः ।
अन्यदेशं गते कृष्णे चेरुर्वृन्दावनान्तरम् ॥ २४ ॥

कृष्णे निरुद्धहृदया इदमूचुः परस्परम् ।
कृष्णोऽहमेतल्ललितं व्रजाम्यालोक्यतां गतिः ।
अन्या ब्रवीति कृष्णस्य मम गीतिर्निशम्यताम् ॥ २५ ॥

दुष्टकालिय ! तिष्ठात्र कृष्णोऽहमिति चापरा ।
बाहुमास्फोट्य कृष्णस्य लीलासर्व्वस्वमाददे ॥ २६ ॥

अन्या ब्रवीति भो गोपा ! निःशङ्कैः स्थीयतामिह ।
अलं वृष्टिभयेनात्र धृतो गोवर्द्धनो मया ॥ २७ ॥

कोई गोपकन्या निरुच्छ्वासभाव से (प्राण, अपान वायु को अवरुद्ध करके) परब्रह्मरूपी जगत्कारण भगवान् श्रीकृष्ण को ध्यान करती करती मुक्त हो गयी एक भगवान् की चिन्ता से उत्पन्न अत्यन्त आनन्द से उसकी पुण्य की क्षीणता, दूसरा भगवान् को प्राप्त न करने के कारण महादुःखभोग से उसके समस्त पापकी समाप्ति। रासक्रीडा आरम्भ के लिए उत्सुक भगवान् श्रीकृष्ण गोपीगण से वेष्टित होकर (घिरकर) उस शरत्कालीन चन्द्रमा से सुशोभित रात्रि को सम्मानित करने लगे। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण को स्थानान्तर में चले जाने पर गोपीगण भी श्रीकृष्ण की चेष्टा के वशीभूत होकर वृन्दावन के बीच विचरण करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण के प्रति अत्यन्त आसक्तचित्त होकर वे गोपियाँ परस्पर में कहने लगी। कोई गोपी बोली—मैं कृष्ण हूँ, मेरी मनोहर गति देखो। दूसरी गोपी बोली—मैं कृष्ण हूं, तुम लोग मेरा मनोहर गान श्रवण करो। कोई गोपी बाहु फैला कर 'मैं कृष्ण हूँ, अरे दुष्ट कालीय ! तुम स्थिर हो जाओ' इस प्रकार बोलकर कृष्णलीला का अनुकरण करने लगी। अन्य कोई गोपी कहने लगी कि अहो गोपगण ! आप लोग निर्भय होकर स्थिर रहें, आपलोगों को वृष्टिभय अब नहीं रहेगा, मैंने यह गोवर्धन धारण कर लिया है ॥ २०-२७ ॥

धेनुकोऽयं मया क्षिप्तो विचरन्तु यथेच्छया।
गोपी ब्रवीति वै चान्या कृष्णलीलानुकारिणी ॥ २८ ॥

एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तास्तदा।
गोप्या व्यग्राः समं चरू रम्य वृन्दावनान्तरम् ॥ २९ ॥

कृष्णलीला के अनुकरण करने वाली दूसरी गोपी बोलने लगी—हे बन्धुगण ! तुमलोग इच्छानुसार विचरण करो, मैंने धेनुकासुर का वध कर दिया है। इस प्रकार अनेकरूप से श्रीकृष्ण की चेष्टा में व्याकुल गोपीगण एकत्रित होकर रमणीय वृन्दावन में विचरण करने लगीं ॥ २८-२९ ॥

विलोक्यैका भुवं प्राह गोपी गोपवराङ्गना।
पुलकाञ्चितसर्व्वाङ्गी विकाशि-नयनोत्पला ॥ ३० ॥

ध्वजवज्राङ्कु शाब्जाङ्क-रेखावन्त्यालि पश्यत।
पदान्येतानि कृष्णस्य लीलालङ्कृतगामिनः ॥ ३१ ॥

कापि तेन समं याता कृतपुण्या मदालसा ।
पदानि तस्याश्चैतानि घनान्यल्पतनूनि च ॥ ३२ ॥

पुष्पावचयमत्रोच्चैश्चक्रे दामोदरो ध्रुवम् ।
येनाग्राक्रान्तिमात्राणि पदान्यत्र महात्मनः ॥ ३३ ॥

अत्रोपविश्य सा तेन कापि पुष्पैरलङ्कृता ।
अन्यजन्मनि सर्व्वात्मा विष्णुरभ्यर्च्चितो यया ॥ ३४ ॥

पुष्पबन्धनसम्मान-कृतमानामपास्य ताम् ।
नन्दगोपसुतो यातो मार्गेणानेन पश्यत ॥ ३५ ॥

अनुयानेऽसमर्थान्या नितम्बभरमन्थरा ।
या गन्तव्ये द्रुतं याति निम्नपादाग्रसंस्थितिः ॥ ३६ ॥

हस्तन्यस्ताग्रहस्तेयं तेन याति तथा सखि !
अनायत्तपदन्यासा लक्ष्यते पदपद्धतिः ॥ ३७ ॥

हस्तसंस्पर्शमात्रेण धूर्त्तेनैषा विमानिता ।
नैराश्यमन्दगामिन्या निवृत्तं लक्ष्यते पदम ॥ ३८ ॥

कोई गोपश्रेष्ठ की रमणी विकसित कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली सर्वाङ्ग से पुलकित होकर पृथिवी को देखकर कहने लगी । हे सखि ! यह देखो, लीला से सुन्दर गमन करने वाले श्रीकृष्ण का ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमलयुक्त—ये सभी चरणचिन्ह दिखाई देते हैं। और देखो, श्रीकृष्ण के साथ पुण्यशालिनी मद से आलस्य युक्त होकर कोई रमणी गयी है, उसके यह छोटे छोटे चरण चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। इस स्थान पर महात्मा दामोदर श्रीकृष्ण ने ऊँचा होकर पुष्प चयन किया है, इन समस्त स्थानों में उनके चरणों के अग्रभाग का चिन्ह है । पूर्वजन्म में जिस भाग्यवती ने पुष्पों द्वारा सर्वात्मा श्रीविष्णुभगवान् की पूजा की है, भगवान् श्रीकृष्ण ने इस स्थान पर बैठकर उसको पुष्पों द्वारा सुसज्जित किया है, यह उसका चिन्ह देखो । यह देखो, इस मार्ग का अवलम्बन करके नन्दगोप के पुत्र श्रीकृष्ण पुष्पबन्धनरूपी सम्मान प्राप्त होने से मानवती रमणी को परित्याग करके चले गये हैं। हे सखि ! इस स्थान पर श्रीकृष्ण के

चरणचिन्हों के पीछे एक स्त्री का चरणचिन्ह है। इसे देखकर समझा जाता है कि यह स्त्री नितम्ब के भार से मन्दगतिवाली थी, अतएव अनुगमन में असमर्थ होकर भी गन्तव्य स्थान को शीघ्रतापूर्वक गयी है, कारण उसके चरणों के अग्रभाग का चिन्ह धसा हुआ मालूम पड़ता है। हे सखि! इस स्थान से भगवान् श्रीकृष्ण उसको हाथ पकड़कर ले गये हैं, कारण उस रमणी का पादक्षेप पराधीन हो गया है यह स्पष्ट लक्षित हो रहा है॥ देखो, यहाँ से उस मन्दगामिनी के निराश होकर लौटने के चरणचिन्ह दिखायी पड़ते हैं, ऐसा जान पड़ता है कि उस धूर्त ने केवल हस्तस्पर्श करके उसका अपमान किया है॥ ३०-३८॥

नूनमुक्ता त्वरामीति पुनरेष्यामि तऽन्तिकम्।
तेन कृष्णेन येनैषा त्वरिता पदपद्धतिः॥ ३९॥

प्रविष्टो गहनं कृष्णः पदमत्र न लक्ष्यते।
निवर्त्तध्वं शशाङ्कस्य नैतद्दीधितिगोचरे॥ ४०॥

यहाँ श्रीकृष्ण ने अवश्य उस गोपी से कहा है तू यहीं बैठ मैं शीघ्र जाता हूँ, (इस वन में निवास करने वाले राक्षस को मारकर) पुनः तुम्हारे पास आता हूँ, अतएव यहाँ उनके चरणचिन्ह शीघ्रतापूर्वक जाने के समान मालूम पड़ते हैं। श्रीकृष्ण इसी स्थान से घोर वन में प्रवेश कर गये हैं, उसका चरणचिन्ह और दिखलायी नहीं देता, अब लौट चलो, आगे चन्द्र किरण का प्रवेश नहीं है॥ ३९-४०॥

निवृत्तास्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने।
यमुनातीरमागत्य जगुस्तच्चरितं तदा॥ ४१॥

ततो ददृशुरायान्तं विकाशिमुखपङ्कजम्।
गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तारं कृष्णमक्लिष्टचेष्टितम्॥ ४२॥

काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमतिहर्षिता।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राह नान्यदुदैरयत्॥ ४३॥

काचिद् भ्रुभङ्गुरं कृत्वा ललाटफलकं हरिम्।
विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्यां पपौ यन्मुखपङ्कजम्॥ ४४॥

काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलित-विलोचना।
तस्यैव रूपं ध्यायन्ती योगारूढ़ेव चाबभौ ॥ ४५ ॥

ततः काश्चित् प्रियालापैः काश्चिद् भ्रूभङ्गवीक्षणैः।
निन्येऽनुनयमन्याञ्च करस्पर्शेन माधवः ॥ ४६ ॥

ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सह सादरम्।
रराम रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः ॥ ४७ ॥

रासमण्डलबन्धोऽपि कृष्णपार्श्वमनुज्झता।
गोपीजनेन नैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥ ४८ ॥

तब समस्त गोपियाँ श्रीकृष्णदर्शन से निराश होकर यमुनातीर पर आ गयीं और श्रीकृष्णचरितों का गान करने लगीं। अनन्तर गोपीगण ने त्रिलोकी के रक्षक निर्दोष कर्म करने वाले एवं विकसित कमल के समान सुन्दर मुखवाले श्रीकृष्ण को आते हुए देखा। उस समय कोई गोपी उनको आते हुए देखकर अत्यन्त आनन्दित होकर कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! इस प्रकार बोलने लगीं, उसके मुख से अन्य किसी वाक्य का उच्चारण नहीं हो रहा था। कोई गोपी अपनी टेढ़ी भौहों से ललाट सिकोड़कर श्रीहरि को देखती हुई अपने नेत्ररूपी भ्रमरों से उनके मुखकमल का मधु पान करने लगी। कोई गोपी गोविन्द का दर्शन करके निमीलित नेत्रवाली (आँख मूंदकर) श्रीकृष्ण रूप को ध्यान करती हुई योगिनी के समान स्थित रही। तब श्रीमाधव किसी गोपी को मधुरभाषणद्वारा, किसी को भ्रूभङ्गीद्वारा, किसी को हाथ पकड़कर उन्हें अनुनय करने लगे। उस समय उदार चरित श्रीहरि ने उन प्रसन्न गोपियों के साथ रासमण्डल निर्माण कर रमण किया। किन्तु उस समय कोई भी गोपी श्रीकृष्ण चन्द्र के सामीप्य को छोड़ना नहीं चाहती थी, अतएव एक ही स्थान पर सभी को विराजमान रहने के कारण रास का उचित मण्डल नहीं बन सका ॥ ४१-४८ ॥

हस्ते प्रगृह्य चैकैकां गोपिकां रासमण्डलीम्।
चकार तत्करस्पर्श-निमीलितदृशं हरिः ॥ ४९ ॥

ततः स ववृते रासश्चलद्वलयनिःस्वनः।
अनुयातशरत्काव्यगेयगीतिरनुक्रमात् ॥ ५० ॥

कृष्णः शरच्चन्द्रमसं कौमुदीं कुमुदाकरम् ।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः ॥ ५१ ॥

अनन्तर उन गोपीयों में से एक-एक का हाथ पकड़कर श्रीहरि ने रासमण्डल की रचना की । उस समय उनके करस्पर्श से उत्पन्न आनन्द द्वारा सभी गोपियों की आखें मूँद जाती थीं । इसके बाद रासक्रीड़ा आरम्भ हुई । उस रास में गोपीगण के चञ्चल कङ्कनों का मधुर शब्द होने लगा और पुनः शरद्वर्णन सम्बन्धी गीत होने लगे । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र, चन्द्रिका एवं कुमुद-सम्बन्धी गान करने लगे, किन्तु गोपियों ने बार-बार केवल श्रीकृष्णनाम का ही गान किया ॥ ४९-५१ ॥

परिवर्त्तश्रमेणैका चलद्वलयलापिनीम् ।
ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधुनिघातिनः ॥ ५२ ॥

काचित् प्रविलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्ब तम् ।
गोपी गीतस्तुतिव्याज-निपुणा मधुसूदनम् ॥ ५३ ॥

गोपी-कपोल-संश्लेषमभिपत्य हरेर्भुजौ ।
पुलकोद्गमशस्याय स्वेदाम्बुघनतां गतौ ॥ ५४ ॥

रासगेयं जगौ कृष्णो यावत् तारतरध्वनिः ।
साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत् ता द्विगुणं जगुः ॥ ५५ ॥

गते तु गमनं चक्रुर्वलने सम्मुखं ययुः ।
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥ ५६ ॥

पुनः एक गोपी ने नृत्य करती-करती चञ्चल कङ्कन से सुशोभित अपनी बाहुलता मधुसूदन के गले में डाल दी । किसी निपुण गोपी ने भगवान् के गान की प्रशंसा करने के छल से हाथ फैलाकर श्रीमधुसूदन को आलिङ्गन करती हुई उनका मुख चूम लिया । श्रीहरि की दोनों भुजाएँ गोपियों के कपोलों का चुम्बन प्राप्तकर उनमें पुलकावलि (रोमाञ्च) रूप धान्य की उत्पत्ति के लिए स्वेदरूप जल के मेघ बन गयी । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जितने उच्चस्वर से रास के योग्य गान करते थे उससे दो गुने उच्च स्वर से गोपियाँ धन्य कृष्ण ! धन्य कृष्ण ! की ध्वनिकर रही थी । भगवान् के आगे जाने पर गोपियाँ उनके पीछे

चलती और उनके लौटनेपर सामने चलती इस प्रकार वे अनुलोम और प्रतिलोम गमनद्वारा श्रीहरि के साथ रहती थी ॥ ५२-५६ ॥

स तथा सह गोपीभी रराम मधुसूदनः ।
यथाब्दकोटिप्रमितः क्षणस्तेन विनाभवत् ॥ ५७ ॥

ता वार्य्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥ ५८ ॥

सोऽपि कैशोरकवयो मानयन् मधुसूदनः ।
रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥ ५९ ॥

तद्भर्त्तृषु तथा तासु सर्व्वभूतेषु चेश्वरः ।
आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्याप्य सर्व्वमवस्थितः ॥ ६० ॥

यथा समस्तभूतेषु नभोऽग्निः पृथिवी जलम् ।
वायुश्चात्मा तथैवासौ व्याप्य सर्व्वमवस्थितः ॥ ६१ ॥

मधुसूदन के आगे जाने पर गोपियाँ उनके पीछे चलती और उनके लौटने पर सामने चलती इस प्रकार वे अनुलोम और प्रतिलोम गमन द्वारा श्रीहरि के साथ रहती थी । मधुसूदन भी गोपियों के साथ इस प्रकार रास क्रीड़ाकर रहे थे कि उनके बिना एक क्षण भी गोपियों को कोटि वर्षों को समान हो रहा था । वे रास रसिक गोपियाँ माता, पिता और पति आदि के मना करने पर भी रात्रि में श्याम सुन्दर के साथ रमण करती थी । वे शत्रुविनाशी, अमेयात्मा श्रीमधुसूदन भी अपनी किशोरावस्था को मान करते हुए रात्रि के समय उनके साथ रमण करने लगे । सर्वव्यापी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपियों में, उनके पतियों में और समस्त प्राणियों में आत्मस्वरूप से वायु के समान व्याप्त होकर अवस्थित थे । जिस प्रकार आकाश, अग्नि, जल, पृथिवी वायु और आत्मा समस्त प्राणियों में व्याप्त है उसी प्रकार वे भी समस्त पदार्थों में व्याप्त होकर विराजमान हैं ॥ ५७-६१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - चौदहवाँ अध्याय

(वृषभासुर का वध)

प्रदोषार्द्धे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्द्दने ।
त्रासयन् समदो गोष्ठमरिष्टः समुपागतः ॥ १ ॥

सतोय-तोयदच्छायस्तीक्ष्णश्रृङ्गोऽर्कलोचनः ।
खुराग्रपातरत्यर्थं दारयन् वसुधातलम् ॥ २ ॥

लेलिहानः सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः ।
संरम्भाविद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥ ३ ॥

उदग्रककुदाभोगः प्रमाणाद् दुरतिक्रमः ।
विण्मूत्रलिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्वेगकारकः ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—एकदिन सायंकाल के समय जब श्रीकृष्णचन्द्र रास-क्रीड़ा में आसक्त थे, उस समय अरिष्ट नामक वृषभ के आकारवाला एक असुर सबको भयभीत करता हुआ व्रज में उपस्थित हुआ । उसकी कान्ति सजल मेघ के समान थी, सींग अत्यन्त तीक्ष्ण थे, नेत्र सूर्य के समान तेजस्वी थे, और वह असुर अपने खुरों के अग्रभाग से पृथिवी को विदीर्ण करते हुए के समान मालूम पड़ता था । दाँत पीसता हुआ बारबार अपनी जीभ से ओठों को चाट रहा था उसने अपनी पूंछ उठा रखी थी एवं उसके बन्धन कठोर थे । उसके ककुद और शरीर का प्रमाण अत्यन्त उत्तन्‍नष एवं दुर्लघ्य था, पृष्टभाग में गोहर और मूत्र लिपटे हुए थे, वह समस्त गौओं को भयभीत कर रहा था ॥ १-४ ॥

प्रलम्बकण्ठोऽतिमुखस्तरुघाताङ्किताननः ।
पातयन् स गवां गर्भान् दैत्यो वृषभरूपधृक् ।
सूदयंस्तापसानुग्रो वनान्यटति यः सदा ॥ ५ ॥

ततस्तमतिघोराक्षमवेक्ष्यातिभयातुराः ।
गोपा गोपस्त्रिश्चैव कृष्ण कृष्णेति चुक्रुशुः ॥ ६ ॥

सिंहनादं ततश्चक्रे तलशब्दञ्च केशवः ।
तच्छब्दश्रवणाच्चासौ गोविन्दाभिमुखं ययौ ॥ ७ ॥

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः कृष्णकुक्षि-कृतेक्षणः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा कृष्णं वृषभदानवः ॥ ८ ॥

आयान्तं दैत्यवृषभं दृष्ट्वा कृष्णो महाबलः ।
न चचाल ततः स्थानादवज्ञास्मितलीलया ॥ ९ ॥

आसन्नं चैव जग्राह ग्राहवन्मधुसूदनः ।
जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम् ॥ १० ॥

तस्य दर्पबलं भङ्क्तवा गृहीतस्य विषाणयोः ।
अपीड़यदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ॥ ११ ॥

उत्पाट्य श्रृङ्गमेकन्तु तेनैवाताड़यत् ततः ।
ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्वमन् ॥ १२ ॥

तुष्टुवुर्निहते तस्मिन् दैत्ये गोपा जनादर्दनम् ।
जम्भे हते सहस्त्राक्षं पुरा देवगणा यथा ॥ १३ ॥

उसकी ग्रीवा बहुत लंबी और मुख वृक्ष के खोखले के समान अत्यन्त गम्भीर था । वह वृषभरूपधारी दैत्य गोओं के गर्भों को गिराता और तपस्वियों को मारता हुआ सदैव वन में विचरण करता था । तब महाभयानक नेत्रों वाले उस दैत्य को देखकर गोप एवं गोपियाँ भयभीत होकर कृष्ण, कृष्ण पुकारने लगीं । उनके शब्द को सुनकर श्रीकेशव ने घोर सिंहनाद किया और ताली बजायी उसे सुनते ही वह दामोदर के समीप पहुंच गया । दुरात्मा वृषभासुर अपनी सींग के अग्रभाग को सामने करके तथा श्रीकृष्ण चन्द की कुक्षि में दृष्टि लगाकर उनकी और दोड़ा । किन्तु महाबली श्रीकृष्ण वृषभासुर को अपनी ओर आते हुए देखकर अवहेलना से लीलापूर्वक हँसते हुए उस स्थान से विचलित नहीं हुए । समीप आने पर श्रीमधुसूदन ने उसे इस प्रकार पकड़ लिया जैसे ग्राह किसी क्षुद्र जीवको पकड़ लेता है । सींग

पकड़ने से निश्चल हुए उसकी कोख में घटने से प्रहार किया। इस प्रकार सींग पकड़े हुए उस दैत्य का दर्प भंगकर के भगवान् ने अरिष्टसुर की ग्रीवा को गीले वस्त्र के समान मरोड़ दिया। तदनन्तर उसका एक सींग उखाड़कर उस पर प्रहार किया जिससे वह दैत्य अपने मुख से रक्त वमन करता हुआ मर गया। प्राचीन समय में जम्भ के मरने पर जिस प्रकार देवताओं ने इन्द्र की स्तुति की थी उसी प्रकार अरिष्टासुर के मरने पर गोपगण भी जनार्दन की प्रशंसा करने लगे ॥ ५-१३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - पन्द्रहवाँ अध्याय

(श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए कंस द्वारा अक्रूर को भेजना)

ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे धेनुके विनिपातिते ।
प्रलम्बे निहिते वीरे धृते गोवर्द्धनाचले ॥ १ ॥

दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गतरुद्वये ।
हतायां पूतनायाञ्च शकटे परिवर्त्तिते ॥ २ ॥

कंसाय नारदः प्राह यथावृत्तमनुक्रमात् ।
यशोदादेवकीगर्भपरिवर्त्ताद्यशेषतः ॥ ३ ॥

श्रुत्वा तत् सकलं कंसो नारदाद् देवदर्शनात् ।
वसुदेवं प्रति तदा कोपं चक्रे सुदुर्म्मतिः ॥ ४ ॥

सोऽतिकोपादुपालभ्य सर्व्वयादवसंसदि ।
जगर्ह यादगवांश्चैव कार्य्यञ्चैतदचिन्तयत् ॥ ५ ॥

यावन्न बलमारूढ़ौ राम-कृष्णौ सुबालकौ ।
तावदेव मया वध्यावसाध्यौ रूढयौवनौ ॥ ६ ॥

चाणूरोऽत्र महावीर्य्यो मुष्टिकश्च महाबलः ।
एताभ्यां मल्लयुद्धेन घातयिष्यामि दुर्म्मदौ ॥ ७ ॥

धनुर्म्महमहायागव्याजेनानीय तौ व्रजात् ।
तथा तथा यतिष्यामि यास्येते सङ्क्षयं यथा ॥ ८ ।

श्रीपराशरजी बोले—वृषभाकार अरिष्टासुर, धेनुक और प्रलम्बासुर मर गये एवं गोवर्धनधारण, कालियनाग का दमन, ऊँचे दो वृक्ष यमलार्जुनों का भंग,

पूतना का विनाश तथा यशोदा एवं देवकी का परस्पर में अपनी सन्तान का परिवर्तन आदि सभी कार्य हो जाने पर, नारद ने कंस के पास इन समस्त वृतान्तों का वर्णन किया। देवता के समान दर्शन वाले नारद जी से इन समस्त बातों को श्रवण करके दुर्बुद्धि कंस वसुदेव के प्रति अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसने अत्यन्त कोप से समस्त यादवों की सभा में वसुदेव जी को डाँटा और सभी यादवों की भी निन्दा की। पुनः विचार करने लगा कि-ये दोनों बालक राम और कृष्ण जब तक पूर्ण बलवान् नहीं हो जाते तभी तक मुझे इनको मार देना चाहिये, क्योंकि युवावस्था प्राप्त होने पर इनको मार नहीं सकेगें। मेरे यहाँ महावीर्यशाली चाणूर और महाबली मुष्टिक ये दो मल्ल हैं, इनके साथ मंल्लयुद्ध कराके उन दोनों दुर्बुद्धियों को मरवा डालूँगा। धनुर्यज्ञ नामक एक महायज्ञ के छल से उन दोनों बालकों को व्रज से बुलाकर मैं इस प्रकार का उपाय करूँगा। जिससे ये दोनों नष्ट हो जाएँ ॥ १-८ ॥

श्वफल्कतनयं सोऽहमक्रूरं यदुपुङ्गवम्।
तयोरानयनार्थाय प्रेषयिष्यामि गोकुलम् ॥ ९ ॥

वृन्दावनचरं घोरमादेक्ष्यामि च केशिनम्।
तत्रैवासावतिबलस्तावुभौ घातयिष्यति ॥ १० ॥

गजः कुवलयापीड़ो मत्समीपमुपागतौ।
घातयिष्यति वा गोपौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ११ ॥

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कंसो राम-जनादर्द्दनौ।
हन्तुं कृतमतिर्वीरमक्रूरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

भो भो दानपते ! वाक्य क्रियतां प्रीतये मम।
इतः स्यन्दनमारुह्य गम्यतां नन्दगोकुलम् ॥ १३ ॥

वसुदेवसुतौ तत्र विष्णोरंशसमुद्भवौ।
नाशाय किल सम्भूतौ मम दुष्टौ प्रवर्द्धतः ॥ १४ ॥

धनुर्महो ममाप्यत्र चतुर्द्दश्यां भविष्यति।
आनेयौ भवता गत्वा मल्लयुद्धाय तावुभौ ॥ १५ ॥

मैं यदुश्रेष्ठ श्वफल्क के पुत्र शूरवीर अक्रूर को उनको लाने के लिए गोकुल भेजूँगा। उसके बाद वृन्दावनवासी अति बलवान् केशी नामक दैत्य को आदेश करूंगा जिससे वे दोनों बालक वहीं विनष्ट हो जायँ। अथवा कुवलयापीड नामक जो हाथी है वह हाथी भी मेरे आदेशानुसार व्रज से यहाँ आये हुए उन दोनों वसुदेव के बालकों को विनाश कर देगा। श्रीपराशरजी बोले—ऐसा विचारकर उस दुष्टात्मा कंस ने राम और कृष्ण को मारने का निश्चय करके अक्रूरजी से कहा। कंस बोला—हे दानपते ! मेरी प्रसन्नता के लिए मेरी एक बात स्वीकार कर लीजिये तथा आप रथपर चढ़के यहाँ से नन्द गोकुल जाइये। वहाँ विष्णु के अंश से उत्पन्न वसुदेव के दो पुत्र हैं। मेरे नाश के लिए उत्पन्न वे दुष्ट बालक वहाँ पालित हो रहे हैं। मेरे यहाँ आगामी चतुर्दशी को धनुष यज्ञ होने वाला है, अतः आप वहाँ जाकर उन दोनों को मल्लयुद्ध के लिए यहाँ ले आइये ॥ ९-१५ ॥

चाणूर-मुष्टिकौ मल्लौ नियुद्धकुशलौ मम।
ताभ्यां सहानयोर्युद्धं सर्व्वलोकोऽत्र पश्यतु ॥ १६ ॥

नागः कुवलयापीड़ो महामात्रप्रचोदितः।
स वा निहंस्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशु ॥ १७ ॥

तौ हत्वा वसुदेवञ्च नन्दगोपञ्च दुर्म्मतिम्।
हनिष्ये पितरं चैनमुग्रसेनं सुदुर्म्मतिम् ॥ १८ ॥

ततः समस्तगोपानां गोधनान्यखिलान्यहम्।
वित्तं चापि हरिष्यामि दुष्टानां मद्वधैषिणाम् ॥ १९ ॥

त्वामृते यादवाश्चैते दुष्टा दानपते ! मयि।
एतेषाञ्च वधायाहं प्रयतिष्याम्यनुक्रमात् ॥ २० ॥

ततो निष्कण्टकं सर्व्वं राज्यमेतदयादवम्।
प्रशासिष्ये त्वया तस्मान्मत्प्रीत्या वीर ! गम्यताम् ॥ २१ ॥

यथा च माहिषं सर्पिर्दधि वाप्युपहार्य्यं वै।
गोपाः समानयन्त्याशु त्वया वाच्यास्तथा तथा ॥ २२ ॥

इत्याज्ञप्तस्तदाक्रूरो महाभागवतो द्विज।
प्रीतिमानभवत् कृष्णं श्वो द्रक्ष्यामीति सत्वरः ॥ २३ ॥

मेरे चाणूर और मुष्टिक नामक दोनों मल्ल युद्ध (कुश्ती) में अत्यन्त निपुण हैं (उस धनुष यज्ञ के दिन) मेरे इन मल्लों के पहलवानों के साथ उनका द्वन्दयुद्ध यहाँ पर सबलोग देखें। अथवा महावन से प्रेरित होकर कुवलयापीड नामक मेरा गजराज उन दोनों वसुदेव पुत्र बालकों को नष्ट कर देगा। इन दोनों बालकों को विनाश करने के बाद दुर्बुद्धि वसुदेव, नन्दगोप और इस दुर्मति अपने पिता उग्रसेन को भी वध कर दूंगा। तदनन्तर मेरे वध की इच्छावाले इन समस्त दुष्ट गोपों के सम्पूर्ण गोधन और सम्पत्तियों को हरण कर लूंगा। हे दानपते आपको छोड़कर और जितने भी यादवगण हैं वे सभी मेरे से द्वेष करते हैं, अतएव पश्चात् मैं क्रमशः इन सभी को भी नाश करने का प्रयत्न करूंगा। उसके बाद मैं यह निष्कण्टक एवं यादवों से विहीन राज्य आपके साथ मिलकर भोगूंगा, अतएव हे वीर ! मेरी प्रसन्नता के लिए आप शीघ्र जाइये। आप गोकुल में जाकर गोपगण से इस प्रकार बोले जिससे वे सब भैंस के घी, दही आदि उपहारों के साथ शीघ्र यहाँ आ जायँ। श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज ! महाभागवत अक्रूरजी कंस की ऐसी आज्ञा पाकर कल में श्रीकृष्णचन्द्र को देखूंगा ऐसा विचार कर बहुत आनन्दित हुए ॥ १६-२३ ॥

तथेत्युक्त्वा च राजानं रथमारुह्य शोभनम्।
निश्चकाम ततः पुर्य्या मथुराया मधुप्रियः ॥ २४ ॥

अनन्तर माधवप्रिय अक्रूरजी 'यही होगा' ऐसा कहकर और एक सुन्दर रथ पर चढ़कर मथुरापुरी से बाहर निकल आये ॥ २४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - सोलहवाँ अध्याय

(केशी वध)

केशी चापि बलोदग्रः कसदूत-प्रणोदितः ।
कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत् ॥ १ ॥
स खुरक्षतभूपृष्ठः सटाक्षेपधूताम्बुदः ।
प्लुतविक्रान्तचन्द्रार्कमार्गे गोपानुपाद्रवत् ॥ २ ॥

तस्य ह्रेषितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः ।
गोप्यश्च भयसंविघ्ना गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ३ ॥
त्राहि त्राहीति गोविन्दः श्रुत्वा तेषां तदा वचः ।
सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥ ४ ॥
अलं त्रासेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः ।
भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरवीर्य्यं विलोप्यते ॥ ५ ॥
किमनेनाल्पसारेण ह्रेषिताटोपकारिणा ।
दैतेयबलावहेन वल्गता दुष्टवाजिना ॥ ६ ॥
एह्येहि दुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकधृक् ।
पातयिष्यामि दशनान् वदनादखिलांस्तव ॥ ७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—कंस के दूतद्वारा भेजा गया महाबली केशी भी कृष्ण को मारने की इच्छा से वृन्दावन में आया । वह अपने खुरों से पृथिवीतल को खोदता हुआ तथा ग्रीवा के बालों से बादलों को छिन्न भिन्न करता हुआ ग्वालों की ओर दौड़ा । अश्वरूपधारी उस दैत्य के हिनहिनाने के शब्द से भयभीत गोपाल और गोपीगयों गोविन्द की शरण में पहुंचे । तब उन गोपों के त्राहि, त्राहि यह शब्द सुनकर

गोविन्द मेघ की गर्जना के समान गम्भीर भाव से वाक्य बोले । श्रीकृष्ण बोले—हे गोपालगण ! आप लोग केशी से भय क्यों करते हैं ? आप लोग गोपजाति के होकर भी इस प्रकार भयातुर होकर वीरोचित पुरुषार्थ का परित्याग क्यों करते हैं ? । जो अल्प पराक्रमी हिनहिनानेमात्र से ही केवल आतङ्क फैलानेवाला और नाचनेवाला दुष्ट अश्व जिस पर राक्षसगण आरोहण करते हैं, उससे आप लोगों को क्या कष्ट होगा ? । (इस प्रकार गोपों को धैर्य धारण कराकर श्रीकृष्ण बोले—अरे दुष्ट ! इस ओर आओ, पिनाकधारी वीरभद्र ने जिस प्रकार पूषा के दाँत उखाड़ लिये थे उसी प्रकार मैं कृष्ण तेरे मुख से समस्त दाँत उखाड़ दूँगा ॥ १-७ ॥

इत्युक्त्वास्फोट्य गोविन्दः केशिनः सम्मुखं ययौ ।
विधृतास्यस्तु सोऽप्येनं दैतेयश्चाप्युपाद्रवत् ॥ ८ ॥

बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनार्द्दनः ।
प्रवेशयामास तदा केशिनो दुष्टवाजिनः ॥ ९ ॥

केशिनो वदनं तेन विशता कृष्णबाहुना ।
शातिता दशनाः पेतुः सिताभ्रावयवा इव ॥ १० ॥

कृष्णस्य ववृधे बाहुः केशिदेहगतो द्विज ।
विनाशाय यथा व्याधिरासम्भूतेरुपेक्षितः ॥ ११ ॥

विपाटितोष्ठो बहुलं सफेनं रुधिरं वमन् ।
सोऽक्षिणी विवृते चक्रे निःसृते मुक्तबन्धने ॥ १२ ॥

जघान धरणीं पादैः शकृन्मूत्र समुत्सृजन् ।
स्वेदार्द्रगात्रः श्रान्तश्च निर्यत्नः सोऽभवत् ततः ॥ १३ ॥

व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना ।
निपपात द्विधाभूतो वैद्युतेन द्रुमो यथा ॥ १४ ॥

द्विपादपृष्ठपुच्छार्द्धे श्रवणैकाक्षिनासिके ।
केशिनस्ते द्विधाभूते शकले द्वे विरेजतुः ॥ १५ ॥

हत्वा तु केशिनं कृष्णो गोपालैर्मुदितैर्वृतः ।

अनायस्ततनुः स्वस्थो हसंस्तत्रैव तस्थिवान् ॥ १६ ॥

ततो गोप्यश्च गोपाश्च हते केशिनि विस्मिताः ।

तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् ॥ १७ ॥

ऐसा कहकर श्रीगोविन्द उछलकर केशी के सामने आ गये और वह अश्वरूपधारी दैत्य भी मुख खोलकर उनके ऊपर दौड़ा। उस समय जनार्दन ने अपना हाथ फैलाकर उस दुष्ट अश्वरूपधारी केशी के मुख में प्रवेश करा दिया। अनन्तर केशी के मुख में प्रविष्ट कृष्ण के हाथ से उसके सभी दाँत टूट गये। और श्वेत मेघखण्ड के समान मुख से बाहर गिरने लगे। हे द्विज ! जन्म के समय में ही उपेक्षा की गयी व्याधि जिस प्रकार विनाश के लिए बढ़ती जाती है उसी प्रकार केशी के देह में प्रविष्ट हुआ श्रीकृष्ण का हाथ भी बढ़ने लगा। वह ओठों के फट जाने से फेनासहित रक्त वमन करने लगा और स्नायुबन्धन के शिथिल हो जाने से उसकी आँखें फूट गयीं। इसके बाद वह मलमूत्र छोड़ता हुआ पृथिवीपर पाँव पटकने लगा तथा उसका शरीर पसीने से भरकर ठण्डा पड़ गया और वह निश्चेष्ट हो गया। इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र के बाहु से फैलाया गये मुख वाला वह असुर मृत्यु को प्राप्तकर वज्रपात से गिरे हुए वृक्ष के समान दो टुकड़ा होकर पृथिवीपर गिर पड़ा। केशी के शरीर के वे दोनों टुकड़ों, दो पाँव, आधी पीठ, आधी पूंछ, तथा एक एक कान, आँख और नाक की छेद के साथ सुशोभित होने लगे। केशी का वध करके आनन्दित गोपालगण से घिरे हुए श्रमरहित देहवाले स्वस्थचित्त भगवान् श्रीकृष्ण हास्य करते हुए वहीं स्थित रहे। इसके बाद केशी के मारे जाने से विस्मित गोप एवं गोपियों ने प्रेमवश अत्यन्त सुन्दर दीखनेवाले कमललोचन श्रीश्यामसुन्दर की स्तुति की ॥ ८-१७ ॥

अथाहान्तरितो विप्रो नारदो जलदे स्थितः ।

केशिनं निहतं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानसः ॥ १८ ॥

साधु साधु जगन्नाथ लीलयैव यदच्युत !

निहतोऽयं त्वया केशी क्लेशदस्त्रिदिवौकसाम् ॥ १९ ॥

युद्धोत्सुकोऽहमत्यर्थं नरवाजि-महाहवम्।
अभूतपूर्व्वमन्यत्र द्रष्टुं स्वर्गादुपागतः ॥ २० ॥

कर्म्माण्यत्रावतारे ते कृतानि मधुसूदन !
यानि तैर्विस्मितं चेतस्तोषमेतेन मे गतम् ॥ २१ ॥

तुरङ्गस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण ! देवाश्च विभ्यति।
धुतकेशरजालस्य ह्रेषतोऽभ्रावलोकिनः ॥ २२ ॥

यस्मात् त्वयैव दुष्टात्मा हतः केशी जनार्द्दन !
तस्मात् केशवनाम्ना त्वं लोके गेयो भविष्यसि ॥ २३ ॥

स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि कंसयुद्धेऽधुना पुनः।
परश्वोऽहं समेष्यामि त्वया केशिनिसूदन ॥ २४ ॥

उग्रसेनसुते कंसे सानुगे विनिपातिते।
भारावतारकर्त्ता त्वं पृथिव्याः पृथिवीधर ॥ २५ ॥

हे विप्र ! केशी को मृत देखकर बादलों में छिपे हुए श्रीनारदजी करने लगे—हे जगन्नाथ ! हे अच्युत ! आपका पराक्रम धन्य है, अति धन्य है। कारण आपने देवगण को क्लेश देनेवाले इस केशी का लीलापूर्वक वध कर दिया। मैं, मनुष्य और अश्व के इस अभूतपूर्व युद्ध को देखने के लिए युद्ध-दर्शनाभिलाषी होकर स्वर्ग से यहाँ आया हूँ। हे मधुसूदन ! आपने इस अवतार से जिन सुन्दर कार्यों का सम्पादन किया है उन समस्त कार्यों से विस्मित मेरे चित्त में अत्यन्त सन्तोष हुआ है। हे कृष्ण ! यह अश्व जब अपनी जटाओं को फड़फड़ाता था तथा हिनहिनाकर आकाश की ओर देखता तो इसे देखकर देवगण और स्वयं इन्द्र भी भयभीत हो जाते थे। हे जनार्दन ! आपने इस दुरात्मा असुर केशी का वध किया, अतएव आप 'केशव' नाम से संसार में प्रसिद्ध होंगे। हे केशिनिषूदन ! आपका मङ्गल हो; अब मैं जाता हूँ। परसों कंस के साथ आपका युद्ध होने के समय पुनः आऊँगा। हे पृथिवीधर ! अनुचरों के साथ उग्रसेन के पुत्र कंस के मारे जाने के बाद आप पृथिवी का भार उतारेंगे ॥ १८-२५ ॥

तत्रानेकप्रकाराणि युद्धानि पृथिवीक्षिताम्।
द्रष्टव्यानि मया युस्मत्प्रणीतानि जनार्द्दन ॥ २६ ॥

सोऽहं यास्यामि गोविन्द ! देवकार्य्यं महत् कृतम् ।
त्वया सभाजितश्चायं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ २७ ॥

नारदे तु गते कृष्णः सह गोपैरविस्मितः ।
विवेश गोकुलं गोपी-नेत्रपानैकभाजनम् ॥ २८ ॥

हे जनार्दन ! पृथ्वी का भार उतारने के समय मैं अनेक राजाओं के साथ आपकी इच्छा से सम्पन्न होने वाले अनेक युद्ध देखूगा । हे गोविन्द ! अब मैं इस समय जा रहा हूँ, आपने देवताओं का महान् कार्य सम्पन्न किया और आपके इस कार्य से देवगण भी आपके द्वारा सम्मानित हुए, आपका कल्याण हो, मैं जाता हूँ । श्रीपराशरजी बोले—नारदजी के चले जाने के बाद गोपगण से सम्मानित एवं गोपियों के नेत्रों के एकमात्र दृश्य अविस्मित श्रीकृष्णचन्द्र ने गोप और गोपीयों के साथ गोकुल में प्रवेश किया ॥ २६-२८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - सत्रहवाँ अध्याय

(अक्रूरजी की गोकुल-यात्रा)

अक्रूरोऽपि विनिष्क्रम्य स्यन्दनेनाशुगामिना।
कृष्णसन्दर्शनायैकः प्रययौ नन्दगोकुलम्॥ १॥

चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया।
योऽहमंशावतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चक्रिणः॥ २॥

अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाता च मे निशा।
यदुन्निद्राब्जपत्राक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम्॥ ३॥

अद्य मे सफले नेत्रे अद्य मे सफला गिरः।
यन्मे परस्परालापो दृष्ट्वा विष्णुं भविष्यति॥ ४॥

पापं हरति यत् पुंसां स्मृतं सङ्कल्पनामयम्।
तत् पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम्॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले—अक्रूरजी भी शीघ्र मथुरापुरी से निकलकर श्रीकृष्ण-दर्शन की अभिलाषा से शीघ्रगामी रथपर बैठकर नन्दगोकुल को चल दिये। रास्ते में जाते हुए अक्रूर जी सोचने लगे—मेरे समान कोई भी व्यक्ति धन्य नहीं हैं। कारण मैं अंशरूप से अवतीर्ण चक्रधारी श्रीविष्णुभगवान् के मुख को अपने नेत्रों से देखूँगा। आज मेरा जन्म सफल होगा, मेरे लिये आज की रात्रि सुन्दर प्रभातवाली थी, क्योंकि आज मैं विकसित कमल के समान नेत्रों वाले भगवान् के मुख का दर्शन करूँगा। मेरे नेत्र और वचन आज सफल होंगे, श्रीविष्णु भगवान् का दर्शन करूँगा एवं उनसे मेरा परस्पर वार्तालाप होगा। कल्पनाद्वारा भी जिस मुख को स्मरण करने से सम्पूर्ण पाप विनष्ट होता है आज मैं उसी कमल के समान नेत्रों से सुशोभित श्रीविष्णुभगवान् के मुख का दर्शन करूँगा॥ १-५॥

निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च ।
द्रक्ष्यामि तत् परं धाम धाम्नां भगवतो मुखम् ॥ ६ ॥

यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः ।
इज्यते योऽखिलाधारस्तं द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥ ७ ॥

इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम् ।
अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥ ८ ॥

न ब्रह्मा नेन्द्र-रुद्रा-श्विव-वस्वा-दित्य-मरुद्गणाः ।
यस्य स्वरूपं जानन्ति स्प्रक्ष्यत्यङ्गं स मे हरिः ॥ ९ ॥

सर्व्वात्मा सर्व्ववित् सर्व्वः सर्व्वभूतेष्ववस्थितः ।
यो वितत्याव्ययो व्यापी स वक्ष्यति मया सह ॥ १० ॥

मत्स्य-कूर्म-वराहा-श्व-सिंहरूपादिभिः स्थितिम् ।
चकार जगतो योऽजः सोऽद्य मामालपिष्यति ॥ ११ ॥

साम्प्रतञ्च जगत्स्वामी कार्य्यमात्महृदि स्थितम् ।
कर्त्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्वेच्छादेहधृगव्ययः ॥ १२ ॥

योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शेखरस्थितिसंस्थिताम् ।
सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्रूरेति वक्ष्यति ॥ १३ ॥

जिनसे चारों वेद और सम्पूर्ण वेदाङ्ग प्रकट हुए हैं, तथा जो मुख सूर्यादि समस्त तेजस्वियों का आश्रय है आज मैं उसी भगवान् के तेजोमय मुख का दर्शन करूँगा । जो सभी का आश्रय है, जो पुरुषोत्तम है और समस्त यज्ञों में जिनका यजन होता है अहो ! आज मैं उन्हीं जगत्पति का दर्शन करूँगा । एक सौ यज्ञों से जिनका यजन करके इन्द्र ने देवराज पद प्राप्त किया और जिनका आदि और अन्त नहीं है आज मैं उन्हीं केशव का दर्शन करूँगा । ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्रगण, अश्विनीकुमार, वसुगण एवं मरुद्गण भी जिनका स्वरूप नहीं जानते, अहो ! वही हरि आज मेरे अङ्ग का स्पर्श करेंगे । जो सभी के आत्मा हैं, जो सभी को जानते हैं, जो सभी के स्वरूप हैं, अव्यय हैं, तथा जो व्यापकरूप से समस्त प्राणियों में निवास करते हैं वही भगवान् श्रीविष्णु आज मेरे साथ वार्तालाप करेंगे । अहो ! जिन्होंने मत्स्य, कूर्म, वाराह हयग्रीव और

नृसिंह आदि रूपों से अवतार लेकर जगत् की स्थिति की है तथा जो अजन्मा है वही आज मेरे साथ वार्तालाप करेंगे। जिन्होंने जगत् के स्वामी होकर भी कार्य के सम्पादन के लिये मनुष्यरूप धारण किया है। जो अव्यय अपनी इच्छा के अनुकूल रूप धारण करते हैं और जो अनन्तरूप से अपने मस्तक पर पृथिवी को धारण करते हैं, जगत् के मङ्गल के लिए अवतीर्ण हुए वही भगवान् श्रीविष्णु मुझे 'अक्रूर'! ऐसा कहकर सम्बोधन करेंगे ॥ ६-१३ ॥

पितृ-पुत्र-सुहृद्-भ्रातृ-मातृ-बन्धुमयीमिमाम्।
यन्मायां नालमुत्तर्त्तु जगत् तस्मै नमो नमः ॥ १४ ॥

तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन् निवेशिते।
योगी मायाममेयाय तस्मै विद्यात्मने नमः ॥ १५ ॥

यज्विभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च सात्वतैः।
वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥ १६ ॥

यथा तत्र जगद्धाम्नि धातर्य्येतत् प्रतिष्ठितम्।
सदसत् तेन सत्येन मय्यसौ यातु सौम्यताम् ॥ १७ ॥

स्मृते सकलकल्याण-भाजनं यत्र जायते।
पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥ १८ ॥

जगत्, पिता, पुत्र, सुहृद्, भ्राता, माता और बन्धुरूपिणी जिनकी माया को पार करने में सर्वथा असमर्थ है उन मायापति को बारबार नमस्कार है। जिनको हृदय में प्रवेश होने पर योगी विस्तृत अविद्या रूपिणी माया को पार कर जाता है उन्हीं अमेयविद्यात्मा भगवान् को नमस्कार है। जिन्हें याज्ञिकगण, यज्ञपुरुष, सात्वत गण, वासुदेव और वेदान्तवेत्ता विष्णु करते हैं उन्हें बारबार नमस्कार है। जिस (सत्य) से यह सदसद्रूप जगत् उस जगदाधार विधाता में ही स्थित है उसी सत्यबल से वे प्रभु मेरे ऊपर प्रसन्न हों। जिनके स्मरणमात्र से पुरुष सर्वथा कल्याणपात्र बन जाता है उन अजन्मा हरि की शरण मैं सर्वदा प्राप्त होता हूँ ॥ १४-१८ ॥

इत्थं सञ्चिन्तयन् विष्णुं भक्तिनम्रात्ममानसः।
अक्रूरो गोकुलं प्राप्तः किञ्चित् सूर्य्ये विराजति ॥ १९ ॥

स ददर्श तदा तत्र कृष्णमादोहने गवाम्।
वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम्॥ २०॥

अस्पष्टपद्मपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
प्रलम्बबाहुमायामि-तुङ्गोरःस्थलमुन्नसम्॥ २१॥

सविलासस्मिताधारं बिभ्राणं मुखपङ्कजम्।
तुङ्गरक्तनखं पद्भ्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम्॥ २२॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! भक्तिविनम्रचित्त अक्रूर जी इस प्रकार श्रीविष्णु-भगवान् का चिन्तन करते हुए सूर्यास्त से कुछ पूर्व ही नन्दगोकुल में पहुंच गये। वहाँ पहुंचने पर उन्होंने सर्वप्रथम विकसित नीलकमल के समान कान्तिवाले श्रीकृष्ण को गायों के दोहन स्थान में बछड़ों के बीच में विराजमान देखा। और देखा कि उनके नेत्र नीलकमल के समान थे, वक्षः स्थल श्रीवत्सचिन्ह से सुशोभित था। दोनों बाहु लम्बे थे। वक्षःस्थल विशाल एवं उन्नत था तथा नासिका भी उन्नत थी। और जो मनोहर मुखारबिन्द से सुशोभित थे तथा उन्नत और रक्तनखयुक्त चरणों से पृथिवी पर विराजमान हो रहे थे॥ १९-२२॥

विभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम्।
सार्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम्॥ २३॥

हंसकुन्देन्दुधवल नीलाम्बरधरं द्विज !
तस्यानु बलभद्रञ्च ददर्श यदुनन्दनम्॥ २४॥

प्राशुमुन्नतबाह्व सं विकाशिमुखपङ्कजम्।
मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिभिवापरम्॥ २५॥

जो दो पीताम्बर धारण किये थे, वन्य पुष्पों से विभूषित थे तथा जिनका श्वेतकमल के आभूषणों से युक्त श्यामशरीर सचन्द्र नीलाचल के समान सुशोभित था। हे द्विज ! श्रीयदुनन्दन के पीछे उन्होंने हंस, कुन्द और चन्द्रमा के समान गौरवर्ण नीलाम्बरधारी बलभद्रजी को देखा। जिनकी भुजाएँ विशाल, थी, कन्धे उन्नत थे, मुखकमल खिला हुआ था तथा जो मेघमाला से घिरे हुए दूसरे कैलासपर्वत के समान सुशोभित हो रहे थे॥ २३-२५॥

तौ दृष्ट्वा विकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः ।
पुलकाञ्चितसर्व्वाङ्गस्तदाक्रूरोऽभवन्मुने ॥ २६ ॥

एतत् तत् परमं धाम तदेतत् परमं पदम् ।
भगवद्वासुदेवांशो द्विधा योऽयमवस्थितः ॥ २७ ॥

साफल्यमक्ष्णोर्युगमेतदत्र दृष्टे जगद्धातरि यातमुच्चैः ।
अप्यङ्गमेतद् भगवत्प्रसादाद् दत्तेऽङ्गसङ्गे फलवन्मम स्यात् ॥२८ ॥

अप्येष पृष्ठे मम हस्तपद्म करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्त्तिः ।
यस्याङ्गु लिस्पर्शहताखिलाधेरवाप्यते सिद्धिरनाशदोषा ॥ २९ ॥
येनाग्निविद्युद्रविरश्मिमाला करालमत्युग्रमपास्य चक्रम् ।
चक्रंघ्नता दैत्यपतेर्हृतानि दैत्याङ्गनानां नयनाञ्जनानि ॥ ३० ॥

हे मुने ! उन श्रीकृष्ण और बलरामजी को देखकर अक्रूर का मुखकमल विकसित हो गया और उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया । इन दो रूपों में जो यह भगवान् वासुदेव का अंश स्थित है वही परमधाम और वही परमपद है । इन जगद्विधाता के दर्शन करने से मेरे ये दोनों नेत्र आज सफल हो गये, किन्तु भगवत्कृपा से इनका अंगसङ्ग पाकर मेरा शरीर भी क्या सफल हो सकेगा ? । जिनकी अङ्गुली के स्पर्शमात्र से समस्त पापों से मुक्त हुए पुरुष मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, क्या वही उन्नत मूर्ति श्रीमान् हरि मेरी पीठपर अपना हस्तकमल रखेंगे । जिन्होंने विद्युत्, अग्नि और सूर्य की किरणमाला के समान अपने चक्र के प्रहार से दैत्यपति के सेनासमूह को विनाश करते हुए असुर रमणियों की आंखों का अञ्जन हरण किया था अर्थात् अपने अपने पतियों का विनाश देखकर निरन्तर धारारूप में प्रवाहित आंशुओं से दैत्यस्त्रीगण की आंखों का जो काजल धुला गया था उसका कारण भगवान् थे ॥ २६-३० ॥

यत्राम्बु विन्यस्य बलिर्म्मनोज्ञानवाप भोगान् वसुधातलस्थः ।
तथामरत्वं त्रिदशाधिपत्यं मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रुः ॥ ३१ ॥

अप्येष मां कंसपरिग्रहेण दोषास्पदीभूतमदोषदुष्टम् ।
कर्त्तावमानोपहतं धिगस्तु तज्जन्मनः साधुबहिष्कृतं यत् ॥ ३२ ॥

ज्ञानात्मकस्यामलसत्त्वराशेरपेतदोषस्य सदा स्फुटस्य
किं वा जगत्यत्र समस्तपुंसामज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य ।३३ ॥

तस्मादहं भक्तिविनम्रचेता व्रजामि सर्व्वेश्वरमीश्वराणाम् ।
अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य अनादिमध्यान्तमयस्य विष्णोः ॥ ३४ ॥

बलिराजा ने जिनको एक जलबिन्दु प्रदान करके पृथिवीतल में अत्यन्त रमणीय भोग और देवत्व प्राप्तिपूर्वक शत्रुविहीन होकर इन्द्रपद पाया था । वे ही श्रीविष्णुभगवान् निर्दोष मुझे भी कंस के संसर्ग होने से दोषी मानकर क्या मेरा अपमान करेंगे ! मेरे समान साधूजन से तिरस्कृत पुरुष के जन्म को धिक्कार है । अथवा संसार में ऐसी कौन वस्तु है जो उन ज्ञानस्वरूप शुद्धसत्त्वराशि, दोषरहित, नित्यप्रकाश और सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में विराजमान प्रभु को ज्ञात न हो । अतएव मैं उन ईश्वरों के ईश्वर, आदि, मध्य और अन्तरहित पुरुषोत्तम भगवान् श्रीविष्णु के अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्र के समीप जाता हूँ और मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे मेरा अपमान नहीं केरेंगे ॥ ३१-३४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पंञ्चम अंश में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - अट्ठारहवाँ अध्याय

(श्री कृष्ण का मथुरा को जाना)

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपागम्य स यादवः ।
अक्रूरोऽस्मीति चरणौ ननाम शिरसा हरेः ॥ १ ॥

सोऽप्येनं ध्वजवज्राब्ज-कृतचिन्हेन पाणिना ।
संस्पृश्याकृष्य च प्रीत्या सुगाढं परिषस्वजे ॥ २ ॥

कृतसंवादनौ तेन यथावद् बल-केशवौ ।
ततः प्रविष्टौ संहृष्टौ तमादायात्ममन्दिरम् ॥ ३ ॥

सह ताभ्यां तदाक्रूरः कृतसंवादनादिकः ।
भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचचक्षे ततस्तयोः ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! पूर्वोक्त प्रकार से विचार करने के बाद यदुवंशीय अक्रूरजी ने श्रीगोविन्द के समीप पहुंचकर 'मैं अक्रूर हूँ' ऐसा कहते हुए उनके श्रीचरणों को नम्र मस्तक से प्रणाम किया । उस समय भगवान् ने भी ध्वजा, वज्र एवं कमल से चिन्हित अपने करकमलों से प्रेमपूर्वक उनको अपनी ओर खींचकर गाढभाव से आलिङ्गन किया । अनन्तर अक्रूरजी के यथायोग्य प्रणाम आदि करके श्रीबलराम जी और श्रीकृष्ण अति प्रसन्न होकर उनको साथ में लेकर अपने घर में प्रवेश किया । पुनः उनके द्वारा सत्कृत होकर और यथारीति भोजन आदि कर लेने के बाद उनसे समस्त वृत्तान्त कहने लगे ॥ १-४ ॥

यथा निर्भर्त्स्यते तेन कंसेनानकदुन्दुभिः ।
यथा च देवकी देवी दानवेन दुरात्मना ॥ ५ ॥

उग्रसेने यथा कंसः सुदुरात्मा च वर्त्तते ।
यं चैवार्थं समुद्दिश्य स कंसेन विसर्ज्जितः ॥ ६ ॥

तत् सर्व्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान् केशिसूदनः ।
उवाचाखिलमप्येतज्ज्ञातं दानपते ! मया ॥ ७ ॥

करिष्ये च महाभाग ! यदत्रौपयिकं मतम् ।
विचिन्त्यं नान्यथैतत् ते विद्धि कंसं हतं मया ॥ ८ ॥

अहं रामश्च मथुरा श्वो यास्यावः समं त्वया ।
गोपवृद्धाश्च यास्यन्ति आदायोपायनं बहु ॥ ९ ॥

निशेयं नीयतां वीर ! न चिन्तां कर्त्तुमर्हसि ।
त्रिरात्राभ्यन्तरे कंसं हनिष्यामि सहानुगम ॥ १० ॥

जिस प्रकार दुरात्मा दानव कंस ने आनकदुन्दुभि वसुदेव और देवकी की भर्त्सना की थी, तथा जिस प्रकार वह दुरात्मा अपने पिता उग्रसेन के साथ दुर्व्यवहार कर रहा था और जिस कारण उनको वृन्दावन भेजा है । भगवान् केशिसूदन उन समस्त वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक श्रवण करके अक्रूर से बोले—मैं इन सभी विषयों को जानता हूँ । श्रीकृष्ण ने कहा कि इस विषय में जिस उपाय के द्वारा कार्यसिद्धि होगा मैं उसी उपाय का अवलम्बन करूँगा । आप अन्यथा विचार न करें, आप समझे कि मैंने कंस का विनाश कर दिया । कल मैं और बलराम—दोनों आपके साथ मथुरा चलेंगे और हमारे साथ गोपगण भी उपहार के लिये बहुत धन लेकर चलेंगे । हे वीर ! आप चिन्ता न करें, स्वच्छन्दभाव से रात बिताइये, मैं तीन रात के भीतर ही अनुचरों के साथ कंस का विनाश करूँगा ॥ ५-१० ॥

समादिश्य ततो गोपानक्रुरोऽपि सकेशवः ।
सुष्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे सुखम् ॥ ११ ॥

ततः प्रभाते विमले कृष्ण-रामौ महामती ।
अक्रूरेण समं गन्तुमुद्यतौ मथुरां प्रति ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा गोपीजनः सास्त्रः श्लथद्वलयबाहुकः ।
निःश्वस्य चातिदुःखार्त्तः प्राह चेदं परस्परम् ॥ १३ ॥

मथुरां प्राप्य गोविन्दः कथं गोकुलमेष्यति ।
नागरस्त्री-कलालापमधु श्रोत्रेण पास्यति ॥ १४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनन्तर श्रीकृष्ण, बलराम और अक्रूरजी ने समस्त गोपगण को कंस का वृत्तान्त सुनाकर नन्दगोप के घर में सुखपूर्वक शयन किया। इसके बाद प्रातःकाल में महामति श्रीकृष्ण, बलराम अक्रूर के साथ मथुरा जाने के लिए तैयार हुए। उस समय मथुरा जाने के लिए तैयार श्रीकृष्ण को देखकर गोपियाँ अत्यन्त दुःख से पीड़ित हुई और उनके हाथों के कङ्गण ढीले हो गये, वे अश्रुपूर्ण निःश्वास छोड़ती हुई परस्पर में कहने लगीं। अब मथुरापुरी जाकर श्रीकृष्ण गोकुल में क्यों आयेंगे? क्योंकि वहाँ तो ये अपने कानों से नगर की स्त्रियों के सुमधुर आलापरूपी मधु का ही पान करेंगे ॥ ११-१४ ॥

विलासिवाक्यपानेषु नागरीणां कृतास्पदम् ।
चित्तमस्य कथं भूयो ग्राम्यगोपीषु यास्यति ॥ १५ ॥

सारं समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम् ।
प्रहृतं गोपयोष्तिसु निर्गुणेन दुरात्मना ॥ १६ ॥

भावगर्भस्मितं वाक्यं विलासललिता गतिः ।
नागरीणामतीवैतत् कटाक्षेक्षितमेव च ॥ १७ ॥

ग्राम्यो हरिरयं तासां विलासनिगड़ैर्युतः ।
भवतीनां पुनः पार्श्वं कया युक्तया समेष्यति ॥ १८ ॥

एषैष रथमारुह्य मथुरां याति केशवः ।
क्रूरेणाक्रूरकेणात्र निराशेन प्रतारितः ॥ १९ ॥

किं न वेत्ति नृशंसोऽत्र अनुरागपरं जनम !
येनेममक्ष्णोराह्लादं नयत्यन्यत्र नो हरिम् ॥ २० ॥

एष रामेण सहितः प्रयात्यत्यन्तनिर्घृणः ।
रथमारुह्य गोविन्दगस्त्वर्य्यतामस्य वारणे ॥ २१ ॥

गुरूणामग्रतो वक्तुं किं ब्रवीषि न नः क्षमम् ।
गुरवः किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहाग्निना ॥ २२ ॥

नन्दगोपमुखा गोपा गन्तुमेते समुद्यताः ।
नोद्यमं कुरुते कश्चिद् गोविन्दविनिवर्त्तने ॥ २३ ॥

सुप्रभाताद्य रजनी मथुरावासियोषिताम् ।
पास्यन्त्यच्युतवक्त्राब्जं यासां नेत्रालिपङ्क्तयः ॥ २४ ॥

धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्त्यनिवारिताः ।
उद्वहिष्यन्ति पश्यन्तः स्वदेहं पुलकाञ्चितम् ॥ २५ ॥

नगर की स्त्रियों के विलासयुक्त वाक्यों के रसपान में आसक्त होकर पुनः उनका चित्त गंवार गोपियों की ओर क्यों जायगा । आज निर्दयी दुरात्मा विधाता ने सम्पूर्ण व्रज के सर्वस्व कृष्ण को हरणकर हम गोपनारियों पर प्रहार किया है । नगर की रमणियों में भावपूर्ण, मुसकानयुक्त वचन, विलासपूर्ण मनोहर गमन, कटाक्षपूर्ण चितवन—ये समस्त स्वभाव से ही अधिक होते हैं । अतएव उनके विलास बन्धनों से बन्धकर यह ग्राम्य हरि पुनः किस वजह से तुम्हारे पास आयगा । देखो, देखो, क्रूर एवं निर्दयी अक्रूरद्वारा छलित होकर ये श्रीकृष्ण रथपर चढ़े हुए मथुरा जा रहे हैं । यह नृशंस अक्रूर क्या अनुरक्त जनों के हृदय का भाव तनिक भी जानता है ? जो यह इस प्रकार हमारे नयनानन्दवर्धक हरि को अन्यत्र ले जाता है । देखो, यह अत्यन्त निष्ठुर गोविन्द राम के साथ रथपर चढ़कर जा रहे हैं, तुम इनको शीघ्र रोको । अरी ! तू यह क्या कह रही है कि अपने गुरुजनों के समक्ष हम ऐसा नहीं कर सकता; भला अब विरहाग्नि में भस्मीभूत होने वाली हम लोगों को गुरुजन क्या करेंगे ? । जो लोग इधर से बिना रुकावट के श्रीकृष्ण चन्द्र का अनुगमन कर रहे हैं वे लोग धन्य हैं, क्योंकि वे उनका दर्शन करते हुए अपने रोमाञ्चयुक्त शरीर को धारण करेंगे ॥ १५-२५ ॥

मथुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः ।
गोविन्दावयवैर्दृष्टैरतीवाद्य भविष्यति ॥ २६ ॥

को नु स्वप्नः सुभाग्याभिर्दृष्टस्ताभिरधोक्षजम्।
विस्तारिकान्तिनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारितम्॥ २७॥

अहो गोपीजनस्यास्य दर्शयित्वा महानिधिम्।
उद्धृतान्यत्र नेत्राणि विधात्राकरुणात्मना॥ २८॥

अनुरागेण शैथिल्यमस्मासु व्रजता हरेः!
शैथिल्यमुपयान्त्याशु करेषु वलयान्यपि॥ २९॥

अक्रूरः क्रूरहृदयः शीघ्रं प्रेरयते हयान्।
एवमार्त्तासु योषित्सु घृणा कस्य न जायते॥ ३०॥

हा हा कृष्णरथस्योच्चैश्चक्ररेणुर्निरीक्ष्यताम्।
दूरीकृतो हरिर्येन सोऽपि रेणुर्न लक्ष्यते॥ ३१॥

इत्येवमतिहार्द्देन गोपीजननिरीक्षितः।
तत्याज व्रजभूभागं सह रामेण केशवः॥ ३२॥

आज श्रीगोविन्द के अङ्ग प्रत्यङ्गों को दर्शन करने से मथुरावासियों के नेत्रों का महान् महोत्सव होगा। सौभाग्यशालिनी मथुरापुरीवासिनीयों ने आज क्या सुस्वप्न देखा है जिससे वे सुन्दर विशालनेत्रों वाली मथुरा की स्त्रियाँ स्वच्छन्द भाव से श्रीअधोक्षजका दर्शन करेंगी। अहो! निष्ठुर विधाता ने गोपियों को महानिधि दिखाकर आज उनके नेत्र निकाल लिये। देखो! हमारे प्रति श्रीहरि के अनुराग में शिथिलता आने से हमारे हाथों के कङ्कन भी शीघ्र ही शिथिल हो गये। अहो! हमारे समान दुःखिनी अबलाओं पर किसे दया न होगी? परन्तु देखो! यह क्रूर हृदयवाला अक्रूर तो बहुत शीघ्रतासे घोड़ों को हाँक रहा है। देखो यह श्रीकृष्णचन्द्र के रथ की धूलि दिखायी दे रही है, किन्तु हाय अब तो श्रीहरि बहुत दूर चले गये वह धूलि भी नहीं दीख रही है। श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार गोपियों द्वारा अति अनुराग के सहित देखते देखते बलराम जी के साथ श्रीकृष्ण व्रजभूमि के पार हो गये॥ २६-३२॥

गच्छन्तो जविताश्वेन रथेन यमुनातटम् ।
प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्द्दनाः ।। ३३ ।।

अथाह कृष्णमक्रूरो भवद्भ्यां तावदास्यताम् ।
यावत् करोमि कालिन्द्यामाह्निकार्हणमम्भसि ।। ३४ ।।

तथेत्युक्ते ततः स्नातः स्वाचान्तः स महामतिः ।
दध्यौ ब्रह्म परं विप्र ! प्रविश्य यमुनाजले ।। ३५ ।

फणासहस्रमालाढ्यं बलभद्रं ददर्श सः ।
कुन्दमालाङ्गमुन्निद्र-पद्मपत्रारुणेक्षणम् ।। ३६ ।।

वृतं वासुकिरम्भाद्यैर्महाद्भिः पवनाशिभिः ।
संस्तूयमानं गन्धर्व्वैर्वनमालाविभूषितम् ।। ३७ ।।

दधानमसिते वस्त्रे चारुपद्मावतंसकम् ।
चारुकुण्डलिनं भान्तमन्तर्जलतले स्थितम् ।। ३८ ।।

शीघ्रगामी अश्वों से युक्त रथद्वारा जाते हुए राम, कृष्ण और अक्रूर मध्याह्न के समय यमुनातटपर पहुंच गये । वहाँ पहुंचकर अक्रूरजी ने श्रीकृष्ण से कहा—जब तक मैं यमुनाजल में मध्याह्नकाल की उपासना से निवृत्त हो आऊँ तब तक आप दोनों यहीं रहें । अनन्तर हे विप्र ! यही हो ऐसी बात श्रीकृष्ण भगवान् से कहे जाने पर महामति अक्रूरजी यमुनाजल में प्रवेशकर स्नान और आचमन आदि से निवृत्त हो परब्रह्म का ध्यान करने लगे । उस समय अक्रूरजी ने देखा कि बलराम जी सहस्रफणमण्डल से सुशोभित हैं और उनका शरीर कुन्दमालाओं के समान श्वेतवर्ण हैं, तथा नेत्र विकसित कमलदल के समान विशाल है । वे वासुकि, रम्भ आदि महासर्पों से घिरे हुए हैं, तथा गन्धर्वगण उनकी प्रार्थना कर रहे हैं और अत्यन्त सुगन्धित वनमालाओं से विभूषित हैं । वे दो श्याम वस्त्र धारण किये और कमलों के बने हुए सुन्दर आभूषण पहने एवं मनोहर कुण्डलधारण किये यमुनाजल के भीतर विराजमान हैं ।। ३३-३८ ।।

तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताम्रायतलोचनम् ।
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चक्राद्यायुधभूषणम् ।। ३९ ।।

पीते वसानं वसने चित्रमाल्य-विभूषणम् ।
शक्रचापतड़िन्माला-विचित्रमिव तोयदम् ॥ ४० ॥

श्रीवत्सवक्षसञ्चारुकेयूरमुकुटोज्जवलम् ।
ददर्श कृष्णमक्लिष्ट-पुण्डरीकावतंसकम् ॥ ४१ ॥

सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः सिद्धयोगैरकल्मषैः ।
विचिन्त्यमानं तत्रस्थैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः ॥ ४२ ॥

उनकी गोद में उन्होंने आनन्दमय, कमलभूषण, मेघ के समान श्यामवर्ण, कुछ लाल लाल विशाल नयनों वाले, चतुर्भुज, मनोहर अङ्ग उपाङ्गों से एवं शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुधों से सुशोभित, पीताम्बर पहने हुए विचित्र वनमाला से विभूषित, इन्द्रधनुष और विद्युन्माला से मण्डित, सजल मेघ के समान, वक्षः स्थल में श्रीवत्सचिन्ह और कानों में देदीप्यमान कुण्डल से विराजित श्रीकृष्ण चन्द्र को देखा। और अक्रूरजी ने यह भी देखा कि सनकादि मुनिगण, निष्पाप सिद्ध एवं योगिजन उस जल में ही स्थित हो कर नासिका के अग्रभागपर दृष्टि करके उनका ध्यान कर रहे हैं ॥ ३९-४२ ॥

बल-कृष्णौ तथाक्रूरः प्रत्यभिज्ञाय विस्मितः ।
सोऽचिन्तयद् रथाच्छीघ्रं कथमत्रागताविति ॥ ४३ ॥

विवक्षोः स्तम्भयामास वाचं तस्य जनार्द्दनः ।
ततो निष्क्रम्य सलिलाद् रथमभ्यागतः पुनः ॥ ४४ ॥

ददर्श तत्र चैवोभौ रथस्योपर्य्यधिष्ठितौ ।
राम-कृष्णौ यथापूर्व्वं मनुष्यवपुषान्वितौ ॥ ४५ ॥

निमग्नश्च ततस्तोये स ददर्श तथैव तौ ।
संस्तूयमानौ गन्धर्व्व-मुनि-सिद्ध-महोरगैः ॥ ४६ ॥

ततो विज्ञातसद्भावः स तु दानपतिस्तथा ।
तुष्टाव सर्व्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥ ४७ ॥

उस समय अक्रूरजी वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण को पहचानकर बड़े विस्मित हुए, तथा विचारने लगे कि ये दोनों इतनी शीघ्रता से रथ को छोड़कर यहाँ कैसे आ गये ? । जब उन्होने कुछ कहने का विचार किया तब भगवान् ने उनकी वाणी रोक दी । पश्चात् वे जल से निकलकर रथ के समीप आये और देखा कि वहाँ भी राम और श्रीकृष्ण दोनों मानवशरीर से रथपर पूर्ववत् विराजमान हैं । अनन्तर उन्होने जल में प्रवेशकर उनको पुन: सिद्ध गन्धर्व, मुनि एवं नागादिकों से स्तुति किये जाते देखा । तब दानपति अक्रूरजी वास्तविक रहस्य को जानकर सर्वविज्ञानमय अच्युत भगवान् की स्तुति करने लगे ॥ ४३-४७ ॥

सन्मात्ररूपिणेऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने ।
व्यापिने नैकरूपैकस्वरूपाय नमो नमः ॥ ४८ ॥

अक्रूरजी बोले—जो सन्मात्रस्वरूप अचिन्त्यमहिमावान् सर्वव्यापक, तथा कार्यरूप से अनेक एवं कारण रूप से एक हैं, उन परमात्मा को नमस्कार है ॥ ४८ ॥

सत्त्वरूपाय तेऽचिन्त्य ! हविर्भूताय ते नमः ।
नमोऽविज्ञातपाराय पराय प्रकृतेः प्रभो ॥ ४९ ॥

भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् ।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ॥ ५० ॥

प्रसीद सर्व्व सर्व्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर ।
ब्रह्म-विष्णु-शिवाद्याभिः कल्पनाभिरुदीरितः ॥ ५१ ॥

अनाख्येयस्वरूपात्मन् ! अनाख्येयप्रयोजन !
अनाख्येयाभिधानं त्वां नतोऽस्मि परमेश्वर ॥ ५२ ॥

न यत्र नाथ ! विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः ।
तद् ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः ॥ ५३ ॥

न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्व्वस्याधिगमो यतः ।
ततः कृष्णाच्युतानन्तविष्णुसंज्ञाभिरीड्यसे ॥ ५४ ॥

सर्व्वार्थस्त्वमज ! विकल्पनाभिरेतद् दवाद्यं जगदखिलं त्वमेव विश्वम् ।

विश्वात्मंस्त्वमिति विकारभावहीनः सर्व्वस्मिन् न हि भवतोऽस्ति किञ्चिदन्यत् त्वं ब्रह्मा पशुपतिरर्य्यमा विधाता धाता त्वं त्रिदशपतिः समीरणोऽग्निः ।

तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको भिन्नार्थैर्जगदपि पासि शक्तिभेदैः ॥ ५६ ॥

हे अचिन्तनीय प्रभो ! आप सर्वरूप और हविः स्वरूप परमेश्वर हैं, आपको नमस्कार है । आप प्रकृति से परे (श्रेष्ठ) अविज्ञेयस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप भूतस्वरूप, इन्द्रियस्वरूप, प्रधान (प्रकृति) हैं, आप ही परमात्मा हैं । हे प्रभो ! आप एक होकर भी आत्मा, परमात्मा, भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, तथा प्रधान हैं इस प्रकार आप पाँच प्रकार से विराजमान हैं । हे सर्वात्मन् ! हे क्षराक्षरमय ईश्वर ! आप प्रसन्न होइये । एक आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि की कल्पनाओं से वर्णित होते हैं । हे परमेश्वर ! आपके स्वरूप, प्रयोजन और नाम आदि सभी अनिर्वचनीय है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे नाथ ! हे अजन्मा जहाँ नाम, जाति और कल्पनाओं का सर्वथा अभाव है, आप वही नित्य, अधिकारी एवं अजन्मा परमब्रह्म है । क्योंकि कल्पना के बिना किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता, अतएव आपकी कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामों से स्तुति की जाती है । हे अज ! जिन देवता आदि की कल्पनाओं से अनेक विश्व की उत्पत्ति हुई है वे समस्त पदार्थ आप ही हैं तथा आप ही विकार रहित आत्मवस्तु हैं, अतएव आप विश्वरूप हैं । हे प्रभो ! इन समस्त पदार्थों में आपसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है । आप ही ब्रह्मा, पशुपति (शिव), सूर्य, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम हैं । इस प्रकार एक आप ही भिन्न-भिन्न कार्यवाली अपनी शक्तियों के भेद से इस समस्त जगत् की रक्षा करते हैं ॥ ४९-५६ ॥

विश्वं भवान् सृजति सूर्य्यगभस्तिरूपोविश्वञ्च ते गुणमयोऽयमज ! प्रपञ्चः ।

रूपं परं सदितिवाचकमक्षरं यजज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७ ॥

ॐ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय ते ।
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥ ५८ ॥

हे विश्वेश ! सूर्य की किरणरूप होकर आप ही (वृष्टिरूप से) विश्व की रचना करते हैं, अतएव यह गुणमय प्रपञ्च आपका ही रूप है । 'सत्' पद जिसका वाचक है वह ॐ अक्षर आपका परमस्वरूप है, आपके उस ज्ञानात्मा सदसत्स्वरूप को नमस्कार करता हूँ । हे प्रभो ! वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धस्वरूप आपको बार बार नमस्कार है ॥ ५७-५८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - उन्नीसवाँ अध्याय

(श्रीकृष्ण द्वारा मथुरा में रजक का वध, तथा माली पर कृपा)

एवमन्तर्जले विष्णुमभिष्टूय स यादवः ।
अर्च्चयामास सर्व्वेशं पुष्पैर्धूपैर्मनोरमैः ॥ १ ॥

परित्यक्तान्यविषयो मनस्तत्र निवेश्य सः ।
ब्रह्मभूते चिरं स्थित्वा विरराम समाधितः ॥ २ ॥

कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामतिः ।
आजगाम रथं भूयो निर्गम्य यमुनाम्भसः ॥ ३ ॥

राम-कृष्णौ च ददृशे यथापूर्व्वं रथे स्थितौ ।
विस्मिताक्षस्तदाक्रूरस्तञ्च कृष्णोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—यदुवंशोत्पन्न अक्रूरजी ने पूर्वोक्त प्रकार से जल के भीतर श्रीविष्णु भगवान् की स्तुति कर उन सर्वेश्वर का मनःसंकल्पित धूप, दीप और पुष्प आदि से पूजन किया । उन्होंने मन को अन्य विषयों से हटाकर उन्हीं में लगा दिया और चिरकालतक उन ब्रह्मभूत में ही समाहितभाव से स्थित रहकर पुनः समाधि से विरत हो गये । अनन्तर महामति अक्रूरजी अपने को कृतकृत्य के समान मानते हुए यमुना जल से निकलकर पुनः रथ के समीप आ गये । वहाँ आकर उन्होंने आश्चर्ययुक्त नेत्रों से राम और श्रीकृष्ण को रथ में पूर्ववत् विराजमान देखा । उस समय श्रीकृष्ण आश्चर्य चकित अक्रूर से बोले— ॥ १-४ ॥

नूनं ते दृष्टमाश्चर्य्यमक्रूर ! यमुनाजले ।
विस्मयोत्फूल्लनयनो भवान् संलक्ष्यते यतः ॥ ५ ॥

अन्तर्जले यदाश्चर्य्यं दृष्टं तत्र मयाच्युत !
तदत्रापि हि पश्यामि मूर्त्तिमत् पुरतः स्थितम् ॥ ६ ॥

जगदेतन्महाश्चर्य्य रूपं यस्य महात्मनः ।
तेनाश्चर्य्यवरेणाहं भवता कृष्ण ! सङ्गतः ॥ ७ ॥

तत् किमेतेन मथुरां व्रजामो मधुसूदन !
बिभेमि कंसाद्धिग् जन्म परपिण्डोपजीविनाम् ॥ ८ ॥

इत्युक्त्वा चोदयामास तान् हयान् वातरंहसः ।
सम्प्राप्तश्चातिसायाह्ने सोऽक्रूरो मथुरां पुरीम् ॥ ९ ॥

विलोक्य मथुरां कृष्णं रामञ्चाह स यादवः ।
पद्भ्यां यातं महावीर्य्यो रथेनैको विशाम्यहम् ॥ १० ॥

गन्तव्यं वसुदेवस्य भवद्भयां न तथा गृहम् ।
युवयोर्हि कृते वृद्धः स कंसेन निरस्यते ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण बोले—हे अक्रूर ! आपने निश्चय ही यमुना जल में कुछ देखा है, क्योंकि आपके नेत्र आश्चर्य चकित दीख पड़ते हैं । अक्रूर जी बोले—हे अच्युत ! मैंने यमुनाजल में जो आश्चर्य देखा है उसे इस समय भी अपने सामने मूर्तिमान् देख रहा हूं । हे कृष्ण ! यह महान् आश्चर्यमय जगत् जिस का स्वरूप है उन्हीं आश्चर्यश्रेष्ठ आपके साथ मेरा समागम हुआ है । हे मधुसूदन ! अब इन समस्त आश्चर्य के विषय में विशेष कहने से कोई लाभ नहीं । चलो हमें शीघ्र ही मथुरा पहुंचना है, मैं कंस से बहुत भय करता हूँ । दूसरे के दिये हुए अन्न से जीवित रहने वाले पुरुषों के जीवन को धिक्कार है । ऐसी बात कहकर अक्रूरजी ने वायु के समान वेगवाले घोड़ों को हाँका तथा सायंकाल के समय मथुरापुरी में पहुंच गये । यदुवंशी अक्रूर ने मथुरापुरी को अवलोकनकर राम और श्रीकृष्ण से कहा—हे महावीरो ! अब मैं अकेला ही रथद्वारा जाऊंगा, आप दोनों पैदल आ जायँ । मथुरा में पहुंचकर आप दोनों वसुदेवजी के घर नहीं जायँ, क्योंकि आपके कारण ही वे वृद्ध वसुदेव जी कंस से सदा तिरस्कृत रहते हैं ॥ ५-११ ॥

इत्युक्त्वा प्रविवेशाथ सोऽक्रूरो मथुरां पुरीम्।
प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ ॥ १२ ॥

स्त्रीभिर्नरैश्च सानन्दं लोचनैरभिवीक्षितौ ।
जग्मतुर्लीलया वीरौ दृप्तौ बालगजाविव ॥ १३ ॥

भ्रममाणौ तु तौ दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम्।
अयाचेतां सुरूपाणि वासांसि रुचिराननौ ॥ १४ ॥

ऐसा कहकर अक्रूरजी मथुरा पुरी में चले गये । उनके पीछे राम और कृष्ण भी नगर में प्रवेश कर राजमार्ग पर पहुंचे । वहाँ नर-नारियों द्वारा आनन्दपूर्वक देखे जाते हुए वे दोनों वीर उन्मत्त लीलापूर्वक जा रहे थे । राजमार्ग पर इधर उधर घूमते हुए वस्त्र रङ्गने वाले एक रजक को देखकर उन्होने उससे रङ्ग बिरंगे सुन्दर वस्त्र मांगे ॥ १२-१४ ॥

कंसस्य रजकः सोऽथ प्रसादारूढविस्मयः ।
बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चै राम-केशवौ ॥ १५ ॥

ततस्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः ।
पातायामास कापेन रजकस्य शिरो भुवि ॥ १६ ॥

हत्वादाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरौ ततः ।
कृष्ण-रामौ मुदा युक्तौ मालाकारगृहं गतौ ॥ १७ ॥

विकाशिनेत्रयुगलौ मालाकारोऽतिविस्मितः ।
एतौ कस्य कुतौ वैतौ मैत्रेयाचिन्तयत् तदा ॥ १८ ॥

पीतनीलाम्बरधरौ तौ दृष्ट्वातिमनोहरौ ।
स तर्कयामास तदा भुवंदवावुपागतौ ॥ १९ ॥

विकाशिमुखपद्माभ्यां ताभ्यां पुष्पाणि याचितः ।
भुवं विष्टभ्य हस्ताभ्यां पस्पर्श शिरसा महीम्॥ २० ॥

प्रसादपरमौ नाथौ मम गेहमुपागतौ ।
धन्योऽहमर्च्चयिष्यामीत्याह तौ माल्यजीवकः ॥ २१ ॥

ततः प्रहृष्टवदनस्तयोः पुष्पाणि कामतः।
चारूण्येतान्यथैतानि प्रददौ स विलोभयन॥ २२॥

पुनः पुनःप्रणम्यासौ मालाकारो नरोत्तमौ।
ददौ पुष्पाणि चारूणि गन्धवन्त्यमलानि च॥ २३॥

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रददौ वरान्।
श्रीस्त्वां मत्संश्रया भद्र! न कदाचित् प्रहास्यति॥ २४॥

वह रजक कंस का दास था, अतएव उसने उसके प्रासाद पर चढ़कर विस्मय के साथ राम एवं कृष्ण को उच्चस्वर से आक्षेपपूर्ण अनेक दुर्वाक्य कहे। तब श्रीकृष्ण ने क्रुद्ध होकर अपने करतल के प्रहार से उस दुरात्मा रजक का शिर पृथिवी पर गिरा दिया। इस प्रकार उसको वध करके राम और कृष्ण ने उसके नाना प्रकार के वस्त्र को छीन लिये, तथा क्रमशः नील एवं पीत वस्त्र धारणकर माली के घर गये। हे मैत्रेय! उस प्रफुल्ल कमल के समान नेत्रवाले राम और कृष्ण को देखकर माली अत्यन्त विस्मितभाव से विचार करने लगा कि ये किसके पुत्र हैं और कहाँ से आये हैं? नील और पीत वस्त्रधारी एवं अति मनोहर रूपवाले इन बालकों को देखकर माली ने विचार किया कि मालूम होता है ये दो देवता पृथिवीपर उपस्थित हुए हैं। अनन्तर विकसित मुखकमलवाले उन बालकों ने जब उससे पुष्प की याचना की तब उसने पृथिवीपर दोनों हाथ रखकर शिर से भूमि का स्पर्श किया (अर्थात् साष्टाङ्ग प्रणाम किया) और उन दोनों से कहा—हे नाथ! आप बड़े दयालु हैं जो मेरे घर पधारे। मैं धन्य हूं, क्योंकि आज मैं आपका पूजन कर सकूँगा। उसके बाद प्रसन्नमुख उस माली ने उनके इच्छानुसार यह पुष्प सुन्दर है और यह इससे भी सुन्दर है इस प्रकार उनको लुभा लुभाकर नाना प्रकार का सुन्दर पुष्प प्रदान किया। माली बारंबार उन श्रेष्ठ पुरुषद्वय को प्रणाम करके सुगन्धित, सुन्दर एवं निर्मल पुष्प देने लगा। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने भी माली को वर देते हुए कहा कि हे भद्र! मेरे आश्रय में रहने वाली श्रीलक्ष्मी जी तेरा कदापि परित्याग नहीं करेगी॥ १५-२४॥

बलहानिर्न ते सौम्य! धनहानिस्थथैव च।
यावद्दिनानि तावच्च न नशिष्यति सन्ततिः॥ २५॥

भुक्त्वा च विपुलान् भोगांस्तमन्ते मत्प्रसादजम् ।
ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यं लोकमवाप्स्यसि ॥ २६ ॥

धर्म्मे मनश्च ते भद्र ! सर्व्वकालं भविष्यति ।
युष्मत्सन्ततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥ २७ ॥

नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्सन्ततिसम्भवः ।
सम्प्राप्स्यति महाभाग ! यावत् सूर्य्यो धरिष्यति ॥ २८ ॥

इतुक्त्वा तद्गृहात् कृष्णो बलदेवसहायवान् ।
निर्ज्जगाम मुनिश्रेष्ठ ! मालाकारेण पूजितः ॥ २९ ॥

हे सौम्य ! तुम्हारे बल और धन का कभी ह्रास नहीं होगा तथा जबतक दिनकी (सूर्य की) स्थिति रहेगी तब तक तुम्हारे वंश का विनाश भी नहीं होगा । तुम जीवनपर्यन्त अनेक प्रकार का सुख भोगते हुए अन्त में मेरी कृपा से मेरा स्मरण करते हुए देहत्यागकर दिव्यलोक को प्राप्त करोगे । हे भद्र ! तुम्हारा मन सदैव धर्मपरायण रहेगा और तेरे वंश में जन्म लेने वाले भी दीर्घायु होंगे । हे महाभाग ! जब तक सूर्य रहेंगे तब तक तुम्हारे वंश में उत्पन्न कोई भी व्यक्ति आकस्मिक रोग को नहीं प्राप्त करेगा । श्रीपराशरजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण माली को इस प्रकार वर प्रदान करके उससे पूजित होकर बलराम जी के साथ उसके घर से चल दिये ॥ २५-२९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - बीसवाँ अध्याय

(कंस का वध)

राजमार्गे ततः कृष्णः सानुलेपनभाजनाम्।
ददर्श कुब्जामायान्तीं नवयौवनगोचराम् ॥ १ ॥

तामाह ललितं कृष्णः कस्येदमनुलेपनम्।
भवत्या नीयते सत्यं वदेन्दीवरलोचने ॥ २ ॥

सकामेनेव सा प्रोक्ता सानुरागा हरिं प्रति।
प्राह सा ललितं कुब्जा तद्दर्शनबलात्कृता ॥ ३ ॥

कान्त ! कस्मान्न जानासि कंसेनाभिनियोजिताम्।
नैकवक्रेति विख्यातामनुलेपनकर्म्मणि ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद श्रीकृष्ण ने राजमार्ग में नवयौवना कुब्जा स्त्री को अनुलेपन का पात्र लिये आती देखा। श्रीकृष्ण मनोहर स्वर में उससे बोले—हे कमलनयने ! यह अनुलेपन तुम किसके लिये ले जाती हो। श्रीकृष्ण के कामुक पुरुष के समान इस प्रकार पूछने पर अनुरागिणी कुब्जा उनके दर्शन से हठात् आकृष्टचित्त होकर ललितभाव से बोली—हे कान्त ! आप क्या मुझे नहीं जानते ? मैं वक्रानाम से प्रसिद्ध हूँ। राजा कंस ने मुझे अनुलेपन कार्य के लिए नियुक्त किया है ॥ १-४ ॥

नान्यपिष्टं हि कंसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम्।
भवाम्यहमतीवास्य प्रसादधनभाजनम् ॥ ५ ॥

सुगन्धमेतद् राजार्हं रुचिरं रुचिरानने !
आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥ ६ ॥

श्रुत्वैतदाह सा कुब्जा गृह्यतामिति सादरम्।
अनुलेपञ्च प्रददौ गात्रयोग्यमथोभयोः ॥ ७ ॥

भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ।
सेन्द्रचापौ विराजेतां सितकृष्णाविवाम्बुदौ ॥ ८ ॥

ततस्तां चिबुके शौरिरुल्लापनविधानवित्।
उत्पाट्य तोलयामास द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना ॥ ९ ॥

चकर्ष पद्भ्याञ्च तदा ऋजुत्वं केशवोऽनयत्।
ततः सा ऋजुतां प्राप्ता योषितामभवद् वरा ॥ १० ॥

विलासललितं प्राह प्रेमगर्भभरालसम्।
वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्दं व्रज गेहं ममेति वै ॥ ११ ॥

राजा कंस को मेरे अतिरिक्त और किसी का पीसा हुआ उबटन पसंद नहीं है, अतएव इस विषय में मैं उनकी अत्यन्त कृपापात्री हूँ। श्रीकृष्ण बोले—हे सुमुखि ! यह मनोहर सुगन्ध अनुलेप तो राजा के योग्य है हमारे शरीर के योग्य भी कोई अनुलेपन हो तो प्रदान करो। श्रीपराशरजी बोले—यह सुनकर कुब्जा ने कहा—'लीजिये' तथा उन दोनों के शरीर योग्य चन्दनादि आदर पूर्वक दे दिया। अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ बलराम और श्रीकृष्ण नाना प्रकार पत्ररचनाविधान से अनुलेपन करके इन्द्र धनुषयुक्त श्याम और श्वेतमेघ के समान सुशोभित होने लगे। पश्चात् सीधे करने वाली विधि को जानने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उसकी ठोड़ी में अपनी आगे की दो अङ्गुलियाँ लगाकर उसे उचकाकर हिलाया और उसके पाँव अपने पाँवों से दबा दिये। इस प्रकार श्रीकेशव ने उसे सीधे शरीरवाली बना दिया और सीधी हो जाने पर वह समस्त स्त्रियों में सुन्दरी बन गयी। तदनन्तर कुब्जा श्रीगोविन्द का वस्त्र पकड़कर प्रेमपूर्ण भाव से एवं विलास से सुन्दर वचन बोली—'आप मेरे घर चलिये' ॥ ५-११ ॥

आयास्ये भवतीगेहमिति तां प्रहसन् हरिः।
विससर्ज्ज जहासोच्चै रामस्यालोक्य चाननम् ॥ १२ ॥

उस समय हँसते हुए भगवान् बोले—'अच्छा कुछ दिनों के बाद मैं तुम्हारे घर जाऊँगा। कुब्जा को ऐसा कहकर विदा किये एवं बलराम जी के मुख को देखकर उच्चः स्वर से हास्य करने लगे ॥ १२ ॥

भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गो नीलपीताम्बरौ च तौ ।
धनुःशालां ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ ॥ १३ ॥

आयोगञ्च धनूरत्नं ताभ्यां पृष्टैश्च रक्षिभिः ।
आख्याते सहसा कृष्णो गृहीत्वापूरयद्धनुः ॥ १४ ॥

ततः पूरयता तेन भज्यमानं बलाद्धनुः ।
चकार सुमहाशब्दं मथुरा येन पूरिता ॥ १५ ॥
अनुयुक्तौ ततस्तौ तु भग्ने धनुषि रक्षिभिः ।
रक्षिसैन्यं निहत्योभौ निष्क्रान्तौ कार्मुकालयात् ॥ १६ ॥

उसके बाद पत्ररचना आदि विधि से अनुलिप्त (चन्दन किये हुए) नील और पीतवस्त्रधारी एवं विचित्र मालाओं से सुशोभित बलराम और श्रीकृष्ण यज्ञशाला जिस घर में धनुष रखा था में पहुंचे। वहाँ पहुंचकर उन्होंने यज्ञ रक्षकों से यज्ञ के उद्देश्य रूप धनुष के विषय में प्रश्न किया और उनके बतलाने पर श्रीकृष्ण उसे सहसा उठाकर प्रत्यञ्चा चढ़ाने लगे। उस पर बलपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ाते समय वह धनुष टूट गया एवं उस समय उस धनुष के टूटने से ऐसा शब्द हुआ कि उससे सम्पूर्ण मथुरापुरी गूँज गयी। अनन्तर धनुष का भङ्ग होने पर उसके रक्षकगण ने उन पर आक्रमण किया, किन्तु उन रक्षकों को संहार करके वे दोनों बालक बाहर आ गये ॥ १३-१६ ॥

अक्रूरागमवृत्तान्तकमुपलभ्य तथा धनुः ।
भग्नं श्रुत्वाथ कंसोऽपि प्राह चाणूर-मुष्टिकौ ॥ १७ ॥

गोपालदारकौ प्राप्तौः भवद्‌भ्यां तौ ममाग्रतः ।
मल्लयुद्धेन हन्तव्यौ मम प्राणहरौ हि तौ ॥ १८ ॥

नियुद्धे तद्विनाशेन भवद्‌भ्यां तोषितो ह्यहम् ।
दास्याम्यभिमतान् कामान् नान्यथैतन्महाबलौ ॥ १९ ॥

इसके बाद अक्रूर के आगमन का समाचार पाकर और धनुषभङ्ग का वृतान्त सुनकर कंस चाणूर और मुष्टिक से बोला । कंस बोला—(गोकुल से) दो गोपबालक आये हैं, तुम दोनों मेरे सामने उन दोनों बालकों को मार डालो, कारण ये दोनों बालक मेरे प्राण हरण करने वाले हैं । यदि तुम लोग मल्लयुद्ध में इन दोनों बालकों का विनाश करके मुझे सन्तुष्ट कर दोगे तो मैं तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूंगा, इसे अन्यथा न समझना ॥ १७-१९ ॥

न्यायतोऽन्यायतो वापि भवद्भ्यां तौ ममाहितौ ।
हन्तव्यौ तद्वधाद् राज्यं सामान्यं नो भविष्यति ॥ २० ॥

इत्याज्ञाप्य स तौ मल्लौ तत आहूय हस्तिपम् ।
प्रोवाचोच्चैस्त्वया मेऽद्य समाजद्वारि कुञ्जरः ॥ २१ ॥

स्थाप्यः कुवलयापीड़स्तेन तौ गोपदारकौ ।
घातनीयौ नियुद्धाय रङ्गद्वारमुपागतौ ॥ २२ ॥

तमथाज्ञाप्य दृष्ट्वा च मञ्चान् सर्व्वानुपाकृतान् ।
आसन्नमरणः कंसः सूर्त्योदयमुदैक्षत ॥ २३ ॥

तुम न्याय से अथवा अन्याय से मेरे इन महाबलवान् शत्रुओं को अवश्य मार दो, उनके मारे जाने पर यह समस्त राज्य तुम दोनों का साधारण धन हो जायगा । मल्लों को इस प्रकार आदेश देकर कंस ने अपने महावत को बुलाया और उसे आज्ञा दी कि तुम कुवलयापीड हाथी को मल्लों की रणभूमि के द्वार पर खड़ा करो और युद्ध के लिए जब वे दोनों बालक आवें तब उस हाथी के द्वारा उनका विनाश कराना । इस प्रकार उसे आज्ञा देकर और समस्त मञ्चों को सुसज्जित देखकर कंस सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा ॥ २०-२३ ॥

ततः समस्तमञ्चेषु नागरः स तदा जनः ।
राजमञ्चषु चारूढ़ाः सहामात्येर्म्महीभृतः ॥ २४ ॥

मल्लप्राश्निकवर्गश्च रङ्गमध्यसमीपतः ।
कृतः कंसेन कंसोऽपि तुङ्गमञ्चे व्यवस्थितः ॥ २५ ॥

अन्तःपुराणां मञ्चाश्च तथान्ये परिकल्पिताः ।
अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नागरयोषिताम् ॥ २६ ॥

इसके बाद सूर्योदय होने पर नागरिकगण साधारण मञ्चों पर और अपने अनुचरों सहित राजागण राजमञ्चों पर बैठ गये । और रङ्गभूमि के मध्यभाग में कंस युद्धपरीक्षकों को बैठाकर स्वयं भी एक ऊंचे सिंहासनपर बैठ गया । वहाँ पर अन्तःपुर की स्त्रियों के लिए अलग मञ्च बनाये गये थे और नागरिक स्त्रियाँ और वैश्याओं के लिए भी अलग अलग मञ्च बने थे ॥ २४-२६ ॥

नन्दगोपादयो गोपा मञ्चेष्वन्येष्ववस्थिताः ।
अक्रूर-वसुदेवौ च मञ्चप्रान्ते व्यवस्थितौ ॥ २७ ॥

नागरीयोषितां मध्ये देवकी पुत्रगृद्धिनी ।
अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामि रुचिरं मुखम् ॥ २८ ॥

कुछ अलग बने हुए मञ्चों पर नन्दगोप प्रभृति गोपगण एवं उनके पासवाले मञ्चपर वसुदेव और अक्रूरजी विराजमान थे । देवकी मृत्यु के समय पुत्र का मनोहर मुख देख लूंगी इस विचार से नगर के स्त्रीगण के बीच में बैठी थी ॥ २७-२८ ॥

वाद्यमानेषु तूर्य्येषु चानूरे चापि वल्गति ।
हाहाकारपरे लोके ह्यास्फोटयति मुष्टिके ॥ २९ ॥

अनन्तर चारों ओर मनोहर सूर्य नामक बाजों को बजने, चाणूर को उछालने एवं मुष्टि के ताल ठोकने पर दर्शकगण हाहाकार करने लगे ॥ २९ ॥

हत्वा कुवलयापीड़ं हस्त्यारोहप्रणोदितम् ।
मदासृगनुलिप्ताङ्गौ गजदन्तवरायुधौ ॥ ३० ॥

मृगमध्ये यथा सिंहौ गर्व्वलीलाविलोकितौ ।
प्रविष्टौ सुमहारङ्गं बलभद्र-जनादर्दनौ ॥ ३१ ॥

इसी समय महावत से प्रेरित कुवलापीड नामक हाथी को मारकर उस हाथी के दोनों दाँतों को हाथ में लेकर मद और रक्त से अतुलित शरीरवाले बलराम एवं श्रीकृष्ण ने लीला के साथ देखते हुए मृगों के बीच में सिंह के समान उस महारङ्गभूमि में प्रवेश किया ॥ ३०-३१ ॥

हाहाकारा महान् जज्ञे सर्व्वमञ्चेष्वनन्तरम् ।
कृष्णोऽयं बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मयः ॥ ३२ ॥

सोऽयं येन हता घोरा पूतना सा निशाचरी ।
क्षिप्तञ्च शकटं येन भग्नौ च यमलार्ज्जुनौ ॥ ३३ ॥

सोऽयं यः कालियं नागं ननर्त्तारुह्य बालकः ।
धृतो गोवर्द्धनो येन सप्तरात्रं महागिरिः ॥ ३४ ॥

अरिष्टो धेनुकः केशी लीलयैव महात्मना ।
निहता येन दुर्वृत्ता दृश्यतां सोऽयमच्युतः ॥ ३५ ॥

उस समय समस्त मञ्चों से जोरों से हाहाकार ध्वनि होने लगी—यही कृष्ण और यही बलराम है इस प्रकोर का शब्द सभी के मुख से सुनाई देने लगा । जिन्होंने पूतना नामक भयङ्करी राक्षसी का विनाश किया, शकटको दूर फेंक दिया था, यमलार्जुन नामक विशाल वृक्ष को भङ्ग किया था—यह वही श्रीकृष्ण हैं । और जिन्होंने बाल्यकाल में ही कालियनागपर चढ़कर नृत्य किया था एवं जिन्होंने सात रात्रितक गोवर्धन नामक पर्वत धारण किया था वह यही श्रीकृष्ण है । जिन महात्मा ने दुरात्मा अरिष्ट, धेनुक और केशी का वध किया वही यह कृष्ण है, इनका दर्शन करो ॥ ३२-३५ ॥

अयञ्चास्य महाबाहुर्बलभद्रोऽग्रजोऽग्रतः ।
प्रयाति लीलया योषिन्मनोनयननन्दनः ॥ ३६ ॥

अयं स कथ्यते प्राज्ञैः पुराणर्थावलोकिभिः ।
गोपालो यादवं वंशं मग्नमभ्युद्धरिष्यति ॥ ३७ ॥

ये इनके आगे इनके ज्येष्ठ भ्राता महाबाहु बलराम जी आ रहे हैं जो रमणियों के मन एवं नेत्रों को आनन्दित करने वाले हैं। पौराणिक अर्थ को जाननेवाले विद्वान् लोग इनके विषय में ऐसा कहते हैं कि ये गोपाल ही यदुवंश का उद्धार करेंगे ॥ ३६-३७ ॥

अयं स सर्व्वभूतस्य विष्णोरखिलजन्मनः ।
अवतीर्णो महीमंशो नूनं भारहरो भुवः ॥ ३८ ॥

इत्येवं वर्णिते पौरै रामे कृष्णे च तत्क्षणात् ।
उरस्तताप देवक्याः स्नेहस्नु तपयोधरम् ॥ ३९ ॥

ये गोपाल सर्वभूतमय और सर्वकारण श्रीविष्णु भगवान् के अंश हैं निश्चय ही ये पृथिवी का भार हरण करेंगे । जिस समय पुरवासिगण, बलराम और श्रीकृष्ण के विषय में ऐसा कह रहे थे उस देवकी के स्तन से प्रेम के कारण दूध गिरने लगा और उसका हृदय अत्यन्त संतप्त हो गया ॥ ३८-३९ ॥

महोत्सवमिवासाद्य पुत्राननविलोकनम् ।
युवेव वसुदेवोऽभूद् विहायाभ्यागतां जराम् ॥ ४० ॥

विस्तारिताक्षियुगलो राजान्तःपुरयोषिताम् ।
नागरस्त्रीसमूहश्च द्रष्टुं न विरराम तम् ॥ ४१ ॥

संख्यः पश्यत कृष्णस्य मुखमत्यरुणेक्षणम् ।
गजयुद्धकृतायास-स्वेदाम्बुकणिकाचितम् ॥ ४२ ॥

विकाशि-शरदम्भोजमवश्यायजलोक्षितम् ।
परिभूय स्थितं जन्म सफलं क्रियतां दृशोः ॥ ४३ ॥

श्रीवत्साङ्कं महद्धाम बालस्यैतद् विलोक्यताम् ।
विपक्षक्षपणं वक्षो भुजयुग्मञ्च भामिनि ॥ ४४ ॥

किन्न पश्यसि दुग्धेन्दु-मृणालधवलाननम् ।
बलभद्रमिमं नील-परिधानमुपागतम् ॥ ४५ ॥

बल्गाता मुष्टिकेनैतच्चाणूरेण तथा सखि ।
क्रियते बलभद्रस्य हास्यमीषद्विलोक्यताम् ॥ ४६ ॥

सख्यः ! पश्यत चाणूरो नियुद्धार्थमयं हरिम् ।
समुपैति न सन्त्यत्र किं वृद्धा युक्तकारिणः ॥ ४७ ॥

पुत्रों का मुख देखने से अत्यन्त आनन्दयुक्त वसुदेवजी वृद्धावस्था का परित्यागकर पुनः नवयुवक के समान हो गये। राजा के अन्तःपुर की स्त्रियाँ और नगर निवासिनी महिलाएँ उन्हें एकदृष्टि से देखती हुई भी तृप्त न हो

सकीं। अरी सखियो ! अत्यन्त रक्तवर्ण नेत्र से युक्त श्रीकृष्णचन्द्र का अति-मनोहर मुख तो देखो, यह कुलयापीड के साथ युद्ध करने के परिश्रम से स्वेद-बिन्दु से युक्त होने के कारण हिम कणों से सिञ्चित शरत्कालीन विकसित कमल को लजा रहा हैं। इसका दर्शन करके दोनों नेत्रों को सफल कर लो। हे भामिनि ! इस बालक का यह श्रीवत्साङ्कयुक्त परम तेजस्वी, वक्षःस्थल और शत्रुओं को पराजित करने वाले दोनों बाहुओं को तो देखो। (दूसरी स्त्री बोली) अरो ! तुम नीलवस्त्र धारण किये और दूध, चन्द्रमा एवं कमलनाल के समान श्वेतवर्ण बलदेव जी को आते हुए क्या नहीं देखती हो ? (तीसरी स्त्री बोली) अरी सखियो ! (अखाड़े में) चक्कर लगाकर घूमते हुए चाणूर और मुष्टिक के साथ क्रीड़ा करते हुए बलराम जी और श्रीकृष्ण को भी तो जरा देखो। (चौथी बोली) सखियों ! देखो तो चाणूर से युद्ध करने के लिए हरि आगे आ रहे हैं। हाँ ! इनके छुड़ाने वाले कोई भी वृद्ध यहाँ क्या नहीं हैं ? ॥ ४०-४७ ॥

क्व यौवनोन्मुखीभूत-सुकुमारतनुर्हरिः।
क्व वज्रकठिनाभोगि-शरीरोऽयं महासुरः ॥ ४८ ॥

इमौ सुललितौ रङ्गे वर्त्तेते नवयौवनौ।
दैतेयमल्लाश्चाणूर प्रमुखास्त्वतिदारुणाः ॥ ४९

नियुद्ध-प्राश्निकानान्तु महानेष व्यतिक्रमः।
यद् बालबलिनोर्युद्धं मध्यस्थैः समुपेक्ष्यते ॥ ५० ॥

कहाँ ! यह यौवन में प्रवेश करने वाले भगवान् का सुन्दर शरीर और कहाँ वज्र के समान कठोर इस महान् असुर का विशाल शरीर। इन दोनों का परस्पर में युद्ध क्या उचित है ? ये दोनों व्यक्ति सुन्दर एवं नवयौवन से सम्पन्न हैं और इस रङ्गभूमि में ये चाणूर प्रभृति दैत्य मल्लगण अत्यन्त भयानक हैं। युद्ध के विचार व्यवस्था करने वाले कैसा महान् अन्याय कर रहे हैं; वे लोग मध्यस्थ होकर किस प्रकार बालक और बलवान् का परस्पर वो अनदेखा कर रहे हैं ॥ ४८-५० ॥

इत्थं पुरस्त्रीलोकस्य वदतश्चालयन् भुवम्।
ववल्ग बद्धकक्षोऽन्तज्जंनस्य भगवान् हरिः ॥ ५१ ॥

बलभद्रोऽपि चास्फोट्य ववल्ग ललितं यदा।
पदे पदे तदा भूमिर्यन्न शीर्णा तदद्भूतम्॥ ५२॥

चाणूरेण तदा कृष्णो युयुधेऽमितविक्रमः।
नियुद्धकुशलो दैत्यो बलभद्रेण मुष्टिकः॥ ५३॥

सन्निपातावधूतैस्तु चाणूरेण समं हरिः।
क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव कीलवज्रनिपातनैः॥ ५४॥

जानुभिश्चाश्मनिर्घातैस्तथा बाहुविघट्टितैः।
पादोद्धूतैः प्रसृष्टैश्च तयोर्युद्धमभून्महत्॥ ५५॥

श्रीपराशर जी बोले—नगर की स्त्रियों का इस प्रकार परस्पर में वार्तालाप करते समय भगवान् हरि अपने कटि देश को सुदृढ़रूप से बाँधकर जनता के बीच में चरण के भार से पृथिवी को कम्पित करते हुए वीरतापूर्ण लक्ष्य करने लगे। अनन्तर बलरामजी भी जिस समय बाहु आस्फालन करते हुए मनोहर भाव से उछले उस समय उनके पदभार से भूमि विदीर्ण नहीं हुई यही महान् आश्चर्य का विषय है। उस समय अमित पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण चाणूर के साथ युद्ध करने लगे एवं युद्ध में निपुण मुष्टिक भी बलराम जी के साथ युद्ध करने लगा। श्रीकृष्ण चन्द्र परस्पर भिड़कर, अलग हटकर, नीचे गिराकर, उछालकर, घूंसे और वज्र के समान कील मार कर, पैरों से ठोकर मारकर तथा एक दूसरे के अङ्गों को रगड़कर युद्ध करने लगे। इस प्रकार उस समय उन दोनों में महान् युद्ध आरम्भ हो गया॥ ५१-५५॥

अशस्त्रमतिघोरं तत् तयोर्युद्धं सुदारुणम्।
बलप्राणविनिष्पाद्यं समाजोत्सवसन्निधौ॥ ५६॥

यावद् यावच्च चाणूरो युयुधे हरिणा सह।
प्राणहानिमवापाग्र्यां तावत्तावल्लवाल्लवम्॥ ५६॥

कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मयः।
खेदाच्चालयता कोपान्निजशेखरकेशरम्॥ ५७॥

बलक्षयं विवृद्धिञ्च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयोः ।
वारयामास तूर्य्याणि कंसः कोपपरायणः ॥ ५८ ॥

मृदङ्गादिषु तूर्य्येषु प्रतिषिद्धेषु तत्क्षणात् ।
खे सङ्गतान्यवाद्यन्त देवतूर्य्याण्यनेकशः ॥ ५९ ॥

जय गोविन्द ! चाणूर जहि केशव ! दानवम् ।
इत्यन्तर्द्धानगा देवास्तदोचुरतिहर्षिताः ॥ ६० ॥

चाणूरेण चिरं कालं क्रीड़ित्वा मधुसूदनः ।
उत्पाट्य भ्रामयामास तद्वधाय कृतोद्यमः ॥ ६१ ॥

भ्रामयित्वा शतगुणं दैत्यमल्लममित्रजित् ।
भूमावस्फोटयामास गगने गतजीवितम् ॥ ६२ ॥

इस प्रकार उस सामाजिक उत्सव के समीप में केवल प्राणशक्ति से सम्पन्न होने वाला उन दोनों का महाभयङ्कर और कठोर होते हुए भी शस्त्रहीन युद्ध हुआ । चाणूर जैसे जैसे भगवान् से लड़ता गया वैसे वैसे उसकी प्राणशक्ति क्रमशः क्षीण होती गयी । जगन्मय भगवान् श्रीकृष्ण भी श्रम और क्रोध के कारण अपने शिर में लगे हुए भूषण को कम्पित करते हुए लीला पूर्वक उससे युद्ध करने लगे । इस युद्ध में चाणूर का बलक्षय और श्रीकृष्ण की बलवृद्धि देखकर क्रोधवशीभूत कंस ने सभी बाजे बन्द करा दिये । अनन्तर रंगभूमि से मृदङ्ग और तूर्य आदि के बन्द हो जाने पर आकाश से एक साथ ही अनेक बाजे बजने लगे । तथा देवगण अत्यन्त हर्षित होकर अलक्षितरूप से कहने लगे हे गोविन्द आपकी जय हो, हे केशव आप शीघ्र इस दानव का विनाश कीजिये । भगवान् मधुसूदन बहुत देरतक चाणूर के साथ क्रीड़ा करते रहे, पश्चात् उसका वध करने के लिए तैयार होकर उसे उठाकर घुमाया । अनन्तर शत्रुविजेता श्रीकृष्ण ने उस दैत्य मल्लको सैकड़ों बार घुमाकर आकाश में ही निर्जीव हो जाने पर उसको पृथिवी पर पटक दिया ॥ ५६-६२ ॥

भूमावास्फोटितस्तेन चाणूरः शतधाव्रजत् ।
रक्तस्राव-महापङ्कां चकार स तदा भुवम् ॥ ६३ ॥

बलदेवोऽपि तत्कालं मुष्टिकेन महाबलः ।
युयुधे दैत्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरिः ॥ ६४ ॥

सोऽप्येनं मुष्टिना मूर्द्धर्नि वक्षस्याहत्य जानुना ।
पातयित्वा धरापृष्ठे निष्पिपेष गतायुषम् ॥ ६५ ॥

कृष्णस्तोषलकं भूयो मल्लराजं महाबलम् ।
वाममुष्टिप्रहारेण पातयामास भूतले ॥ ६६ ॥

चाणूरे निहते मल्ले मुष्टिके विनिपातिते ।
नीते क्षयं तोषलके सर्व्वे मल्लाः प्रदुद्रुवुः ॥ ६७ ॥

ववल्गतुस्तदा रङ्गे कृष्णसङ्कर्षणावुभौ ।
समानवयसो गोपान् बलादाकृष्य हर्षितौ ॥ ६८ ॥

कंसोऽपि कोपरक्ताक्षः प्राहोच्चैर्व्यापृतान् नरान् ।
गोपावेतौ समाजौघान्निष्काश्येतां बलादितः ॥ ६९ ॥

नन्दोऽपि गृह्यतां पापो निगड़ैरायसैरिह ।
अवृद्धार्हेण दण्डेन वसुदेवोऽपि वध्यताम् ॥ ७० ॥

वल्गन्ति गोपाः कृष्णेन ये चेमे सहिताः पुरः ।
गावो ह्रियन्तामेतेषां यच्चास्ति वसु किञ्चन ॥ ७१ ॥

भगवान् के द्वारा पृथिवीपर पटके जाने पर चाणूर के शरीर के सैकड़ों टुकड़े हो गये और उसके शरीर से निकले हुए रक्तस्राव से पृथिवी कीचड़मय हो गयी । श्रीकृष्ण जिस प्रकार चाणूर के साथ युद्ध कर रहे थे महाबली बलराम जी ने भी उसी प्रकार मुष्टिक के साथ युद्ध करना आरम्भ किया था । बलभद्र जी ने भी उसके मस्तक पर घूंसों से और वक्षःस्थलपर जानु से प्रहार करके उसे पृथिवीपर गिराकर इस प्रकार पीस डाला कि उसकी मृत्यु वहीं हो गयी । अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र ने महाबली मल्लराज तोशल को बायें हाथ के मुष्टिप्रहार से पृथिवीपर गिरा दिया । चाणूर मुष्टिक और तोशल के मारे जाने पर सम्पूर्ण मल्लगण रंगभूमि से भाग गये । इसके बाद श्रीकृष्ण और बलराम अपने समवयस्क गोपबालकों को खींचकर उनके साथ आलिङ्गनपूर्वक हर्ष से उछलने लगे । तदनन्तर कंस ने क्रोध से अपनी आँखें

लाल करके वहाँ इकट्ठे हुए लोगों से कहा—अरे ! इस समाज से इन दोनों गोपबालकों को बलपूर्वक निकालो । लोहे की श्रृंखला द्वारा इस पापी नन्दको बाँध दो, वृद्ध पुरुषों के अयोग्य दण्ड देकर इस वृद्ध वसुदेव को भी मार दो । और कृष्णके जितने गोप उछल रहे हैं इन सबका भी वध करो, इनकी गौएँ अथवा और जो कुछ भी इनका धन हो उसे हरण कर लो ॥ ६३-७१ ॥

एवमाज्ञापयानञ्च प्रहस्य मधुसूदनः ।
उत्पत्यारुह्य तं मञ्चं कंसं जग्राह वेगतः ॥ ७२ ॥

केशेष्वाकृष्य विगलत्किरीटमवनीतले ।
कंसं स पातयामास तस्योपरि पपात च ॥ ७३ ॥

निःशेष-जगदाधार-गुरुणा पततोपरि ।
कृष्णेन त्याजितः प्राणानुग्रसेनात्मजो नृपः ॥ ७४ ॥

मृतस्य केशेषु तदा-गृहीत्वा मधुसूदनः ।
चकर्ष देहं कंसस्य रङ्गमध्ये महाबलः ॥ ७५ ॥

गौरवेणातिमहता परिखा तेन कृष्यता ।
कृता कंसस्य देहेन वेगेनेव महाम्भसः ॥ ७६ ॥

कंसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताभ्यागतो रुषा ।
सुमाली बलभद्रेण लीलयैव निपातितः ॥ ७७ ॥

ततो हाहाकृतं सर्व्वमासीत् तद्रङ्गमण्डसमा ।
अवज्ञया हतं दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम् ॥ ७८ ॥

कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राहं सत्वरः ।
देवक्याश्च महाबाहुर्बलभद्रसहायवान् ॥ ७९ ॥

उत्थाप्य वसुदेवस्तं देवकी च जनार्द्दनम् ।
स्मृतजन्मोक्तवचनौ तावेव प्रणतौ स्थितौ ॥ ८० ॥

जिस समय कंस इस प्रकार की आज्ञा दे रहा उसी समय श्रीकृष्ण हँसते हुए मञ्चपर चढ़गये और शीघ्रतापूर्वक उसे पकड़ लिया । कंस का केश खींचकर

पृथिवीपर पटक दिया तथा ऊपर से स्वयं भी उसपर कूद पड़े, इस समय उसका मुकुट शिर से अलग हो गया था। समस्त जगत् के आधार भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर गिरते ही उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपना प्राण त्याग दिया। उस समय महाबलशाली भगवान् श्रीकृष्ण मृत कंस के केशसमूह पकड़कर उसके शरीर को रंगभूमि में घसीटने लगे। कंस का शरीर बहुत भारी था, अतएव उसको घसीटते समय महान् जलप्रवाह के वेग से उत्पन्न हुई दरार के समान पृथिवीपर एक परिखा बन गयी। श्रीकृष्णद्वारा इस प्रकार कंस को पकड़ लिये जाने पर उसका भाई सुमाली अत्यन्त क्रोध के साथ वहाँ आया। किन्तु बलराम जी ने उसका लीला पूर्वक ही विनाशकर दिया। इस प्रकार अपमान के साथ मथुरापति कंस की मृत्यु देखकर उस रंगभूमि में उपस्थित सभी लोग हाहाकार करने लगे। महाबाहु श्रीकृष्ण ने बलदेव जी के साथ देवकी और वसुदेव जी के समीप जाकर उनका चरण स्पर्श किया। उस समय जन्म के समय कही हुई बात को स्मरण करके वसुदेव और देवकी ने कृष्ण को पृथिवी से उठा लिया और उनके सामने नम्रभाव से खड़े हो गये ॥ ७३-८० ॥

प्रसीद सीदतां नाथ ! देवानां वरदः प्रभो !
तथावयोः प्रसादेन कृतोद्धारश्च केशव ॥ ८१ ॥

आराधितो यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम।
दुर्व्वृत्तनिधनार्थाय तेन नः पावितं कुलम् ॥ ८२ ॥

त्वमन्तः सर्व्वभूतानां सर्व्वभूतेष्ववस्थितः।
प्रवर्त्तेते समस्तात्मन् ! त्वत्तो भूतभविष्यता ॥ ८३ ॥

यज्ञैस्त्वामज्यस नित्य सर्व्वदेवमयाच्युत !
त्वमेव यज्ञो यष्टा च यज्ञानां परमेश्वरः ॥ ८४ ॥

सापह्नवं मम मनो यदेतत् त्वयि जायते।
देवक्याश्चात्मजप्रीत्या तदत्यन्तविडम्बना ॥ ८५ ॥

क्व कर्त्ता सर्व्वभूतानामनादिनिधनो भवान्।
क्व मे मनुष्यकस्येषा जिह्वा पुत्रेति वक्ष्यति ॥ ८६ ॥

जगदेतज्जगन्नाथ ! सम्भूतमखिलं यतः ।

कया युक्तया विना मायां सोऽस्मतः सम्भविष्यति ॥ ८७ ॥

यस्मिन प्रतिष्ठितं सर्व्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।

स कोष्ठोत्सङ्गशयनां मानुषाज्जायते कथम् ॥ ८८ ॥

श्रीवसुदेव जी बोले—हे प्रभो ! हे केशव ! आप प्रसन्न होइये, आपने दुःखी देवगण को जो वर दिया था वह दीनों पर कृपा करके पूरा कर दिया । हे भगवन् ! आपने मेरी आराधना से दुष्टजनों के विनाश के लिए जो मेरे घर में जन्म ग्रहण किया उससे मेरा कुल पवित्र हो गया । आप सर्वभूतमय होकर समस्त भूतों में विराजमान हैं । हे समस्तात्मन् ! भूत और भविष्यत् आपसे ही प्रवृत्त होते हैं । हे सर्वदेवमय अच्युत ! हे अचिन्त्य ! समस्त यज्ञों से आप ही का यजन होता है तथा हे परमेश्वर ! आप ही यज्ञ करने वालों के याजक और यज्ञस्वरूप भी हैं । हे जनार्दन ! आप तो सम्पूर्ण जगत् के उत्पत्ति स्थान हैं, आपके प्रति पुत्रप्रेम के कारण मेरा और देवकी का चित्त जो भ्रान्त हो रहा है वह बहुत हंसी का विषय हैं । आप समस्त प्राणियों के कर्ता एवं आदि और अन्त से रहित हैं, कहाँ आप ? तथा पुत्र कहकर आपको सम्बोधन करने वाली मेरे जिह्वा कहाँ ? । हे जगन्नाथ ! आपसे यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है वही आप हमसे उत्पन्न हुए, यह मायाशक्ति के बिना और क्या है ? जिनमें समस्त स्थावर, जङ्गम स्थित है वह प्रभु कुक्षि और गोद में शयन करने वाला मनुष्य कैसे हो सकता है ? ॥ ८१-८८ ॥

सत्व प्रसाद परमेश्वर ! पाहि विश्वमशावतारकरणर्न ममासि पुत्रः ।

आब्रह्मपादपमयं जगदेतदीश ! त्व नो विमोहयसि किं परमेश्वरात्मन् ॥ ८९ ॥

हे परमेश्वर ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये और अंशावतार से संसार का पालन कीजिये । आप मेरे पुत्र नहीं हैं । हे ईश ! ब्रह्मा से लेकर वृक्ष पर्यन्त यह जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है आप हमें क्यों मोहित कर रहे हैं ? ॥ ८९ ॥

मायाविमौहितदृशा तनयो ममात कसादभ्य कृतमपास्तभयातितीव्रम् ।

नीतोऽसि गोकुलमितोऽतिभयाकुलस्य वृद्धिं गतोऽसि मम नास्ति ममत्वमीश ॥ ९० ॥

कर्म्माणि रुद्र-मरुदश्वि-शतक्रतूनां साध्यानि यानि न भवन्ति निरीक्षितानि।

त्वं विष्णुरीश ! जगतामुपकारहेतोः प्राप्तोऽसि नः परिगतो विगतो हि मोहः ॥ ९१ ॥

हे निर्भयपुरुष ! आप मेरे पुत्र हैं इस माया से मोहित होकर मैंने कंस से अत्यन्त भय किया था । और उसी भय से व्याकुल होकर मैंने आपको गोकुल में रख दिया था ! आप वहीं पर इतने बड़े हुए हैं, अतएव हे ईश ! अब आप में मेरी ममत्वबुद्धि विनष्ट हो गई । रुद्र, वायु और इन्द्र प्रभृति देवगण जिस कर्म को नहीं कर सके उस कर्म को आपने कर दिया, इसे मैंने प्रत्यक्ष देखा । हे ईश ! आप विष्णु के अंश से जगत् के उपकार करने के लिए अवतार लिया है इसे मैं अच्छी प्रकार समझ गया हूँ, मेरा मोह नष्ट हो गया ॥ ९०-९१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - इक्कीसवाँ अध्याय

(उग्रसेन का राज्याभिषेक)

तौ समुत्पन्नविज्ञानौ भगवत्कर्म्मदर्शनात्।
देवकी-वसुदेवौ तु दृष्ट्वा मायां पुनर्हरिः।
मोहाय यदुचक्रस्य विततान स वैष्णवीम्॥ १॥

उवाच चाम्ब! भोस्तात! चिरादुत्कण्ठितेन मे।
भवन्तौ कंसभीतेन दृष्टौ सङ्कर्षणेन च॥ २॥

कुर्व्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम्।
तत्खण्डमायुषो व्यर्थमसाधूनां हि जायते॥ ३॥

गुरु-देव-द्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम्।
कुर्व्वतां सफलं जन्म देहिनां तात! जायते॥ ४॥

तत् क्षन्तव्यमिदं सर्वमतिक्रमकृतं पितः।
कंसप्रतापवीर्य्याभ्यामार्त्तयोः परवश्ययोः॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान् के वीर कर्म को देखने से वसुदेव और देवकी को ज्ञानयुक्त देखकर भगवान् ने यदुवंशियों को मोहित करने के लिए अपनी वैष्णवी माया फैला दी। और बोले—हे पिताजी! हे माताजी! मैं और बलराम जी कंस के भय से छिपे रहने के कारण आपके दर्शन के लिए बहुत दिनों से उत्कण्ठित थे, किन्तु आज आपका दर्शन हुआ। साधु पुरुषों का जो समय माता-पिता के पूजन के बिना बीत जाता है आयु का वह भाग व्यर्थ ही होता है। हे तात! गुरु, देव, ब्राह्मण और माता पिता के पूजन करने वाले देहधारियों का ही जन्म

सफल होता है। हे पिताजी ! कंस के प्रताप और पराक्रम से भीत हम पराधीनों का जो कुछ अपराध हुआ हो उसे आप क्षमा करें ॥ १-५ ॥

इत्युक्त्वाथ प्रणम्योभौ यदुवृद्धाननुक्रमात्।
यथावदभिपूज्याथ चक्रतुः पौर-माननम् ॥ ६ ॥

कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्य्य हतं भुवि।
विलेपुर्मातरश्चास्य दुःखशोकपरिप्लुताः ॥ ७ ॥

बहुप्रकारमत्यर्थं पश्चात्तापातुरो हरिः।
ताः समाश्वासयामास स्वयमस्त्राविलेक्षणः ॥ ८ ॥

उग्रसेनं ततो बन्धान्मुमोच मधुसूदनः।
अभ्यषिञ्चत् तथैवैनं निजराज्ये हतात्मजम् ॥ ९ ॥

राज्याभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिहः सुतस्य सः।
चकार प्रेतकार्य्याणि ये चान्ये तत्र घातिताः ॥ १० ॥

कृतौर्द्ध्वदैहिकं चैनं सिंहसनगतं हरिः।
उवाचाज्ञापय विभो ! यत् कार्य्यमविशङ्कितः ॥ ११ ॥

ययातिशापाद वंशोऽयमराज्यार्होऽपि साम्प्रतम्।
मयि भृत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृपैः ॥ १२ ॥

श्रीपराशरजी बोले—कृष्ण और बलराम दोनों ही ने इस प्रकार कहकर माता और पिता को प्रणाम किया एवं यथाक्रम यदुवृद्धों की पूजा करके पुरवासियों का भी सम्मान किया। उस समय कंस की स्त्रियाँ और माताएँ भूमि पर पड़े हुए मृतक कंस के शरीर को घेर कर दुःख और शोक से पूर्ण हो विलाप करने लगीं। तब श्रीकृष्ण ने भी अत्यन्त पश्चाताप से व्याकुल होकर स्वयं भी आँखों में आँसु भरकर उनको अनेक प्रकार से धैर्य दिया। अनन्तर मधुसूदन ने मृतपुत्र उग्रसेन को बन्धन से मुक्त कर उनको अपने राज्य में अभिषेक किया। भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा राज्याभिषेक हो जाने पर उग्रसेन ने पुत्र एवं और जो लोग वहाँ मारे गये थे उन सभी का प्रेतकार्य सम्पन्न किये। प्रेतकार्य समाप्त होने के बाद सिंहासन पर आरूढ उग्रसेन से भगवान् हरि बोले—हे विभो ! हमारे योग्य जो सेवा हो उसे

निःशङ्क होकर हमसे कहिये। ययाति के शाप के कारण यद्यपि हमारा वंश राज्याधिकारी नहीं हो सकता तथापि मुझ दास के उपस्थित रहते राजाओं का तो कहना ही क्या आप देवताओं को भी आज्ञा दे सकते हैं ॥ ६-१२ ॥

इत्युक्त्वा सोऽस्मरद् वायुमाजगाम स तत्क्षणात्।
उवाच चैनं भगवान केशवः कार्य्यमानुषः ॥ १३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—पुनः जगत् की कार्यसिद्धि के लिए मानवशरीरधारी भगवान् केशव ने वायु को स्मरण किया और वह उसी समय वहाँ उपस्थित हो गया ॥ १३ ॥

गच्छेन्द्रं ब्रूहि वायो ! त्वमलं गर्व्वेण वासव !
दीयतामुग्रसेनाय सुधर्म्मा भवता सभा ॥ १४ ॥

कृष्णो ब्रवीत राजार्हमेतद्रत्नमनुत्तमम्।
सुधर्म्माख्या सभा युक्तमस्यां यदुभिरासितुम्॥ १५ ॥

इत्युक्तः पवनो गत्वा सर्व्वमाह शचीपतिम्।
ददौ सोऽपि सुधर्म्माख्या सभां वायोः पुरन्दरः ॥ १६ ॥

वायुना चाहृतां दिव्यां सभां ते यदुपुङ्गवाः।
बुभुजुः सर्व्वरत्नाढ्यां गोविन्दभुजसंश्रयात्॥ १७ ॥

विदिताखिलविज्ञानौ सर्व्वज्ञानमयावपि।
शिष्याचार्य्यक्रमं वीरौ ख्यापयन्तौ यदूत्तमौ ॥ १८ ॥

ततः सान्दीपनिं काश्यमवन्तीपुरवासिनम्।
अस्त्रार्थं जग्मतुर्वीरौ बलदेव-जनार्द्दनौ ॥ १९ ॥

तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तपरौ हि तौ।
दर्शयाञ्चक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने ॥ २० ॥

सरहस्यं धनुर्व्वेदं ससंग्रहमधीयताम्।
अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या तदद्भुतमभूद् द्विज ॥ २१ ॥

तब भगवान् ने उससे कहा हे वायो ! तुम इन्द्र के समीप जाकर कहो—हे वासव ! तुम्हें गर्व करने की आवश्यकता नहीं, तुम अपनी सुधर्मा नाम की सभारूपी रत्न उग्रसेन राजा को प्रदान करो । श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह राजाओं के योग्य है, अतएव इसमें यादवों का विराजमान होना उचित है । श्रीपराशरजी बोले—भगवान् का ऐसा आदेश होने पर पवन ने यह बात जाकर इन्द्र से कह दी और इन्द्र ने भी उसको अपनी सभा दे दी । इस प्रकार वायुद्वारा लाई गयी उस सर्वरत्नसम्पन्न दिव्य सभा का उपभोग यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण की भुजाओं का आश्रय पाकर समस्त यादवगण करने लगे । तदनन्तर समस्त विज्ञानों में पारङ्गत और सर्वज्ञान सम्पन्न होते हुए भी वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और बलराम दोनों गुरुशिष्य के सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए काशी में उत्पन्न किन्तु अवन्तिपुरी में निवास करने वाले सन्दीपनीमुनि के समीप गये । बलराम और श्रीकृष्ण सान्दीपनिमुनिका शिष्यत्व स्वीकार करके और गुरु के प्रति उचित व्यवहारमें प्रवृत्त होकर सभी लोगों को आचार कि शिक्षा देने लगे । हे द्विज ! उन दोनों ने चौंसठ दिनों मे ही सरहस्य धनुर्वेद का अध्ययन कर लिया, यह बड़ा ही आश्चर्य का विषय हुआ ॥ १४-२१ ॥

सान्दीपनिरसम्भाव्यं तयोः कर्म्मातिमानुषम् ।
विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्र-दिवाकारौ ॥ २२ ॥

अस्त्रग्राममशेषञ्च प्रोक्तमात्रमवाप्य तौ ।
ऊचतुर्व्रियतां या ते दातव्या गुरुदक्षिणा ॥ २३ ॥

सोऽप्यतीन्द्रियमालोक्य तयोः कर्म्म महामतिः ।
अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे लवणार्णवे ॥ २४ ॥

गृहीतास्त्रौ ततस्तौ तु सार्ध्यपात्रौ महोदधिः ।
उवाच न मया पुत्रो हृतः सान्दीपनेरिति ॥ २५ ॥

दैत्यः पञ्चजनो नाम शङ्खरूपः स बालकम् ।
जग्राह सोऽस्ति सलिले ममैवासुरसूदन ॥ २६ ॥

इत्युक्तोऽन्तर्ज्जलं गत्वा हत्वा पञ्चजन खलम् ।
कृष्णो जग्राह तस्यास्थि-प्रभव शङ्खमुत्तमम् ॥ २७ ॥

यस्य नादेन दैत्यानां बलहानिरजायत।
देवानां ववृधे तेजो यात्यधर्म्मश्च संक्षयम् ॥ २८ ॥

तं पाञ्चजन्यमापूर्य्य गत्वा यमपुरीं हरिः ।
बलदेवश्च बलवान् जित्वा वैवस्वतं यमम् ॥ २९ ॥

तं बालं यातनासंस्थ यथापूर्व्वशरीरिणम् ।
पित्रे प्रदत्तवान कृष्णो बलश्च बलिनां वरः ॥ ३० ॥

सान्दीपनिमुनि उनके इस प्रकार का अतिमानुष और असम्भाव्य कार्य को देखकर विचार करने लगे कि निश्चय चन्द्रमा और सूर्य उनके घर में उपस्थित हुए हैं। और वे दोनों गुरु के उपदेशमात्र से ही सभी प्रकार की अस्त्रशिक्षा प्राप्तकर सान्दीपनिमुनिसे बोले—गुरुदक्षिणास्वरूप आपको जो देना है, उसे आप कहिये। तब महामति सान्दीपनि मुनि ने उनका अलौकिक कर्म देखकर उनसे गुरुदक्षिणा-स्वरूप प्रभास क्षेत्र के क्षारसमुद्र में डूबकर मरे हुए अपने पुत्र को माँगा। तदन्तर जब वे शस्त्र उठाकर समुद्र के पास पहुंचे तब समुद्र ने अर्घ्य लेकर उनके पास आकर कहा—मैंने सान्दीपनि के पुत्र का हरण नहीं किया है। हे असुरसूदन! शङ्खरूपधारी पञ्चजन नामक दैत्य मेरे जल में रहता है उसी ने उस बालक को पकड़ लिया है। श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार समुद्र द्वारा कहे जाने पर श्रीकृष्ण ने जल के भीतर प्रवेशकर उस पञ्चजन दैत्य का वध किया और उसकी हड्डियों से उत्पन्न पाञ्चजन्य शङ्ख ले लिया। इस उत्तम शंख के शब्द से दैत्यों का बल नाश होता है और देवताओं का तेज बढ़ता है एवं अधर्म नष्ट होता है। इस प्रकार के उस पञ्चजन्य शङ्ख को बजाते हुए श्रीकृष्ण और बलराम जी ने यमपुरी में पहुचे और सूर्यपुत्र यम को जीत लिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण और बलवानों में श्रेष्ठ बलराम ने यम की यातना भोगते हुए उस बालक को पूर्ववत् शरीरयुक्तकर उसके पिता को दे दिया ॥ २२-३० ॥

मथुराञ्च पुनः प्राप्तावुग्रसेनेन पालिताम्।
प्रहृष्टपुरुषस्त्रीकावूभौ राम-जनादर्दनौ ॥ ३१ ॥

अनन्तर बलराम जी और जनार्दन दोनों ही उग्रसेन से पालित मथुरापुरी में आ गये। उस समय उनको देखकर समस्त मथुरावासी स्त्री और पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ३१॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - बाईसवाँ अध्याय

(जरासन्ध की पराजय)

जरासन्धसुते कंस उपयेमे महाबलः ।
अस्तिं प्राप्तिञ्च मैत्रेय ! तयोर्भर्त्तृहनं हरिम् ।। १ ।।

महाबलपरीवारो मगधाधिपतिर्बली ।
हन्तुमभ्याययौ कोपाज्जरासन्धः सयादवम् ।। २ ।।

उपेत्य मथुरां सोऽथ रुरोध मगधेश्वरः ।
अक्षौहिणीभिः सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्वृतः ।। ३ ।।

निष्क्रम्याल्पपरीवारावुभौ राम-जनार्द्दनौ ।
युयुधाते समं तस्य बलिनौ बलिसैनिकैः ।। ४ ।।

ततो बलश्च कृष्णश्च चक्राते मतिमुत्तमाम् ।
आयुधानां पुराणानामादाने मुनिसत्तम ।। ५ ।।

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! कंस ने जरासन्ध की पुत्री अस्ति और प्राप्ति से विवाह किया था । अतएव महाबलवान् मगधराज जरासन्ध उन दोनों के पति की हत्या करने वाले श्रीकृष्ण को यादवों के साथ विनाश करने के लिए विशाल सेना के साथ मथुरा में आया । मगध के राजा जरासन्ध ने तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ आकर मथुरापुरी को चारों ओर से घेर लिया । उस समय बलशाली राम और श्रीकृष्ण स्वल्पसेना के साथ नगर से बाहर निकलकर जरासन्ध के बलवान् सैनिकों के साथ युद्ध करने लगे । हे मुनिश्रेष्ठ ! अनन्तर श्रीकृष्ण और बलराम जी ने अपने प्राचीन शस्त्रों को ग्रहण करने का संकल्प किया ।। १-५ ।।

अनन्तरं हरेः शार्ङ्गं तूणौ चाक्षयसायकौ।
आकाशादागतौ वीर ! तथा कौमोदकी गदा ॥ ६ ॥

हलञ्च बलभद्रस्य गगनादागतं कवे !
मनसोऽभिमतं विप्र ! सौनन्दं मुसलं तथा ॥ ७ ॥

ततो युद्धे पराजित्य ससैन्यं मगधाधिपम्।
पुरीं विविशतुर्वीरावुभौ राम-जनार्द्दनौ ॥ ८ ॥

हे विप्र ! उसके बाद आकाश से शाङ्‌र्ग धनुष, अक्षयवाणयुक्त दो तरकस और कौमोदकी गदा हरि के समीप आकर उपस्थित हुए। बलभद्रजी के पास भी उनका मनोऽनुकूल महान् हल और सुनन्द नामक मुसल आकाश से आकर उपस्थित हो गये। अनन्तर वीर राम और श्रीकृष्ण सैनिकों के साथ मगधराज को युद्ध में पराजित करके मथुरापुरी में प्रवेश किया ॥ ६-८ ॥

जिते तस्मिन् सुदुर्वृत्ते जरासन्धे महामुने !
जीवमाने गते कृष्णस्तं नामन्यत निर्ज्जितम् ॥ ९ ॥

पुनरप्याजगामाथ जरासन्धो बलान्वितः।
जितश्च राम-कृष्णाभ्यामपक्रान्तो द्विजोत्तम ॥ १० ॥

दश चाष्टौ च संग्रामानेवमत्यन्तदुर्म्मदः।
यदुभिर्मागधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमैः ॥ ११ ॥

सर्व्वेष्वेतेषु युद्धेषु यादवैः स पराजितः।
अपक्रान्तो जरासन्धः स्वल्पसैन्यैर्बलाधिकः ॥ १२ ॥

तद् बलं यादवानां तैरर्ज्जितं यदनेकशः।
तत्तु सन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस्य चक्रिणः ॥ १३ ॥

मनुष्यधर्म्मशीलस्य लीला सा जगतः पतेः।
अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति ॥ १४ ॥

हे महामुने ! अत्यन्त दुराचारी जरासन्धपर विजय प्राप्त करके भी जीवित चले जाने के कारण श्रीकृष्ण ने उसे पराजित नहीं समझा। हे द्विजोत्तम ! कुछ दिनों

के बाद पुनः जरासन्ध उतनी ही सेना लेकर मथुरा में आया, किन्तु श्रीकृष्ण से पराजित होकर भाग गया। अत्यन्त अहङ्कारी मगधराज जरासन्ध ने इस प्रकार अट्ठारह बार यदुवंशीयों के साथ युद्ध किया। किन्तु इन सभी युद्धों में अधिक सेनावाला जरासन्ध थोड़ी सेनावाले यदुवंशियों से पराजित होकर भाग ही जाता था। यादवों की अल्पसेना भी उसकी विशाल सेना से पराजित नहीं होती थी, यह केवल सुदर्शन चक्रधारी विष्णु के अंशावतार श्रीकृष्ण के सामीप्य का ही महत्व था। मनुष्यधर्मशील उन जगत्पति की यह लीला है वे अपने शत्रुओं पर अनेक प्रकार के दिव्य शस्त्रप्रहार करते हैं॥ ९-१४॥

मनसैव जगत्सृष्टिं संहारञ्च करोति यः।
तस्यारिपक्षक्षपणे कोऽयमुद्यमविस्तरः॥ १५॥

तथापि यो मनुष्याणां धर्म्मस्तमनुवर्त्तते।
कुर्व्वन् बलवता सन्धिं हीनैर्युद्धं करोत्यसौ॥ १६॥

साम चोपप्रदानञ्च तथा भेदं प्रदर्शयन्।
करोति दण्डपातञ्च क्वचिदेव पलायनम्॥ १७॥

मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्त्ततः।
लीला जगत्पतेस्तस्य च्छन्दतः सम्प्रवर्त्तते॥ १८॥

जो भगवान् संकल्पनामात्र से ही संसार की उत्पत्ति और विनाश करते हैं, उनको अपने शत्रुओं का नाश करने का और उद्यम का कोई प्रयोजन नहीं है। तथापि वे बलवानों से सन्धि और निर्बलों से युद्ध करके मनुष्य धर्म का अनुकरण करते हैं। वे कहीं साम, कहीं भेद और कहीं दाननीतिका अवलम्बन करते हैं और कहीं दण्ड भी देते हैं, तथा कहीं से स्वयं भी भाग जाते हैं। इस प्रकार मानवदेह धारण करने वालों की चेष्टा का अनुवर्तन करते हुए जगत्पति भगवान् की लीलाएँ होती रहती हैं॥ १५-१८॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में बाईसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - तेईसवाँ अध्याय

(द्वारका दुर्ग की रचना)

गार्ग्यं गोष्ठे द्विजं श्यालः षण्ढ इत्युक्तवान द्विज !
यदूनां सन्निधौ सर्व्वे जसुः सर्व्वयादवाः ॥ १ ॥

ततः कोपसमाविष्टो दक्षिणाब्धिमुपेत्य सः ।
सुतमिच्छंस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम् ॥ २ ॥

आराधयन् महादेवं सोऽयश्चूर्णमभक्षयत् ।
ददौ वरञ्च तुष्टोऽस्मै वासरे द्वादशे हरः ॥ ३ ॥

सभाजयामास च तं यवनेशो ह्यनात्मजः ।
तद्योषित्सङ्गमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसन्निभः ॥ ४ ॥

तं कालयवनं नाम राज्ये स्वे यवनेश्वरः ।
अभिषिच्य वनं यातो वज्राग्रकठिनोरसम् ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्र ! एक समय यादवों की सभा में गार्ग्य के सालेने उनको नपुंसक कह दिया । उस समय समस्त यदुवंशी हँसने लगे । इससे अत्यन्त क्रोधित होकर गार्ग्य दक्षिण समुद्र के तटपर समस्त यदुवंशियों को भयभीत करने वाले पुत्रकी प्राप्ति के लिए तपस्या की । उन्होंने महादेवजी की उपासना में लीन होकर केवल लोह चूर्ण का ही भक्षण किया । इसके बाद बारहवें वर्ष में प्रसन्न होकर महादेवजी ने उनको अभिलषित वर प्रदान किया । एक अपुत्र यवनराज ने गार्ग्य की अत्यन्त सेवा की । उसकी सेवा से प्रसन्न होकर गार्ग्य ने उसकी स्त्री के साथ प्रसङ्ग किया । जिससे भौरे के समान काला एक पुत्र उत्पन्न हुआ । इसके बाद यवनराज वज्र के समान कठोर छातीवाले कालयवन नामक उस पुत्र को राज्यपदपर अभिषेक करके तपस्या करने के लिए वन को चला गया ॥ १-५ ॥

स तु वीर्य्यमदोन्मत्तः पृथिव्यां बलिनो नृपान्।
पप्रच्छ नारदस्तस्मै कथयामास यादवान्॥ ६॥

म्लेच्छकोटिसहस्राणां सहस्रैर्बहुभिर्वृतः।
गजाश्वरथपत्त्योघैश्चकार परमोद्यमम्॥ ७॥

प्रययौ चाव्यवच्छिन्नं छिन्नयानो दिने दिने।
यादवान् प्रति सामर्षो मैत्रेय! मथुरापुरीम्॥ ८॥

अनन्तर अपने पराक्रम के गर्व से उन्मत्त कालयवन ने नारदजी से पृथिवीपर बलवान् राजाओं के विषय में पूछा और नारद ने यादवों के विषय में कहा। नारदजी की बात सुनकर कालयवन ने हजारों हाथी, घोड़े और रथों से परिपूर्ण हजारों करोड़ म्लेच्छसेना को एकत्रित करके बड़ी भारी तैयारी की। हे मैत्रेय! और यादवों के प्रति क्रुद्ध होकर कालयवन यात्रा के समय बीच में हाथी, तथा अश्वादि को परिश्रान्त हो जाने पर उसी क्षण अन्य वाहनों पर आरोहण करके प्रतिदिन अविश्रान्तरूप से चलता हुआ कालयवन मथुरापुरी में पहुँच गया॥ ६-८॥

कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षयितं यादव बलम्।
यवनेन रणे गम्यं मागधस्य भविष्यति॥ ९॥

मागधस्य बलं क्षीणं स कालयवनो बली।
हन्ता तदिदमायातं यदूनां व्यसनं द्विधा॥ १०॥

तस्माद् दुर्गं करिष्यामि यदूनामतिदुर्ज्जयम।
स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयुः किं पुनर्वृष्णिपुङ्गवाः॥ ११॥

मयि मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवसिते तथा।
यादवाभिभवं दुष्टा मा कुर्व्वन् परयोधकाः॥ १२॥

इति सञ्चिन्त्य गोविन्दो योजनानि महोदधिम्।
ययाचे द्वादश पुरीं द्वारकां तत्र निर्म्ममे॥ १३॥

महोद्यानां महावप्रां तड़ागशतशोभिताम्।
प्राकारगृहसम्बाधामिन्द्रस्येवामरावतीम्॥ १४॥

मथुरावासिनो लोकांस्तत्रानीय जनार्द्दनः ।
आसन्ने कालयवने मथुराञ्च स्वयं ययौ ॥ १५ ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण ने विचार किया—कालयवन के साथ युद्ध करने से क्षीण हुई यादव सेना अवश्य ही मगधराज जरासन्ध से पराजित हो जायगी । और यदि पहले मगधराज से युद्ध करते हैं तो उससे क्षीण हुई यादव सेना को कालयवन नष्ट कर देगा । इस प्रकार एक ही समय यादवों पर दो प्रकार की विपत्ति आ पहुँची । अतएव इस समय मैं यादवों के लिए एक ऐसा अजेय दुर्ग का निर्माण करूँ जहाँ रहकर यदुवीरों का तो कहना ही क्या यादव स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकें । उस दुर्ग में निवास करने पर यदि मैं असावधान, सोया अथवा कहीं बाहर भी गया होऊँ उस अवस्था में भी दुष्ट शत्रुगण यादवों को पराजित न कर सके । श्रीगोविन्द ने ऐसा विचार करके महासागर से बारह योजन भूमि माँगकर उस स्थान में द्वारका नाम की नगरी का निर्माण किया । जो द्वारकापुरी इन्द्र की अमरावती के समान बड़े बड़े उद्यान, गहरी खाई, सैकड़ों सरोवर और अनेकों महल एवं गृहों से सुसज्जित थी । अनन्तर कालयवन के आने पर भगवान् जनार्दन मथुरावासियों को द्वारका में लाकर स्वयं मथुरा में चले गये ॥ ९-१५ ॥

बहिरावासिते सैन्ये मथुराया निरायुधः ।
निर्ज्जगाम स गोविन्दो ददृशे यवनेश्वरम् ॥ १६ ॥

अनन्तर कालयवन की सेना ने जब मथुरा को घेर लिया तब भगवान् श्रीकृष्ण बिना अस्त्र लिये मथुरा से बाहर निकले, उस समय कालयवन ने उनको देखा ॥ १६ ॥

स ज्ञात्वा वासुदेवं तं बाहुप्रहरणो नृपः ।
अनुयातो महायोगि-चेतोभिः प्राप्यते न यः ॥ १७ ॥

तेनानुयातः कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम् ।
यत्र शेते महावीर्य्यो मुचुकुन्दो नरेश्वरः ॥ १८ ॥

सोऽपि प्रविश्य यवनो दृष्ट्वा शय्यागतं नृपम् ।
पादेन ताड़यामास मत्वा कृष्णं सुदुर्म्मतिः ॥ १९ ॥

दृष्टमात्रस्तु तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना ।
तत्क्रोधजेन मैत्रेय ! भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥ २० ॥

स हि देवासुरे युद्धे गतो जित्वा महासुरान् ।
निद्रार्त्तः सुमहाकालं निद्रां वव्रे वरं सुरान् ॥ २१ ॥

प्रोक्ताश्च देवैः संसुप्तं यस्त्वामुत्थापयिष्यति ।
देहजेनाग्निना सद्यः स तु भस्मीभविष्यति ॥ २२ ॥

महायोगीश्वरों के चित्त से भी अप्राप्य और अपने बाहुरूप शस्त्रों से युक्त वासुदेव को खाली हाथ देखकर कालयवन उनके पीछे दौड़ा । कालयवनद्वारा पीछा किये जाते हुए श्रीकृष्ण चन्द्र भी उस महान् गुफा में प्रवेश कर गये जहाँ महापराक्रमी राजा मुचकुन्द सो रहे थे । उस दुर्बुद्धि यवन ने भी उस गुफा में प्रवेश करके शयन किये हुए राजा मुचकुन्द को ही कृष्ण समझकर लात मारी । हे मैत्रेय ! उससे राजा की निद्रा भङ्ग हो गयी और जैसे ही राजा ने यवनराज को देखा वैसे ही वह उनकी क्रोधाग्नि से भस्म हो गया । प्राचीन समय में राजा मुचकुन्द देवताओं की ओर से देवासुर-युद्ध में गये थे, उस समय असुरों को मारने के बाद अत्यन्त निद्रालु होने के कारण उन्होंने देवताओं से चिरकाल तक सोने के लिए ही वर माँगा था । उस समय देवताओं ने भी उन्हें कहा था कि तुम्हें निद्रित अवस्था में जो कोई मनुष्य उठावेगा वह उसी समय तुम्हारे शरीर से उत्पन्न अग्नि से जलकर भस्मीभूत हो जायगा ॥ १६-२२ ॥

एवं दग्ध्वा स तं पापं दृष्ट्वा च मधुसूदनम् ।
कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽहं शशिनःकुले
वसुदेवस्य तनयो यदेवंशसमुद्भवः ॥ २३ ॥

इस प्रकार राजा मुचकुन्द ने उस पापी यवन को भस्म करने के बाद भगवान् मधुसूदन को देखकर कहा—आप कौन हैं ? तब भगवान् बोले—मैं चन्द्रवंश के बीच युदकुल में उत्पन्न वसुदेव का पुत्र हूँ ॥ २३ ॥

मुचुकुन्दोऽपि तत्रासौ वृद्धगार्ग्यवचोऽस्मरत् ।
संस्मृत्य प्रणिपत्यैनं सर्व्वभूतेश्वरं हरिम् ॥ २४ ॥

प्राह ज्ञातो भवान् विष्णोरंशस्त्वं परमेश्वरः ।
पुरा गार्ग्येण कथितमष्टाविंशतिमे युगे ।
द्वापरान्ते हरेर्ज्जन्म यदोर्वंशे भविष्यति ॥ २५ ॥

स त्वं प्राप्तो न सन्देहो मार्यानामुपकारकृत् ।
तथापि सुमहत् तेजो नालं सोढु महं तव ॥ २६ ॥

तथाहि सजलाम्भोद-नादधीरतरं तव ।
वाक्यं नमति चैवोर्व्वी यस्य पादप्रपीड़िता ॥ २७ ॥

देवासुरे महायुद्धे दैत्यसैन्ये महाभटाः ।
न शेकुर्मम तत्तेजस्त्वत्तेजो न सहाम्यहम् ॥ २८ ॥

संसारपतितस्यैको जन्तोस्त्वं शरणं परम् ।
स प्रसीद प्रपन्नार्त्तिहर्त्ता हर ममाशुभम् ॥ २९ ॥

त्वं पयोनिधयः शैलाः सरितस्त्वं वनानि च ।
मेदिनी गगनं वायुरापोऽग्निस्त्वं तथा मनः ॥ ३० ॥

बुद्धिरव्याकृतं प्राणाः प्राणेशस्त्वं तथा पुमान् ।
पुंसः परतरं यच्च व्याप्यजन्माविकारि यत् ॥ ३१ ॥

शब्दादिहीनमजरममेयं क्षयवर्ज्जितम् ।
अवृद्धिनाशं तद्ब्रह्म त्वमाद्यन्तविवर्ज्जितम् ॥ ३२ ॥

उस समय मुचकुन्द को वृद्ध गार्ग्य मुनि का वचन स्मरण हो गया । और उसी क्षण सर्वभूतेश्वर हरि को प्रणाम करते हुए बोले—आप श्रीविष्णु का अंश और परमेश्वर हैं यह मैं जान गया । पूर्वकाल में गार्ग्य मुनि ने कहा था कि अट्ठाईसवें चतुर्युगी में द्वापर के अन्त में यदुवंश में हरि का जन्म होगा । आपने मानवमात्र का उपकार करने के लिए निश्चयरूप से अवतार लिया है, किन्तु मैं आपके इस महातेज को सहने में असमर्थ हो रहा हूँ । हे भगवन् ! आपका वचन सजल मेघ के समान अत्यन्त गम्भीर है और आपके चरणभार से पीड़ित होकर पृथिवी नीचे की ओर खिसक रही है । देवासुर-संग्राम से दैत्यसेना के बीच में महावीरगण भी मेरे उत्कृष्ट

तेज को सहन करने में असमर्थ थे, किन्तु आज मैं आपका तेज सहन करने में असमर्थ हूँ। संसार में गिरे हुए प्राणियों के आपही एकमात्र रक्षक हैं, अतः आप उन प्राणियों का दुःख हरण कीजिये। आप प्रसन्न होइये और मेरे अमङ्गल का विनाश कीजिये। आपही समस्त समुद्र, पर्वत, नदी समूह, समस्त वन, पृथिवी, आकाश, वायु, जल और मनः स्वरूप हैं। हे भगवन्! आप बुद्धि और प्रकृतिस्वरूप हैं, आप प्राणस्वरूप, आप पुरुषस्वरूप, और पुरुष की अपेक्षा विकार रहित एवं जन्महीन तथा अतिशय श्रेष्ठ जो वस्तु है वह भी आप ही हैं। आपका आदि और अन्त भी नहीं है, आप वृद्धि एवं नाश रहित, शब्दादि विहीन, क्षयवर्जित, अमेय ब्रह्म हैं ॥ २४-३२ ॥

त्वत्तोऽमराः सपितरो यक्ष-गन्धर्व्व किन्नराः।
सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः ॥ ३३ ॥

सरीसृपा मृगाः सर्व्वे त्वत्तः सर्व्वे महीरुहाः।
यच्च भूतं भविष्यञ्च किञ्चिदत्र चराचरम ॥ ३४ ॥

अमूर्त्तं मूर्त्तमथवा स्थूलं सूक्ष्मतरं स्थितम्।
ततसर्व्वं त्वं जगत्कर्त्ता नास्ति किञ्चित् त्वया विना ॥ ३५ ॥

मया संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमता भगवन् सदा।
तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित् ॥ ३६ ॥

दुःखान्येव सुखानीति मृगतृष्णा जलाशया।
तथा नाथ! गृहीतानि तानि तापाय चाभवन् ॥ ३७ ॥

राष्ट्रमुर्व्वी बलं कोशो मित्रपक्षस्तथात्मजाः।
भार्य्या भृत्यजना ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥ ३८ ॥

सुखबुद्ध्या मया सर्व्वं गृहीतमिदमव्यय!
परिणामे तदेवेश तापात्मकमभून्मम ॥ ३९ ॥

देवलोकमिमं प्राप्तो नाथ! देवगणोऽप्ययम्।
मत्तः साहाय्यकामोऽभूच्छाश्वती कुत्र निर्वृतिः ॥ ४० ॥

त्वामनाराध्य जगतां सर्व्वेषां प्रभवास्पदम्।
शाश्वतां प्राप्यते केन परमेश्वर ! निवृतिः ॥ ४१ ॥

आपसे देवगण, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व किन्नर, सिद्ध और अप्सरागण भी उत्पन्न हुए हैं। और आप ही से मनुष्य, पशु, पक्षिगण उत्पन्न हुए हैं। समस्त मृग, सर्प पर्वतसमूह आपसे उत्पन्न है तथा जो कुछ भी चराचर हो चुके अथवा होंगे वे सभी आपसे ही उत्पन्न हुए और होंगे। हे ज़गत्कर्ता। अमूर्त, मूर्त, स्थूल, सूक्ष्म अथवा स्थिर स्वभाव जो कुछ भी पदार्थ हैं वह सभी आपके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। हे भगवन् ! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन तापों से युक्त होकर मैं इस संसार चक्र में भ्रमण कर रहा हूं और किसी काल में मुझे शान्ति नहीं मिली है। हे नाथ ! जल आशा से मृगतृष्णा के समान मैंने दुःख समूह को सुखरूप माना और इससे मैं बहुत सन्तप्त हुआ। हे प्रभो ! हे अव्यय ! राष्ट्र, पृथिवी, सेना, कोष, मित्रगण, सन्तानसमूह, स्त्री, दास एवं शब्द आदि जो विषय है इन सम्पूर्ण विषयों को मैंने सुखबुद्धि से ग्रहण किया था, किन्तु हे ईश्वर ! अन्त में वे सभी मेरे लिये सन्तानस्वरूप हो गये। हे नाथ ! जब इन समस्त देवगण ने देवलोक प्राप्त करके भी मेरी सहायता की प्रार्थना की थी तब शाश्वती रहने वाली शान्ति कहाँ गयी। हे परमेश्वर ! समस्त जगत् की उत्पत्ति के कारणस्वरूप आपकी उपासना के बिना कोई भी शाश्वती शान्तिलाभ नहीं कर सकता ॥ ३३-४१ ॥

त्वन्मायामूढ़मनसो जन्म-मृत्यु-जरादिकान्।
अवाप्य तापान् पश्यन्ति प्रेतराजाननं नराः ॥ ४२ ॥
ततो निजक्रियासूतिनरकेष्वतिदारुणम्।
प्राप्नुवन्ति नरा दुःखमस्वरूपविदस्तव ॥ ४३ ॥
अहमत्यन्तविषयी मोहितस्तव मायया।
ममत्वगर्व्वगर्त्तान्तर्भ्रमामि परमेश्वर ॥ ४४ ॥
सोऽहं त्वां शरणमपारमीशमीड्यं सम्प्राप्तः परमपदं यतो न किञ्चित्।
संसाराश्रमपरितापतप्तचेता निर्व्वाणे परिणतधाम्नि साभिलाषः ॥ ४५ ॥

हे भगवन् ! आपकी माया से मनुष्य, जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा आदि तापों को प्राप्तकर अन्त में यमराज का मुखदर्शन करते हैं। आपके स्वरूप को नहीं जानने वाले मनुष्य नरक में जाकर अपने कर्मों के फलस्वरूप अनेक प्रकार

के भयानक कष्ट प्राप्त करते हैं। हे परमेश्वर ! मैं आपकी माया से मोहित होकर अत्यन्त विषयी हो गया हूँ तथा ममता और गर्व के गड्ढे में भटकता रहा हूँ। वही मैं आज अपार सर्वनियामक पूज्यतम और परमपदस्वरूप आपकी शरण में आया हूँ, कारण आपसे भिन्न संसार में और कुछ नहीं है। इस संसारभ्रमण के ताप से सन्तप्त चित्तवाला होकर मैं अत्यन्त तेजोमय निर्वाण-स्वरूप केवल आपका ही अभिलाषी हूँ ॥ ४२-४५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चन अंश में तेईसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - चौबीसवाँ अध्याय

(मुचकुन्द का तपस्या के लिए प्रस्थान)

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता ।
प्राहेशः सर्व्वभूतानामनादिर्भगवान हरिः ॥ १ ॥

यथाभिवाञ्छितान् दिव्यान् गच्छ लोकान् नरेश्वर ।
अव्याहतपरैश्वर्य्यो मत्प्रसादोपवृंहितः ॥ २ ॥

भुक्त्वा भोगान् महादिव्यान् भविष्यसि महाकुले ।
जातिस्मरो मत्प्रसादात ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥

इत्युक्तः प्रणिपत्येशं जगतामच्युतं नृपः ।
गुहामुखाद् विनिष्क्रान्तो ददृशे सोऽल्पकान् नरान् ॥ ४ ॥

श्रीपराशर बोले—बुद्धिमान् राजा मुचकुन्दद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर सर्वभूतेश्वर भगवान् हरि बोले । श्रीभगवान् ने कहा—हे नरेश ! तुम अपने इच्छित दिव्य लोक में गमन करो, मेरी कृपा से तुम्हें बिना बाधा के परम ऐश्वर्य प्राप्त होगा । वहाँ दिव्यलोक में दिव्यभोगों को भोगने के बाद तुम पृथिवीपर अपने जातिस्मरण के साथ एक महान् कुल में जन्म प्राप्त करोगे तथा पुनः मेरी कृपा से मोक्ष प्राप्त करोगे । श्रीपराशरजी बोले—भगवान् से ऐसा कहे जाने पर राजा मुचकुन्द ने जगदीश्वर भगवान् अच्युत को प्रणाम करके गुफा से निकलने पर देखा कि मनुष्य बहुत छोटे हो गये हैं ॥ १-४ ॥

ततः कलियुगं ज्ञात्वा प्राप्तं तप्तुं नृपस्तपः ।
नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम् ॥ ५ ॥

उसके बाद कलियुग को उपस्थित हुए जानकर राजा मुचकुन्द तपस्या करने के लिए नरनारायण के निवासस्थान गन्धमादनपर्वत पर चले गए ॥ ५ ॥

कृष्णोऽपि घातयित्वारिमुपायेन हि तद्बलम्।
जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्जवलम् ॥ ६ ॥

आनीय चोग्रसेनाय द्वारवत्यां न्यवेदयत्।
पराभिभवनिःशङ्कं बभूव च यदोः कुलम् ॥ ७ ॥

बलदेवोऽपि मैत्रेय ! प्रशान्ताखिलविग्रहः ।
ज्ञातिसन्दर्शनोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ८ ॥

ततो गोपीश्च गोपांश्च यथापूर्व्वममित्रजित्।
तथैवाभ्यवदत् प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥ ९ ॥

कैश्चापि सम्परिष्वक्तः कांश्चित् स परिषस्वजे ।
हास्यञ्चक्रे समं कैश्चिद् गोपैर्गोपीजनैस्तथा ॥ १० ॥

प्रियाण्यनेकान्यवदन् गोपास्तत्र हलायुधम्।
गोप्यश्च प्रेमकुपिताः प्रोचुः सेर्ष्यमथापराः ॥ ११ ॥

गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनवल्लभः ।
कच्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलत्प्रेमलवात्मकः ॥ १२ ॥

अस्मच्चेष्टामुपहसन् कच्चिन्न पुरयोषिताम्।
सौभाग्यमानमधिकं करोति क्षणसौहृदः ॥ १३ ॥

और भगवान् श्रीकृष्ण पूर्वोक्त उपाय से शत्रु को विनाश कर मथुरा में आ गये और वहाँ हाथी घोड़े और रथ आदि से सुशोभित सेना को अपने वश में करके उसे द्वारका में लाकर राजा उग्रसेन को समर्पित कर दिया। उस समय से यदुवंश शत्रुओं के दमन से निर्भय हो गये। हे मैत्रेय ! समस्त युद्ध के शान्त हो जाने पर बलराम जी नन्दजी के दर्शन के लिए उत्कण्ठित होकर नन्दगोकुल में गये। शत्रुविजयी बलभद्र जी ने नन्दगोकुल में आकर पहले के समान प्रेमपूर्वक सम्मान के साथ गोप और गोपीगण का अभिवादन किया। अनन्तर किसी किसी ने बलभद्र

जी का आलिङ्गन किया और बलभद्र जी ने किसी किसी का आलिङ्गन किया, किसी किसी गोपी और गोपगण के साथ हास परिहास भी करने लगे। उन गोपगण बलराम जी से अनेक प्रकार के प्रियवचन बोलने लगे, किन्तु अन्य गोपियाँ प्रेम से कुपित होकर उनके ईर्ष्यायुक्त बातें करने लगीं। किसी गोपी ने उनसे पूछा—चञ्चल प्रेम के खण्डस्वरूप वे नगरवासिनी रमणीवल्लभ श्रीकृष्ण सुखपूर्वक निवास तो कर रहे हैं? किसी ने कहा—क्षणिक प्रेम करने वाले श्रीकृष्ण हम लोगों के उपहास छल से पुरवासिनी रमणीगण की सौभाग्यवृद्धि क्या नहीं करते हैं? ॥ ६-१३ ॥

कच्चित् स्मरति नः कृष्णो गीतानुगमन कलम्।
अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥ १४ ॥

अथवा किं तदालापैरपरा क्रियतां कथा।
तस्यास्माभिर्विना तेन विनास्माकं भविष्यति ॥ १५ ॥

पिता माता तथा भ्राता भर्त्ता बन्धुजनश्च किम्।
न त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञध्वजो हि सः ॥ १६ ॥

तथापि क्वचिदालोपमिहागमनसंश्रयम्।
करोति कृष्णो वक्तव्यं भवताकृष्ण नानृतम् ॥ १७ ॥

दामोदरोऽसौ गोविन्दः पुरस्त्रीन्यस्तमानसः।
अपेतप्रीतिरस्मासु दुर्दर्शः प्रतिभाति नः ॥ १८ ॥

आमन्त्रितः स कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च।
जहसुः सुस्वर गोप्यो हरिणा हृतचेतसः ॥ १९ ॥

सन्देशैः साममधुरैः प्रेमगर्भैरगर्व्वितैः।
रामेणाश्वासिता गोप्यः कृष्णस्यातिमनोहरैः ॥ २० ॥

गोपैश्च पूर्व्ववद् रामः परिहासमनोरमाः।
कथाश्चकार रेमे च सह तैर्व्रजभूमिषु ॥ २१ ॥

कोई बोली—श्रीकृष्ण क्या पुनः हम लोगों के होकर मनोहर स्वर का स्मरण करेंगे? और वे अपनी माता का दर्शन करने के लिए पुनः एक बार व्रज में आवेंगे

क्या ? । कोई गोपी बोली—अथवा उनके विषय में बात करने से क्या लाभ होगा ? दूसरी कोई बात करो । हम लोगों को परित्याग करके यदि उनका समय बीत जायगा तो उनके बिना हम लोगों का भी समय कट जायगा । हम लोगों ने श्रीकृष्ण के लिए पिता, माता, भ्राता, पति एवं बन्धुवर्ग का क्या परित्याग नहीं किया ? किन्तु श्रीकृष्ण तो अकृतज्ञजन के ध्वजास्वरूप है । किसी ने कहा—इस समय उन सभी बातों से क्या प्रयोजन ? हे कृष्णरहित बलराम ? आप सच कहिये क्या श्रीकृष्ण और एकबार व्रज में आने के सम्बन्ध में कोई बात करते थे ? । अन्य कोई गोपी बोली—दामोदर गोविन्द ने नगर स्त्रियों में अपना मन लगा दिया, अतएव हमलोगों के प्रति अब उनका प्रेम नहीं रहा । इसी कारण से अब उनका दर्शन भी दुर्लभ हो गया । श्रीपराशर जी बोले—अनन्तर हरिद्वारा हरण किये गये चित्तवाली वे गोपियाँ बलरामजी को कृष्ण और दामोदर कहकर सम्बोधन करने लगी और पुनः उच्चस्वर से हँसने भी लगी । तब बलराम जी ने श्रीकृष्णचन्द्रजी का अत्यन्त मनोहर और शान्तियुक्त प्रेमगर्भित एवं गर्वहीन सन्देश सुनाकर आश्वासन दिया । और गोपगण के साथ हास्य करते हुए बलभद्र जी ने पहले के समान बहुत मनोहर बातें की और उनके साथ व्रजभूमि में अनेक प्रकार की लीलाएँ भी की ॥ १४-२१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - पच्चीसवाँ अध्याय

(बलरामजी का ब्रजविहार)

वने विचरतस्तस्य सह गोपैर्महात्मनः ।
मानुषच्छद्मरूपस्य शेषस्य धरणीभृतः ॥ १ ॥

निष्पादितोरुकार्य्यस्य कार्य्यणोर्व्वीविचारिणः ।
उपभोगार्थमत्यर्थ वरुणः प्राह वारुणीम् ॥ २ ॥

अभीष्टा सर्व्वदा यस्य मदिरे त्व ! महौजसः ।
अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे ॥ ३ ॥

इत्युक्ता वारुणी तेन सन्निधानमथाकरोत् ।
वृन्दावनवनोत्पन्न-कदम्बतरुकोटरे ॥ ४ ॥

विचरन् बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुत्तमम् ।
आघ्राय मदिरातर्षमवापाथ पुरातनम् ॥ ५ ॥

ततः कदम्बात् सहसा मद्यधारां स लाङ्गली ।
पतन्तीं वीक्ष्य मैत्रेय ! प्रययौ परमां मुदम् ॥ ६ ॥

पपौ च गोपगोपीभिः समवेतो मुदान्वितः ।
प्रगीयमानो ललितं गीतवाद्यविशारदैः ॥ ७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अपने कार्यों से पृथिवी को प्रचलित करने वाले एवं बड़े बड़े कार्यों को भी निष्पन्न करने वाले धरणीधर माया मानवस्वरूप बलराम जी को वन में विचरण करते हुए देखकर उनके उपभोग के लिए वरुण ने वारुणी (मदिरा) से कहा। हे मदिरे ! हे शुभे ! जिन महाबलशाली अनन्त के लिये तुम सर्वदा प्रिय

हो, उनके उपभोग और प्रसन्नता के लिये जाओ। वरुण के ऐसा कहने पर वारुणी वृन्दावन में उत्पन्न कदम्ब वृक्ष के कोटर में रहने लगी। तब वन में विचरण करते हुए मनोहर मुखवाले बलराम जी को मदिरा की उत्तम गन्ध सूंघने पर उसको पीने की भी इच्छा हुई। हे मैत्रेय! उस समय हलधर बलरामजी सहसा कदम्बवृक्ष से निकली हुई मद्यधारा को देखकर परम प्रसन्न हुए। और गान-वाद्य में निपुण गोप-गोपियों के साथ मधुर स्वर में गाते हुए उन्होंने उनके साथ प्रसन्नतापूर्वक मद्यपान किया ॥ १-७ ॥

समन्तोत्पन्न-घर्म्माम्भःकणिकामौक्तिकोज्ज्वलः।
आगच्छ यमुने! स्नातुमिच्छामीत्याह विह्वलः ॥ ८ ॥

तस्य वाचं नदी सा च मत्तोक्तामवमत्य वै।
नाजगाम ततः क्रुद्धो हलं जग्राह लाङ्गली ॥ ९ ॥

गृहीत्वा तां तटे तेन चकर्ष मदविह्वलः।
पापे नायासि नायासि गम्यतामिच्छयात्मनः ॥ १० ॥

सा कृष्टा तेन सहसा मार्गं सन्त्यज्य निम्नगा।
यत्रास्ते बलभद्रोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥ ११ ॥

शरीरिणी तथोत्पत्य त्रासविह्वललोचना।
प्रसीदेत्यब्रवीद् रामं मुञ्च मां मुषलायुध ॥ १२ ॥

सोऽब्रवीदवजानासि मम शौर्य्यबले यदि।
सोऽहं त्वां हलपातेन विनेष्यामि सहस्रधा ॥ १३ ॥

इत्युक्तयातिसन्त्रासात् तया नद्या प्रसादितः।
भूभागे प्लाविते तस्मिन् मुमोच यमुनां बलः ॥ १४ ॥

घाम के कारण समस्त शरीर में मोती के कण के समान स्वेदबिन्दु से उज्ज्वल शरीर वाले और मद्यपान से विह्वल बलराम जी ने कहा—हे यमुने! मैं स्नान करना चाहता हूँ तुम यहाँ आओ। उस समय बलभद्रजी की बात को उन्मत्त का प्रलाप मानकर यमुना उनके समीप जब नहीं आयी, तब बलराम ने क्रोधित होकर अपना हल उठाया। अनन्तर मद से बलरामजी अपने हलद्वारा यमुना को तीर पर से ही

आकर्षण किया और कहने लगे कि हे पापिनि ! तुम आओगी नहीं ? इस समय तुम अपनी इच्छा से अन्यत्र जाओ तब देखें । सहसा बलरामजीद्वारा आकृष्ट होकर यमुना ने अपने मार्ग को परित्याग करके बलराम जी जिस स्थान पर थे उस तीर को सहसा जल से प्लावित कर दिया । उस समय यमुना मानव शरीर धारण कर बलराम जी के समीप आयी और भय से आँसु भरी आँखोवाली वह बोली—हे मुसलायुध ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न होइये और मुझे छोड़ दीजिये । उसके मधुर वचनों को सुनकर बलराम जी ने कहा—तुम मेरे बलवीर्य की अवज्ञा करती है ? मैं इस हल से तेरे को हजारों टुकड़े कर दूँगा । श्रीपराशरजी बोले—बलभद्रजी द्वारा ऐसा कहे जाने पर भयभीत हुई यमुना उस भूमि में बहने लगी प्रसन्न हुए बलराम जी ने उसे छोड़ दिया ॥ ८-१४ ॥

ततः स्नातस्य वै कान्तिराजगाम महात्मनः ।
अवतंसोत्पलं चारु गृहीत्वैकञ्च कुण्डलम् ॥ १५ ॥

वरूणप्रहितां चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम् ।
समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥ १६ ॥

कृतावतंसः स तदा चारुकुण्डलभूषितः ।
नीलाम्बरधरः स्त्रग्वी शुशुभे कान्तिसंयुतः ॥ १७ ॥

इत्थं विभूषितो रेमे तत्र रामस्तथा व्रजे ।
मासद्वयेन यातश्च पुनः स द्वारकां पुरीम् ॥ १८ ॥

रेवतीं नाम तनयां रैवतस्य महीपतेः ।
उपयेमे बलस्तस्यां जज्ञाते निशठोल्मुकौ ॥ १९ ॥

उस समय स्नान करने से महात्मा बलराम जी अत्यन्त सुशोभित हुए । तब लक्ष्मीजी ने (स्वयं प्रकट होकर) उनको एक कर्ण भूषण (कर्ण-फूल), एक कुण्डल, एक वरुण द्वारा भेजी हुई कभी नहीं कुम्हलाने वाली कमल की माला और समुद्र के समान शोभावाले दो नीले रङ्ग के वस्त्र प्रदान किये । उन कर्णफूल, सुन्दर कुण्डल से सुशोभित, नीलवस्त्र और सुन्दर माला धारणकर बलराम जी उस समय अतिशय सुशोभित होने लगे । इस प्रकार विभूषित होकर बलराम जी ने व्रज में अनेक लीलाएँ

की और दो मास वहाँ रहकर पुनः द्वारका में आ गये। बलराम जी ने रेवत राजा की पुत्री रेवती से विवाह किया। उससे निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १५-१९॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अँश - छब्बीसवाँ अध्याय

(रुक्मिणी का हरण)

भीष्मकः कुण्डिने राजा विदर्भविषयेऽभवत्।
रुक्मी तस्याभवत् पुत्रो रुक्मिणी च वराङ्गना ॥ १ ॥

रुक्मिणीं चक्रमे कृष्णः सा च तं चारुहासिनी।
न ददौ याचते चैनां रुक्मी द्वेषेण चक्रिणे ॥ २ ॥

ददौ च शिशुपालाय जरासन्धप्रदेशितः।
भीष्मको रुक्मिणा सार्द्धं रुक्मिणीमुरुविक्रमः ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—विदर्भदेश में कुण्डिनपुर नामक नगर में भीष्मक नामक राजा निवास करते थे। उनके रुक्मी नामक एक पुत्र और रुक्मिणी नाम की एक सुन्दरी कन्या थी। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी की और चारुहासिनी रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण की कामना की, अतएव श्रीकृष्णद्वारा प्रार्थना किए जाने पर भी उनसे शत्रुता करने के कारण रुक्मी ने उन्हें रुक्मिणी का प्रदान नहीं किया। महापराक्रमी राजा भीष्मक जी ने जरासन्ध के परामर्श से रुक्मी के साथ एकमत होकर शिशुपाल को रुक्मिणी देने का निश्चय किया ॥ १-३ ॥

विवाहार्थं ततः सर्व्वे जरासन्धमुखा नृपाः।
भीष्मकस्य पुरं जग्मुः शिशुपालप्रियैषिणः ॥ ४ ॥

कृष्णोऽपि बलभद्राद्यैर्यादवैर्बहुभिर्वृतः।
प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहञ्चैव भूभृतः ॥ ५ ॥

श्वोभाविनि विवाहे तु तां कन्यां हृतवान् हरिः।
विपक्षभारमासज्य रामाद्येष्वथ बन्धुषु ॥ ६ ॥

ततश्च पौण्ड्रकः श्रीमान् दन्तवक्रो विदूरथः ।
शिशुपाल-जरासन्ध-शाल्वाद्याश्च महीभृतः ॥ ७ ॥

कुपितास्ते हरिं हन्तुं चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ।
निर्ज्जिताश्च समागम्य रामाद्यैर्यदुपुङ्गवैः ॥ ८ ॥

कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि अहत्वा युधि केशवम् ।
कृत्वा प्रतिज्ञां रुक्मी च हन्तुं कृष्णमभिद्रुतः ॥ ९ ॥

हत्वा बलं सनागाश्व-पत्ति-स्यन्दनसङ्कुलम् ।
निर्जितः पातितश्चोर्व्यां लीलयैव स चक्रिणा ॥ १० ॥

हन्तुं कृतमतिः कृष्णो रुक्मिणं युद्धदुर्म्मदम् ।
प्रणम्य याचितो ब्रह्मन् रुक्मिण्या भगवान् हरिः ॥ ११ ॥

एक एव मम भ्राता न हन्तव्यस्त्वयाधुना ।
कोपं नियम्य देवेश ! भ्रातृभिक्षा प्रदीयताम् ॥ १२ ॥

अनन्तर शिशुपाल के हितैषी जरासन्ध आदि समस्त राजागण विवाह में सम्मिलित होने के लिए भीष्मक के नगर में गये । श्रीकृष्ण भी बलभद्र आदि अनेक यादवों के साथ शिशुपाल का विवाह देखने के लिए कुण्डिनपुर पहुंचे । अनन्तर विवाह के एक दिन पहले ही बलभद्र आदि बन्धुगणपर विपक्षियों का भार सौंपकर श्रीहरि ने उस कन्या का हरण कर लिया । इसके बाद पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासन्ध और शाल्व आदि राजाओं ने क्रोधित होकर श्रीकृष्ण को मारने के लिए महान् उद्योग किया, किन्तु वे सब बलराम आदि यदुवंशियों के साथ युद्ध करने से पराजित हो गये । अनन्तर युद्ध में श्रीकेशव को न मारकर मैं पुनः कुण्डिनपुर में प्रवेश नहीं करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करके रुक्मणि ने श्रीकृष्ण का पीछा किया । किन्तु श्रीकृष्ण ने हाथी, घोड़े, रथ और पदातियों से युक्त उसके समस्त सैन्यको नष्ट करके उसे पराजित किया और भूमि पर गिरा दिया । हे ब्रह्मन् ! अनन्तर जब भगवान् श्रीहरि ने युद्धोन्मत्त रुक्मी के वध करने का विचार किया तब रुक्मिणी ने प्रणामपूर्वक भगवान् से प्रार्थना की—हे देवेश्वर ! मेरा यह एक ही भाई है, अतएव आप अपने क्रोध को रोक लें, मुझे भ्रातृभिक्षा दीजिये ॥ ५-१२ ॥

इत्युक्तेन परित्यक्तः कृष्णेनाक्लिष्टकर्म्मणा ।
रुक्मी भोजकटं नाम पुरं कृत्वावसत् तदा ॥ १३ ॥

निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे स रुक्मिणीम् ।
राक्षसेन विवाहेन सम्प्राप्तां मधुसूदनः ॥ १४ ॥

तस्यां जज्ञेऽथ प्रद्युम्नो मदनांशः स वीर्य्यवान् ।
जहार शम्बरो यं वै यो जघान च शम्बरम् ॥ १५ ॥

जब श्रीकृष्ण से रुक्मिणी ने इस प्रकार प्रार्थना की तब उन्होंने रुक्मणि को छोड़ दिया । उस समय रुक्मणि अपनी प्रतिज्ञा सफल नहीं होने से भोजकट नामक नगर निर्माण कर वहीं रहने लगा । मधुसूदन ने भी रुक्मी को युद्ध में पराजित कर राक्षसविवाह से प्राप्त रुक्मणी के साथ वेदोक्त विधि से विवाह किया । उसी रुक्मणी के गर्भ से कामदेव अंश से पराक्रमी प्रद्युम्न का जन्म हुआ । जिनको को जन्मकाल में ही शम्बरासुर ने हरण किया और पुनः कालक्रम से जिन्होंने प्रद्युम्न ने शम्बरासुर का वध किया ॥ १३-१५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - सत्ताईसवाँ अध्याय

(प्रद्युम्न-हरण शम्बरासुर का वध)

मैत्रेय उवाच ।

शम्बरेण हृतो वीरः प्रद्युम्नः स कथं मुने !
शम्बरश्च महावीर्य्यः प्रद्युम्नेन कथं हतः ॥ १ ॥

मैत्रेय जी बोले—हे मुने ! वीरश्रेष्ठ प्रद्युम्न जी को शम्बरासुर ने किस प्रकार हरण किया और प्रद्युम्नजी ने महाशक्तिशाली शम्बरासुर का कैसे वध किया ? ॥ १ ॥

पराशर उवाच ।

षष्ठेऽह्नि जातमात्रन्तु प्रद्युम्नं सूतिकागृहात् ।
ममैष हन्तेति मुने ! हृतवान् कालशम्बरः ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने ! काल के समान विकराल शम्बरासुर ने प्रद्युम्न को जन्म के छठे दिन ही यह बालक मुझको मारनेवाला है ऐसा विचारकर प्रसूतिगृह से हरण किया था ॥ २ ॥

हृत्वा चिक्षेप चैवैनं ग्राहोग्रे लवणार्णवे ।
कल्लोलजनितावर्त्ते सुघोरे मकरालये ॥ ३ ॥

पतितं तत्र चैवैको मत्स्यो जग्राह बालकम् ।
न ममार च तस्यापि जठरेऽनलदीपितः ॥ ४ ॥

मत्स्यबन्धैश्च मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यैः सह द्विज !
घातितोऽसुरवर्य्याय शम्बराय निवेदितः ॥ ५ ॥

तस्य मायावती नाम पत्नी सर्व्वगृहेश्वरी ।
कारयामास सूदानामाधिपत्यमनिन्दिता ॥ ६ ॥

दारिते मत्स्यजठरे सा ददर्शातिशोभनम् ।
कुमारं मन्मथतरोर्दग्धस्य प्रथमाङ्कुरम् ॥ ७ ॥

कोऽयं कथमयं मत्स्यजठरं समुपागतः ।
इत्येवं कौतुकाविष्टां तां तन्वीं प्राह नारदः ॥ ८ ॥

अयं समस्तजगतः सूतिसंहारकारिणा ।
शम्बरेण हृतः कृष्ण-तनयः सूतिकागृहात् ॥ ९ ॥

क्षिप्तः समुद्रे मत्स्येन निगीर्णस्ते वशं गतः ।
नररत्नमिदं सुभ्रू विस्त्रब्धा परिपालय ॥ १० ॥

नारदेनैवमुक्ता सा पालयामास तं शिशुम ।
बाल्यादेवातिरागेण रूपातिशयमोहिता ॥ ११ ॥

और उनको हरण करके शम्बरासुर ने तरङ्गमाला के आवर्तों से परिपूर्ण और अत्यन्त भयानक मकर आदि जलचरों से युक्त लवणसमुद्र में फेंक दिया । वहाँ समुद्र में गिरे हुए उस बालक को एक मत्स्य ने निगल लिया मत्स्य की जठराग्नि से जलकर भी वह बालक नहीं मरा । हे द्विज ! कुछ दिन के बाद मत्स्यजीवियों (मल्लाहों) ने अन्य मछलियों के साथ अपने जाल में उस मछली को भी फँसा लिया और असुरश्रेष्ठ शम्बर को (उपहारस्वरूप) दे दिया । मायावती नामकी एक स्त्री के शम्बरासुर के पत्नीरूप से उसके घर में समस्त अन्तःपुर की स्वामिनी थी और वह सुलक्षणा समस्त पाचकों (रसोइयो) का भी आधिपत्य करती थी । पश्चात् उस मछली के पेट चीरने पर उसमें मायावती ने एक अत्यन्त सुन्दर बालक देखा जो दग्ध हुए कामदेवरूपी वृक्ष का प्रथम अङ्कुर था । तब यह कौन है और किस प्रकार इस मछली के पेट में प्रवेश किया ? इस प्रकार आश्चर्ययुक्त उस कृशाङ्गी से नारद ने आकर कहा । यह बालक समस्त जगत् को स्थिति और संहार करने वाले श्रीकृष्ण का पुत्र है । और इसे सूतिकागृह से शम्बरासुर ने हरण किया था । और हरण करने के बाद उसने इसे समुद्र में फेंक दिया । अनन्तर एक मछली इसको निगल गयी इस प्रकार इसने मछली के पेट में निवास किया । इस समय यह तुम्हारे अधीन है

और तुम विश्वासपूर्वक इस नररत्न का पालन करो। श्रीपराशरजी बोले—नारदजी के ऐसा कहने पर उस बालक का रूप देखकर मायावती अत्यन्त मोहित प्रेमपूर्वक बाल्यावस्था से ही उसका पालन करने लगी ॥ ४-११ ॥

स यदा यौवनाभोग-भूषितोऽभून्महामते !
साभिलाषा तदा साति बभूव गजगामिनी ॥ १२ ॥

मायावती ददौ तस्मै मायाः सर्व्वा महामुने !
प्रद्युम्नायातिरागान्धा तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ १३ ॥

हे महामते ! जब प्रद्युम्नजी नवयौवन समागम से विभूषित हुए तब वह गजगामिनी मायावती भी उनके प्रति सकामा होकर अपना प्रेम प्रकाशित करने लगी। हे महामुने ! उस समय प्रद्युम्न के प्रति अपने नेत्र और हृदय को समर्पितकर मायावती ने प्रेम से अन्धी होकर अपनी समस्त मायाविद्या उनको सिखा दी ॥ १२-१३ ॥

प्रसज्जन्तीन्तु तामाह स कार्ष्णिः कमलेक्षणाम्।
मातृभावमपाहाय किमेवं वर्त्तसेऽन्यथा ॥ १४ ॥

सा चास्मै कथयामास न पुत्रस्त्वं ममेति वै।
तनयं त्वामयं विष्णोर्हृतावान् कालशम्बरः ॥ १५ ॥

क्षिप्तः समुद्रे मत्स्यस्य सम्प्राप्तो जठरान्मया।
सा तु रोदिति ते माता कान्ताद्याप्यतिवत्सला ॥ १६ ॥

इत्युक्तः शम्बरं युद्धे प्रद्युम्नः स समाह्वयत्।
क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे च महाबलः ॥ १७ ॥

हत्वा सैन्यमशेषन्तु तस्य दैत्यस्य माधविः।
सप्त माया व्यतिक्रम्य मायां प्रयुयुजेऽष्टमीम् ॥ १८ ॥

तया जघान तं दैत्यं मायया कालशम्बरम्।
उत्पत्य च तया सार्द्धमाजगाम पितुर्गृहम् ॥ १९ ॥

अन्तःपुरे निपतितं मायावत्या समन्वितम् ।
तं दृष्ट्वा कृष्णसंकल्पा बभूवुः कृष्णयोषितः ॥ २० ॥

रुक्मिणी चावदत् प्रेम्णा साश्रुदृष्टिरनिन्दिता ।
धन्यायाः खल्वयं पुत्रो वर्त्तते नवयौवने ॥ २१ ॥

अस्मिन् वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ।
सभाग्या जननी वत्स ! त्वया कापि विभूषिता ॥ २२ ॥

अथवा यादृशः स्नेहो मम यादृग् वपुस्तव ।
हरेरपत्यं सुव्यक्त भवान् वत्स ! भविष्यति ॥ २३ ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कमलनयना मायावती को कामशय्यापर सुसज्जित देखकर बोले—तुम मातृभाव को परित्याग करके अन्य भाव क्यों ग्रहण करती हो ? उस समय मायावती ने उनसे कहा—आप मेरे पुत्र नहीं हैं, किन्तु श्रीकृष्ण के पुत्र हैं, आपका कालशम्बर ने हरणकर समुद्र में फेंक दिया था । और आप मुझे एक मछली के पेट में मिले हैं । हे कान्त ! आपकी पुत्रप्रेम सम्पन्न माता आज भी रोदन करती होगी । श्रीपराशरजी बोले—मायावती से ऐसा कहे जाने पर महाबली प्रद्युम्नजी ने क्रोध से विह्वल होकर शम्बरासुर को युद्ध के लिये ललकारा और उसके साथ युद्ध करने लगे । यदुकुलोत्पन्न प्रद्युम्न जी ने उस दैत्य शम्बरासुर की समस्त सेना को विनष्ट कर दिया और उसकी सात मायाओं को जीतकर आठवीं माया का प्रयोग किया । उस माया के प्रयोग से कालशम्बरदैत्य को मारकर मायावती के साथ (विमानद्वारा) उड़कर आकाशमार्ग से अपने पिता के घर में आ गये । इसके बाद मायावती के साथ अन्तःपुर में आये हुए उनको देखकर श्रीकृष्ण चन्द्र की स्त्रियों ने प्रद्युम्न श्रीकृष्ण ही समझा । किन्तु अनिन्दिता रुक्मिणी प्रेमवश अश्रुपूर्णनेत्र होकर कहने लगी, अहो ! किस धन्या स्त्री का पुत्र नवयौवन में विराजमान हो रहा है । मेरा पुत्र प्रद्युम्न यदि जीवित होता तो उसकी आयु भी इतनी हो होती । हे वत्स ! तू सच कह, तूने किस भाग्यववती माता से जन्म लिया है । अथवा हे वत्स ! मेरा प्रेम जिस प्रकार तेरे प्रति हो रहा है और जैसा तुम्हारा स्वरूप है इससे मुझे लगता है कि तू कृष्ण का ही पुत्र है ॥ १२-२३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः सह कृष्णेन नारदः ।
अन्तःपुरचरीं देवीं रुक्मिणीं प्राह हर्षयन् ॥ २४ ॥

एष ते तनयः सुभ्रु ! हत्वा शम्बरमागतः ।
हृतो येनाभवद् बालो भवत्याः सूतिकागृहात् ॥ २५ ॥

इयं मायावती भार्य्या तनयस्यास्य ते सती ।
शम्बरस्य न भार्य्येयं श्रूयतामत्र ते सती ।
शम्बरस्य न भार्य्येयं श्रूयतामत्र कारणम् ॥ २६ ॥

मन्मथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा ।
शम्बरं मोहयामास मायारूपेण रूपिणी ॥ २७ ॥

व्यवायाद्युपभोगेषु रूपं मायामयं शुभम् ।
दर्शयामास दैत्यस्य तस्येयं मदिरेक्षणा ॥ २८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—उस समय श्रीकृष्ण के साथ नारदजी वहाँ आकर अन्तःपुर में निवास करने वाली देवी रुक्मिणी को आनन्दित करते हुए बोले— । हे शुभे ! शम्बरासुर को मारकर यह तेरा पुत्र प्रद्युम्न ही आया है । शम्बरासुर ने इसको बाल्यकाल मैं प्रसूतिगृह से हरण कर लिया था । और यह रमणी तुम्हारे इस पुत्र की पतिव्रता भार्या मायावती है । यह शम्बरासुर की भार्या नहीं हैं इसका कारण सुनो । प्राचीनकाल में कामदेव के भस्म हो जाने पर पुनः उसके जन्म की प्रतीक्षा करने वाली सुन्दरी रति ने मायारूप से शम्बरासुर को मोहित कर रखा था । यह मत्तलोचना उस दैत्य शम्बरासुर को विहार आदि उपभोगों के समय अतिसुन्दर अपना मायामयरूप प्रदर्शित करती थी ॥ २४-२८ ॥

कामोऽवतीर्णः पुत्रस्ते तस्येयं दयिता रतिः ।
विशङ्का नात्र कर्त्तव्या स्नुषेयं तव शोभना ॥ २९ ॥

ततो हर्षसमाविष्टा रुक्मिणी केशवस्तथा ।
नगरी च समस्ता सा साधु साध्वित्यभाषत ॥ ३० ॥

चिरं नष्टेन पुत्रेण संयुक्ता प्रेक्ष्यं रुक्मिणीम् ।
अवाप विस्मयं सर्व्वो द्वारवत्यां जनस्तदा ॥ ३१ ॥

हे देवि ! कामदेव ने ही तेरे पुत्ररूप से जन्म लिया है और वह मायावती उसकी प्रिया रति है । हे शोभने ! इसमें किसी प्रकार का सन्देह न करो, यह तुम्हारी पुत्रवधू है। अनन्तर रुक्मिणी और श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए एवं समस्त नगरवासीगण 'साधु-साधु' कहने लगे । उस समय बहुत दिनों से खोये हुए पुत्र के साथ रुक्मिणी का मिलन देखकर द्वारकापुरी निवासी सभी लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ ॥ २९-३१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - अट्ठाईसवाँ अध्याय

(रुक्मी का वध)

चारुदेष्णं सुदेष्णञ्च चारुदेवञ्च वीर्य्यवान् ।
सुषेणं चारुगुप्तञ्च भद्रचारुं तथापरम् ॥ १ ॥
चारुविन्दं सुचारुञ्च चारुञ्च बलिनां वरम् ।
रुक्मिण्यजनयत् पुत्रान् कन्यां चारुमतीं तथा ॥ २ ॥
अन्याश्च भार्य्याः कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः ।
कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा ॥ ३ ॥
देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी ।
भद्रराजसुता चान्या सुशीला शीलमण्डना ॥ ४ ॥
सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
षोड़शासन सहस्त्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—रुक्मणी ने चारुमती नाम की एक कन्या और (प्रद्युम्न के अतिरिक्त) चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्यवान्, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और चारु नामक नौ पुत्रों को जन्म दिया ये सभी पराक्रमी और बलवानों में श्रेष्ठ थे । रुक्मिणी के अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्ण की सात स्त्रियाँ थी । उनका नाम कालिन्दी, मित्रविन्दा, नग्नजित् की पुत्री सत्या, जाम्बवान् की पुत्री कामरूपिणी रोहिणी, अत्यन्त शीलवती सुशीला भद्रा, सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा और चारुहासिनी लक्ष्मणा—ये सभी अत्यन्त सुन्दरी स्त्रियाँ थी । और इन समस्त पत्नियों के अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार पत्नियाँ और थी ॥ १-५ ॥

प्रद्युम्नोऽपि महावीर्य्यो रुक्मिणस्तनयां शुभाम् ।
स्वयंवरस्थां जग्राह सा च तं तनय हरेः ॥ ६ ॥

यस्यामस्याभवत् पुत्रो महाबलपराक्रमः ।
अनिरुद्धो रणे क्रुद्धो वीर्य्योदधिररिन्दमः ॥ ७ ॥

तस्यापि रुक्मिणः पौत्रीं वरयामास केशवः ।
दौहित्राय ददौ रुक्मी तां स्पर्द्धन्नपि शौरिणा ॥ ८ ॥

महाबली प्रद्युम्न ने रुक्मणी की सुन्दरीकन्या के साथ स्वयम्बर में विवाह किया था। वह कन्या भी श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के प्रति अनुरागवती थी। उससे प्रद्युम्नजी के महाबलपराक्रमसम्पन्न अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वे अगाध शक्तिमान् और युद्ध में शत्रुओं को दमन करने वाले थे। श्रीकृष्ण ने उन (अनिरुद्ध) के लिए रुक्मी की पौत्री की प्रार्थना की और श्रीकृष्ण से ईर्ष्या रखते हुए भी रुक्मी ने अपने दौहित्र को अपनी पौत्री देना स्वीकार कर लिया ॥ ६-८ ॥

तस्या विवाहे रामाद्या यादव हरिणा सह ।
रुक्मिणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकटं द्विज ॥ ९ ॥

विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्राद्यूम्नेः सुमहात्मनः ।
कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिणं वाक्यमब्रुवन् ॥ १० ॥

अनक्षज्ञो हली द्यूते तथास्य व्यसनं महत् ।
न जयामो बलं कस्माद् द्यूतेनैनं महाद्युते ॥ ११ ॥

तथेति तानाह नृपान् रुक्मी बलसमन्वितः ।
सभायां सह रामेण चक्रे द्यूतञ्च वै तदा ॥ १२ ॥

सहस्रमेकं निष्काणां रुक्मिणा विजितो बलः ।
द्वितीयोऽपि पणे चान्यत् सहस्रं रुक्मिणा जितम् ॥ १३ ॥

ततो दश सहस्राणि निष्काणां पणमाददे ।
बलभद्रोऽजयत्तानि रुक्मी द्यूतविदां वरः ॥ १४ ॥

ततो जहास स्वनवत् कलिङ्गाधिपतिर्द्विज !
दन्तान् विदर्शयन् मूढो रुक्मी चाह मदोद्धतः ॥ १५ ॥

अविज्ञोऽयं मया द्यूते बलदेवः पराजितः ।
मुधैवाक्षावलेपान्धो यः स्वं मेनेऽक्षकाविदम् ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा कलिङ्गराजं तं प्रकाशदशनाननम् ।
रुक्मिणश्चापि दुर्वाक्यं कोपं चक्रे हलायुधः ॥ १७ ॥

और हे द्विज ! उस कन्या के विवाह में सम्मिलित होने के लिए भगवान् श्रीहरि के साथ बलराम आदि यादवगण भोजकट नाम की रुक्मी की राजधानी को गये । अनन्तर महात्मा प्रद्युम्न पुत्र के विवाह सम्पन्न होने पर कलिङ्गराज आदि राजागण रुक्मी से बोले— । ये हलधर (बलरामजी) द्यूतक्रीड़ा में (जुआ खेलने में) अनभिज्ञ हैं और द्यूतक्रीडा में इनका अधिक प्रेम है, अतएव हे तेजस्विन् ! हम लोग द्यूतक्रीडा में बलभद्र को क्यों नहीं जीत लें ? । श्रीपराशरजी बोले—अनन्तर अपने बल के मद से उन्मत्त रुक्मी राजाओं से बोला— अच्छा यही हो । और सभा में बलभद्र जी के साथ उसने द्यूतक्रीड़ा आरम्भ कर दी । रुक्मी ने प्रथम बार में ही एक सहस्र निष्कद्वारा (चार हजार सुवर्णपण) बलराम जी को पराजित किया, पुनः दूसरे दाँव में भी एकसहस्र निष्कसे उनको जीत लिया । तब बलराम जी ने दश हजार निष्क (अर्थात् चालीस हजार सुवर्णपण) का एक दाँव और लगाया । द्यूतक्रीड़ा के विशेषज्ञ रुक्मी ने उसे भी जीत लिया और बलभद्र जी पुनः पराजित हुए । हे द्विज ! इस पर मूर्ख कलिङ्गराज अपने दाँत दिखाता हुआ जोरों से हँसने लगा और मदोन्मत्त रुक्मी बोला— । द्यूतक्रीड़ा में अनभिज्ञ बलरामजी को मैंने पराजित कर दिया, ये व्यर्थ ही द्यूतक्रीड़ा के गर्व में अन्धे होकर अक्षक्रीड़ा में निपुण व्यक्तियों का अपमान करते थे । इस प्रकार कलिङ्गराज को दाँत दिखाकर हँसते हुए और रुक्मी को दुर्वाक्य बोलते देखकर बलराम जी अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ९-१७ ॥

ततः कोपपरीतात्मा निष्ककोटिं हलायुधः ।
ग्लहं जग्राह रुक्मी च तदर्थेऽक्षानपातयत् ॥ १८ ॥

अजयद् बलदेवस्तं प्राहोच्चैस्तं जितं मया ।
मयेति रुक्मी प्राहोच्चैरलीकोक्तेरलं बल ॥ १९ ॥

त्वयोक्तोऽयं ग्लहः सत्यं न ममैषोऽनुमोदितः ।
एवं त्वया चेद् विजितं मया न विजितं कथम् ॥ २० ॥

अथान्तरिक्षे वागुच्चैः प्राह गम्भीरनादिनी ।
बलदेवस्य तद्कोपं वर्द्धयन्ती महात्मनः ॥ २१ ॥

जितं बलेन धर्म्मेण रुक्मिणो भाषितं मृषा ।
अनुक्तवापि वचः किञ्चित् कृतं भवति कर्म्मणा ॥ २२ ॥

ततो बलः समुत्थाय कोपसंरक्तलोचनः ।
जघानाष्टापदेनैव रुक्मिणं सुमहाबलः ॥ २३ ॥

कलिङ्गराजञ्चादाय विस्फुरन्तं बलाद् बलः ।
वभञ्ज दन्तान् कुपितो यैः प्रकाशं जहास सः ॥ २४ ॥

आकृष्य च महास्तम्भं जातरूपमयं बलः ।
जघान येऽन्ये तत्पक्षा भूभृतः कुपितो बलात् ॥ २५ ॥

ततो हाहाकृतं सर्व्वं पलायनपरं द्विज !
तद्राजमण्डलं भीतं बभूव कुपिते बले ॥ २६ ॥

पश्चात् क्रोधित बलराम ने चार कोटी सुवर्णपण का एक ही दाँव लगाया और रुक्मी ने उसे भी ग्रहण करने के लिए अपने पाँसे फेंके । किन्तु उसे बलदेवजी ने ही जीते और वे उच्चस्वर से बोले 'मैंने जीता है ।' इस पर रुक्मी भी जोर से बोला—हे बलदेव ! यह दाँव भी मैंने ही जीता है, असत्य बोलने से कोई लाभ नहीं । आपने इस दाँव के विषय में अवश्य कहा था किन्तु मैंने अनुमोदन तो नहीं किया, इस प्रकार यदि आपने जीता तो मैंने क्यों नहीं जीता ? श्रीपराशरजी बोले—उस समय बलदेव जी के क्रोध को बढ़ाती हुई आकाशवाणी ने गम्भीर स्वर में कहा । धर्मपूर्वक बलराम जी ने ही यह दाँव जीता है, रुक्मी का वचन असत्य है । क्योंकि अनुमोदन न करने पर भी कार्य द्वारा वह अनुमोदित ही माना जाता है । अनन्तर महाबली बलराम जी क्रोध से अपनी आँखों को लालकर उठे और जुआ

खेलने वाले पाँसों से ही रुक्मी का वध कर दिया। पुनः बलरामजी फड़कते हुए कलिङ्गराज को भी बलपूर्वक पकड़कर जिन दाँतों को दिखाते हुए वह हँसता था, उन दाँतों को तोड़ दिया। उस समय क्रोधित बलदेवजी ने बलपूर्वक सुवर्णमय स्तम्भ को खींचकर उसी से शत्रुपक्ष के समस्त राजागण का वध कर दिया। हे द्विज ! बलराम जी को इस प्रकार क्रोधित देखकर सभी लोग हाहाकार करते हुए भागने लगे और आये हुए समस्त राजागण भी भयभीत हो गये ॥ १८-२३ ॥

बलेन निहतं श्रुत्वा रुक्मिणं मधुसूदनः ।
नोवाच किञ्चिन्मैत्रेय ! रुक्मिणी-बलयोर्भयात् ॥ २७ ॥

ततोऽनिरुद्धमादाय कृतोद्वाहं द्विजोत्तम !
द्वारकामाजगामाथ यदुचक्रं सकेशवम् ॥ २८ ॥

हे मैत्रेय ! बलराम जी के द्वारा रुक्मी का वध सुनकर भी भगवान् मधुसूदन रुक्मिणी और बलरामजी के भय से कुछ भी नहीं बोले। हे द्विजोत्तम ! उसके बाद विवाहित अनिरुद्ध को साथ में लेकर केशव के सहित समस्त यादवगण द्वारका में लौट आये ॥ २७-२८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - उन्तीसवाँ अध्याय

(नरकासुर का वध)

द्वारवत्यां ततः शौरिं शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः।
आजगामाथ मैत्रेय ! मत्तैरावतपृष्ठगः ॥ १ ॥

प्रविश्य द्वारकां सोऽथ समेत्य हरिणा ततः।
कथयामास दैत्यस्य नरकस्य विचेष्टितम् ॥ २ ॥

त्वया नाथेन देवानां मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठता।
प्रशमं सर्व्वदुःखानि नीतानि मधुसूदन ॥ ३ ॥

तपस्वि-जननाशाय सोऽरिष्टो धेनुकस्तथा।
चाणूरो मुष्टिकः केशी ते सर्व्वे निहतास्त्वया ॥ ४ ॥

कंसः कुवलयापीड़ः पूतना बालघातिनी।
नाशं नीतास्त्वया सर्व्वे येऽन्ये जगदुपद्रवाः ॥ ५ ॥

युष्मद्दोर्दण्ड-सद्बुद्धि परित्राते जगत्त्रये।
यज्विययज्ञांशसम्प्राप्त्या तृप्तिं यान्ति दिवौकसः ॥ ६ ॥

सोऽहं साम्प्रतमायातो यन्निमित्तं जनार्द्दन !
तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्नं कर्त्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! एक दिन त्रिभुवनपति इन्द्र मत्त ऐरावत हाथी पर चढ़कर द्वारका में श्रीकृष्ण के समीप आये। इन्द्र द्वारका में आकर भगवान् श्रीहरि के दर्शन करने के पश्चात् नरक नामक दैत्य के दुर्व्यवहार उनसे कहने लगे। इन्द्र बोले—हे मधुसूदन ! देवगण के नाथ होकर भी आपने इस समय मनुष्यरूप से निवास करते हुए हम लोगों के समस्त दुःखों को शान्त कर दिया। आपने

तपस्विजन को विनाश करने वाले अरिष्ट, धेनुक, चाणूर, मुष्टिक और केशी आदि महासुरों का विनाश कर दिया। कंस, कुवलयापीड एवं बालघातिनी पूतना और संसार में उपद्रव करने वाले अन्यान्य दुष्टों का भी आपने विनाश किया। आपके दुर्दान्त बुद्धिबल के प्रभावद्वारा असज्जनों से तीनोंलोक त्राण पा रहा है और इस समय याज्ञिकों द्वारा दिये गये यज्ञभाग को प्राप्त कर देवगण भी तृप्त हो रहे हैं। हे जनार्दन ! इस समय मैं वही देवेन्द्र आपके समीप जिस कारण से आया हूँ उसे सुनिये और उसका प्रतीकार करने के लिए सचेष्ट होइये ॥ १-७ ॥

भौमोऽयं नरको नाम्ना प्राग्ज्योतिषपुरेश्वरः ।
करोति सर्व्वभूतानामुपघातमरिन्दम ॥ ८ ॥

देवसिद्धासुरादीनां नृपाणाञ्च जनादर्दन !
हृत्वा हि सोऽसुरः कन्या रुरोध निजमन्दिरे ॥ ९ ॥

छत्रं यत् सलिलस्रावि तज्जहार प्रचेतसः ।
मन्दरस्य तथा श्रृङ्गं हृतवान् मणिपर्व्वतम् ॥ १० ॥

अमृतस्राविणी दिव्ये मन्मातुः कृष्ण ! कुण्डले ।
जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छत्यैरावतं गजम् ॥ ११ ॥

दुर्णीतमेतद् गोविन्द ! मया तस्य तवोदितम् ।
यदत्र प्रतिपत्तव्यं तत् स्वयं प्रविमृष्यताम् ॥ १२ ॥

हे अरिन्दम ! पृथिवीका पुत्र नरकासुर नामक एक असुर प्राग्ज्योतिषपुर का राजा है। वह इस समय समस्त प्राणियों पर उपद्रव कर रहा है। हे अरिन्दम ! नरकासुर नामक दैत्यने देवता, सिद्ध, असुर एवं राजाओं की कन्याओं को हरण करके अपने घर में अवरुद्ध कर लिया है। और वरुण का जलवर्षण करने वाला छत्र एवं मन्दर पर्वत का मणिपर्वत नामक शिखर का भी इस असुर ने हरण कर लिया है। हे कृष्ण ! इस नरकासुर ने मेरी माता अदिति का अमृतवर्षी कुण्डल हरण कर लिया है और सदा मेरे इस ऐरावत हाथी को भी हरण करने की अभिलाषा करता है। हे गोविन्द ! मैंने आपके समीप नरकासुर की इन समस्त दुर्नीतियों की चर्चाकर दी है इस समय इस विषय में जो करना उचित हो उसका विचार आप स्वयं करें ॥ ८-१२ ॥

इति श्रुत्वा स्मितं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः ।
गृहीत्वा वासवं हस्ते समुत्तस्थौ वरासनात् ॥ १३ ॥

सञ्चिन्तितमुपारुह्य गरुड़ गगनेचरम् ।
सत्यभामां समारोप्य यौ प्राग्ज्योतिषं पुरम् ॥ १४ ॥

चिन्तयामास च विभुर्मनसा पन्नगाशनम् ।
आरुह्यैरावतं नागं शक्रोऽपि त्रिदिवालयम् ।
ततो जगाम मैत्रेय ! पश्यतां द्वारकौकसाम् ॥ १५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्र की ऐसी बात सुनकर कुछ हँसते हुए इन्द्र के हाथ पकड़कर श्रेष्ठ आसन से उठ गये । अनन्तर सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण ने मन से गरुड़ का स्मरण किया । स्मरणमात्र से ही समीप में आये हुए आकाशचारी गरुड़ के ऊपर सत्यभामा के साथ आरोहण करके उन्होंने प्राग्ज्योतिषपुर की यात्रा की । और हे मैत्रेय ! द्वारकावासियों के देखते देखते इन्द्र ने भी ऐरावत हाथी पर चढ़कर स्वर्ग को प्रस्थान किया ॥ १३-१५ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरस्यासीत् समन्ताच्छतयोजनम् ।
आचिता मौरवैः पाशैः क्षुरान्तैर्भूर्द्विजोत्तम ॥ १६ ॥

तांश्चिच्छेद हरिः पाशान् क्षिप्त्वा चक्रं सुदर्शनम् ।
ततो मुरुः समुत्तस्थौ तं जघान च केशवः ॥ १७ ॥

मुरोश्च तनयान् सप्त सहस्रांस्तांस्ततो हरिः ।
चक्रधाराग्निनिर्दग्धांश्चकार शलभानिव ॥ १८ ॥

हत्वा मुरुं हयग्रीवं तथा पञ्चजनं द्विज !
प्राग्ज्योतिषपुरं धीमांस्तवरावान् समुपागतः ॥ १९ ॥

नरकेणास्य तत्राभून्महासैन्येन संयुगः ।
कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यान् सहस्रशः ॥ २० ॥

शस्त्रास्त्रवर्षं मुञ्चन्तं भौमं तं नरकं बली ।
क्षिप्त्वा चक्रं द्विधा चक्रे चक्री दैतेयचक्रहा ॥ २१ ॥

हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वादितिकुण्डले ।
उपतस्थे जगन्नाथं वाक्यं चेदमथाब्रवीत् ॥ २२ ॥

यदाहमुद्धता नाथ ! त्वया शूकरमूर्त्तिना ।
त्वत्स्पर्शसम्भवः पुत्रस्तदायं मय्यजायत ॥ २३ ॥

सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः ।
गृहाण कुण्डले चमे पालयास्य च सन्ततिम् ॥ २४ ॥

भारावतारणार्थाय ममैव भगवानिमम् ।
अंशेन लोकमायातः प्रसादसुमुखः प्रभो ॥ २५ ॥

हे द्विज ! प्राग्ज्योतिषपुर चारों ओर से सौ योजनतक छुरे के अग्रभाग के समान मुरुदानव से बनाया हुआ तेज धारवाले पाश समूह से घिरा हुआ था । भगवान् ने सुदर्शनचक्र के प्रहार से उस पाशसमूह का छेदन कर दिया, इसके बाद मुरु दानव सामना करने के लिए उठकर खड़ा हुआ और भगवान् ने उसका भी विनाश किया । अनन्तर हरि ने मुरु के सात हजार पुत्रों को भी शलभ के समान सुदर्शन चक्र की अग्निधारा से दग्ध कर दिया । हे द्विज ! बुद्धिमान् हरि इस प्रकार मुरु, हयग्रीव और पञ्चजन को विनाश करके शीघ्रतापूर्वक प्राग्ज्योतिषपुर में प्रवेश कर गये । इसके बाद सेनापतियों से घिरे हुए नरकासुर के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ । इस युद्ध में भगवान् गोविन्द ने हजारों दैत्यों का संहार किया । अनन्तर महाबली एवं दैत्यों के विनाशक भगवान् श्रीकृष्ण ने शस्त्रसमूह को वर्षण करने वाले पृथिवी पुत्र नरकासुर को सुदर्शनचक्र द्वारा दो खण्ड कर दिया । इस प्रकार नरकासुर का वध करने के बाद पृथिवी अदिती के कुण्डल को लेकर भगवान् के समक्ष उपस्थित हुई और जगन्नाथ से बोली । पृथिवी बोली—हे नाथ ! आपने पूर्वकाल में शूकररूप धारण कर मेरा उद्धार किया था, उसी समय आपके अङ्ग स्पर्श होने से मेरा यह नरकासुर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । आपही ने यह दिया था एवं आज आपही ने विनाश कर दिया । अब आप ये दोनों कुण्डल ग्रहण करें और कृपापूर्वक नरकासुर के पुत्रों का पालन करें । हे प्रभो ! आप भगवान है, आप अत्यन्त प्रसन्न होकर हमारे ही भार उतारने के लिए अपने अंश से मर्त्यलोक में अवतार लिया है ॥ १६-२५ ॥

त्वं कर्त्ता त्वं विकर्त्ता च संहर्त्ता प्रभवोऽप्ययः ।
जगतां त्वं जगद्रूपः स्तूयतेऽच्युत ! किं तव ॥ २६ ॥

व्यापी व्याप्यः क्रिया कर्त्ता कार्य्यञ्च भगवान् यथा ।
सर्व्वभूतात्मभूतस्य स्तूयते तव किं तदा ॥ २७ ॥

परमात्मा च भूतात्मा महात्मा चाव्ययो भवान् ।
यदा तदा स्तुतिर्नाथ ! किमर्थं ते प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥

हे अच्युत ! आप ही जगत् के कर्ता हैं, आप ही पालन कर्ता और संहारक भी हैं । आप ही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति के कारण तथा विनाशक भी हैं । आप ही जगत्स्वरूप हैं, मैं आपकी स्तुति करने में किस प्रकार समर्थ हो सकती हूँ । हे भगवन् ! जब आप ही व्यापक, व्याप्य, क्रिया और कार्य हैं । एवं आप ही समस्त भूतों के आत्मास्वरूप हैं तब मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करने में समर्थ होऊँगी ? । जब आप ही परमात्मा, भूतात्मा एवं अव्यय आत्मा हैं तब किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ? ॥ २६-२८ ॥

प्रसीद सर्व्वभूतात्मन् ! नरकेण हि यत् कृतम् ।
तत् क्षम्यतामदोषाय त्वत्सुतः त्वन्निपातितः ॥ २९ ॥

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगवान् भूतभावनः ।
रत्नानि नरकावासाज्जग्राह मुनिसत्तम ॥ ३० ॥

कन्यापुरे स कन्यानां षोड़शातुलविक्रमः ।
शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामते ॥ ३१ ॥

चतुर्दन्तान् गजाश्चोग्रयान् षट्सहस्रान् स दृष्टवान् ।
काम्बोजानां तथाश्वानां नियुतान्येकविंशतिम् ॥ ३२ ॥

कन्यास्ताश्च तथा नागांस्तानश्वान् दग्वारकां पुरीम् ।
प्रेषयामास गोविन्दः सद्यो नरककिङ्करैः ॥ ३३ ॥

हे सर्वभूतात्मन् ! आप प्रसन्न होइये और नरकासुर द्वारा किये गये समस्त अत्याचारों को क्षमा करें । दोष निवारण की कामना से ही आपने अपने पुत्र का

विनाश किया है। श्रीपराशरजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! भूतभावन भगवान् ने तुम्हारी इच्छा पूरी हो इस प्रकार पृथिवी को कहकर नरकासुर के गृह से रत्नसमूह को ग्रहण कर लिया। हे महामते ! अतुलनीय पराक्रमी भगवान् ने नरकासुर के कन्यान्तःपुर में सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखी। भगवान् ने नरकासुर के नगर में चार दाँतवाले विशाल शरीरधारी छः हजार हाथी और इक्कीस लाख काम्बोजदेश में उत्पन्न हुए घोड़ों को भी देखा। उस समय गोविन्द ने नरकासुर के अनुचरों द्वारा उन सभी कन्याओं को, हाथियों को और घोड़ों को उसी दिन द्वारकापुरी में भिजवा दिया ॥ २६-३३ ॥

ददृशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्व्वतम्।
आरोपयामास हरिर्गरुड़े पन्नगाशने ॥ ३४ ॥

आरुह्य च स्वयं कृष्णः सत्यभामा-सहायवान्।
अदित्याः कुण्डले दातु जगाम त्रिदिवालयम् ॥ ३५ ॥

अनन्तर भगवान् ने वरुण का छत्र और मणिपर्वत को देखकर इन दोनों को सर्पभोजी गरुड़पर रखा। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने अदिति को कुण्डल देने के लिए सत्यभामा के साथ गरुड़ की पीठपर चढ़कर स्वर्ग को प्रस्थान किया ॥ ३४-३५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - तीसवाँ अध्याय

(पारिजात-हरण)

गरुड़ो वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्व्वतम् ।
सभार्य्यञ्च हृषीकेशं लीलयैव वहन् ययौ ॥ १ ॥

ततः शङ्खमुपाध्मासीत् स्वर्गद्वारगतो हरिः ।
उपतस्थुस्तथा देवाः सार्घ्यहस्ता जनार्द्दनम् । २ ॥

स देवेरर्च्चितः कृष्णो देवमातुर्निवेशनम् ।
सिताभ्रशिखराकारं प्रविश्य ददृशेऽदितिम् ॥ ३ ॥

स तां प्रणम्य शक्रेण सह ते कुण्डलोत्तम ।
ददौ नरकनाशञ्च शशंसास्यै जनार्द्दनः ॥ ४ ॥

ततः प्रीता जगन्माता धातारं जगतां हरिम् ।
तुष्टावादितिरव्यग्रा कृत्वा त्वत्प्रवणं मनः ॥ ५ ॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ! भक्तानामभयङ्कर ।
सनातनात्मन सर्व्वात्मन ! भूतात्मन् ! भूतभावन ॥ ६ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद गरुडजी वरुण का छत्र, मणिपर्वत और सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण को लीलापूर्वक वहन करते हुए चले । तदनन्तर स्वर्ग में पहुँचकर भगवान् ने शंख बजाया और उस शंखध्वनि को सुनकर हाथ में अर्घ्यपात्र लेकर देवगण भगवान् के सामने उपस्थित हुए । उन देवगण से सुपूजित होकर भगवान् ने देवमाता अदिति के श्वेत मेघ के समान गृह में प्रवेश किया । भगवान् जनार्दनने इन्द्र के साथ देवमाता अदिति को प्रणामकर उनको दोनों कुण्डल दे दिया और नरकासुर की मृत्यु का वृत्तान्त कहा । अनन्तर जगन्माता अदिति प्रसन्न

होकर शान्तभाव से तन्मय और स्थिरचित्त से भगवान् की स्तुति करने लगी। अदिती बोली—हे पुण्डरीकाक्ष ! हे जगत् के भय हरने वाले ! हे सनातनस्वरूप ! हे सर्वात्मन् ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन ! आपको नमस्कार है ॥ १-६ ॥

प्रणेतः मनसो बुद्धिन्द्रियाणा गुणात्मक !
त्रिगुणातीत ! निर्द्वन्द्व ! शुद्धसत्त्व ! हृदि स्थित ॥ ७ ॥

सितदीर्घादिनिःशेष-कल्पनापरिवर्ज्जित !
जन्मादिभिरसंस्पृष्ट ! स्वप्नादिपरिवर्ज्जित ॥ ८ ॥

सन्ध्या रात्रिरहोभूमिर्गगनं वायुरम्बु च।
हुताशनो मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्व तथाच्युत ॥ ९ ॥

सृष्टि-स्थिति-विनाशानां कर्त्त कर्तृपतिर्भवान् !
ब्रह्म-विष्णु-शिवाख्याभिरात्ममूर्त्तिभिरीश्वर ॥ १० ॥

आप मन, बुद्धि और इन्द्रियगण की रचना करने वाले हैं, हे गुणस्वरूप ! हे त्रिगुणातीत ! हे निर्द्वन्द्व ! हे शुद्धसत्त्व ! हे अन्तर्यामिन् ! आपको नमस्कार है। हे नाथ ! आप श्वेत, दीर्घ आदि समस्त कल्पनाओं से रहित हैं, आप जन्म आदि विकारों से भी पृथक् हैं एवं स्वप्न सुषुप्ति, जागरण इन अवस्थाओं से भी वर्जित हैं, आपको नमस्कार है। हे अच्युत ! सन्ध्या, रात्रि, दिन, भूमि, आकाश, वायु, जल और बुद्धि ये समस्त आप ही हैं एवं आप ही सम्पूर्ण भूतों के आदिभूत भी हैं। हे ईश्वर ! आप ही सृष्टि, स्थिति और विनाश करने वाले और कर्तृपति हैं, आप ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप हैं और इन तीनों मूर्तियों को धारण करके पूर्वोक्त तीनों कार्यों का सम्पादन भी आप ही करते हैं ॥ ७-१० ॥

देवा यक्षास्तथा दैत्या राक्षसाः सिद्ध-पन्नगाः।
कुष्माण्डाश्च पिशाचाश्चं गन्धर्व्वा मनुजास्तथा ॥ ११ ॥

पशवो मृगमातङ्गास्तथैव च सरीसृपाः।
वृक्ष-गुल्म-लता बह्वयः समस्तास्तृणजातयः ॥ १२ ॥

स्थूला मध्यास्तथा सूक्ष्माः स्थूल-सूक्ष्मतराश्च ये।
देहभेदा भवान् सर्व्वे ये केचित् पुद्गलाश्रयाः ॥ १३ ॥

माया तवेयमज्ञातपरमार्थातिमोहिनी ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं यथा मूढ़ो निरुध्यते ॥ १४ ॥

अस्वे स्वमिति भावोऽत्र यत् पुंसामुपजायते ।
अहं ममेति भावोऽत्र यत् प्रायेणाभिजायते ।
संसारमातुर्मायायास्तवैतन्नाथ ! चेष्टितम् ॥ १५ ॥

देव, यक्ष, दैत्य, राक्षस, सिद्ध, नाग, कूष्माण्ड, पिशाच, गन्धर्व, मनुष्य, पशु, मृग, मातङ्ग, सर्प वृक्ष, गुल्म, लता एवं समस्त प्राणिजाति, स्थूल, मध्यसूक्ष्म, स्थूलतर सूक्ष्मतर प्रभृति जितने प्रकार के भी देहभेद परमाणु के आश्रय से स्थित हैं वे समस्त आप हीं हैं । जो परमात्मा के स्वरूप को जानते नहीं उन व्यक्तियों को मोहित करने वाली आपकी माया ने आत्मा से भिन्न पदार्थ-स्वरूप आत्मविज्ञान का जन्म दिया है । हे देव ! यह माया ही मूढ व्यक्तियों को संसार के बन्धन में बाँधती हैं । हे नाथ ! इन सांसारिक मनुष्यों के मन में अनात्मा में आत्मबुद्धि (मैं हूँ और मेरी यह वस्तु है इत्यादि भावनाएँ जो उत्पन्न होती है वे समस्त आपकी माया की ही लीला है ॥ ११-१५ ॥

यः स्वधर्म्मपरैर्नाथ ! नरैराराधितो भवान् ।
ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये ॥ १६ ॥

ब्रह्माद्याः सकला देवा मनुष्याः पशवस्तथा ।
विष्णुमायामहावर्त्तमोहान्धतमसावृताः ॥ १७ ॥

आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्ममवक्षयम् ।
यदेते पुरुषा माया सैवेयं भगवंस्तव ॥ १८ ॥

मया त्वं पुत्रकामिन्या वैरिपक्षक्षयाय च ।
आराधितो न मोक्षाय मायाविलसितं हि तत् ॥ १९ ॥

कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ।
जायते यदपुण्यानां सोऽपराधः स्वदोषजः ॥ २० ॥

तत् प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराव्यय !
अज्ञानं ज्ञानसद्भावभूतं भूतेश ! नाशय ॥ २१ ॥

नमस्ते चक्रहस्ताय शार्ङ्गहस्ताय ते नमः ।
गदाहस्ताय ते विष्णो ! शङ्खहस्ताय ते नमः ॥ २२ ॥

एतत् पश्यामि ते रूपं स्थूलचिन्होपलक्षितम् ।
न जानामि परं यत्ते प्रसीद परमेश्वर ॥ २३ ॥

हे नाथ ! स्वधर्मपरायण जो मनुष्यगण मुक्तिलाभ के लिये आपकी आराधना करते हैं, वे ही समस्त मायाओं से पार उतर सकते हैं। ब्रह्मा आदि देवगण एवं पशुगण, मनुष्य आदि सभी विष्णु के महाभ्रम में गिरे हैं और मोहरूपी महान्धकार से आवृत हैं। हे भगवन् ! जीवगण जन्म और मरण के बीच वाले समय में आपकी आराधना करके सांसारिक कामनाओं की पूर्ति की जो अभिलाषा करते हैं, वही आपकी माया है। पुत्रगण के कल्याण की कामनावाली मैंने आपकी आराधना करके जो शत्रुओं का विनाश करवाया, किन्तु मोक्ष की कामना नहीं की यह भी आपकी माया का ही कार्य है। कल्पवृक्ष के समीप जाकर भी कौपीनकी याचना के समान आपके समीप जाकर भी पुण्यहीनों की जो सामान्य वस्तुओं की प्रार्थना होती है, वह अपने कर्मों का दोष ही है। हे अखिल जगत् के मोहकारक ! हे अव्यय ! आप प्रसन्न होइये, हे भूतेश्वर ! मेरे ज्ञान के अभिमान से उत्पन्न अज्ञान को विनाश कीजिये। हे चक्रहस्त ! आपको नमस्कार है, हे शङ्खधनुषधारी आपको नमस्कार है। हे विष्णो ! आप हाथ में गदा और खड्ग धारण किये हैं, आपको नमस्कार है। हे परमेश्वर ! मैं आपके इन स्थूलचिन्हों से युक्त रूप को ही देखती हूँ, किन्तु आपके परम (प्रधान) स्वरूप को नहीं जानती, आप प्रसन्न होइये ॥ १६-२३ ॥

अदित्यैवं स्तुतो विष्णुः प्रहस्याह सुरारणिम् ।
माता देवि ! त्वमस्माकं प्रसीद वरदा भव ॥ २४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अदिति से इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर हँसते हुए भगवान् देवमाता अदिति से बोले—हे देवि ! तुम मेरी माता हो, प्रसन्न होकर वरदायिनी बनो ॥ २४ ॥

एवमस्तु यथेच्छा ते त्वमशेषैः सुरासुरैः ।
अजेयः पुरुषव्याघ्र ! मर्त्यलोके भविष्यसि ॥ २५ ॥

ततोऽन्तरमेवास्य शक्राणीसहितादितिम्।
सत्यभामा प्रणम्याह प्रसीदेति पुनः पुनः ॥ २६ ॥

मत्प्रसादान्न ते सुभ्रु ! जरा वैरूप्यमेव च।
भविष्यत्यनवद्याङ्गि ! सुस्थिरं नवयौवनम्॥ २७ ॥

अदित्या तु कृतानुज्ञो देवराजो जनार्द्दनम्।
यथावत् पूजयामास बहुमानपुरःसरम्॥ २८ ॥

शची च सत्यभामायै पारिजातस्य पुष्पकम्।
न ददौ मानुषीं मत्वा स्वयं पुष्पैरलङ्कृता॥ २९ ॥

ततो ददर्श कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान।
देवोद्यानानि हृद्यानि नन्दनादीनि सत्तम॥ ३० ॥

ददर्श च सुगन्धाढ्यं मञ्जरीपुञ्जधारिणम्।
नित्याह्लादकरं ताम्रबालपल्लवशोभितम्॥ ३१ ॥

मथ्यमानेऽमृते जातं जातरूपोपमत्वचम्।
पारिजातं जगन्नाथः केशवः केशिसूदनः ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्दं सत्यभामा द्विजोत्तम !
कस्मान्न द्वारकामेष नीयते देवपादपः ॥ ३३ ॥

यदि ते तद्वचः सत्यं सत्यात्यर्थं प्रियेति मे।
मद्गेहनिष्कुटार्थाय तदयं नीयता तरुः ॥ ३४ ॥

अदिति बोली—हे पुरुषोत्तम ! आपकी जो इच्छा है वही होगा, आप मर्त्यलोक में समस्त सुर एवं असुरगण से अजेय बने रहेंगे। श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद सत्यभामा इन्द्राणी के साथ अदिति को प्रणामपूर्वक बारंबार आप प्रसन्न होइये इस प्रकार बोली। अदिति बोली—हे शुभ्रे ! हे अनिन्दिताङ्गि ! मेरे आशीर्वाद से तुम वृद्धावस्था अथवा विरूपता को कभी नहीं प्राप्त होगी और सदा नवयौवना बनी रहोगी। श्रीपराशरजी बोले—अदिति के आज्ञानुसार इन्द्र ने सम्मान के साथ यथाविधान भगवान् श्रीजनार्दन की पूजा की। इन्द्र की पत्नी शची

ने मानुषी समझकर सत्यभामा को पारिजात पुष्प नहीं दिया, किन्तु स्वयं उस पुष्प से श्रृङ्गार किया। हे साधुश्रेष्ठ ! अनन्तर सत्यभामा के साथ भगवान् श्रीकृष्ण नन्दन आदि समस्त देवताओं के उद्यान को देखने लगे। उन बागों में भगवान् केशीसूदन श्रीकृष्ण ने अमृतमन्थन के समय उत्पन्न पारिजात वृक्ष को देखा, जो पारिजात अत्यन्त सुगन्ध से परिपूर्ण और इन्द्रपत्नी शची के आनन्ददायक था। उसमें नवीन ताम्रवर्ण के पत्ते सुशोभित हो रहे थे और उसके समस्त त्वक् (छाल) सुवर्णमय था। हे द्विजोत्तम ! उस वृक्ष को देखकर सत्यभामाने कहा—हे गोविन्द ! क्यों आप इस वृक्ष को द्वारका में नहीं ले चलेंगे ! । यदि आपकी यह बात सत्य है कि 'सत्यभामा हमारी अतिशय प्रिय है' तब इस वृक्ष को द्वारका में ले चलिये ॥ २५-३४ ॥

न मे जाम्बवती तादृगभीष्टा न च रुक्मिणी।
सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत् प्रियम् ॥ ३५ ॥

सत्यं तद् यदि गोविन्द ! नोपचारकृतं तव।
तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम् ॥ ३६ ॥

बिभ्रती पारिजातस्य केशपक्षेण मञ्जरीम्।
सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये ॥ ३७ ॥

हे श्रीकृष्ण ! आपने मुझसे अनेक बार ऐसा कहा है कि हे सत्ये ! जिस प्रकार तुम मुझे प्रिय हो, उस प्रकार रुक्मिणी अथवा जाम्बवती कोई भी प्रिय नहीं हैं। हे गोविन्द ! आपके सभी वाक्य यदि सत्य हैं और केवल मेरे प्रलोभन के लिए उन वाक्यों का प्रयोग आपने नहीं किया है तो इस पारिजात वृक्ष से मेरे गृह को विभूषित करें। इस पारिजात वृक्ष की मञ्जरी से विभूषित होकर मैं अपनी सपत्नियों में सुशोभित होऊँ—यही हमारी कामना है ॥ ३५-३७ ॥

इत्युक्तः सम्प्रहस्यैनं पारिजातं गरुत्मति।
आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षिणः ॥ ३८ ॥

भोः शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम्।
पारिजातं न गोविन्द ! हर्त्तुमर्हसि पादपम् ॥ ३९ ॥

शचीविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्थने।
उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वैनं गमिष्यसि ॥ ४० ॥

देवराजो मुखप्रेक्षी यस्यास्तस्याः परिग्रहम्।
मौढ्यात् प्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वैनं हि को व्रजेत् ॥ ४१ ॥

अवश्यमस्य देवेन्द्रो निष्कृतिं कृष्ण ! यास्यति।
वज्रोद्यतकरं शक्रमनुयास्यन्ति चामराः ॥ ४२ ॥

श्रीपराशरजी बोले—सत्यभामा के ऐसा कहने पर हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने उस पारिजात वृक्ष को गरुड़ के ऊपर उठा लिया। उस समय उस बाग के रक्षकों ने भगवान् से कहा—हे गोविन्द ! यह पारिजात इन्द्राणी की सम्पत्ति है, आप इसका हरण न करें। अमृतमन्थन के समय शची के आभूषण के लिए देवगण ने इसे उत्पन्न किया है आप इसका हरण करके कुशलपूर्वक जा नहीं सकते। देवराज इन्द्र भी जिसका मुखापेक्षी हैं उस शची के ही पारिजात को हरणकर कौन पुरुष कुशलपूर्वक जा सकता है ? हे श्रीकृष्ण ! देवराज इन्द्र अवश्य ही इसका प्रतीकार करेंगे एवं वज्रधारी इन्द्र के पीछे सभी देवगण उनका साथ देंगे ॥ ३८-४२ ॥

तदलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत !
विपाककटु यत् कर्म्म तन्न शंसन्ति पण्डिताः ॥ ४३ ॥

इत्युक्ते तैरुवाचैतान् सत्यभामातिकोपिनी।
का शची पारिजातस्य को वा शक्रः सुराधिपः ॥ ४४ ॥

सामान्यः सर्व्वलोकानां यद्येषोऽमृतमन्थने।
समुत्पन्नः सुराः कस्मादेको गृह्णाति वासवः ॥ ४५ ॥

यथा सुरा यथैवेन्दुर्यथा श्रीर्वनरक्षिणः।
सामान्याः सर्व्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुमः ॥ ४६ ॥

भर्त्तबाहुमहागर्व्वाद् रुणद्धयेनं यथा शची।
तत् कथ्यतामलं क्षान्त्या सत्या हारयति द्रुमम् ॥ ४७ ॥

कथ्यताञ्च द्रुतं गत्वा पौलोम्या वचनं मम।
सत्यभामा वदत्येतदतिगर्वोद्धताक्षरम् ॥ ४८ ॥

यदि त्वं दयिता भर्त्तुर्यदि वश्यः पतिस्तव।
मद्भर्त्तुर्हरतो वृक्षं तत् कारय निवारणम् ॥ ४९ ॥

जानामि ते पति शक्रं जानामि त्रिदिवेश्वरम्।
पारिजातं तथाप्येनं मानुषी हारयामि ते ॥ ५० ॥

हे अच्युत ! अतएव देवगण के साथ व्यर्थ में विरोध न करें, जिस कार्य का फल उत्तम नहीं होता पण्डितगण उस कार्य का सदा परित्याग करते हैं । श्रीपराशरजी बोले—वनरक्षकों से ऐसा कहे जाने पर अत्यन्त क्षुब्ध होकर सत्यभामा बोली—अरे ! पारिजात के सम्बन्ध में शची अथवा इन्द्र कौन है ? । यह यदि अमृतमन्थन के समय उत्पन्न हुआ है तो समस्त लोकों की ही साधारण सम्पत्ति है । हे देवगण ! अकेले इन्द्र ने ही इसको क्यों ग्रहण किया है ? हे वनरक्षकगण ! समुद्र से उत्पन्न अमृत, चन्द्रमा और लक्ष्मी जी यदि सभी के उपभोग की वस्तु है, तब उसी प्रकार यह पारिजात भी सभी की साधारण सम्पत्ति है । पति के बाहुबल से गर्विता शची जिस प्रकार इस वृक्ष को ले जाने से रोक ले, तुम लोग उसी प्रकार जाकर शची से बोलो कि हरिप्रिया सत्यभामा अपने पति के बल से वृक्ष को हरण करती है । तुम्हारी क्षमा की आवश्यकता नहीं है । तुम लोग शीघ्र जाकर शची से कहो कि अत्यन्त गर्वोद्धत सत्यभामा ने ऐसा कहा है । तुम लोग यदि अपने स्वामी के प्रिय हो और स्वामी भी यदि तुमलोगों के वश में है तो मेरे स्वामी वृक्ष का हरण करते हैं उसे तुम लोग निवारण करो । मैं तुम लोगों के स्वामी इन्द्र को जानती हूँ और यह भी जानती हूँ कि वे स्वर्ग के अधिपति हैं तो भी मैं मानुषी होकर इसका हरण करा रही हूँ ॥ ४३-५० ॥

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा शच्या ऊचुर्यथोदितम्।
शची चोत्साहयामास त्रिदशाधिपतिं पतिम् ॥ ५१ ॥

श्रीपराशरजी बोले—सत्यभामा की ऐसी बात सुनने के बाद वनरक्षकगण ने शची के समीप जाकर सत्यभामाद्वारा कही गयी सारी बातें कह दी । उस समय शची ने भी अपने पति देवराज इन्द्र को उत्साहित किया ॥ ५१ ॥

ततः समस्तदेवानां सैन्यैः परिवृतो हरिम्।
प्रययौ पारिजातार्थमिन्द्रो योधयितुं द्विज ॥ ५२ ॥

ततः परिघ-निस्त्रिंश-गदा-शूल-वरायुधाः।
बभूवुस्त्रिदशाः सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥ ५३ ॥

ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम्।
शक्रं दवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ५४ ॥

चकार शङ्खनिर्घोषं दिशः शब्देन पूरयन्।
मुमोच शरसङ्घातान् सहस्त्रायुतशः शितान् ॥ ५५ ॥

ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशतैश्चितम्।
मुमुचुस्त्रिदशाः सर्व्वे अस्त्रशस्त्राण्यनेकशः ॥ ५६ ॥

एकैकमस्त्रं शस्त्रञ्च देवैर्मुक्तं सहस्त्रधा।
चिच्छेद लीलयैवेशो जगतां मधुसूदनः ॥ ५७ ॥

पाशं सलिलराजस्य समाकृष्योरगाशनः।
चकार खण्डशश्चञ्च्वा बालपन्नगदेहवत् ॥ ५८ ॥

यमेन प्रहृतं दण्डं गदाविक्षेपखण्डितम्।
पृथिव्याः पातयामास भगवान् देवकीसुतः ॥ ५९ ॥

शिविकाञ्च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः।
चकार शौरिरर्कञ्च दृष्टिदृष्टहतौजसम् ॥ ६० ॥

अनन्तर है द्विज ! समस्त देवसेनाओं के साथ इन्द्र ने भी पारिजात को छुड़ाने के लिये श्रीकृष्ण से युद्ध करने के निमित्त प्रस्थान किया। इसके बाद इन्द्र ने अपने हाथ में वज्र लेने पर समस्त देवगण परिघ, निस्त्रिंश, गदा और त्रिशूल आदि उत्तम अस्त्र लेकर सुसज्जित हो गये। अनन्तर ऐरावतपर स्थित एवं देवसेना से घिरे हुए इन्द्र युद्ध के लिए उपस्थित हुए हैं ऐसा देखकर भगवान् गोविन्द ने शङ्खध्वनि की और धनुष के टङ्कार से समस्त दिशाओं को पूरितकर एक साथ ही हजारों लाखों तीखे बाणों की वर्षा की। अनन्तर समस्त दिशाएँ और आकाश को

बाणसमूह से आच्छादित देखकर देवगण भी अनेक प्रकार के अस्त्रों की वर्षा करने लगे। जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण भी लीलापूर्वक उन एक एक बाण को हजार हजार खण्ड करने लगे। गरुड़जी भी वरुण के पाशों को साँप के बच्चों के समान अपने चोंच के द्वारा ही खण्ड खण्ड करने लगे। भगवान् देवकीपुत्र ने भी यमद्वारा प्रहार किये गये दण्ड को अपनी गदा के निक्षेप से खण्ड खण्ड करके पृथिवी पर गिरा दिया। एवं भगवान् कृष्ण ने चक्र निक्षेप करके कुबेर की पालकी को तिल-तिलके बराबर विच्छिन्न कर दिया और दृष्टिपात से ही सूर्य को भी तेजोहीन बना दिया॥ ५२-६०॥

नीतोऽग्निः शतशो वाणैर्द्राविता वसवो दिशः।
चक्रविच्छिन्नशूलाग्रा रुद्रा भुवि निपातिताः॥ ६१॥

साध्या विश्वेऽथ मरुतो गन्धर्व्वाश्चैव सायकैः।
शार्ङ्गिणा प्रेरितैरस्ता व्योम्नि शाल्मलितूलवत्॥ ६२॥

गरुत्मानपि वक्त्रेण पक्षाभ्यां नखराङ्कुरैः।
भक्षयंस्ताड़यन् देवान् दारयंश्च चचार वै॥ ६३॥

भगवान् ने सौ बाणों के द्वारा अग्नि को भी निरस्त कर दिया। वसुगण अनेक दिशाओं में भागने लगे। भगवान् के चक्र से अपने अपने त्रिशूल के अग्रभाग को विच्छिन्न हो जाने से बलहीन रुद्रगण क्रमशः पृथिवी पर गिरने लगे। साध्य, वसु, विश्वेदेव और गन्धर्वगण भी भगवान् श्रीकृष्ण के बाणाघात से विक्षिप्त होकर आकाश में सेमल की रूई के समान उड़ने लगे। एक और गरुड़ भी मुख, दोनों पङ्ख और नखों से देवगण को खाते, मारते और फाड़ते हुए विचरण करने लगे॥ ६१-६३॥

ततः शरसहस्रेण देवेन्द्र-मधुसूदनौ।
परस्परं ववर्षाते धाराभिरिव तोयदौ॥ ६४॥

ऐरावतेन गरुड़ो युयुधे तत्र संयुगे।
देवैः समस्तैर्ययुधे शक्रेण च जनार्द्दनः॥ ६५॥

छिन्नेष्वशेषवाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु च त्वरन्।
जग्राह वासवो वज्रं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम्॥ ६६॥

ततो हाहाकृतं सर्व्वं त्रैलोक्यं द्विजसत्तम !
वज्र-चक्रधरौ दृष्ट्वा देवराज-जनार्द्दनौ ॥ ६७ ॥

क्षिप्तं वज्रमथेन्द्रण जग्राह भगवान् हरिः ।
न मुमोच तदा चक्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ६८ ॥

प्रनष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुड़क्षतवाहनम् ।
सत्यभामाब्रवीद् वीरं पलायनपरायणम् ॥ ६९ ॥

अनन्तर अविरल धाराओं से वर्षण करने वाले मेघ के समान मधुसूदन और देवराज इन्द्र आपस में सहस्रों बाणों की वर्षा करने लगे । उस युद्ध में गरुड़ ऐरावत के साथ, अकेले भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्र समस्त देवगण के साथ युद्ध कर रहे थे । अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों को छिन्न भिन्न हुए देखकर इन्द्र ने तत्क्षण वज्र धारण किया । भगवान् ने भी सुदर्शन चक्र धारणकर लिया । हे द्विजोत्तम ! देवराज और जनार्दन को यथाक्रम वज्र और सुदर्शनचक्र धारण करते देखकर समस्त त्रिलोकी में हाहाकार होने लगा । उस समय इन्द्रद्वारा वज्र प्रहार होने पर उस वज्र को धारणकर भगवान् स्वयं चक्र न छोड़कर इन्द्र से बोले—अरे !ठहर । अनन्तर जिनका वाहन ऐरावत गरुड़द्वारा क्षतविक्षत हो गया था, उन देवेन्द्र वीर को वज्रहीन देखकर सत्यभामा बोली ॥ ६४-६९ ॥

त्रैलोक्येश ! न ते युक्तं शचीभर्त्तुः पलायनम् ।
पारिजातस्त्रगाभोगा त्वामुपस्थास्यते शची ॥ ७० ॥

कीदृशं देवराज्यन्ते पारिजातस्त्रगुज्जवलाम् ।
अपश्यतो यथापूर्व्वं प्रणयादागतां शचीम् ॥ ७१ ॥

अलं शक्र ! प्रयातेन न ब्रीड़ां गन्तुमर्हसि ।
नीयतां पारिजातोऽयं देवाः सन्तु गतव्यथाः ॥ ७२ ॥

पतिगर्व्वावलेपेन बहुमानपुरःसरम् ।
न ददर्श गृहे यातामुपचारेण मां शची ॥ ७३ ॥

स्त्रीत्वादगुरुचित्ताहं खभर्त्तृश्लाघनापरा ।
ततः कृतवती शक्र भवता सह विग्रहम् ॥ ७४ ॥

तदलं पारिजातेन परस्वेन हृतेन नः ।
रूपेण गर्व्विता सा तू भर्त्रा स्त्री का न गर्व्विता ॥ ७५ ॥
इत्युक्तो विनिवृत्तोऽसौ देवराजस्तथा द्विज !
प्राह चैनामलं चण्डि ! सख्युः खेदातिविस्तरैः ॥ ७६ ॥
न चापि सर्ग-संहार-स्थितिकर्त्ताखिलस्य यः ।
जितस्य तेन मे व्रीड़ा जायते विश्वरूपिणा ॥ ७७ ॥
यस्मिन् जगत् सकलमेतदनादिमध्ये यस्माद् यतश्च न भविष्यति सर्व्वभूतात् ।
तेनोद्भव-प्रलय-पालनकारणेन व्रीडा कथं भवति देवि ! निराकृतस्य ॥ ७८ ॥

हे देवराज इन्द्र ! आप शची के पति हैं, आपका भागना उचित है क्या ? पारिजात पुष्प की माला से विभूषित होकर शची शीघ्र उपस्थित होगी । पारिजात-पुष्प की माला से उज्जवलकान्तिवाली प्रेमान्धा शची जिस प्रकार आप के समीप उपस्थित होती थी, इस समय उनका वह रूप नहीं देखकर देवराजत्व क्या आपके लिए सुखदायक होगा ? हे इन्द्र ! अधिक प्रयास मत करो और लज्जित भी न हो इस पारिजात को ले जाओ । देवगण का दुःख शान्त हो । पति के पराक्रम से गर्विता शची ने गृह में आयी हुई मुझे सम्मान के साथ देखा नहीं किन्तु अपमान के साथ देखा था । स्त्री होने से मेरा चित्त भी अधिक गम्भीर नहीं है, अतएव मैंने अपने पति का गौरव प्रकट करने के लिए ही तुमसे लड़ाई ठानी थी । हे इन्द्र ! यह दूसरे के पारिजात को हरण करने से हमको क्या फल होगा ? शची अपने रूप और पति के गर्व से गर्विता हो रही है । ऐसी कौन स्त्री है जो इस अवस्था में गर्विता न होती हो । श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज ! सत्यभामा की ऐसी बात सुनकर इन्द्र ने शान्तभाव से उससे कहा ! मैं आपका मित्र हूँ, अतएव आप मेरे खेद का विस्तार न करें । जो त्रिलोकी को उत्पन्न, संहार और पालन करते हैं, मैं उन्हीं विश्वरूपी भगवान् से पराजित हुआ हूँ, अतएव मुझे कोई लज्जा नहीं है । हे देवि ! जिनका आदि, मध्य नहीं है, उन्हीं परमात्मा से यह समस्त प्रतिष्ठित हुआ है और जिनसे यह समस्त सर्व भूतमय जगत् उत्पन्न हुआ, तथा जिनके द्वारा ही प्रलय काल में इस समस्त जगत् का कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहेगा उक्षी सृष्टि का उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले परमात्मा से पराजित होने पर मुझे लज्जा क्यों होगी ? ॥ ७०-७८ ॥

सकलभुवनसूतेर्मूर्त्तिरस्यानुसूक्ष्मां विदितसकलवेदैर्ज्ञायते यस्य नान्यः ।
तमजमकृतमीशं शाश्वतं स्वेच्छयेनं जगदुपकृतिमर्त्त्यं को विजेतुं समर्थः ॥ ७९ ॥

जो समस्त वेदों को जानने वाले हैं,वे ही समस्त भुवन के उत्पादक भगवान् की अज्ञेय मूर्ति किस प्रकार की है उसे जानते हैं, किन्तु दूसरे लोग जान सकते नहीं । उन्हीं जन्मरहित कर्म विहीन शाश्वत और अपनी इच्छा से जगत् का उपकार करने के लिए मानव शरीरधारी ईश्वर को कौन व्यक्ति पराजित कर सकता है ॥ ७९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में तीसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - इकतीसवाँ अध्याय

(भगवान् का द्वारकापुरी में आगमन)

संस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः ।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेदं द्विजोत्तम ॥ १ ॥

देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्त्या जगत्पते !
क्षन्तव्यं भवता चदमपराधकृतं मम ॥ २ ॥

पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम् ।
गृहीतोऽयं मया शक्र ! सत्यावचनकारणात् ॥ ३ ॥

वज्रञ्चेदं गृहाण त्वं यत्त्वया प्रहितं मयि ।
तवैवैतत् प्रहरणं शक्र ! वैरिविदारणम् ॥ ४ ॥

विमोहयसि मामीश ! मर्त्त्योऽहमिति किं वदन् ।
जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मविदो वयम् ॥ ५ ॥

योऽसि सोऽसि जगत्त्राण ! प्रवृत्तौ नाथ ! संस्थितः ।
जगतः शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदनः ॥ ६ ॥

नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण ! द्वारवतीं पुरीम् ।
मर्त्त्यलोके त्वया त्यक्ते नायं संस्थास्यते भुवि ॥ ७ ॥

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः ।
प्रसक्तैः सिद्ध-गन्धर्वैः स्तूयमानस्तथर्षिभिः ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवान् इस प्रकार देवराज इन्द्र से स्तुत होकर हँसते हुए गम्भीरभाव से बोले । श्रीकृष्ण बोले—हे जगत्पते ! आप देवराज

इन्द्र हैं और मैं मर्त्यलोक का मानव हूँ, अतएव मैंने जो अपराध किया उसे आप क्षमा करें। आप इस पारिजात वृक्ष को योग्य स्थान में ले जायँ। मैंने इसे केवल सत्यभामा के वचनानुसार ही ग्रहण किया था। और आपने मेरे ऊपर जो वज्रप्रहार किया था, उसे भी लीजिये—यह शत्रुविनाशकारी अस्त्र आपके ही योग्य है। इन्द्र बोले—हे ईश्वर ! मैं मर्त्यलोक का मानव हूँऐसा कहकर आप मुझे क्यों मोहित करते हैं ? हे भगवन् ! यह आपका दृश्यमान रूप को मैं जानता हूँ, सूक्ष्मरूप का ज्ञान मुझे नहीं हैं। हे नाथ ! आप जो हैं वही हैं जगत् की रक्षा के लिए ही आपने मानव-शरीर धारण किया है। हे असुरसूदन ! उसी के अनुसार आप जगत् में अशान्ति करने वाले समस्त दुष्टों का संहार करके शान्ति स्थापना करते हैं। हे श्रीकृष्ण ! इस पारिजात वृक्ष को आप द्वारका पुरी में ले जाइये। किन्तु आपके मर्त्यलोक त्यागने के बाद यह वहाँ नहीं रहेगा। श्रीपराशरजी बोले—भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा ही हो इस प्रकार इन्द्र से कहकर पृथ्वी पर आ गये। आगमन के समय सिद्ध, गन्धर्व, और ऋषिगण उनकी प्रार्थना कर रहे थे ॥ १-८ ॥

ततः शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि संस्थितः।
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विज ॥ ९ ॥

अवतीर्य्याथ गरुड़ात् सत्यभामासहायवान्।
निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम ॥ १० ॥

यमभ्येत्य जनः सर्व्वो जातिं स्मरति पौर्व्विकीम्।
वास्यते यस्य पुष्पोत्थगन्धेनोर्व्वी त्रियोजनम् ॥ ११ ॥

ततस्ते सादराः सर्व्वे देहबन्धानमानुषान्।
ददृशुः पादपे तस्मिन् कुर्व्वन्तो मुखदर्शनम् ॥ १२ ॥

किङ्करैः समुपानीतं हस्त्यश्वादि ततो धनम्!
स्त्रियश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहान् ॥ १३ ॥

ततः काले शुभे प्राप्ते उपयेमे जनार्द्दनः।
ताः कन्या नरकेणासन् सर्व्वतो यः समाहृताः ॥ १४ ॥

एकस्मिन्नेव गोविन्दः काले तासां महामते !
जग्राह विधिवत् पाणीन् पृथग्गेहेषु धर्म्मतः ॥ १५ ॥

हे द्विज ! अनन्तर द्वारका के ऊपरिभाग में विराजमान होकर शंख बजाते हुए भगवान् द्वारकावासियों को हर्षित करने लगे । इसके बाद सत्यभामा के साथ भगवान् केशव ने गरुड़ से उतरकर सत्यभामा के अन्तःपुरोद्यान में पारिजात नामक महावृक्ष को स्थापित किया । इस पारिजात वृक्ष आने से सभी लोग अपने अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरणकर सकते हैं और इस पुष्प के सुगन्ध से तीन योजनतक भूमि सुगन्धित होती है । अनन्तर समस्त यादवगण अतिशय आदर के साथ उस पारिजात वृक्ष में अपना मुख दर्शन करने लगे और अपने शरीर को देवशरीर समझने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने अनुचरों द्वारा लाये गये नरकासुर के हाथी, घोड़े और धन एवं उसके द्वारा अपहृत समस्त स्त्रीगण को भी ग्रहण किया । शुभ समय उपस्थित होने पर नरकासुर द्वारा अनेक देशों से अपहृत उन कन्याओं के साथ भगवान् जनार्दन ने विवाह किया । हे महामते ! यह आश्चर्य का विषय है कि भगवान् गोविन्द ने एक ही समय पृथक् पृथक् गृह में उन समस्त कन्याओं के साथ धर्मानुसारविधि से पाणिग्रहण (विवाह) किया ॥ ९-१५ ॥

षोड़शस्त्रीसहस्राणि शतमेकं तथाधिकम् ।
तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान् मधुसूदनः ॥ १६ ॥

एकैकश्येन ताः कन्या मेनिरे मधुसूदनम् ।
ममैव पाणिग्रहणं भगवान् कृतवानितिः ॥ १७ ॥

निशासु च जगत्स्रष्टा तासां गुहेषु केशवः ।
उवास विप्र ! सर्व्वासां विश्वरूपधरो हरिः ॥ १८ ॥

सोलह हजार एक सौ कन्याओं के साथ विवाह के समय भगवान् मधुसूदन ने उतना ही रूप धारण किया था । उस समय उन समस्त कन्याओं ने अपने मन से ऐसा विचार किया था कि स्वयं भगवान् मधुसूदन ने ही हमारा पाणिग्रहण किया है । हे विप्र ! प्रत्येक रात्रि में विश्वरूपधारी भगवान् जगत्स्रष्टा केशव हरि ने उन प्रत्येक के गृह में जाकर निवास करना आरम्भ किया ॥ १६-१८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - बत्तीसवाँ अध्याय

(उषाचरित)

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्याः कथितास्तव ।
भानुं भैमरिकञ्चैव सत्यभामा व्याजायत ॥ १ ॥

दीप्तिमान् ताम्रपक्षाद्या रोहिण्यां तनया हरेः ।
बभूवुर्जाम्बवत्याञ्च शाम्बाद्या बलशालिनः ॥ २ ॥

तनया भद्रविन्दाद्या नाग्नजित्यां महाबलाः ।
संग्रामजित्प्रधानास्तु शैव्यायान्त्वभवन् सुताः ॥ ३ ॥

वृकाद्याश्च सुता माद्र्यां गात्रवत्प्रमुखान् सुतान् ।
अवाप लक्ष्मणा पुत्राः कालिन्द्याञ्च श्रुतादयः ॥ ४ ॥

अन्यासाञ्चैव भार्य्याणां समुत्पन्नानि चक्रिणः ।
अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणां शतं तथा ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—रुक्मिणी के गर्भ से भगवान् के प्रद्युम्न आदि जो समस्त पुत्र उत्पन्न हुए उन्हें आपको पहले ही सुना दिया, सत्यभामाने भानु और भैमरिक नाम के दो पुत्र उत्पन्न किये । रोहिणी के गर्भ से भगवान् के दीप्तिमान्, ताम्रपक्ष प्रभृति अनेक पुत्र उत्पन्न हुए । और जाम्बवती से भी शाम्ब आदि अनेक बलशाली पुत्र उत्पन्न हुए थे । नाग्नाजिती के गर्भ से भी महाबलपराक्रमी भद्रबिन्द आदि एवं शैव्या के गर्भ से संग्रामजित् आदि बहुत पुत्र उत्पन्न हुए । माद्री से वृक आदि अनेक सन्तान हुए और लक्ष्मणा नाम की भगवान् की पत्नी से गात्रवान् प्रमुख अनेक सन्तान एवं कालिन्दी के गर्भ से भी श्रुत आदि अनेक पुत्र हुए । चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण के अन्यान्य पत्नियों से भी एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १-५ ॥

प्रद्युम्नः प्रथमस्तेषां सर्व्वेषां रुक्मिणीसुतः ।
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूद् वज्रस्तस्मादजायत ॥ ६ ॥

अनिरुद्धो रणे रुद्धो बलेः पौत्रीं महाबलः ।
वाणस्य तनयामूषामुपयेमे द्विजोत्तम ॥ ७ ॥

यत्र युद्धमभूद् घोरं हरि-शङ्करयोर्महत् ।
छिन्नं सहस्रं बाहूनां यत्र वाणस्य चक्रिणा ॥ ८ ॥

मैत्रेय उवाच ।

कथं युद्धमभूद् ब्रह्मन्नूषार्थे हर-कृष्णयोः ।
कथं क्षयञ्च वाणस्य बाहूनां कृतवान् हरिः ॥ ९ ॥

एतत् सर्व्वं महाभाग ! समाख्यातुं त्वमर्हसि ।
महत् कौतूहलं जातं कथां श्रोतुमिमां हरेः ॥ १० ॥

भगवान् के इन सभी पुत्रों में रुक्मिणी कुमार प्रद्युम्न श्रेष्ठ थे । प्रद्युम्न के भी अनिरुद्ध नामक एक पुत्र था और इन अनिरुद्ध से वज्र नामक का एक पुत्र उत्पन्न हुआ । हे द्विजोत्तम ! महाबलशाली अनिरुद्ध का विवाह बाणासुर की पुत्री और बलि की पौत्री उषा के साथ हुआ था । इसी कारण राजा बाण ने अनिरुद्ध को युद्ध में पराजित कर कारागार में बन्द कर दिया था । इसी से भगवान् श्रीकृष्ण और शङ्कर का महान् युद्ध हुआ था और इस युद्ध में भगवान् चक्रधारी श्रीकृष्ण ने बाणासुर के सहस्रबाहों का छेदन किया था । मैत्रेय बोले—हे ब्रह्मन् ! उषा के निमित्त महादेव और श्रीकृष्ण का परस्पर युद्ध क्यों हुआ और क्यों भगवान् ने वाणासुर के सहस्रबाहुओं का छेदन किया । हे महाभाग ! आप इन समस्त विषयों को मेरे से वर्णन कीजिये । भगवान् हरि की इन समस्त लीलाओं की कथा श्रवण करने का बड़ा कौतुहल मेरे मन में उत्पन्न हुआ है ॥ ६-१० ॥

पराशर उवाच ।

ऊषा वाणसुता विप्र ! पार्व्वतीं सह शम्भुना ।
क्रीड़न्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहाञ्चक्रे तदाश्रयाम् ॥ ११ ॥

ततः सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम् ।
अलमत्यर्थतापेन भर्त्रा त्वमपि रंस्यसे ॥ १२ ॥

इत्युक्ते सा तदा चक्रे कदेति मतिमात्मनः ।
को वा भर्त्ता ममेत्येतां पुनरप्याह पार्व्वती ॥ १३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्र ! बाणपुत्री उषा ने पार्वती को महादेव जी के साथ क्रीड़ा करते हुए देखकर स्वयं भी पति के साथ उसी प्रकार क्रीड़ा करने की इच्छा की । अनन्तर सभी के मनोभाव को जानने वाली पार्वती जी ने कहा—वत्से ! तुम इस विषय में सन्ताप न करो, कारण तुम भी इसी प्रकार अपने पति के साथ रमण करोगी । पार्वती के ऐसी कहने पर उषा अपने मन में विचार करने लगी कि कौन व्यक्ति मेरा पति होगा तब पार्वती पुनः बोली ॥ ११-१३ ॥

वैशाखशुक्लद्वादश्यां स्वप्ने योऽभिभवं तव ।
करिष्यति स ते भर्त्ता राजपुत्रि ! भविष्यति ॥ १४ ॥

तस्यां तिथौ पुमान् स्वप्ने यथा देव्या उदीरितम् ।
तथैवाभिभवं चक्रे रागञ्चक्रे तथैव सा ॥ १५ ॥

ततः प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती तमुत्सुका ।
क्व गतोऽसीति निर्लज्जा मैत्रेयोक्तवती सखीम् ॥ १६ ॥

वाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा तु तत्सुता ।
तस्याः सख्यभवत् सा च प्राह कोऽयं त्वयोच्यते ॥ १७ ॥

यदा लज्जाकुला नास्यै कथयामास सा सती ।
तदा विश्वासमानीय सर्व्वमेवाभ्यवादयत् ॥ १८ ॥

विदितार्थान्तु तामाह पुनरूषा यथोदितम् ।
देव्या तथैव तत्प्राप्तौ योऽभ्युपायः कुरुष्व तम् ॥ १९ ॥

पार्वती बोली—हे राजपुत्री ! वैशाखमास की शुक्ल द्वादशी तिथि को जो व्यक्ति स्वप्नावस्था में तुम्हारे साथ हठात् रमण करेगा, वही तुम्हारा पति होगा । श्रीपराशरजी बोले—पार्वती के आदेशानुसार वैशाखी द्वादशी को उषाने स्वप्न

देखा कि एक पुरुष ने उसके साथ पूर्वोक्त प्रकार से रमण किया और वह भी उस पुरुष के प्रति अनुरागिणी हो गयी । हे मैत्रेय ! इसके बाद उषा जागकर उस स्वप्न में देखे हुए पुरुष को अदृष्ट होने पर उसके प्रति उत्सुक होकर निर्लज्जभाव से सखी को लक्ष्य करके बोली हे नाथ ! आप कहाँ चले गये । बाणासुर के मन्त्री कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखा उसकी सखी थी वह उषा से बोली—हे राजकुमारि ! तुम किसकी बात करती हो । उस समय सती राजकुमारी उसके समीप कोई बात न बोल सकी तब सखी ने उसको विश्वास उत्पन्न कराया, अनन्तर उषा ने उसको सब विषय कहा । तब चित्रलेखा ने समस्त स्वप्न वृत्तान्तों को जान लेने पर उसे देवी पार्वती ने जो जो बातें कही थी उन सबको कह उषा बोली—सखी, उस पुरुष की प्राप्ति के लिए कोई उपाय करो ॥ १४-१९ ॥

ततः पटे सुरान् दैत्यान् गन्धर्व्वांश्च प्रधानतः ।
मनुष्यांश्चाभिलिख्यास्यै चित्रलेखा व्यदर्शयत् ॥ २० ॥

अपास्य सा तु गन्धर्व्वांस्तथोरगसुरासुरान् ।
मनुष्येषु ददौ दृष्टिं तेष्वप्यन्धकवृष्णिषु ॥ २१ ॥

कृष्ण-रामौ विलोक्यासौ सुभ्रुर्लज्जाजड़ेव सा ।
प्रद्युम्नदर्शने व्रीड़ा-दृष्टिं निन्यऽन्यतो द्विज ॥ २२ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनन्तर चित्रलेखा, देव, दैत्य, गन्धर्व और मनुष्य-गण में प्रधान प्रधान व्यक्तियों का चित्रपट पर चित्र बनाकर उषा को दिखाने लगी । उषा ने भी उन चित्रलिखित देव, दैत्य, गन्धर्व और असुरसमूह को परित्याग करके मनुष्यगण पर दृष्टिपात की उनमें भी विशेषकर के वृष्णिकुल पर ही इङ्गित दिया । हे द्विज ! अनन्तर उषा, कृष्ण और बलराम के चित्र को देखकर लज्जा से ज़ड़ीभूत हो गयी तथा प्रद्युम्न को देखकर उसने अपनी दृष्टि दूसरी ओर कर ली ॥ २०-२२ ॥

दृष्टमात्रे ततः कान्ते प्रद्युम्नतनये द्विज ।
दृष्ट्यात्यर्थविकाशिन्या लज्जा क्वापि निराकृता ॥ २३ ॥

सोऽयं सोऽयमितीत्युक्ते तया सा योगगामिनी ।
ययौ द्वारवतीमूषां समाश्वास्य ततः सखीम् ॥ २४ ॥

इसके बाद हे विप्र ! अतिसुन्दर प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्ध को देखते ही अत्यन्त प्रसन्न और ख़ुली हुई दृष्टि से उषा ने अपनी लज्जा दूरकर दी । उस समय उषा से यही वह है ऐसा कहे जाने पर चित्रलेखा ने उषा को आश्वासित करके योगगति से द्वारका में गमन किया ॥ २३-२४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पंचम अंश में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।

पञ्चम अंश - तैंतीसवाँ अध्याय

(श्रीकृष्ण और वाणासुर युद्ध)

बाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे मैत्रेयाह त्रिलोचनम्।
देव ! बाहुसहस्रेण निर्व्विण्णोऽहं विनाहवम् ॥ १ ॥

क्वचिन्ममैषां बाहूनां साफल्यजनको रणः।
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजैः ॥ २ ॥

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा बाण ! भविष्यति।
पिशिताशिजनानन्दं प्राप्स्यसे त्वं तदा रणम् ॥ ३ ॥

ततः प्रणम्य मुदितः शम्भुमभ्यागतो गृहम्।
भग्नञ्च ध्वजमालोक्य हृष्टो हर्षान्तरं ययौ ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! प्राचीनकाल में राजा बाण त्रिलोचन शिव को प्रणाम करके बोला—(भगवन् !) युद्ध के बिना इन हजार भुजाओं को प्राप्तकर मैं अत्यन्त अशान्त हो रहा हूँ। कभी भी मेरी इन हजार भुजाओं को सफल करने वाला युद्ध क्या उपस्थित नहीं होगा ? यदि युद्ध नहीं होगा तो हमारी ये हजार भुजाएँ भारभूत ही बने रहेंगे। श्रीशिवजी बोले—हे बाण ! तुम्हारा मयूरध्वज जब भग्न हो जायगा तब तुम रक्तपान करने वाले प्राणियों के अतिशय आनन्ददायक युद्ध प्राप्त करोगे। श्रीपराशरजी बोले—इस बात को सुनकर सुप्रसन्न बाणासुर शिवजी को प्रणाम करके अपने घर में आ गये। पश्चात् एक दिन मयूरध्वज को भग्न देखकर अतिशय आनन्दित हुआ ॥ १-४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम्।
अनिरुद्धमथानिन्ये चित्रलेखा वराप्सराः ॥ ५ ॥

कन्यान्तःपुरमध्ये तु रममाणं सहोषया ।
विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशंसुर्दैत्यभूपतेः ॥ ६ ॥

और इसी समय श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखा योगविद्या के बल से अनिरुद्ध को उषा के समीप ले गयी थी । अनन्तर कन्या के अन्तःपुर में उषा के साथ अनिरुद्ध को रति निरत देखकर रक्षकगण ने दैत्यराज बाणासुर के समीप जाकर समस्त वृत्तान्त कह दिया ॥ ५-६ ॥

आदिष्टं किङ्कराणान्तु सैन्यं तेन दुरात्मना ।
जघान परिघं लोह मादाय परवीरहा ॥ ७ ॥
हतेषु तेषु वाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यतः ।
युध्यमानो यथाशक्ति यदा वीर्य्येण निर्ज्जितः ॥ ८ ॥
भायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रिचोदितः ।
ततस्तं पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥ ९ ॥

उस समय उन रक्षकों ने दुरात्मा वाणासुर से युद्ध का आदेश पाकर अनिरुद्ध के ऊपर आक्रमण कर दिया । और शत्रुविनाशक अनिरुद्ध ने भी लौह परिघ लेकर उन सबको मारना आरम्भ किया । इसके बाद अनिरुद्ध के द्वारा उस समस्त सैन्य के मारे जाने पर अनिरुद्ध के विनाश की कामना से युद्धोद्यत होकर रथ पर विराजमान बाणासुर वहाँ पहुंचा और यथाशक्ति युद्ध करने पर भी अनिरुद्ध द्वारा पराजित हुआ । पुनः मन्त्रिगण के परामर्श से उसने अनिरुद्ध के साथ नाना प्रकार का मायायुद्ध आरम्भ किया और सर्पास्त्र द्वारा उन यादवनन्दन को बाँध लिया ॥ ७-९ ॥

द्वारतत्यां क्व यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम् ।
यदूनामाचचक्षे तं बद्धं बाणेन नारदः ॥ १० ॥
तं शोणितपुरे श्रुत्वा नीतं विद्याविदग्धया ।
योषिता प्रत्ययं जग्मुर्यादवा नामरैरिति ॥ ११ ॥

अनन्तर द्वारकापुरी में अनिरुद्ध कहाँ गये इस प्रकार की वार्ता आरम्भ होने पर अनिरुद्ध बाणासुर द्वारा आबद्ध है यह समाचार वहाँ जाकर नारदजी ने कहा । योगविद्या में निपुण चित्रलेखा अनिरुद्ध को हरणकर शोणितपुर में ले गयी है

यादवगण ने नारदजीद्वारा इस बात को सुनकर पारिजात हरण के समय पराजित देवताओं ने अनिरुद्ध का हरण नहीं किया है ऐसा विश्वास किया ॥ १०-११ ॥

ततो गरुड़मारुह्य स्मृतमात्रागतं हरिः ।
बल-प्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥ १२ ॥

पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महात्मनः ।
ययौ बाणपुराभ्यासं नीत्वा तान् संक्षयं हरिः ॥ १३ ॥

अनन्तर हरि ने स्मरणमात्र से उपस्थित हुए गरुड़ पर चढ़कर बलराम और प्रद्युम्न के साथ बाणासुर के नगर में प्रस्थान किया । नगर प्रवेश के समय ही महात्मा हरि के साथ प्रमथगण का युद्ध हुआ, किन्तु उनको विनाशकर भगवान् बाणनगरी के समीप पहुंच गये ॥ १२-१३ ॥

ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान् ।
वाणरक्षार्थमत्यर्थं युयुधे शाङ्‍र्गधन्वना ॥ १४ ॥

तद्भस्मस्पर्शसम्भूततापः कृष्णाङ्गसङ्गमात् ।
अवाप बलदेवोऽपि श्रममामीलितेक्षणः ॥ १५ ॥

ततः स युध्यमानस्तु सह देवेन शाङ्‍र्गिणा ।
वैष्णवेन ज्वरेणाशु कृष्णदेहान्निराकृतः ॥ १६ ॥

नारायणभुजाघातपरिपीड़नविह्वलम् ।
तं वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः ॥ १७ ॥

ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोक्तय तं वैष्णवं ज्वरम् ।
आत्मन्येव लय निन्ये भगवान् मधुसूदनः ॥ १८ ॥

मम त्वया समं युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः ।
विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ ज्वरः ॥ १९ ॥

इसके बाद बाणासुर की रक्षा के लिए महेश्वर से उत्पन्न ज्वर ने शाङ्‍र्ग धनुषधारी हरि के साथ युद्ध आरम्भ किया । इस ज्वर का शरीर अत्यन्त विशाल और तीन मस्तक एवं तीन पाँव थे । उससे फैंके हुए भस्म के स्पर्श से सन्तप्त बलदेव

जी ने श्रीकृष्णचन्द्र के शरीर का आलिङ्गन करने पर शिथिल होकर आँख मूंद लिये। अनन्तर शाङ्र्गधर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ (उनके शरीर में प्रविष्ट होकर) युद्ध करते हुए माहेश्वर ज्वर को वैष्णवज्वर ने शीघ्र उनके शरीर से बारह निकाल दिया। उस समय वासुदेव की भुजाओं के आघात से पीड़ित हुए उस माहेश्वरज्वर को देखकर पितामह ब्रह्माजी ने भगवान् से कहा—आप इसे क्षमा कीजिये। इसके बाद भगवान् मधुसूदन ने 'मैंने क्षमा की' ऐसा कहकर उस वैष्णवज्वर को अपने में ही लीन कर लिया। अनन्तर ज्वर बोला—जो व्यक्ति आपके साथ मेरे इस युद्ध का स्मरण करेगा वह जीवन भर ज्वर हीन होगा। इस प्रकार कहकर वह चला गया ॥ १४-१९ ॥

ततोऽग्नीन् भगवान् पञ्च जित्वा नीत्वा तथा क्षयम्।
दानवानां बले विष्णुश्चूर्णयामास लीलया ॥ २० ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने पञ्चाग्नियों को जीतकर नष्ट कर दिया और लीलापूर्वक दानवसेना का संहार करने लगे ॥ २० ॥

ततः समस्तसैन्येन दैतेयानां बलेः सुतः।
युयुधे शङ्करश्चैव कार्त्तिकेयश्च शौरिणा ॥ २१ ॥

हरि-शङ्करयोर्युद्धमतीवासीत् सुदारुणम्।
चुक्षुभुः सकला लोकाः शस्त्रास्त्रांशुप्रतापिताः ॥ २२ ॥

प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः।
मेनिरे त्रिदशा यत्र वर्त्तमाने महाहवे ॥ २३ ॥

जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शङ्करम्।
ततः प्रणेशुर्दैतेयाः प्रमथाश्च समन्ततः ॥ २४ ॥

जृम्भाभिभूतश्च हरो रथोपस्थ उपाविशत्।
न शशाक तथा योद्धुं कृष्णेनाक्लिष्टकर्म्मणा ॥ २५ ॥

गरुड़क्षतवाहश्च प्रद्युम्नास्त्रप्रपीड़ितः।
कृष्णहुङ्कारनिर्द्धूतशक्तिश्चापि ययौ गुहः ॥ २६ ॥

जृम्भिते शङ्करे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते ।
नीते प्रमथसैन्ये च संक्षयं शाङ्‌र्गधन्वना ॥ २७ ॥

नन्दीश-संगृहीताश्वमधिरूढो महारथम् ।
बाणस्तत्रायौ योद्धुं कृष्ण-कार्ष्णिबलैः सह ॥ २८ ॥

तब समस्त दैत्यसेना से युक्त होकर बलिपुत्र बाणासुर और भगवान् शङ्कर एवं कार्तिकेय जी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लगे । उस समय श्रीकृष्ण एवं महादेवजी का परस्पर में महाभयङ्कर युद्ध हुआ । इस युद्ध में प्रयुक्त शस्त्रास्त्रों के किरणसमूह से सन्तप्त होकर समस्त लोक क्षुब्ध हो गये । इस घोर संग्राम के उपस्थित होने पर देवताओं ने समझा कि निश्चय ही समस्त जगत् का विनाशकाल आ गया । उस युद्ध में हरि ने जृम्भणास्त्र चलाकर शङ्करजी को अत्यन्त आलस्य-भावापन्न कर दिया । इसके बाद प्रमथ गण और दैत्यगण को संहार करने लगे । आलस्ययुक्त शङ्कर जी रथपर बैठ गये और अक्लिष्टकर्मकारी श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं हुए । गरुड ने कार्तिकेय के वाहन को विक्षत कर दिया और स्वयं कार्तिकेय भी प्रद्युम्न के बाण से आहत होकर श्रीकृष्ण के हुङ्कार से भागने लगे । श्रीकृष्ण के द्वारा शिवजी को आलस्ययुक्त, कार्तिकेय को पराजित, दैत्यसेना को विनष्ट और प्रमथगण को क्षीण देखकर राजा बाण रथ पर चढ़कर श्रीकृष्ण की सेना के साथ युद्ध करने के लिए पहुँचा । बाणासुर जिस रथपर बैठा था उस रथ के घोड़ो की बल्गा (लगाम) स्वयं नन्दीश्वर पकड़े थे ॥ २१-२८ ॥

बलभद्रो महावीर्य्यो बाणसैन्यमनेकधा ।
विव्याध बाणैः प्रभ्रश्य धर्म्मतस्तत् पलायत ॥ २९ ॥

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुषलेनावपोथितम् ।
बलं बलेन ददृशे बाणो बाणैश्च चक्रिणा ॥ ३० ॥

ततः कृष्णस्य बाणेन युद्धमासीत् समस्यतोः ।
परस्परमिष्न् दीप्तान् कायत्राणविभेदकान् ॥ ३१ ॥

कृष्णश्चिच्छेद बाणैस्तान् बाणेन प्रहिताञ्छरान ।
बिभेद केशवं बाणो बाणं विव्याध चक्रभृत् ॥ ३२ ॥

मुमुचाते तथास्त्राणि बाण-कृष्णौ जिगीषया।
परस्परं क्षतिपरौ परमामर्षणौ द्विज ॥ ३३ ॥

छिद्यमानेष्वशेषेषु शरेष्वस्त्रे च सीदति।
प्राचुर्य्येण हरिर्बाणं हन्तुञ्चक्रे ततो मनः ॥ ३४ ॥

ततोऽर्कशतसङ्घाततेजसा सदृशद्युति।
जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ ३५ ॥

मुञ्चतो बाणनाशाय तत्र चक्रं मधुद्विषः।
नग्ना दैतेयविद्याभूत् कोटरी पूरतो हरेः ॥ ३६ ॥

उस समय महाबली बलराम जी युद्धधर्मानुसार अनेक प्रकार के बाणसमूह को छोड़ते हुए बाणासुर की सेना को छिन्न भिन्न करने लगे, अतएव वह सैन्यगण श्रेणीभ्रष्ट होकर इधर उधर भागने लगे। उस समय बाणासुर ने देखा कि बलराम हल और मूसल से सेना को मर्दन और श्रीकृष्ण चक्रद्वारा उसे छिन्न भिन्न कर रहे हैं। इसके बाद बाणासुर के साथ श्रीकृष्ण का घोर युद्ध आरम्भ हुआ, उस समय दोनों ही दोनों के प्रति प्रज्वलित और कवच भेदन करने वाले बाणों की वर्षा करने लगे। श्रीकृष्ण बाणासुर से चलाये गये समस्त बाणों को काटने लगे। उस समय क्रोधित होकर बाणासुर ने केशव को और केशव ने बाणासुर को (बाणों से) वेध दिया। हे विप्र ! इस प्रकार बाणासुर और श्रीकृष्ण दोनों ही परस्पर विजय की इच्छा से अत्यन्त तीक्ष्म बाणसमूह छोड़ने लगे। इस प्रकार समस्त बाणों के छिन्न और समस्त अस्त्र शस्त्रों के व्यर्थ हो जाने पर भगवान् श्रीहरि ने बाणासुर को वध करने का विचार किया। तब दैत्यमण्डल के शत्रु श्रीकृष्ण ने सैकड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान सुदर्शन चक्र धारण किया। जिस समय भगवान् मधुसूदन बाणासुर के वध के लिए अपना सुदर्शन चक्र चलाना चाहते थे उसी समय दैत्यों की विद्याकोठरी मन्त्रमयी कुलदेवी भगवान् के सामने नग्नवस्था में आ गयी ॥ २९-३६ ॥

तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षः सुदर्शनम्।
मुमोच बाणमुद्दिश्यच्छेत्तुं बाहुवनं रिपोः ॥ ३७ ॥

क्रमेण तत्तु बाहूनां बाणस्याच्युतनोदितम्।
छेदञ्चक्रेऽसुरापास्तशस्त्रौघक्षपणादृतम् ॥ ३८ ॥

छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थं मधुसूदनः ।
मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ॥ ३९ ॥

स उपेत्याह गोविन्दं सामपूर्व्वमुपापतिः ।
विलोक्य बाणं दोर्द्दण्डच्छेदासृक्स्त्राववर्षिणम् ॥ ४० ॥

कृष्ण ! कृष्ण ! जगन्नाथ जाने ! त्वां पुरुषोत्तमम् ।
परेशं परमानन्दमनादि-निधनं परम् ॥ ४१ ॥

देव-तिर्य्यङ्-मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका ।
लीलेयं सर्व्वभूतस्य तव चेष्टोपलक्षणा ॥ ४२ ॥

तत् प्रसीदाभयं दत्तं बाणस्यास्य मया प्रभो !
तत्त्वया नानृतं कार्य्य यन्मया व्याहृतं वचः ॥ ४३ ॥

अस्मत्संश्रयवृद्धोऽयं नापराध्यस्तवाव्यय !
मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वां क्षामयाम्यहम् ॥ ४४ ॥

इत्युक्तः प्राह गोविन्दः शूलपाणिमुमापतिम् ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुरं प्रति ॥ ४५ ॥

उसे देखते ही भगवान् ने अपनी आँखें मूंद ली और बाणासुर को लक्ष्य करके उस शत्रु के भुजाओं को छेदन करने के लिए सुदर्शन चक्र छोड़ा । भगवान् अच्युत के द्वारा प्रेरित उस सुदर्शन चक्र ने दैत्यों से चलाये गये समस्त अस्त्रों को काटकर क्रमशः बाणासुर की भुजाओं को काट दिया । केवल दो भुजायें रह गयीं । तब त्रिपुरशत्रु शङ्कर जी जान गये कि श्रीमधुसूदन बाणासुर के भुजाओं काटकर अपने चक्र को उसका वध करने के लिए फिर छोड़ना चाहते हैं । अतएव उमापति महादेव ने बाणासुर को अपने खण्डित भुजदण्डों से रक्त की धारा बहते देखकर श्रीगोविन्द के समीप आये और उनसे शान्तिपूर्वक कहा । श्रीशंकरजी बोले—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! आप पुरुषोत्तम परमेश्वर परमानन्द स्वरूप और आदि अन्तरहित हैं—यह मैं जानता हूँ । आप ही सर्वभूतमय हैं और देव, पशु आदि तिर्यक्योनि एवं मनुष्यादि योनियों में जो जन्म ग्रहण करते हैं वह आपकी स्वाधीन चेष्टा का उपलक्षण लीलामात्र हैं । हे प्रभो ! आप प्रसन्न होइये ! मैंने पहले ही इस बाणासुर को अभयदान दिया है । हे नाथ ! मैंने जो वचन दिया है उसे आप मिथ्या

न करें। हे अव्यय ! यह अपराधी नहीं है किन्तु मेरा आश्रय पाने से इतना अभिमानी हो गया है। मैंने ही इस दैत्य को वर दिया था अतएव मैं ही इसके लिए क्षमा याचना करता हूँ। श्रीपराशरजी बोले—त्रिशूलपाणि भगवान् शंकर से ऐसा कहे जाने पर श्रीगोविन्द ने बाणासुर के प्रति क्रोधभाव त्याग कर दिया और प्रसन्नतापूर्वक कहा ॥३७-४५॥

युष्मद्दत्तवरो बाणो जीवतामेष शङ्कर !
त्वद्वाक्यगौरवादेतन्मया चक्रं निवर्त्तितम् ॥ ४६ ॥

त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमखिलं मया।
मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर ॥ ४७ ॥

योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्।
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः ॥ ४८ ॥

इत्युक्ता प्रययौ कृष्णः प्राद्युम्निर्यत्र तिष्ठति।
तद्वन्धफणिनो नेशुर्गरुड़ानिलभीषिताः ॥ ४९ ॥

ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीकं गरुत्मति।
आजग्मुर्द्वारकां रामकार्ष्णिदामोदराः पुरीम् ॥ ५० ॥

श्रीभगवान् बोले—हे शंकर ! यदि आपने इसे वर दिया है तो यह जीवित रहेगा। आपके वचन का सम्मान रखने के लिए मैं इस सुदर्शन चक्र को रोक लेता हूँ। हे शंकर ! आपने जिसे अभयप्रदान किया है उसको मैंने भी अभयप्रदान किया। आप अपने को मुझसे भिन्न न समझे। मैं जो हूँ आप भी हैं। यह देव, असुर एवं मनुष्यों से परिपूर्ण जगत् मेरा और आपका स्वरूप है। किन्तु हे हर ! जिनका चित्त अविद्या से मोहित है वे ही पुरुष भेद मानते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ऐसी बात कहकर जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध थे वहाँ गये। उस समय अनिरुद्ध के बन्धनरूप नागगण गरुड जी के आगमन से भयभीत होकर भागने लगे। अनन्तर अनिरुद्ध को पत्नी उषा के साथ गरुडपर बैठाकर बलराम, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न द्वारकापुरी में आ गये ॥ ४६-५० ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - चौंतीसवाँ अध्याय

(पौण्ड्रक वध)

मैत्रेय उवाच ।

चक्रे कर्म्म महच्छौरिर्बिभ्राणो मानुषीं तनुम् ।
जिगाय शक्रं सर्व्वञ्च सर्व्वदेवांश्च लीलया ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेय बोले—भगवान् ने मनुष्यशरीर धारण कर लीला पूर्वक इन्द्र, महादेव और अन्य देवताओं को भी विजय करके जो महान् कार्य सम्पन्न किये उसे मैं श्रवण कर चुका ॥ १ ॥

यच्चान्यदकरोत् कर्म्म दिव्यचेष्टाविघातकृत् ।
तत् कथ्यतां महाभाग ! परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥

हे महाभाग ! भगवान् ने इन कार्यों के अतिरिक्त और भी जो समस्त कार्य किये गये थे उन सभी को मुझे सुनाइये क्योंकि उनके श्रवण करने के लिए मेरे मन में बहुत कौतुहल हो रहा है ॥ २ ॥

पराशर उवाच ।

गदतो मम विप्रर्षे ! श्रूयतामिदमादरात् ।
नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्रर्षे ! मानवस्वरूप धारणकर भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार वाराणसी पुरी का दहन किया उसे मैं सुनाता हूँ, आप आदरपूर्वक श्रवण करें ॥ ३ ॥

पौण्ड्रको वासुदेवस्तु वासुदेवोऽभवद् भुवि ।
अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितैः ॥ ४ ॥

स मेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महीतले ।
नष्टस्मृतिस्ततः सर्व्वं विष्णुचिन्हमचीकरत् ॥ ५ ॥

दूतञ्च प्रेरयामास कृष्णाय सुमहात्मने ।
त्यक्तवा चक्रादिकं चिह्नं मदीयं नाम चात्मनः ॥ ६ ॥

वासुदेवात्मकं मूढ़ ! मुक्तवा सर्व्वं विशेषतः ।
आत्मनो जीवितार्थाय ततो मे प्रणतिं व्रज ॥ ७ ॥

इत्युक्तः सम्प्रहस्यैनं दूतं प्राह जनार्द्दनः ।
निजचिन्हमहं चक्रं समुत्स्त्रक्ष्ये त्वयीति वै ॥ ८ ॥

अज्ञान से मोहित कुछ लोग पौण्ड्रवंशीय किसी राजा को (आप ने वासुदेवरूप से पृथिवीपर अवतार लिये हैं इस प्रकार कहने लगे इसलिए वह वासुदेव नाम से विख्यात हुआ । इसके बाद पूर्वस्मरण नष्ट होने से उस राजा ने विचार किया कि मैं वासुदेव हूँ और उस पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ हूँ । उसने विष्णु भगवान् के सभी चिन्ह धारण किये । तदनन्तर श्रीकृष्ण के समीप उसने एक दूत भेजकर उनको सूचित किया कि तुम मेरे समस्त चिन्ह और नाम का परित्याग करो । हे मूढ़ ! मैं वासुदेव हूँ, इस प्रकार का अपना अभिमान छोड़कर अपनी जीवनरक्षा के लिए हमारे शरणापन्न हो जाओ । दूत के द्वारा ऐसा कहे जाने पर भगवान् जनार्दन हँसकर दूत से बोले तुम जाकर अपने प्रभु से कहना कि मैं अपना चिन्ह सुदर्शनचक्र शीघ्र ही तुम्हारे ऊपर छोड़ूँगा ॥ ४-८ ॥

वाच्यः स पौण्ड्रको गत्वा त्वया दूत ! वचो मम ।
ज्ञातस्त्वद्वाक्यसद्भावो यत् कार्य्यं तद्विधीयताम ॥ ९ ॥

गृहीतचिह्न एवाहमागमिष्यामि ते पुरम् ।
समुत्स्त्रक्ष्यामि ते चक्रं निजचिह्नमसंशयम् ॥ १० ॥

आज्ञापूर्व्वञ्च यदिदमागच्छेति त्वयोदितम् ।
सम्पादयिष्ये श्वस्तुभ्यं तदप्येषोऽविलम्बितम् ॥ ११ ॥

शरणं ते समभ्येत्य कर्त्तास्मि नृपते ! तदा ।
यथा त्वत्त्वो भयं भूयो न मे किञ्चिद्भविष्यति ॥ १२ ॥

इत्युक्तेऽपगते दूते संस्मृत्याभ्यागतं हरिः ।
गरुत्मन्तमथारुह्य त्वरितं तत्पुरं ययौ ॥ १३ ॥

हे दूत ! मेरी ओर से पौण्ड्रक को जाकर तुम कहना कि मैंने तुम्हारे वाक्य का वास्तविक भाव समझ लिया है, तुम्हें जो करना है वह करो । मैं अपना चिन्ह एवं वेष धारण कर तुम्हारे नगर में आऊँगा और निश्चय अपने चिन्ह चक्र को तुम्हारे ऊपर छोड़ूँगा । और तुमने जो आज्ञापूर्वक मुझको कहा कि 'आओ' मैं उसे भी अवश्य पालन करूँगा और कल तुम्हारे समीप आऊँगा । हे नरेश ! मैं तुम्हारे पास आकर तुम्हारे साथ वही व्यवहार करूँगा जिससे पुनः तुमसे मुझे कोई भय न रहे । श्रीकृष्ण द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह दूत चला गया इसके बाद भगवान् ने स्मरणमात्र से उपस्थित गरुड़पर चढ़कर शीघ्र उसकी राजधानी में प्रस्थान किया ॥ ९-१३ ॥

स चापि केशवोद्योगं श्रुत्वा काशिपतिस्तदा ।
सर्व्वसैन्यपरीवारः पार्ष्णिग्राह उपाययौ ॥ १४ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार सुनकर काशीराज भी पृष्टपोषक होकर अपनी सम्पूर्ण सेनाओं के साथ उपस्थित हुआ । १४ ॥

ततो बलेन महता काशिराजबलेन च ।
पौण्ड्रको वासुदेवोऽसौ केशवाभिमुखं ययौ ॥ १५ ॥

तं ददर्श हरिर्द्दूरादुदारस्यन्दने स्थितम् ।
चक्रहस्तं गदाखड्गबाहुं पाणिगताम्बुजम् ॥ १६ ॥

स्रग्धरं धृतशार्ङ्गञ्च सुपर्णरचितध्वजम् ।
वक्षस्थले कृतञ्चास्य श्रीवत्सं ददृशे हरिः ॥ १७ ॥

किरीटकुण्डलधरं पीतवास;समन्वितम् ।
दृष्ट्वा तं भावगम्भीरं जहास गरुडध्वजः ॥ १८ ॥

युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विज !
निस्त्रिंशर्ष्टिगदाशूलशक्तिकार्म्मुकशालिना ॥ १९ ॥

तदनन्तर वासुदेवाभिमानी काशीपति राजा पौण्ड्रक अपनी विशाल सेना के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित हुआ । भगवान् हरि ने दूर से ही हाथ

में चक्र, गदा, शाङ्‌र्ग, धनुष और पद्म लिये एक उत्तम रथपर बैठ हुए पौण्ड्रक को देखा। भगवान् ने देखा कि उसके गले में वैजयन्तीमाला है, शरीर में पीताम्बर है, गरुडयुक्त ध्वजा है और वक्ष: स्थल में श्रीवत्सचिन्ह है। उसे नाना प्रकार के रत्नों से सुसज्जित किरीट एवं कुण्डल धारण किये देखकर गरुडध्वज भगवान् गम्भीर भाव से हँसने लगे। और हे विप्र ! हाथी घोड़ों से बलिष्ठ और निस्त्रिंश खड्ग, गदा, शूल-शक्ति और धनुष से सुसज्जित उसकी सेना के साथ कृष्ण युद्ध करने लगे॥ १५-१९॥

क्षणेन शाङ्‌र्गनिर्म्मुक्तैः शरैरिषुविदारणैः।
गदाचक्रनिपातैश्च सुदयामास तद्बलम्॥ २०॥

काशिराजबलञ्चैव क्षयं नीत्वा जनार्द्दनः।
उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षणम्॥ २१॥

पौण्ड्रकोक्तं त्वया यत्तु दूतवक्त्रेण मां प्रति।
समुत्सृजेति। चिन्हानि तत्ते सम्पादयाम्यहम॥ २२॥

चक्रमेतत् समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता।
गरुत्मानेष निर्दिर्दष्टः समारोहतु ते ध्वजम्॥ २३॥

एक क्षण में ही भगवान् ने शाङ्‌र्ग धनुष से छोड़े हुए शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले अपने तेज बाणों एवं गदा और चक्र से उसकी सम्पूर्ण सेना को नष्टकर दिया। इसी प्रकार काशीराज पौण्ड्रक की सेना को नष्ट करने के बाद भगवान् जनार्दन अपने चिन्हों से युक्त मूर्ख पौण्ड्रक से बोले। श्रीभगवान् बोले—हे पौण्ड्रक ! तुमने दूत के द्वारा जो यह कहलाया था कि तुम मेरे चिन्हों को छोड़ दो, सो तुम्हारे सम्मुख मैं उस आज्ञा का पालन करता हूँ। मैंने यह चक्र छोड़ा, यह गदा भी छोड़ी और यह गरुड़ भी छोड़ दिया अब यह तुम्हारी ध्वजापर आरूढ हो॥ २३॥

इत्युच्चार्य्य विमुक्तकेन चक्रेणासौ विदारितः।
पोथितो गदया भग्नो गरुत्मांश्च गरुत्मता॥ २४॥

ततो हाहाकृते लोके काशिपुर्य्यधिपो बली ।
युयुधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः ॥ २५ ॥

ततः शाङ्‍र्गधनुर्मुक्तैश्छित्वा तस्य शरैः शिरः ।
काशिपुर्य्याञ्च चिक्षेप कुर्व्वन् लोकस्य विस्मयम् ॥ २६ ॥

हत्वा च पौण्ड्रकं शौरिः काशिराजञ्च सानुगम् ।
पुनर्द्वारवतीं प्राप्तो रेमे स्वर्गगतो यथा ॥ २७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर श्रीकृष्ण के द्वारा छोड़े हुए चक्र ने पौण्ड्रक को विदीर्ण कर दिया, गदा ने नीचे गिरा दिया और गरुड ने उसकी ध्वजा तोड़ दी । अनन्तर सम्पूर्ण सेना में हाहाकार मचने पर अपने मित्र का बदला लेने के लिए काशीनरेश भगवान् श्रीवासुदेव से युद्ध करने लगा । उस समय भगवान् ने अपने शाङ्‍र्ग-धनुष से छोड़े हुए एक बाण के द्वारा उसका सिर काटकर काशीपुरी में फेंक दिया । इस प्रकार पौण्ड्रक और काशीनरेश को अनुचरों सहित वध करके भगवान् द्वारका में लौट आये और वहाँ स्वर्ग के समान सुख का अनुभव करते हुए रमण करने लगे ॥ २४-२७ ॥

तच्छिरः पतितं दृष्ट्वा तत्र काशिपतेः पुरे ।
जनः किमेतदित्याह केनेत्यत्यन्तविस्मितः ॥ २८ ॥

ज्ञात्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः ।
पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शङ्करम् ॥ २९ ॥

अविमुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शङ्करः ।
वरं वृणीष्वेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम् ॥ ३० ॥

स वव्रे भगवान् कृत्या पितृहन्तुर्वधाय मे ।
समुत्तिष्ठतु कृष्णस्य त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३१ ॥

और काशीपुरी में काशीराज का कटा सिर गिरा हुआ देखकर समस्त नगर निवासीगण कहने लगे यह क्या हुआ, इसे किसने काट दिया ? । बाद में जब उसके पुत्र को मालुम हुआ कि यह कर्म वासुदेव श्रीकृष्ण ने किया है तब उसने अपने पुरोहित के साथ मिलकर भगवान् शंकर को प्रसन्न किया । अविमुक्त महाक्षेत्र में

उस राजपुत्र से प्रसन्न होकर भगवान् श्रीशङ्कर ने उसे वर मांगने के लिए कहा । वह बोला—हे महेश्वर ! हे भगवन् ! यदि आपकी कृपा है तो मेरे पिता के वध करने वाले श्रीकृष्ण का विनाश करने के लिए अग्नि से कृत्या उत्पन्न हो ॥ २८-३१ ॥

एवं भविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेरनन्तरम् ।
महाकृत्या समुत्तस्थौ तस्यैवाग्नेर्विनाशिनी ॥ ३२ ॥

ततो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशकलापिका ।
कृष्ण कृष्णेति कुपिता कृत्या द्वारवतीं ययौ ॥ ३३ ॥

तामवेक्ष्य जनस्त्रासविचलल्लोचनो मुने !
ययौ शरण्यं जगतां शरणं मधुसूदनम् ॥ ३४ ॥

काशिराजसुतेनेयमाराध्य वृषभध्वजम् ।
उत्पादिता महाकृत्येत्यवगम्याथ चक्रिणा ॥ ३५ ॥

जहि कृत्यामिमामुग्रां वह्निज्वालाजटालकाम् ।
चक्रमुत्सृष्टमक्षेषु क्रीड़ासक्तेन लीलया ॥ ३६ ॥

तदग्निमालाजटिलज्वालोद्गारातिभीषणाम् ।
कृत्यामनुजगामाशु विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥ ३७ ॥

चक्रप्रतापविध्वस्ता कृत्या माहेश्वरी तदा ।
ननाश वेगिनी वेगात् तदगप्यनुजगाम ताम् ॥ ३८ ॥

कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वरान्विता ।
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तम ॥ ३९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तब भगवान् महेश्वर बोले—'ऐसा ही होगा' । उनके ऐसा कहने के बाद दक्षिणाग्निका चयन करने पर उसकी ही अग्निका ही विनाश करने वाली एक कृत्या उत्पन्न हुई । उस कृत्या का विकराल मुख अग्नि की ज्वालामालाओं से पूर्ण था और उसके केशसमूह अग्निशिखा के समान देदीप्यमान एवं वर्ण ताम्र था । वह क्रोधपूर्वक कृष्ण, कृष्ण कहती हुई द्वारका में पहुँची । हे मुने ! उसे देखकर भय से चञ्चल नेत्र वाले द्वारकावासी लोग भगवान् श्रीकृष्ण की

शरण में आये। जब भगवान् कृष्ण ने काशीराज के पुत्र ने भगवान् शङ्कर की आराधना करके यह कृत्या उत्पन्न की है ऐसा समझा तब अक्षक्रीड़ा में लगे हुए उन्होंने इस अग्निज्वालामयी जटाओंवाली भयङ्कर कृत्या को मार दो ऐसा कहकर अपना चक्र छोड़ा। तब भगवान् श्रीविष्णु के सुदर्शनचक्र ने उस अग्निज्वालाओं से युक्त और भयानक मुखवाली कृत्या का अनुगमन करने लगा। अनन्तर अतिवेगवाली एवं महेश्वर से उत्पन्न कृत्या श्रीविष्णुचक्र के प्रभाव से विध्वस्त होकर अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक भागने लगी और सुदर्शनचक्र उसका पीछा करने लगा। इस प्रकार भागती हुई कृत्या ने बहुत तेजी से वाराणसीपुरी में प्रवेश किया। हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय श्रीविष्णुचक्र के प्रभाव से कृत्या का प्रभाव नष्ट हो चुका था ॥ ३२-३९ ॥

ततः काशिबलं भूरि प्रमथानां तथा बलम्।
समस्तशस्त्रास्त्रयुतं चक्रस्याभिमुखं ययौ ॥ ४० ॥

शस्त्रास्त्रमोक्षचतुरं दग्ध्वा तद्बलमोजसा।
कृत्यागर्भमशेषां तां दग्ध्वा वाराणसीं पुरीम् ॥ ४१ ॥

सभूभृद्भृत्यपौरान्तु साश्वमातङ्गमानवाम्।
अशेषकोषकोष्ठां तां दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि ॥ ४२ ॥

ज्वालापरिप्लुताशेष-गृह-प्राकारचत्वराम्।
ददाह तद्धरेश्चक्रं सकलामेव तां पुरीम् ॥ ४३ ॥

अक्षीणामर्षमत्युग्रसाध्यसाधनसस्पृहम्।
तच्चक्रं प्रस्फुरद्दीप्ति विष्णोरभ्याययौ करम् ॥ ४४ ॥

इसके बाद काशीनरेश की सम्पूर्ण सेना और प्रमथगण अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित होकर उस चक्र के सामने आये। तब वह सुदर्शनचक्र अपने तेज से शस्त्राशस्त्रप्रयोग में कुशल उस सैन्यसमूह को जलाकर कृत्या के साथ समस्त वाराणसी को भी जलाने लगा। पुरी में उस समय राजा, प्रजा, पुरवासीगण, भृत्य, अश्व, हाथी, मनुष्य, अनेक कोष और गौष्ठ जो भी थे वे सभी जल गये। उस हरिचक्र ने ज्वालामालाओं से प्रदीप्त होकर समस्त गृह, प्राचीर और चबूतरों से

सुशोभित एवं देवगण से भी दुर्दर्शनीय उस पुरी को जला दिया। अन्त में अत्यन्त क्रोधवाला और अत्यन्त उग्र कर्म करने के लिए उत्सुक तथा जिसकी किरण चारों ओर फैल रही थी वह सुदर्शनचक्र पुनः लौटकर भगवान् श्रीविष्णु के हाथ में आ गया ॥ ४०-४४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - पैंतीसवाँ अध्याय

(साम्ब का विवाह)

मैत्रेय उवाच।

भूय एवाहमिच्छामि बलभद्रस्य धीमतः।
श्रोतुं पराक्रमं ब्रह्मन्! तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥
यमुनाकर्षणादीनि श्रुतानि भगवन्मया।
तत् कथ्यतां महाभाग! यदन्यत् कृतवान् बलः ॥ २ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे ब्रह्मन्! मैं पुनः मतिमान् बलराम जी के पराक्रम की बात सुनना चाहता हूँ, कृपया आप वर्णन कीजिये। हे भगवन्! मैं ने उनके यमुनाकर्षण आदि पराक्रम तो सुन लिया, हे महाभाग! अब उन्होंने और जो जो पराक्रम दिखलाये उनका वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

पराशर उवाच।

मैत्रेय! श्रूयतां कर्म्म यद् रामेणाभवत् कृतम्।
अनन्तेनाप्रमेयेण शेषेण धरणीभृता ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! अनन्त, अप्रमेय धरणीधर शेषावतार श्रीबलरामजी ने जो वीर कर्म किये थे, उनका श्रवण करो ॥ ३ ॥

दुर्य्योधनस्य तनयां स्वयंवरकृतक्षणाम्।
बलाददत्तवान् वीरः शाम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ ४ ॥

एक समय जाम्बवतीपुत्र वीरवर साम्बने स्वयम्वर में दुर्योधन की पुत्री को बलात् हरण किया था ॥ ४ ॥

ततः क्रुद्धा महावीर्य्याः कर्ण-दुर्य्योधनादयः ।
भीष्म-द्रोणदयश्चैव बबन्धुर्युधि निर्जिज्जतम् ॥ ५ ॥

तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्व्वे क्रोधं दुर्य्योधनादिषु ।
मैत्रेय ! चक्रुश्च ततो निहन्तुं ते महोद्यमम् ॥ ६ ॥

तान् निवार्य्य बलः प्राह मदलोलाकुलाक्षरम् ।
मोक्ष्यन्ति ते मद्वचनाद् यास्याम्येको हि कौरवान् ॥ ७ ॥

उस समय महावीर कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण प्रभृति ने उसे युद्ध में पराजित कर बान्ध लिया। हे मैत्रेय ! इस समाचार को प्राप्त कर श्रीकृष्ण आदि समस्त यादवों ने दुर्योधनादि कौरवों पर क्रोधित होकर उनका वध करने के लिए एक महान् उद्योग किया। किन्तु उन सभी को रोककर बलराम जी ने मदिरा के उन्माद से लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा—मेरे वचन से कौरवगण साम्ब को छोड़ देंगे इसलिए मैं अकेला ही जाता हूँ ॥ ५-७ ॥

बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाह्वयम् ।
बाह्योपवनमध्येऽभूद् न विवेश च तत्पुरम् ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनन्तर बलदेवजी हस्तिनापुर के समीप जाकर उसके बाहर एक उद्यान में ठहर गये, उन्होंने नगर में प्रवेश नहीं किया ॥ ८ ॥

बलमागतमाज्ञाय भूपा दुर्य्योधनादयः ।
गामर्घ्यमुदकञ्चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥ ९ ॥

गृहीत्वा विधिवत् सर्व्वं ततस्तानाह कौरवान् ।
आज्ञापयत्युग्रसेनः शाम्बमाशु विमुञ्चत ॥ १० ॥

ततस्ते तद्वचः श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो द्विज ।
कर्णदुर्य्योधनाद्याश्च चक्रुधुर्द्विजसत्तम ॥ ११ ॥

ऊचुश्च कुपिताः सर्व्वे वाह्लीकाद्याश्च कौरवाः ।
अराज्यार्हं यदोर्व्वंशमवेक्ष्य मुसलायुधम् ॥ १२ ॥

भो भोः ! किमेतद्भवता बलभद्रेरितं वचः ।
आज्ञां कुरुकुलोत्थानां यादवः कः प्रदास्यति ॥ १३ ॥

दुर्योधन आदि राजाओं ने बलदेवजी को आये हुए जानकर उनको गौ, अर्घ्य और पाद्य आदि निवेदन किये। उन सबको ग्रहण कर बलभद्र जी ने कौरवों से कहा—राजा उग्रसेन की आज्ञा है कि आपलोग साम्ब को शीघ्र छोड़ दें। हे विप्रवर्य ! बलरामजी के इन वचनों को सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि राजागण को अतिशय क्षोभ हुआ। और यदुवंश को राज्यपद के अयोग्य विचार कर वाह्लिक आदि समस्त कौरवगण क्रोधित होकर मूसलधारी बलरामजी से कहने लगी। हे बलराम ! तुम यह क्या कह रहे हो; कौन ऐसा यदुवंशी है जो कुरुकुल में उत्पन्न किसी वीर को आज्ञा दे ? ॥ ९-१३ ॥

उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञां कौरवाणां प्रदास्यति ।
तदलं पाण्डुरच्छत्रैर्नृपयोग्यैर्विडम्बितैः ॥ १४ ॥

तद्गच्छ बल ! पापढ्यं शाम्बमन्यायचेष्टितम् ।
विमोक्ष्यामो न भवतो नोग्रसेनस्य शासनात् ॥ १५ ॥

प्रणतिर्या कृतास्माकमार्य्याणां कुकुरान्धकैः ।
ननाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः ॥ १६ ॥

गर्व्वमारोपिता युयं समानासनभोजनैः ।
को दोषो भवतां नीतिर्यत् प्रीत्या नावलोकिता ॥ १७ ॥

यदि उग्रसेन भी कौरवों को आज्ञा दे सकते हैं तब राजाओं के योग्य कौरवों को केवल विड़म्बनामात्र इस श्वेत छत्र का क्या प्रयोजन है ? अतएव हे बलराम ! तुम जाओ अथवा रहो, हम लोग तुम्हारी या उग्रसेन की आज्ञा से अन्यायकारी साम्ब को छोड़ नहीं सकते। कुक्कुर और अन्धकवंशीय यादवगण प्राचीनकाल में माननीय हम कौरवों को प्रणाम करते थे किन्तु अब ऐसा नहीं करते हैं तो इससे कोई हानि नहीं परन्तु सेवकों द्वारा स्वामी पर आज्ञा कैसी ? हम लोगों ने ही तुम लोगों के साथ समान आसन, भोजन का व्यवहार करके तुम्हें अभिमानी बना दिया है; इसमें तुम लोगों का दोष भी क्या है, क्योंकि हम लोगों ने ही प्रेमवश नीति का विचार नहीं किया ॥ १४-१७ ॥

अस्माभिरर्घो भवतो योऽयं बल। निवेदितः।
प्रमणैतन्नैतदस्माक कुल्यं युष्मत्कुलोचितम्॥ १८॥

हे बलराम ! हम लोगों ने आपको यह जो अर्घ्य आदि प्रदान किया यह सब प्रेमवश ही है, वस्तुतः हमारे कुल की ओर से तुम्हारे कुल को अर्घ्य आदि प्रदान करना उचित नहीं है ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा कुरवः सर्व्वे न मुञ्चामो न हरेः सुतम्।
कृतैकनिश्चयास्तूर्णं विविशुर्गजसाह्वयम्॥ १९॥

मत्तः कोपेन चाघूर्णंस्तदधिक्षेपजन्मना।
उत्थाय पार्ष्ण्या वसुधां जघान स हलायुधः॥ २०॥

ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातान्महात्मनः।
आस्फोटयामास तथा दिशः शब्देन पूरयन्॥ २१॥

स उवाचातिताम्राक्षो भ्रुकुटीकुटिलाननः।
अहो मदापलेपोऽयमसाराणां दुरात्मनाम॥ २२॥

कौरवाणां महीपत्वमस्माकं किल कालजम्।
उग्रसेनस्य ये नाज्ञां मन्यन्तेऽद्यापि लङ्घनम्॥ २३॥

आज्ञां प्रतीच्छेद्धर्म्मेण सह दैवैः शचीपतिः।
सदाध्यास्ते सुधर्म्मां तामुग्रसेनः शचीपतेः॥ २४॥

धिङ्मनुष्यशतोच्छिष्टे तुष्टिरेषां नृपासने।
पारिजाततरोः पुष्पमञ्जरीर्वनिताजनः॥ २५॥

बिभर्त्ति यस्य भृत्यानां सोऽप्येषां न महीपतिः।
समस्तभूभृतां नाथ उग्रसेनः स तिष्ठतु॥ २६॥

श्रीपराशरजी बोले—कुरुगण ऐसी बात कहकर और 'हम लोग कृष्णपुत्र साम्बको नहीं छोड़ेंगे' यह निश्चय करके हस्तिनापुर में चले गये। अनन्तर हलायुध बलरामजी ने उन लोगों के अपमान से क्रोधित होकर घूरते हुए पृथिवी को एक लात मारी। महात्मा बलराम जी के पाद प्रहार से पृथिवी फट गयी

और वे अपनी वीरता पूर्ण गर्जना से दशोंदिशाओं को कम्पायमान करने लगे। और क्रोध से अपनी आँखों को लाल और भ्रुकुटि को टेढ़ी करके बलराम जी बोले—अहो ! इन सामर्थ्यहीन दुरात्मा कौरवगण को यह कैसा राजमद का अभिमान है। कौरवों का पृथिवीपतित्व स्वतः सिद्ध है। अतएव ये आज महाराज उग्रसेन की आज्ञा का पालन नहीं करते किन्तु उल्लङ्घन करते हैं। आज राजा उग्रसेन सुधर्मा सभा में स्वयं विराजमान होते हैं। उसमें शचीपति इन्द्र भी नहीं बैठ सकते किन्तु इन कौरवों को धिक्कार है, जिनको सैकड़ों मनुष्यों के उच्छिष्ट राजसिंहासन में इतना सन्तोष हो रहा है। वह इन कौरवों के महाराज नहीं हैं, जिनके सेवकों की स्त्रियाँ भी पारिजात पुष्प की मञ्जरी धारण करती हैं। वे उग्रसेन ही समस्त राजाओं के महाराज बनकर रहें। आज मैं अकेला ही पृथिवी को कौरव विहीन करके द्वारका में लौटूंगा ॥ १९-२६ ॥

अद्य निष्कौरवामुर्व्वीं कृत्वा यास्यामि तत्पुरीम्।
कर्णं दुर्य्योधनं द्रोणमद्य भीष्मं सवाह्लिकम् ॥ २७ ॥

दुष्टान् दुःशासनादींश्च भुरिश्रवसमेव च।
सोमदत्तं शलं भीममर्ज्जुनं सयुधिष्ठिरम् ॥ २८ ॥

यमजौ कौरवांश्चान्मान् हृत्वा साश्वरथद्विपान्।
वीरमादाय शाम्बञ्च सपत्नीकं ततः पुरीम् ॥
द्वारकामुग्रसेनादीन् गत्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ॥ २९ ॥

अथवा कौरवाधीनं समस्तैः कुरुभिः सह।
भारावतरणे शीघ्रं देवराजेन चोदितः ॥
भागीरथ्यां क्षिपाम्याशु नगरं नागसाह्वयम् ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा मदरक्ताक्षः कर्षणाधीमुखं हलम्।
प्राकारवप्रे विन्यस्य चकर्ष मुषलायुधः ॥ ३१ ॥

आघूर्णितं तत् सहसा ततो वै हस्तिनापुरम्।
दृष्ट्वा संक्षुब्धहृदयाश्चुक्रशुः सर्व्वकौरवाः ॥ ३२ ॥

राम ! राम ! महावाहो ! क्षम्यतां क्षम्यतां त्वया ।
उपसंह्रियतां कोपः प्रसीद मुषलायुध ॥ ३३ ॥

एष शाम्बः सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल !
अविज्ञातप्रभावाणां क्षम्यतामपराधिनाम ॥ ३४ ॥

आज कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, वाह्लीक, दुष्ट दुःशासनादि, भूरिश्रवा सोमदत्त, शय, भीम, अर्जन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और अन्यान्य कौरवगण को उनके हाथी, घोड़े एवं रथ के सहित मारकर, तथा वीर साम्ब को पत्नी के सहित लेकर ही द्वारकापुरी में जाऊँगा और उग्रसेन आदि अपने बान्धवों को दर्शन करूँगा । अथवा समस्त कौरवों के साथ इस हस्तिनापुर को ही उखाड़कर गङ्गाजी में फेंक दूंगा । श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर क्रोध से रक्तनेत्र वाले मुसलायुध बलरामजी ने हल की नोंक को हस्तिनापुर के खाई और दुर्ग से युक्त प्राकार की जड़ में लगाकर आकर्षण किया । उस समय समस्त हस्तिनापुर सहसा डगमगाता हुए देखकर समस्त कौरवगण क्षुब्धचित्त होकर भयभीत हो गये । और कहने लगे हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! हे मुसलायुध ! आप अपना क्रोध शान्त कीजिये, क्षमा कीजिये, प्रसन्न होइये । हे बलराम ! हम आपको सपत्नीक साम्ब को सौंपते हैं । हम लोग आपके प्रभाव को नहीं जानते थे, इसी से आपका अपराध किया, अब आप क्षमा करें ॥ २७-३४ ॥

ततो निर्यातयामासुः साम्बं पत्नीसमन्वितम् ।
निष्क्रम्य नगरात्तूर्णं कौरवा मुनिपुङ्गव ॥ ३५ ॥

भीष्म-द्रोण-कृपादीनां प्रणम्य वदतां प्रियम् ।
क्षान्तमेतन्मयेत्याह बलो बलवतां वरः ॥ ३६ ।

अद्याप्याघूर्णिताकारं लक्ष्यते तत् पुरं द्विज !
एष प्रवादो रामस्य बलशौर्य्योपलक्षणः ॥ ३७ ॥

ततस्तु कौरवाः शाम्बं सम्पूज्य हलिना सह ।
प्रेषयामासुरुद्वाहधनभार्य्यासमन्वितम् ॥ ३८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! इसके बाद कौरवों ने शीघ्र ही नगर से निकलकर पत्नीसहित साम्ब को बलराम जी के अर्पण कर दिया। तदनन्तर प्रणामपूर्वक प्रिय वचन बोलते हुए भीष्म, द्रोण, कृप आदि से वीरश्रेष्ठ बलराम जी ने कहा—'अच्छा मैंने क्षमा किया'। हे द्विज ! इसी कारण उस समय से आजतक हस्तिनापुर गङ्गा की ओर कुछ झुका हुआ दिखायी देता है, यह श्रीबलराम जी के बल ओर वीरत्व का परिचय देने वाला उनका प्रभाव ही है। तदनन्तर कौरवों ने बलरामजी के साथ साम्ब का पूजन किया और बहुत सा दहेज और वधू के साथ उनको द्वारकापुरी के लिये विदा किया ॥ ३५-३८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में पैंतीसवां अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - छत्तीसवाँ अध्याय

(द्विविद वध)

मैत्रेय ! श्रूयतां तस्य बलस्य बलशालिनः ।
कृतं यदन्यत्तेनाभूत्तदपि श्रूयतां द्विज ॥ १ ॥

नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिनः ।
सखाभवन्महावीर्य्यो द्विविदो नाम वानरः ॥ २ ॥

वैरानुबन्धं बलवान् स चकार सुरान् प्रति ।
नरकं हतवान् कृष्णो बलदर्पसमन्वितम् ॥ ३ ॥

करिष्ये सर्व्वदेवानां तस्मादेतत्प्रतिक्रियाम् ।
यज्ञविध्वंसनं कुर्व्वन् मर्त्तलोकक्षयं तथा ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! हे ब्रह्मन् ! बलशाली बलरामजी ने और भी जो कार्य किये थे उनको सुनिये । पूर्वकाल में देवपक्ष के विरोधी नरकासुर का मित्र महापराक्रमी द्विविद नामक एक वानर था । उस द्विविद वानर ने देवगण के साथ शत्रुता आरम्भ की । इसका कारण पहले श्रीकृष्ण के द्वारा नरकासुर का विनाश ही था । उस समय द्विविद ने विचार किया कि मैं अकेला ही समस्त यज्ञों का उच्छेद और मर्त्यलोक का संहार करके सम्पूर्ण देवगण की प्रतीकार कर दूँगा ॥ १-४ ॥

ततो विध्वंसयामास अज्ञानज्ञानमोहितः ।
बिभेद साधुमर्य्यादां क्षयं चक्रे च देहिनाम् ॥ ५ ॥

ददाह च वनोद्देशान् पुरग्रामान्तराणि च ।
क्वचिच्च पर्व्वताक्षेपैर्ग्रामादीन् समचूर्णयत् ॥ ६ ॥

शैलानुत्पाट्य तोयेषु मुमोचाम्बुनिधौ तथा।
पुनश्चार्णवमध्यस्थः क्षोभयामास सागरम् ॥ ७ ॥

तेन विक्षोभितश्चाब्धिरुद्वेलोऽजायत द्विज !
प्लावयंस्तीरजान् ग्रामान् पुरादीनतिवेगवान् ॥ ८ ॥

कामरूपी महारूपं कृत्वा संस्थानशेषतः।
लुण्ठन् भ्रमणसंमर्दैः सञ्चूर्णयति वानरः ॥ ९ ॥

तेन विप्रकृतं सर्व्वं जगदेतद्दुरात्मना।
निःस्वाध्यायवषट्कारं मैत्रेयासीत् सुदुःखितम् ॥ १० ॥

इस प्रकार निश्चय करके अज्ञान मोहित उस वानर ने यज्ञों को विनाश, साधुओं की मर्यादा और शरीर धारीयों को मारना आरम्भ किया। वह कभी कभी ग्राम, नगर और वन समूह को जला देता और कभी पर्वत फेंककर ग्रामादि को भी चूर्ण करने लगा। और वह कभी पर्वत को उखाड़कर समुद्र में फेंक देता और कभी वह समुद्र में प्रवेशकर जल को क्षोभित कर देता था। हे द्विज ! क्षुब्ध हुआ समुद्र ऊँची ऊँची तरङ्गों से तीर को अतिक्रमण करके तीर के समीपवर्ती ग्रामों को डुबा देता था। अपनी इच्छा के अनुकूल रूप धारण करने वाला वह महान् वानर कभी लोटने लगता था और अपने लुण्ठन के संघर्ष से खेतों को कुचल देता था। हे द्विज ! उस दुरात्मा ने समस्त जगत् को स्वाध्याय और वषट्कार से शून्य कर दिया था अतएव यह जगत् अत्यन्त दुःखमय हो चुका था ॥ ५-१० ॥

एकदा रैवतोद्याने पपौ पानं हलायुधः।
रेवती च महाभागा तथैवान्या वरस्त्रियः ॥ ११ ॥

उपगीयमानो विलसल्ललनामौलिमध्यगः।
रेमे यदुवरश्रेष्ठः कुबेर इव मन्दरे ॥ १२ ॥

ततः स वानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा सीरिणो हलम्।
मुषलञ्च चकारास्य सम्मुखञ्च बिडम्बनम् ॥ १३ ॥

एकदिन रैवतोद्यान में बलभद्र जी रेवती और अन्यान्य श्रेष्ठ स्त्रियों के साथ मद्यपान कर रहे थे। उस समय रमणीयों के बीच यदुश्रेष्ठ बलरामजी गान करते

हुए इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे मन्दर पर्वत पर कुबेर हो । अनन्तर वहाँ पर द्विविद वानर आया और बलरामजी के हल, मूसल लेकर उनके सामने नाना प्रकार की विडम्बना करने लगा ॥ ११-१३ ॥

तथैव योषितां तासां जहासाभिमुखं कपिः
पानपूर्णांश्च करकांश्चिक्षेपाहत्य वै तदा ॥ १४ ॥

ततः कोपपरीतात्मा भर्त्सयामास तं बलः ।
तथापि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलाध्वनिम् ॥ १५ ॥

ततः समुत्थाय बलो जग्राह मुषलं रुषा ।
सोऽपि शैलशिलां भीमां जग्राह प्लवगोत्तमः ॥ १६ ॥

चिक्षेप च स तां क्षिप्तां मुषलेन सहस्रधा ।
बिभेद यादवश्रेष्ठः सा पपात महीतले ॥ १७ ॥

आपतन्मुषलञ्चासौ समुल्लङ्घ्य प्लवङ्गमः ।
वेगेनागम्य रोषेण तलेनोरस्यताड़यत् ॥ १८ ॥

ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्द्धि ताड़ितः ।
पपात रुधिरोद्गारी द्विविदः क्षीणजीवितः ॥ १९ ॥

पतता तच्छरीरेण गिरेः श्रृङ्गमदीर्य्यत ।
मैत्रेय ! शतधा वज्रिवज्रेणेव हि ताड़ितम् ॥ २० ॥

पुष्पवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः ।
प्रशशंसुस्तथाभ्येत्य साध्वेतत्ते महत्कृतम् ॥ २१ ॥

अनेन दुष्टकपिना दैत्यपक्षोपकारिणा ।
जगन्निराकृत वीर ! दिष्ट्यासौ क्षयमागतः ॥ २२ ॥

इत्युक्ता दिवमाजग्मुर्देवा हृष्टाः सगुह्यकाः ॥ २३ ॥

एवं विधान्यनेकानि बलदेवस्य धीमतः ।
कर्म्माण्यपरिमेयाणि शेषस्य धरणीभृतः ॥ २४ ॥

वह दुरात्मा वानर उन सभी स्त्रियों के सामने हँसने लगा और मदिरा से भरे हुए कलशों को फोड़ दिया। तब श्रीहलधर ने धमकी दी किन्तु वह उनका अपमान करके किलकारी मारने लगा। तदनन्तर श्रीबलभद्र ने हँसकर अपना मूसल उठा लिया और उस वानर ने एक भारी चट्टान ले ली। और उसने उस चट्टान को बलरामजी के ऊपर फैंका किन्तु यादववीर बलराम जी ने अपने मूसल से उसके हजारों टुकड़े कर दिये जिससे वह भूमि पर गिर गयी। इसके बाद उस वानर ने बलरामजी द्वारा चलाये गये मूसल का वार बचाकर क्रोधपूर्वक अत्यन्त वेग से उनकी छाती में एक घूंसा मारा। पश्चात् बलराम जी ने भी क्रोधित होकर द्विविद के मस्तक पर एक मुक्का मारा जिससे वह रक्त वमन करता हुआ प्राणहीन होकर पृथिवीपर गिर गया। हे मैत्रेय ! गिरते समय उसके शरीर के आघात से इन्द्र के वज्र से विदीर्ण होने के समान उस पर्वत शिखर के सैकड़ों टुकड़े हो गये। उस समय देवताओं ने श्रीबलरामजी के ऊपर पुष्पवर्षा की और वहाँ आकर 'आपने यह उत्तम कार्य किया' ऐसा कहकर उनकी प्रशंसा भी की। हे वीर ! दैत्यपक्ष के उपकारी यह दुष्ट वानर संसार को बहुत कष्ट दे रहा था यह, बड़े ही सौभाग्य का विषय है कि आज यह मारा गया। ऐसा कहकर देवगण गुह्यकों के साथ अत्यन्त प्रसन्नता से स्वर्गलोक को चले गये। श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! धरणीधर धीमान् शेषावतार श्रीबलरामजी के ऐसे ही अनेक कर्म हैं जिनकी तुलना किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ १४-२४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - सैंतीसवां अध्याय

(यदुवंश का विनाश और भगवान का स्वधाम गमन)

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान् ।

चक्रे दुष्टक्षितीशानां तथैव जगतः कृते ॥ १ ॥

क्षितेश्च भारं भगवान् फाल्गुनेन समं विभुः ।

अवतारयामास हरिः समस्ताक्षौहिणीवधात् ॥ २ ॥

कृत्वा भारावतरणं भुवो हत्वाखिलान् नृपान् ।

शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान् कुलम् ॥ ३ ॥

उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त मानुष्यमात्मभूः ।

सांशो विष्णुमयं स्थानं प्रविवेश पुनर्न्निजम् ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार बलदेव जी के सहित भगवान् श्रीकृष्ण ने जगत् की मंगलकामना से दैत्य और दुष्ट राजाओं का संहार किया । और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन के साथ मिलकर अट्ठारह अक्षौहिणी सेना को भी मारकर पृथिवी का भार उतारा । समस्त राजाओं का वधकर पृथिवी का भार उतारने के बाद ब्राह्मणों के शापव्याज से अपने कुलका भी संहार किया । हे मुने ! इन समस्त कार्यों की समाप्ति के पश्चात् द्वारकापुरी तथा बलराम प्रद्युम्नादि के सहित अपने श्रीविष्णु धाम में प्रवेश किया ॥ १-४ ॥

मैत्रेय उवाच ।

स विप्रशापव्याजेन सञ्जह्रे स्वकुलं कथम् ।

कथञ्च मानुषं देहमुत्ससर्ज्ज जनार्द्दनः ॥ ५ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—जनार्दन ने ब्राह्मण के शाप किस प्रकार अपने कुल का नाश और अपने मानव शरीर को छोड़ा ? आप विस्तार रूप से कहिये ॥ ५ ॥

विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः ।
पिण्डारके महातीर्थे दृष्ट्वा यदुकुमारकैः ॥ ६ ॥

ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्य्यप्रचोदिताः ।
शाम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा स्त्रियं यथा ॥ ७ ॥

प्रसृतांस्तान्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरःसरम् ।
इयं स्त्री पुत्रकामस्य बभ्रोः किं जनयिष्यति ॥ ८ ॥

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते विप्रलब्धाः कुमारकैः ।
मुनयः कुपिताः प्रोचुर्मुषलं जनयिष्यति ।
येनाखिलकुलोत्सादो यादवानां भविष्यति ॥ ९ ॥

इत्युक्तास्तैः कुमारास्ते आचचक्षुर्यथाकृतम् ।
उग्रसेनाय मुसलं जज्ञे शाम्बस्य चोदरात् ॥ १० ॥

श्रीपराशरजी बोले—एकबार यादवकुमारों ने महातीर्थ पिण्डारक में विश्वमित्र, कण्व और नारद आदि महामुनियों को देखा । तब यौवन से उन्मत्त और भावी से प्रेरित उन कुमारों ने जाम्बवती के पुत्र साम्बको स्त्री के समान सज्जित कर मुनियों को प्रणाम करके पूछा—हे मुनिगण ! यह स्त्री पुत्र की इच्छावाली है अतएव बतलाइये यह क्या उत्पन्न करेगी । श्रीपराशरजी बोले—यादवकुमारों के इस प्रकार धोखा देने पर दिव्यज्ञान से युक्त उन मुनियों ने कुपित होकर कहा—'यह समस्त यदुवंशियों के विनाश का कारण भूत लोकोंत्तर एक मूसल उत्पन्न करेगी, जिससे सम्पूर्ण यादवों का कुल समाप्त हो जायगा' । मुनियों से इस प्रकार कहे जाने पर उन यदुकुमारों ने समस्त वृत्तान्तको ज्यों का त्यों राजा उग्रसेन से कहा तदनन्तर साम्ब के पेट से एक मूसल उत्पन्न हुआ ॥ ६-१० ॥

तदुग्रसेनो मुसलमयश्चूर्णमकारयत् ।
जज्ञे स चैरकाश्चूर्णः प्रक्षिप्तस्तैर्महोदधौ ॥ ११ ॥

मुसलस्याथ लोहस्य चूर्णितस्यान्धकैर्द्विज ।
खण्डं चूर्णयितुं शेकुर्नैकं ते तोमराकृति ॥ १२ ॥

तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह घातिभिः ।
घातितस्योदरात् तस्य लुब्धो जग्राह तं जरा ॥ १३ ॥

विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवान् मधूसूदनः ।
नैच्छत्तदन्यथाकर्त्तुं विधिना यत् समीहितम् ॥ १४ ॥

हे विप्र ! उग्रसेन ने लौहमय मूसल को प्राय पूर्णरूपेण चूर्ण कराया किन्तु भाले के आकारवाले एक खण्ड को किसी प्रकार भी चूर्ण न कर सके और उसे समुद्र में फेंक दिया । वहाँ बहुत सरकण्डे उससे उत्पन्न हो गये । समुद्र में फेंके गये उस मूषलखण्ड को एक मछली निगल गयी । उस मछली को मछुअरों ने पकड़ लिया तथा उस मछली को चीरने पर उसके पेट से निकले हुए उस लोह खण्ड को जरानामक एक व्याध ने ले लिया । इन समस्त बातों को जानते हुए भी कृष्ण ने विधाता की इच्छा को अन्यथा करने की इच्छा नहीं की ॥ ११-१४ ॥

देवैश्च प्रहितो दूतः प्रणिपत्याह केशवम् ।
रहस्येवमहं दूतः प्रहितो भगवन् सुरैः ॥ १५ ॥

विश्वाश्वि-मरूदादित्य-रुद्र-साध्यादिभिः सह ।
विज्ञापयति यच्छक्रस्तदिदं श्रूयतां प्रभो ॥ १६ ॥

भारावतारणार्थाय वर्षाणामधिकं शतम् ।
भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदशैः सम्प्रसादितः ॥ १७ ॥

दुर्वृत्ता निहता दैत्या भुवो भारोऽवतारितः ।
त्वया सनाथास्त्रिदशा भवन्तु त्रिदिवे पुनः ॥ १८ ॥

अनन्तर एकदिन देवताओं से प्रेरित एक दूत ने आकर भगवान् को प्रणाम करके कहा—हे भगवन् ! एकान्त में कोई बात कहने के लिए देवताओं ने मुझे आपके समीप भेजा है । विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, वायु, आदित्य और रुद्रादि के साथ इन्द्र ने आपके समीप जो निवेदन किया है, हे प्रभो ! उसे आप श्रवण कीजिये । हे भगवन् ! देवताओं की प्रेरणा से उनके साथ ही पृथिवी का

भार उतारने के लिए अवतार लिये हुए आपको सौ वर्षों से अधिक समय बीत गया। हे प्रभो ! अब आप दुराचारी दैत्यों का वध कर चुके और पृथिवी का भार भी उतरगया, अतएव हमलोग प्रार्थना करते हैं कि अब आपसे स्वर्ग में हम देवगण सनाथ हों ॥ १५-१८ ॥

तदतीतं जगन्नाथ वर्षाणामधिकं शतम्।
इदानीं गम्यतां स्वर्गो भवता यदि रोचते ॥ १९ ॥

देवैर्विज्ञाप्यते चेदमथात्रैव रतिस्तव।
तत् स्थीयतां यथाकालमाख्ययेमनुजीविभिः ॥ २० ॥

यत्त्वमात्थाखिलं दूत वेद्म्येतदहमप्युत।
प्रारब्ध एव हि मया यादवानामपि क्षयः ॥ २१ ॥

भुवो नाद्यापि भारोऽयं यादवैरनिवर्हितैः।
अवतार्य्य करोम्येतत् सप्तरात्रेण सत्वरः ॥ २२ ॥

यथा गृहीतामम्भोधर्दत्त्वाहं द्वारकाभुवम्।
यादवानुपसंहृत्य यास्यामि त्रिदिवालयम् ॥ २३ ॥

मनुष्यदेहमुत्सृज्य सङ्कर्षणसहायवान्।
प्राप्त एवास्मि मन्तव्यो देवेन्द्रेण तथा सुरैः ॥ २४ ॥

जरासन्धादयो येऽन्ये निहता भारहेतवः।
क्षितेस्तेभ्यः कुमारोऽपि यदूनां नापचीयते ॥ २५ ॥

तदेनं सुमहाभारमवतार्य्य क्षितेरहम्।
यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय ब्रवीहि तान् ॥ २६ ॥

हे जगन्नाथ ! आपको भूमण्डल पर आये हुए सौ वर्षों से भी अधिक हो गये, अब यदि आपको रूचि हो तो स्वर्ग में पधारिये। देवताओं ने ऐसा भी कहा है कि यदि आषको यहीं निवास करने में रुचि हो तो यहीं रहें। प्रभु के समीप कर्तव्य का निवेदन करना ही अनुजीवियों का कर्तव्य है। श्रीभगवान् ने कहा—हे दूत ! तुम जो कहते हो वह मैं जानता हूँ। ओर उसी के लिए मैंने अपने यादववंश का

नाश आरम्भ कर दिया है । यादवगण के विनाश के बिना पृथिवी का भार नहीं उतरेगा, इसी कारण से मैं अतिशीघ्र सात रात्रि के भीतर इनका संहार करके स्वर्गधाम में गमन करूँगा । मैंने जिस प्रकार समुद्र से द्वारकापुरी की भूमि याचना की थी उसी प्रकार उसे लौटाकर और यादवों का उपसंहार करके मैं स्वर्ग में आऊँगा । अब देवराज इन्द्र और देवताओं को यह समझना चाहिये कि संकर्षण के साथ मैं मानवशरीर का परित्यागकर स्वर्ग में पहुंच ही रहा हूँ । पृथिवी के भारभूत जरासन्ध आदि जो समस्त वीरगण मारे गये हैं, उनकी अपेक्षा यदुकुमारगण भी किसी प्रकार कम नहीं हैं । अतएव मैं पृथिवी के भारहरण स्वरूप इस महान् कार्य को सम्पन्न करके स्वर्ग में प्रस्थान करूँगा । तुम यही बात देवगण कहना ॥ १९-२६ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूतः प्रणम्य तम् ।
मैत्रेय दिव्यया गत्या देवराजान्तिकं ययौ ॥ २७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! वासुदेव श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर देवदूत उनको प्रणाम करके दिव्यगति से देवराज इन्द्र के समीप उपस्थित हुआ ॥ २७ ॥

भगवानप्यथीत्पातान् दिव्यभौमान्तरीक्षगान् ।
ददर्श द्वारकापुर्य्यां विनाशाय दिवानिशम् ॥ २८ ॥

इस ओर भगवान् ने देखा कि द्वारकापुरी में दिनरात विनाश के सूचक दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष सम्बन्धी उत्पात आरम्भ हो गये हैं ॥ २८ ॥

तान् दृष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान् ।
महोत्पातान् शमायैषां प्रभासं याम मा चिरम् ॥ २९ ॥

एवमुक्ते तु कृष्णेन यादवप्रवरस्ततः ।
महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम् ॥ ३० ॥

भगवन् यन्मया कार्य्यं तदाज्ञापय साम्प्रतम् ।

मन्ये कुलमिदं सर्व्वं भगवान् संहरिष्यति ।
नाशायास्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥ ३१ ॥

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया ।
वदरीमाश्रमंपुण्यं गन्धमादनपर्व्वते ॥ ३२ ॥

उन उत्पातों को देखकर भगवान् ने यादवों से कहा—देखो, यह कैसे घोर उपद्रव हो रहे हैं, इनकी शान्ति के लिए हमलोग शीघ्र ही प्रभासक्षेत्र को चलें । श्रीपराशरजी बोले—श्रीकृष्ण द्वारा ऐसा कहे जाने पर यादवश्रेष्ठ महाभागवत उद्धव जी प्रणाम करके भगवान् से बोले । हे भगवान् ! मैं ऐसा समझता हूँ कि अब आप कुल का नाश करेंगे, क्योंकि हे अच्युत ! इस समय सभी ओर नाश के सूचक कारण दिखायी पड़ रहे हैं, अतएव मुझे आज्ञा दीजिये कि अब मैं क्या करूँ ? । श्रीभगवान् बोले—हे उद्धव ! तुम मेरी कृपा से दिव्य गति प्राप्तकर गन्धमादन पर्वत पर स्थित बदरीकाश्रम में चले जाओ ॥ २९-३२ ॥

नर-नारायणस्थाने तत्पावितमहीतले ।
मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

अहं स्वर्गं गमिष्यामि उपसंहृत्य वै कुलम् ।
द्वारकाञ्च मया त्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ३४ ॥

इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं जगामाथ तदोद्धवः ।
नर-नारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः ॥ ३५ ॥

वह आश्रम नरनारायण का निवासस्थान है और उसी से यह भूतल पवित्र हुआ है । तुम वहाँ जाकर मुझ में चित्त लगाकर तपस्या करना, पश्चात् मेरी कृपा से तुम अपनी इच्छित सिद्धि प्राप्त करोगे । और मैं अपने कुल का संहार करके स्वर्ग गमन करूँगा । तथा मेरे छोड़ देने पर समुद्र द्वारकापुरी को जल में डुबा देगा । श्रीपराशरजी बोले—भगवान् द्वारा ऐसा बात कहे जाने पर उद्धव उनको प्रणामकर और उनसे अनुमोदित नरनारायण के निवासस्थान तपोवन को चले गये ॥ ३३-३५ ॥

ततस्ते यादवाः सर्व्वे रथानारुह्य शीघ्रगान ।
प्रभासं प्रययुः सार्द्धं कृष्ण-रामादिभिर्द्विज ॥ ३६ ॥

प्राप्य प्रभासं प्रयताः स्नातास्ते कुकुरान्धकाः ।
चक्रुस्तत्र सुरापानं वासुदेवानुमोदिताः ॥ ३७ ॥

पिबतां तत्र वै तेषां संघर्षेण परस्परम् ।
अतिवादेन्धनो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः ॥ ३८ ॥

हे द्विज ! उसके बाद यादवगण ने कृष्ण और बलराम के साथ शीघ्रगामी रथों पर चढ़कर प्रभास क्षेत्र को प्रस्थान किया । अनन्तर कुक्कुर और अन्धकवंशीय यादवों ने प्रभास में पहुंचकर संयतभाव से स्नान करने के पश्चात् वासुदेव से अनुमोदित होकर मद्यपान किया । उस स्थान में सुरापान करते समय उन यादवों का परस्पर संघर्ष में कुवाक्यरूप इन्धन से युक्त प्रलय करने वाली परस्पर कलह की आग जल उठी ॥ ३६-३८ ॥

जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्दैवबलात् कृताः ।
क्षीणशस्त्राश्च जगृहुः प्रत्यासन्नामथैरकाम् ॥ ३९ ॥

एरका तु गृहीता तैर्वज्रभूतेव लक्ष्यते ।
तया परस्परं जघ्नुः सम्प्रहारे सुदारुणे ॥ ४० ॥

प्रद्युम्न-शाम्बप्रमुखाः कृतवर्म्माथ सात्यकिः ।
अनिरुद्धादयाश्चान्ये पृथुर्विपृथुरेव च ॥ ४१ ॥

चारुवर्म्मा चारुकश्च तथाक्रूरादयो द्विज ।
एरकारूपिभिर्वज्रैस्ते निजघ्नुः परस्परम् ॥ ४२ ॥

निवारयामास हरिर्यादवांस्ते च केशवम् ।
सहायं मेनिरे प्राप्तं ते निजघ्नुः परस्परम् ॥ ४३ ॥

कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे ।
वधाय सोऽपि मुसलं मुष्टिर्लोहोऽभवत्तदा ॥ ४४ ॥

जघान तेन निःशेषान् यादवानाततायिनः ।
जघ्नुश्च सहसाभ्येत्य तथान्ये च परस्परम् ॥ ४५ ॥

ततश्चार्णवमध्येन जैत्रोऽसौ चक्रिणो रथः ।
पश्यतो दारुकस्याशु हृतोऽश्वैर्द्विजसत्तम ॥ ४६ ॥

चक्रं तथा गदा शाङ्‌र्गं तूणौ शङ्खोऽसिरेव च ।
प्रदक्षिणं हरिं कृत्वा जग्मुरादित्यवर्त्मना ॥ ४७ ॥

क्षणेन नाभवत् कश्चिद् यादवानामघातितः ।
ऋते कृष्णं महाबाहुं दारुकञ्च महामुने ॥ ४८ ॥

चंक्रम्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूलकृतासनम् ।
ददृशाते मुखाच्चास्य निष्क्रामन्त महोरगम् ॥ ४९ ॥

निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महाभोगो भुजङ्गमः ।
प्रययावर्णवं सिद्धैः स्तूयमानस्तथोरगैः ॥ ५० ॥

ततोऽर्घ्यमादाय तदा जलधिः सम्मुखं ययौ ।
प्रविवेश च तत्तोयं पूजितः पन्नगोत्तमैः ॥ ५१ ॥

दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः ।
इदं सर्व्वं त्वमाचक्ष्व वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ ५२ ॥

एवं वही कलहाग्नि यदुकुल के विनाश का कारण बनी उस समय भावीवंश वे समस्त यादवगण परस्पर में शस्त्र प्रहार करने लगे और जब अस्त्रशस्त्र समाप्त हो गये तब उन सब ने पास ही में उगे हुए सरकण्डे हाथ में ले लिया । उस युद्ध में उनके हाथ में ली गयी सरकण्डे वज्र के समान प्रतीत होने लगी और वे लोग परस्पर में प्रहार करने लगे । हे द्विज ! प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा और अक्रूर आदि समस्त यादवगण परस्पर में एरकारूपी वज्रों से प्रहार करने लगे । जब श्रीहरि ने उनको परस्पर में युद्ध करने से रोका, तब उन लोगों ने उन्हें अपने प्रतिपक्ष का सहायक माना और परस्पर में प्रहार करते ही रहे । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उनके वध के लिए एक मुट्ठी एरका ले ली और वह मुट्ठी भर एरका लोहे के मूसल हो गयी । भगवान् ने उस एरका से आततायी यादवगण का विनाश करना आरम्भ किया । और अन्य यादवगण भी सहसा वहाँ आकर परस्पर में वध करने लगे । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उस समय दारुक की आँखों के

सामने ही श्रीकृष्ण के उस जैत्र रथ को अश्वगण समुद्र में ले गये । तदनन्तर भगवान् के शङ्ख, चक्र, गदा, शाङ्र्ग, धनुष, खड्ग और तरकस आदि अस्त्र भगवान् की प्रदक्षिणा करके आकाशमार्ग से चले गये । हे महामुने ! क्षण भर में ही महाबाहु श्रीकृष्ण और दारुक को छोड़कर समस्त यादवों में कोई भी जीवित न रहा । अनन्तर दारुक और श्रीकृष्ण ने भ्रमण करते करते देखा कि श्रीबलराम जी एक वृक्ष के मूल में आसन लगाकर बैठे हैं और उनके मुख से एक विशाल सर्प निकल रहा है । श्रीबलदेव के मुख से निकला हुआ वह सर्प समुद्र की ओर गया, उस समय सिद्ध और सर्पगण उसकी स्तुति कर रहे थे । उसी समय समुद्र अर्घ्य लेकर उस महासर्प के सामने आया और श्रेष्ठसर्पगण उसकी पूजा करने लगे । पूजा समाप्ति के बाद उसने जल में प्रवेश किया । इस प्रकार श्रीबलराम जी का महाप्रयाण देखकर श्रीकृष्णचन्द्र दारुक से बोले—तुम यह समस्त वृतान्त उग्रसेन और वसुदेव जी से जाकर कहो ॥ ३९-५२ ॥

निर्याणं बलभद्रस्य यादवानां तथा क्षयम् ।
योगे स्थित्वाहमप्येतं परित्यक्षे कलेवरम् ॥ ५३ ॥

वाच्यश्च द्वारकावासि-जनः सर्व्वस्तथाहुकः ।
यथेमां नगरीं सर्व्वां समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ५४ ॥

तस्माद्भवद्भिः सर्व्वैस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्ज्जुनागमः ।
न स्थेयं द्वारकामध्ये निष्क्रान्ते तत्र पाण्डवे ॥ ५५ ॥

तेनैव सह गन्तव्यं यत्र याति स कौरवः ।
गत्वा च ब्रूहि कौन्तेयमर्ज्जुनं वचनान्मम ॥ ५६ ॥

पालनीयस्त्वया शक्त्या जनोऽयं मत्परिग्रहः ।

इत्यर्ज्जुनेन सहितो द्वारवत्या भवान् जनम् ।
गृहीत्वा यातु वज्रश्च यदुराज्येऽभिषिच्यताम् ॥ ५७ ॥

बलभद्र जी का महाप्रयाण और समस्त यादवों का विनाश हो चुका, अब मैं भी योगस्थ होकर अपना यह शरीर छोड़ूँगा। ये सभी वृतान्त उनको जाकर कहना। सम्पूर्ण द्वारकावासी एवं महाराज उग्रसेन से कहना कि अब इस द्वारकानगरी को समुद्र डुबा देगा। अतएव आप सभी अर्जुन के आगमन की प्रतीक्षा करेंगे किन्तु द्वारका से अर्जुन के निकलने के बाद कोई भी व्यक्ति द्वारका में न जाये न निवास करे वह कुरुकुलोत्पन्न अर्जुन जहाँ जायगा आपलोग भी उसी के साथ वहीं जाना। (हे दारुक !) तुम जाकर कुन्ति पुत्र अर्जुन से भी कहो। वह 'अपनी शक्ति के अनुसार मेरे परिवार की रक्षा करेगा' अर्जुन के साथ द्वारकावासी समस्त लोगों को लेकर तुम जाना और यदुवंश के वज्र को राजा बनाना ॥ ५३-५७ ॥

इत्युक्तो दारुकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
प्रदक्षिणञ्च बहुशः कृत्वा प्रायाद् यथोदितम् ॥ ५८ ॥

स गत्वा च तथा चक्रे द्वारकायां तथार्ज्जुनम् ।
आनिनाय महाबुद्धिर्वज्रं चक्रे तथा नृपम् ॥ ५९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान् श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर दारुक ने उनको बारंबार प्रणाम करने के बाद उनकी अनेक परिक्रमायें की और भगवान् के कथनानुसार प्रस्थान किया। उस महामति दारुक ने द्वारका में जाकर समस्त वृतान्त सुना दिया और अर्जुन को वहाँ लाकर यदुवंश के राजपद पर वज्र का अभिषेक किया ॥ ५८-५९ ॥

भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम् ।
ब्रह्मात्मनि समारोप्य सर्व्वभूतेष्वधारयत् ॥ ६० ॥

सम्मानयन् द्विजवचो दुर्व्वासा यदुवाच ह ।
योगयुक्तोऽभवत् पादं कृत्वा जानुनि सत्तमः ॥ ६१ ॥

आययौ च जरानाम स तदा तत्र लुब्धकः ।
मुसलावशेषलोह-सायकन्यस्ततोमरः ॥ ६२ ॥

स तं पादं मृगाकारमवेक्ष्यारादवस्थितः ।
तले विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तम ॥ ६३ ॥

गतश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं नरम्।
प्रणिपत्याह चैवैनं प्रसीदेति पुनः पुनः ॥ ६४ ॥

अजानता कृतमिदं यदा हरिणशङ्कया।
क्षम्यतामात्मपापेन दग्धं मा दग्धुमर्हसि ॥ ६५ ॥

इधर भगवान् श्रीकृष्ण ने समस्त भूतों में व्याप्त वासुदेवस्वरूप परमब्रह्म को अपनी आत्मा में आरोपित करके उनका ध्यान किया। दुर्वासा ने जैसा कहा था उस ब्राह्मणवचन के सम्मान के लिये वे अपनी जानुओं पर चरण रखकर विराजमान हो गये। इसी समय, जरा नामक एक व्याध वहाँ आया। जिसने मूसल के बचे हुए तोमर अपने बाण के अग्रभाग में लगाया था। हे द्विजोत्तम ! उस श्रीचरण को मृगाकार देखकर दूर से स्थित उस व्याध ने उसी तोमर से चरणों को बींध दिया। लेकिन वहाँ जाने पर उस व्याध ने चतुर्भुजधारी एक मनुष्य देखा। यह देखते ही उनके चरणों पर गिरकर प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये—ऐसा कहने लगा। मैंने बिना जाने ही मृग समझकर यह अपराध किया। कृपया क्षमा कीजिये। मैं अपने पाप से जल रहा हूँ, रक्षा कीजिये ॥ ६०-६५ ॥

ततस्तं भगवानाह न तेऽस्ति भयमण्वपि।
गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध स्वर्गं सुरालयम् ॥ ६६ ॥

विमानमागतं सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम्।
आरुह्य प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः ॥ ६७ ॥

गते तस्मिन् स भगवान् संयोज्यात्मानमात्मनि।
ब्रह्मभूतेऽव्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥ ६८ ॥

अजन्मन्यजरेऽनाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि।
तत्याज मानुषं देहमतीत्य त्रिविधां गतिम् ॥ ६९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनन्तर भगवान् ने कहा—तुम्हें तनिक भी भय नहीं है। हे व्याध ! तुम मेरी कृपा से देवताओं के स्वर्ग में चले जाओ। भगवान् के इन वचनों के समाप्त होते ही वहाँ एक विमान आया, उस पर चढ़कर वह व्याध भगवान् की कृपा से उसी क्षण स्वर्ग में चला गया। उस व्याध के चले जाने पर श्रीकृष्णचन्द्र

ने अपनी आत्मा को अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवस्वरूप, अमल, अजन्मा, अमर, अप्रमेय, अखिलात्मा, तथा ब्रह्मस्वरूप श्रीविष्णुभगवान् में लीनकर त्रिगुणात्मक गति को पारकर इस मानव शरीर का परित्याग किया ॥ ६६-६९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में सैंतीसवां अध्याय समाप्त।

पञ्चम अंश - अड़तीसवाँ अध्याय

(परीक्षित् का राज्याभिषेक और पाण्डवों का वनगमन।)

अर्ज्जुनोऽपि तदान्विष्य कृष्णरामकलेवरे।
संस्कारं लम्भयामास तथान्येषामनुक्रमात्॥ १॥

अष्टौ महिष्यः कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु याः।
उपगुह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम्॥ २॥

रेवती चैव रामस्य देहमाश्लिष्य सत्तम।
विवेश ज्वलितं वह्निं तत्सङ्गाह्लादशीतलम्॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले—अनन्तर अर्जुन ने श्रीकृष्ण और बलराम जी के शरीर एवं अन्यान्य यादवगण के भी शरीरों का अन्वेषण करके क्रमशः और्ध्वदेहिक संस्कार कराया। श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि जो प्रधान आठ रानियाँ थी, उन सभी ने भगवान् के शरीर का आलिङ्गन कर अग्नि में प्रवेश किया। हे साधुश्रेष्ठ! रेवती ने भी बलराम जी के शरीर का आलिङ्गन करके प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश किया॥१-३॥

उग्रसेनस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवानकदुन्दुभिः।
देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम्॥ ४॥

ततोऽर्ज्जुनः प्रेतकार्य्यं कृत्वा तेषां यथाविधि।
निश्चक्राम जनं सर्व्वं गृहीत्वा वज्रमेव च॥ ५॥

द्वारवत्या विनिष्क्रान्ताः कृष्णपत्न्यः सहस्त्रशः।
वज्रं जनञ्च कौन्तेयः पालयञ्छनकैर्ययौ॥ ६॥

सभा सुधर्म्मा कृष्णेन मर्त्त्यलोके समुज्झिते।
स्वर्गं जगाम मैत्रेय पारिजातश्च पादपः ॥ ७ ॥

यस्मिन् दिने हरिर्यातो दिवं सन्त्यज्य मेदिनीम्।
तस्मिन्नेवावतीर्णोऽयं कालकायो बली कलिः ॥ ८ ॥

प्लावयामास तां शून्यां द्वारकाञ्च महोदधिः।
यदुदेवगृहं त्वेकं नाप्लावयत सागरः ॥ ९ ॥

नातिक्रान्तुमलं ब्रह्मंस्तदद्यापि महोदधिः।
नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान् केशवो यतः ॥ १० ॥

तदतीव महत् पुण्यं सर्व्वपातकनाशनम्।
विष्णुक्रीड़ान्वितस्थानं दृष्ट्वा पापात् प्रमुच्यते ॥ ११ ॥

इन सारी बातों को सुनकर उग्रसेन, रोहिणी, देवकी और वसुदेव ने भी अग्नि में प्रवेश किया। तदनन्तर अर्जुन उन सबका प्रेतकार्य विधिपूर्वक सम्पन्न करके वज्र, यादवगण और अन्य कृष्णपत्नियों को लेकर द्वारका से निकल पड़े। द्वारका से निकलकर अर्जुन हज़ारों श्रीकृष्ण की पत्नियों, वज्र और यादवगण की रक्षा करते हुए धीरे धीरे चले। हे मैत्रेय! भगवान् श्रीकृष्ण के मृत्युलोक परित्याग के बाद सुधर्मा सभा और पारिजात वृक्ष स्वर्ग में चले गये। जिस दिन भगवान् श्रीहरि ने पृथिवी छोड़कर स्वर्ग को प्रस्थान किया, उसी दिन बलवान कलि पृथिवी पर आ गया। इधर समुद्र ने शून्य द्वारकापुरी को अपने जल में डुबा लिया किन्तु एकमात्र श्रीकृष्ण का निवासगृह नहीं डुबाया। हे ब्रह्मन्! समुद्र ने आज तक उस हरिमन्दिर का अतिक्रमण नहीं किया कारण उस मन्दिर में भगवान् श्रीकेशव सदा विराजमान रहते हैं। वह गृह श्रीविष्णु भगवान् का क्रीडास्थान, परम पवित्र और समस्त पापों का नाश करने वाला है। इस स्थान के दर्शन करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४-११ ॥

पार्थः पञ्चनदे देशे धनधान्यसमन्विते।
चकार वासं सर्व्वस्य जनस्य मुनिसत्तम ॥ १२ ॥

ततो लोभः समभवद्दस्यूनां निहतेश्वराः।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन धन्विना ॥ १३ ॥

ततस्ते पापकर्म्माणो लोभोपहतचेतसः ।
आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्यात्यन्तदुर्म्मदाः ॥ १४ ॥

अयमेकोऽर्ज्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम् ।
नयत्यस्मानतिक्रम्य धिग्धिगेतद्भवतां बलम् ॥ १५ ॥

हत्वा गर्व्वसमारूढ़ो भीष्म-द्रोण-जयद्रथान् ।
कर्णादींश्च न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम् ॥ १६ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! अर्जुन ने धनधान्य से परिपूर्ण पञ्चनद नामक देश में उन द्वारकावासी लोगों को निवास कराया । उस समय उन विधवा स्त्रियों को धनुषधारी अर्जन को ले जाते हुए देखकर लुटेरों के मन में लोभ उत्पन्न हुआ । तब उन अत्यन्त दुर्मद, पापकर्मा और लोभी आभीर दस्युओं ने परस्पर मिलकर विचार किया । देखो, यह धनुषधारी अर्जुन अकेला ही हम लोगों का अपमान करके इन अनाथ स्त्रियों को ले जा रहा है, हम लोगों के बल को धिक्कार है । यह अर्जुन भीष्म, द्रोण, जयद्रथ और कर्ण आदि को मारकर बहुत अभिमानी हो गया है, किन्तु हम ग्रामवासियों के बल को नहीं जानता ॥ १२-१६ ॥

हे हे यष्टीर्महायामा गृह्णीतायं सुदुर्म्मतिः ।
सर्व्वानेवावजानाति किं वो बाहुभिरुन्नतैः ॥ १७ ॥

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टहारिणः ।
सहस्रशोऽभ्यधावन्त तं जनं निहतेश्वरम् ॥ १८ ॥

ततो निवृत्य कौन्तेयः प्राहाभीरान् हसन्निव ।
निवर्त्तध्वमधर्म्मज्ञा यदि न स्थ मुमूर्षवः ॥ १९ ॥

अवज्ञाय वचस्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम् ।
स्त्रीजनञ्चैव मैत्रेय विष्वक्सेनपरिग्रहम् ॥ २० ॥

ततोऽर्ज्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं युधि ।
आरोपितुं समारेभे न शशाक स वीर्य्यवान ॥ २१ ॥

चकार सज्यं कृच्छ्राच्च तच्चाभूच्छिथिलं पुनः ।
न सस्मार तथास्त्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥ २२ ॥

शरान्मुमोच वै तेषु पार्थो वैरिष्वमर्षितः ।
त्वग्भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्वना ॥ २३ ॥

हम लोगों के हाथों में लाठी देखकर यह दुर्बुद्धि हाथ में धनुष लेकर हमारा अपमान कर रहा है, इस अवस्था में इन लम्बी लम्बी भुजाओं से क्या लाभ ? ऐसा विचार करके वे हजारों लुटेरे लाठी और ढेले लेकर उन अनाथ द्वारकानिवासियों पर दौड़ पड़े । तब अर्जुन ने उन दस्युओं को डांट कर हँसते हुए कहा—"अरे पापियों ! यदि तुम लोगों को मरने की इच्छा न हो तो अभी लौट जाओ" । हे मैत्रेय ! किन्तु उन लुटेरों ने अर्जुन के वचन का अपमान कर भगवान् श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण धन और स्त्रीयों को ले लिया अर्थात् अपने वश में कर लिया । अनन्तर महाशक्तिशाली अर्जुन ने युद्धक्षेत्र में अक्षीण उस दिव्य गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाहा, किन्तु वे ऐसा करने में समर्थ न हुए । उन्होंने किसी प्रकार बड़ी कठिनताई से उस (धनुष) पर डोरी चढ़ा भी ली तो वे शिथिल हो गये और बहुत सोचने पर भी उन्हें अपने अस्त्रों का स्मरण न हो सका । इसके बाद अर्जुन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने शत्रुओं पर बाणों वर्षा की किन्तु गाण्डीवधारी अर्जुन से छोड़े हुए उन बाणों ने केवल शत्रुकी त्वचा का ही भेदन किया ॥ १७-२३ ॥

वह्निना येऽक्षया दत्ताः शरास्तेऽपि क्षयं ययुः ।
युध्यत सह गोपालै रर्ज्जुनस्य भवक्षये ॥ २४ ॥

अचिन्तयच्च कौन्तेयः कृष्णस्यैव हि तद्बलम् ।
यन्मया शरसङ्घातैः सकला भूभुजो जिताः ॥ २५ ॥

मिषतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
आभीरैरपकृष्यन्त्यः कामाच्चान्या प्रवव्रजुः ॥ २६ ॥

और अर्जुन का बल क्षीण हो जाने पर अग्निद्वारा दिये हुए उनके अक्षय बाण भी उन अहीरों के साथ युद्ध करने में समाप्त हो गये । तब अर्जुन ने विचारा कि मैंने जो अपने बाणसमूह से अनेकों राजाओं को जीता था, वह सब श्रीकृष्ण का ही प्रभाव था । पाण्डुपुत्र अर्जुन के सामने ही उन दस्युओं ने स्त्री रत्नों को खींच कर ले लिया और कोई कोई स्त्रियां अपनी इच्छा से भी चली गयीं ॥ २४-२६ ॥

ततः शरेषु क्षीणेषु धदुष्कोट्या धनञ्जयः ।
जघान दस्यूंस्ते चास्य प्रहारान् जहसुर्मुने ॥ २७ ॥

प्रेक्षतश्चैव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः सम्मता मुनिसत्तम ॥ २८ ॥

ततः सुदुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ।
अहो भगवता तेन् मुषितोऽस्मि रुरोद ह ॥ २९ ॥

बाणों के समाप्त हो जाने पर धनञ्जय अर्जुन ने धनुष की नोंक से ही उन दस्युओं पर प्रहार आरम्भ किया, किन्तु हे मुने ! वे दस्युगण उन प्रहारों पर हंसने लगे । हे मुनिसत्तम ! अर्जुन के सामने ही वे दस्युगण वृष्णि और अंधकवंश की स्त्रियों को लेकर चल दिये । उस समय अर्जुन अत्यन्त दुःखी होकर रोते हुए कहने लगे, “हाय कैसा कष्ट है, कैसा कष्ट है ।” भगवान् ने मुझे ठग लिया ॥ २७-२९ ॥

तद्धनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः ।
सर्व्वमेकपदे नष्टं दगानमश्रोत्रिये यथा ॥ ३० ॥

अहोऽतिबलवद्दैवं विना तेन महात्मना ।
यदसामर्थ्ययुक्तेऽपि नीचवर्गे जयप्रदम् ॥ ३१ ॥

तौ बाहू स च मे मुष्टिः स्थानं तत् सोऽस्मि चार्ज्जुनः ।
पुण्येनैव विना तेन गतं सर्व्वमसारताम् ॥ ३२ ॥

ममार्ज्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृतं ध्रुवम् ।
विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं कथमन्यथा ॥ ३३ ॥

अहो ! वही धनुष है, वे ही शस्त्र हैं, वही रथ है और वे ही अश्व है किन्तु अश्रोत्रिय को दिये हुए दान के समान सब एक साथ नष्ट हो गये । दैव कैसा बलवान् है, जिसने महात्मा श्रीकृष्ण के न रहने पर असमर्थ और नीच इन म्लेच्छों को विजयश्री दिलायी । हमारे वे ही भुजायें, वही मुट्ठी, वही स्थान और मैं भी वही अर्जुन हूँ, किन्तु उन पुण्यदर्शन कृष्ण के बिना आज सभी सारहीन हो गये । निश्चय मेरा अर्जुनत्व और भीम का भीमत्व भगवान् श्रीकृष्ण की ही कृपा से था । अन्यथा उन हरि के बिना महारथियों में श्रेष्ठ अर्जुन को आज इन आभीरों ने जीत लिया ॥ ३०-३३ ॥

इत्थ वदन् ययौ जिष्णुर्मथुराख्यं पुरोत्तमम् ।
चकार तत्र राजानं वज्रं यादवनन्दनम् ॥ ३४ ॥

स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनः काननाश्रयम् ।
तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत् ॥ ३५ ॥

तं वन्दमानं चरणाववलोक्य मुनिश्चिरम् ।
उवाच पार्थ विच्छायः कथमत्यन्तमीदृशः ॥ ३६ ॥

अवीरजोऽनुगमनं ब्रह्महत्याथवा कृता ।
दृढ़ाशाभङ्गदुःखी वा भ्रष्टच्छायोऽसि साम्प्रतम् ॥ ३७ ॥

सान्तानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः ।
अगम्यस्त्रीरतिर्वा त्वं तेनासि विगतप्रभः ॥ ३८ ॥

भुक्तोऽप्रदाय विप्रेभ्य एको मिष्टमथो भवान् ।
किं वा कृष्णवित्तानि हृतानि भवतार्ज्जुन ॥ ३९ ॥

कच्चित्त्वं शूर्पवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्ज्जुन ।
दुष्टचक्षुर्हतो वापि निःश्रीकः कथमन्यथा ॥ ४० ॥

स्पृष्टो नखाम्भसा चाथ घटाम्भःप्रोक्षितोऽपि वा ।
तेनातीवासि विच्छायो न्यूनैर्वा युधि निर्ज्जितः ॥ ४१ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार कहते हुए अर्जुन मथुरानामक उत्तमपुरी में आये । वहाँ उन्होंने यदुनन्दन वज्र का राज्याभिषेक किया । अनन्तर उन्होंने वनवासी महाभाग व्यासजी को देखा और उनके समीप जाकर उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम किया । महामुनि वेदव्यास बहुत देरतक अपने चरण पर गिरे हुए अर्जुन को देखकर बोले—हे अर्जुन ! आज तुम इतने कान्तिहीन क्यों हो रहे हो ? क्या तुमने भेड़ आदि की धूलि का अनुगमन किया ? अथवा ब्रह्महत्या की है या तुम्हारी कोई सुदृढ़ आशा भङ्ग हो गयी है ? जिससे तुम इतने श्रीहीन हो रहे हो ? तुमने सन्तान की कामना से किसी विवाहार्थी का निरादर तो नहीं किया ? अथवा तुमने किसी अगम्या स्त्री के साथ रमण तो नहीं किया ? जिसके कारण तुम इस समय इतने तेजोहीन हो रहे हो । हे अर्जुन ! तुमने ब्राह्मण को बिना दिये अकेले ही मिष्ठान्न भोजन तो नहीं

किया ? या तुमने कृपण का धन तो नहीं लिया ? हे अर्जुन ! तुमने सूप की हवा का सेवन तो नहीं किया, तुम्हारी आँखों में पीड़ा तो नहीं हो रही है अथवा तुम्हें किसी ने मारा तो नहीं ? तुम इस प्रकार श्रीहीन क्यों हो रहे हो ? अथवा तुमने नखजल का स्पर्श तो नहीं किया ? तुमने घड़े से उछले हुए जल से स्नान तो नहीं किया अथवा किसी हीनबल पुरुष से तुम पराजित तो नहीं हुए ? पुनः तुम्हारी कान्ति इतनी मलिन क्यों हो रही है ॥ ३४-४१ ॥

ततः पार्थो विनिःश्वस्य श्रूयतां भगवन्निति ।
प्रोक्त्वा यथावदाचष्ट व्यासायात्मपराभवम् ॥ ४२ ॥

यद्बलं यच्च नस्तेजो यद्वीर्य्यं यत्पराक्रमः ।
या श्रीश्छाया च नः सोऽस्मान् परित्यज्य गतो हरिः ॥ ४३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनन्तर दीर्घश्वास छोड़ते हुए अर्जुन ने कहा—हे भगवन् ! आप सुनिये, ऐसा कहकर अर्जुन ने अपनी पराजय का समस्त वृतान्त व्यास जी के सामने यथावत् वर्णन कर दिया। अर्जुन बोले—भगवान् कृष्ण हमारे बल, तेज, वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति सब कुछ थे, वे हमें छोड़कर चले गये ॥ ४२-४३ ॥

इतरेणेव महता स्मितपूर्व्वाभिभाषिणा ।
हीना वयं मुने तेन जातास्तृणमया इव ॥ ४४ ॥

अस्त्राणां सायकानाञ्च गाण्डीवस्य तथा मम ।
सारता याभवन् मूलं स गतः पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥

यस्यावलोकनादस्मान् श्रीर्जयः सम्पदुन्नतिः ।
न तत्याज स गोविन्दस्त्यक्त्वास्मान् भगवान् गतः ॥ ४६ ॥

भीष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्य्योधनादयः ।
यत्प्रभावेण निर्दग्धाः स कृष्णस्त्यक्तवान् भुवम् ॥ ४७ ॥

निर्यौवन-हतश्रीका भ्रष्टच्छायेव मेदिनी ।
विभाति तात नैकोऽहं विरहे तस्य चक्रिणः ॥ ४८ ॥

यस्यानुभावाद् भीष्माद्यैर्मय्यग्नौ शलभायितम्।
विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निर्जितः ॥ ४९ ॥

गाण्डीवं त्रिषु लोकेषु ख्यातिं यदनुभावतः ।
गतं तेन विनाभीरलगुडैस्तन्निराकृतम् ॥ ५० ॥

स्त्रीसहस्त्राण्यनेकानि मन्नाथानि महामुने ।
यततो मम नीतानि दस्युभिर्लगुड़ायुधैः ॥ ५१ ॥

आनीयमानमाभीरैः कृष्ण कृष्णत्वरोधनम्।
हतं यष्टिप्रहरणैः परिभूय बलं मम ॥ ५२ ॥

हे मुने ! साधारण मित्र से भी हंसते हुए मधुर भाषण करने वाले उन हरि से परित्यक्त मैं तृण के समान हीन बन गया हूं । जो मेरे और मेरे शस्त्रबाण एवं गाण्डीव धनुष की सार्थकता के प्रति कारण थे, वही पुरुषोत्तम चले गये । जिनकी दृष्टि से श्री, जय, सम्पत्ति और उन्नति ने कभी मेरा परित्याग नहीं किया, वे ही भगवान् गोविन्द हम लोगों को छोड़कर चले गये । जिनके प्रभाव से भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि विनष्ट हुए, वही श्रीकृष्ण पृथिवी को परित्याग कर चले गये । हे तात ! उन चक्रधारी श्रीकृष्ण के विरह में मैं कान्तिहीन हुआ हूँ ऐसी बात नहीं, यह पृथिवी भी उनके अभाव में यौवनहीना, हतश्री कामिनी के समान कान्ति होना हो गयी । जिनके प्रभाव से भीष्म आदि वीरगण अग्नि में पतंग की भाँति भस्म हो गये थे, आज वही मैं श्रीकृष्ण के बिना अहीरों से पराजित हो गया । और जिनके प्रभाव से यह मेरा गाण्डीव धनुष त्रिलोकी में विख्यात हुआ, उन्हीं के बिना आज अहीरों की लाठी से मैं पराजित हो गया । हे महामुने ! रक्षक बनकर मैं भगवान् की हजारों स्त्रियों को अपने साथ ला रहा था, किन्तु दस्युगण ने लाठी से मेरे प्रयत्न को विफलकर उन स्त्रियों का हरण कर लिया । हे व्यासजी ! आज दस्युगण ने लाठी रूप शस्त्र से मेरी शक्ति को पराजितकर मेरे द्वारा लाये हुए श्रीकृष्णके परिवार का हरण कर लिया ॥ ४४-५२ ॥

निःश्रीकता न मे चित्रं यज्जीवामि तदद्भुतम्।
न चावमानपङ्काङ्की निर्लज्जोऽस्मि पितामह ॥ ५३ ॥

हे पितामह ! मेरी श्रीहीनता कोई आश्चर्य का विषय नहीं है, किन्तु मैं जो जीवित हूँ यही आश्चर्य का विषय है। नीचपुरुषों द्वारा अपमान में फंसकर मैं अभीतक जो जीवित हूँ, यही आश्चर्य का विषय है ॥ ५३ ॥

अलं ते व्रीडया पार्थ न त्वं शोचितुमर्हसि।
अवेहि सर्व्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥ ५४ ॥

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव।
कालमूलमिदं ज्ञात्वा भव स्थैर्य्यधनोऽर्ज्जुन ॥ ५५ ॥

नद्यः समुद्रा गिरयः सकला च वसुन्धरा।
देवा मनुष्याः पशवस्तरवः ससरीसृपाः ॥ ५६ ॥

सृष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम्।
कालात्मकमिदं सर्व्वं ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥ ५७ ॥

यच्चाह कृष्णमाहात्म्यं तत्तथेव धनञ्जय।
भारावतारकार्य्यार्थमवतीर्णः स मेदिनीम् ॥ ५८ ॥

भाराक्रान्ता धरा याता देवानां समितिं पुरा।
तद्भारमवतीर्णोऽसौ कालरूपी जनार्द्दनः ॥ ५९ ॥

तच्च निष्पादितं कार्य्यमशेषा भुभृतो हताः।
वृष्ण्यन्धककुलं सर्व्वं तथा पार्थोपसंहतम् ॥ ६० ॥

न किञ्चिदन्यत् कर्त्तव्यमस्य भूमितले प्रभोः।
अतो गतः स भगवान् कृतकृत्यो यथेच्छया ॥ ६१ ॥

श्रीव्यासजी बोले—हे पार्थ ! तुम लज्जित मत हो तुम्हें शोक करना भी उचित नहीं। समस्त प्राणियों के लिए काल की ऐसी ही गति जानो। हे पाण्डव ! काल ही मनुष्यों की उन्नति ओर अवनति का कारण है, अतएव हे अर्जुन ! इन सभी को जय पराजय आदि को काल के अधीन समझकर तुम स्थिरता धारण करो। नदी, समुद्र, देव, मनुष्य, पशु तथा सर्प आदि जो कुछ भी हैं वे सब काल से ही निर्मित हैं और काल क्रम से ये सब विनष्ट भी होते हैं। हे अर्जुन !

अतएव इस सभी प्रपञ्च को कालात्मक समझकर शान्त रहो। हे धनञ्जय! तुमने श्रीकृष्ण माहात्म्य का जैसा वर्णन किया, वह सब सत्य है। श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे पूर्वकाल में पृथिवी भाराक्रान्त होकर देवताओं की सभा में गयी थी। अतएव भगवान् ने उस भार को उतारने के लिए अवतार लिया था। यह कार्य सम्पन्न हो गया। अनेक राजागण मारे जा चुके। हे पार्थ! वृष्णि और अन्धक आदि समस्त यादवगण का भी उन्होंने संहार कर दिया। प्रभु वासुदेव का इस भूतल पर और कोई कार्य शेष नहीं बचा अतएव कृतकृत्य होकर भगवान् ने स्वेच्छानुसार स्वर्ग गमन किया॥ ५४-६१॥

सृष्टिं सर्गे करोत्येष देवदेवः स्थितौ स्थितिम्।
अन्तेऽन्ताय समर्थोऽयं साम्प्रतं हि यथाकृतम्॥ ६२॥

तस्मात् पार्थ न सन्तापस्त्वया कार्य्यः पराभवात्।
भवन्ति भवकालेषु पुरुषाणां पराक्रमाः॥ ६३॥

त्वयैकेन हता भीष्म-द्रोण-कर्णादयो नृपाः।
तेषामर्ज्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः॥ ६४॥

विष्णोस्तथानुभावेन यथा तेषां पराभवः।
ततस्तथैव भवतो दस्युभ्योऽन्ते तदुद्भवः॥ ६५॥

स देवोऽन्यशरीराणि समाविश्य जगत् स्थितिम्।
करोति सर्व्वभूतानां नाशं चान्ते जगत्पतिः॥ ६६॥

भवोद्भवे च कौन्तेय सहायोऽभूज्जनार्द्दनः।
भवान्ते त्वद्विपक्षास्ते केशवेनावलोकिताः॥ ६७॥

कः श्रद्दध्यात् सगाङ्गेयान् हन्यास्त्वं सर्व्वकौरवान्।
आभीरेभ्यश्च भवतः कः श्रद्दध्यात् पराभवम्॥ ६८॥

पार्थैतत् सर्व्वभूतस्य हरेर्लीलाविचेष्टितम्।
त्वया यत् कौरवा ध्वस्ता यदाभीरैर्भवान् जितः॥ ६९॥

गृहीता दस्युभिर्याश्च भवतः शोचिताः स्त्रियः ।

तदप्यह यथावृत्तं कथयामि तवार्ज्जुन ॥ ७० ॥

यह देवदेव भगवान् सृष्टिकाल में सृष्टि की रचना, स्थिति के समय पालन और विनाशकाल में विनाश करते हैं एवं इन समस्त कार्यों में वे समर्थ है । इस समय उनका जो कर्तव्य था उसी का सम्पादन उन्होंने किया । हे पार्थ ! तुम पराजित होने के कारण दुःखी न होओ क्योंकि अभ्युदयकाल आने पर पुरुषों को ऐसे काम करने होते हैं जिनसे उनकी प्रशंसा होती है । हे अर्जुन ! जब अकेले ही तुमने भीष्म, द्रोण और कर्ण आदि राजाओं के विनाश किया था, तब कालक्रम से प्राप्त हुए हीन बलवाले पुरुष से उनका क्या वह पराजय नहीं था । जैसे श्रीविष्णु भगवान् के प्रभाव से तुमने भीष्म आदि को पराजित किया था, वैसे ही आज दस्युओं ने तुम्हें पराजित किया । वही देवदेव जगत्पति भगवान् श्रीविष्णु अन्य शरीरों में प्रवेशकर जगत् की स्थिति करते हैं और अन्तकाल में वही सभी प्राणियों का विनाश भी करते हैं । हे कौन्तेय ! तुम्हारे भाग्योदय के समय जनार्दन भगवान् तुम्हारे सहायक थे और जब तुम्हारे सौभाग्य का अन्तकाल आया, तब तुम्हारे विपक्षियों पर भगवान् श्रीकेशव की कृपादृष्टि हुई । तुमने गङ्गापुत्र भीष्म को पराजित किया एवं अहीरों से तुम पराजित हुए, इस बात पर कौन विश्वास करेगा । हे पार्थ ! तुमने कौरवों को विनाश किया एवं तुमको अहीरों ने जीत लिया, यह सब सर्वभूतमय श्रीहरि की लीलाविलास मात्र है । हे अर्जुन ! दस्युओं ने जो स्त्रीयों का हरण किया और इससे तुम चिन्तित हो; मैं इसका भी यथावत् वृतान्त कहता हूँ, सुनो ॥ ६२-७० ॥

अष्टावक्रः पुरा विप्रो जलवासरतोऽभवत् ।

बहून् वर्षगणान् पार्थगृणन ब्रह्म सनातनम् ॥ ७१ ॥

जितेष्वसुरसङ्घेषु मेरुपृष्ठे महोत्सवः ।

बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्तं वरस्त्रियः ॥ ७२ ॥

रम्भातिलोत्तमाद्याश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।

तुष्टुवुस्तं महात्मानं प्रशशंसुश्च् पाण्डव ॥ ७३ ॥

आकण्ठमग्नं सलिले जटाभारधरं मुनिम् ।

विनयावनताश्चैनं प्रणेमुः स्तोत्रतत्पराः ॥ ७४ ॥

यथा यथा प्रसन्नोऽसौ तुष्टुवुस्त तथा तथा।
सर्व्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ वरिष्ठं तं द्विजन्मनाम् ॥ ७५ ॥

प्रन्नोऽहं महाभागा भवतीनां यदिष्यते।
मत्तस्तद्व्रियतां सर्व्वं प्रदास्याम्यतिदुर्लभम् ॥ ७६ ॥

रम्भातिलोत्तमाद्यास्तं वैदिक्योऽप्सरसोऽब्रुवन्।
प्रसन्ने त्वय्यपर्य्याप्तं किमस्माकमिति द्विज ॥ ७७ ॥

इतरास्त्वब्रुवन् विप्र प्रसन्नो भगवान् यदि।
तदिच्छामः पतिं प्राप्तुं विप्रन्द्र पुरुषोत्तमम् ॥ ७८ ॥

हे पार्थ ! प्राचीनकाल में अष्टावक्र नामक एक ऋषि ने सनातन ब्रह्म का विचार करते हुए अनेकों वर्ष तक जल में निवास किया। उसी समय देवताओं ने असुरों पर विजयलाभ किया और इसी विजयोपलक्ष में सुमेरुपर्वत पर एक उत्सव हुआ। हे पाण्डुनन्दन ! उस उत्सव में जाती हुई रम्भा, तिलोत्तमा, आदि सैकड़ों हजारों अप्सराएं रास्ते में उन महात्मा ऋषि का दर्शनकर उनकी स्तुति करने लगी। स्तुति में तत्पर और विनम्र अप्सरागण ने कण्ठपर्यन्त जल में मग्न एवं जटाभारधारी मुनि को प्रणाम करने लगीं। हे कौरवश्रेष्ठ ! ब्राह्मणों में श्रेष्ठ अष्टावक्रमुनि जिस प्रकार प्रसन्न हों उन स्त्रियों ने उसी प्रकार उनकी स्तुति की। अष्टावक्रजी बोले—हे महाभाग्य स्त्रीगण ! मैं तुम लोगों पर प्रसन्न हूँ, तुम लोग इच्छानुसार वर मांग लो; यदि तुम लोगों का वर अतिदुर्लभ भी हो तो उसे मैं दे सकूंगा। अनन्तर रम्भा, तिलोत्तमा आदि स्त्रियाँ बोली—हे द्विज ! 'आपके प्रसन्न होने पर हम लोगों के लिए अप्राप्य क्या है' ? अन्य अप्सरायें बोलीं—हे विप्र ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हम लोगों को यही वर दें कि 'हम लोगों के पति भगवान् पुरुषोत्तम हों' ॥ ७१-७८ ॥

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा उत्ततार जलान्मुनिः।
ददृशुस्तास्तमुत्तीर्णं विरूपं वक्रमष्टधा ॥ ७९ ॥

तं दृष्ट्वा गूहमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत्।
ताः शशाप मुनः कोपमवाप्य कुरुनन्दन ॥ ८० ॥

यस्माद् विरूपरूपं मां ज्ञात्वा हासावमानना।
भवतीभिः कृता तस्मादेष शापं ददामि वः ॥ ८१ ॥

मत्प्रसादेन भर्त्तारं लब्ध्वा तं पुरुषोत्तमम्।
मच्छापोपहताः सर्व्वा दस्युहस्तं गमिष्यथ ॥ ८२ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य मुनिस्ताभिः प्रसादितः।
पुनः सुरेन्द्रलोकं वै प्राह भूयो गमिष्यथ। ८३ ॥

एवं तस्य मुनेः शापादष्टावक्रस्य केशवम्।
भर्त्तारं प्राप्य ता दस्युहस्तं याता वराङ्गनाः ॥ ८४ ॥

तत्त्वया नात्र कर्त्तव्यः शोकोऽल्पोऽपि हि पाण्डव।
तेनैवाखिलनाथेन सर्व्वं तदुपसंहृतम् ॥ ८५ ॥

भवतां चोपसंहारमासन्नं तेन कुर्व्वता।
बलं तेजस्तथा वीर्य्यं माहात्म्यं चोपसंहृतम् ॥ ८६ ॥

जातस्य नियतो मृत्युः पतनञ्च तथोन्नतेः।
विप्रयोगावसानश्च संयोगः सञ्चयात् क्षयः ॥ ८७ ॥

विज्ञाय न बुधाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये।
तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः ॥ ८८ ॥

तस्मात्त्वया नरश्रेष्ठ ज्ञात्वैतद् भ्रातृभिः सह।
परित्यज्याखिलं तन्त्रं गन्तव्यं तपसे वनम् ॥ ८९ ॥

तद् गच्छ धर्म्मराजाय निवेद्यैतद्वचो मम।
परश्वो भ्रातृभिः सार्द्धं यथा यासि तथा कुरु ॥ ९० ॥

व्यास जी बोली—'ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर अष्टावक्र मुनि जल से बाहर निकले। उनके बाहर निकलते समय अप्सराओं ने आठ स्थानों में टेढ़े उनके कुरूप शरीर को देखा। हे कुरुनन्दन ! उनको देखकर जिन अप्सराओं की हँसी छिपाने पर भी प्रगट हो गयी, मुनि ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया। मुझे कुरूप

देखकर तुम लोगों ने हँसते हुए मेरा अपमान किया है, अतएव मैं तुम्हें यह शाप दे रहा हूँ कि मेरी कृपा से श्रीपुरुषोत्तम को पतिरूप में पाकर भी मेरे शाप से लुटेरों के हाथ में पड़ोगी। व्यास जी बोले—मुनि के यह वचन सुनकर अप्सराओं ने पुनः मुनि को प्रसन्न किया। फिर मुनिश्रेष्ठ प्रसन्न होकर बोले—उसके बाद तुम लोग पुनः स्वर्ग में चली जाओगी। अष्टावक्र मुनि के शाप से वे वराङ्गनाएं श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्तकर पुनः दस्युओं के हाथ में गयीं। हे पाण्डव ! इसी कारण से इस विषय में तुम स्वल्प चिन्ता भी न करो। उन जगन्नाथ ने स्वयं ही अपने कुल का संहार किया। तुम लोगों के भी शीघ्र ही विनाश करने के लिए उन सर्वेश्वर ने तुम्हारे बल, तेज, वीर्य और माहात्म्य को लोप कर दिया। जन्म लिये हुए प्राणी की मृत्यु निश्चित है, उन्नति का पतन अवश्य होता है, संयोग का अन्त वियोग ही है और सञ्चय एकत्र किये हुए धन का क्षय (व्यय) भी अवश्यम्भावी है—ऐसा विचारकर जो बुद्धिमान् पुरुष लाभ अथवा हानि में हर्ष या शोक नहीं करते और उन्हीं के आचरण का अवलम्बन करके अन्य लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। इसलिए हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम भी इस विषय को समझकर अपने भाईयों के साथ समस्त राज्य का परित्याग कर तपस्या करने के लिए वन में चले जाओ। अब तुम जाओ और धर्मराज युधिष्ठिर को मेरी ये सारी बातें कहना। जिस प्रकार भाईयों के साथ परसों वन में चले जाओ वैसा ही यत्न करना ॥ ७९-९० ॥

पराशर उवाच।

इत्युक्तोऽभ्येत्य पार्थाभ्यां यमाभ्याञ्च तथार्ज्जुनः।
दृष्टं चैवानुभूतञ्च कथितं तेष्वशेषतः ॥ ९१ ॥

व्यासवाक्यञ्च ते सर्व्वे श्रुत्वार्ज्जुनसमीरितम्।
राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसुता वनम् ॥ ९२ ॥

श्रीपराशरजी बोले—श्रीव्यासजी द्वारा ऐसा कहे जाने पर अर्जुन ने हस्तिनापुर में आकर युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को स्वयं ही सादा वृत्तान्त जैसा देखा था सुना था, वैसा यथावत् कह दिया। उन समस्त पाण्डुपुत्रों ने अर्जुन से व्यास जी का सन्देश सुनकर राज्यपद पर परीक्षित का अभिषेक किया और स्वयं वन को चले गये ॥ ९१-९२ ॥

इत्येतत् तव मैत्रेय विस्तरेण मयोदितम्।
जातस्य यद्यदोर्वंशे वासुदेवस्य चेष्टितम्॥ ९३॥

हे मैत्रेय ! भगवान् वासुदेव ने यदुवंश में जन्म लेकर जो जो लीलायें कीं, वह सब वृत्तान्त मैंने तुमको विस्तार से सुना दिया।

श्रीविष्णुपुराण के पञ्चम अंश में अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।

श्रीविष्णु महापुराण

षष्ठ अंश - पहला अध्याय

(कलिधर्म निरूपण)

मैत्रेय उवाच ।

व्याख्याता भवता सर्ग-वंश-मन्वन्तरस्थितिः ।
वंशानुचरितञ्चैव विस्तरेण महामुने ॥ १ ॥

श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् ।
महाप्रलयसंस्थानां कल्पान्ते च महामुने ॥ २ ॥

श्रीमैत्रेय जी बोले—हे महामुने ! आपने सृष्टि, वंश और मन्वन्तरों की स्थिति एवं वंशानुचरित विस्तारपूर्वक मुझे कहा । अब मैं प्रलयकाल में जिस प्रकार प्राणियों का उपसंहार होता है, वह और महाप्रलय का स्वरूप आपसे सुनने की इच्छा करता हूँ ॥ १-२ ॥

पराशर उवाच ।

मैत्रेय श्रुयतां मत्तो यथावदुपसंहृतिः ।
कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलयो जायते यथा ॥ ३ ॥

अहोरात्रं पितणान्तु मासोऽब्दस्त्रिदिवौकसाम्
चतुर्युगसहस्त्र तु ब्रह्मणो द्वे द्विजोत्तम ॥ ४ ॥

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चैव चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्वर्षसहस्त्रैस्तु तद् द्वादशभिरुच्यते ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! कल्पान्त के समय एवं प्राकृतिक प्रलय में जिस प्रकार प्राणियों का उपसंहार होता है, वह और प्रलय के स्वरूप का श्रवण करो । हे द्विजश्रेष्ठ ! मनुष्यों का एक मास पितरों का एक दिनरात, तथा मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एक दिनरात और उनका दो सहस्र चतुर्युग ब्रह्माजी के एक दिनरात होते हैं । सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग होते हैं, इन सबका काल मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष होते हैं ॥ ३-५ ॥

चतुर्युगाण्यशेषाणि सदृशानि स्वरूपतः ।
आद्यं कृतयुगं मुक्त्वा मैत्रेयान्ते तथा कलिम् ॥ ६ ॥

आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यतः
क्रियते चोपसंहारस्तथान्ते च कलौ युगे ॥ ७ ॥

हे मैत्रेय ! प्रत्येक मन्वन्तर के आदि, कृतयुग और अन्तिम कलि को छोड़कर अन्य समस्त चतुर्युग का स्वरूप एक प्रकार का है । जिस प्रकार आदि सत्ययुग में ब्रह्मा जी जगत् का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार अन्तिम कलियुग में समस्त सृष्टि का विनाश करते हैं ॥ ६-७ ॥

मैत्रेय उवाच ।

कलेः स्वरूपं भगवन् विस्तराद् वक्तुमर्हसि ।
धर्म्मश्चतुष्पाद्भगवन यस्मिन विप्लवमृच्छति ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेय बोले—हे भगवन् ! जिस कलियुग में चार चरणों वाला धर्म विलुप्त हो जायगा, उसका स्वरूप विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥

पराशर उवाच ।

कलेः स्वरूपं मैत्रेय यद्भवान् प्रष्टुमिच्छति ।
तन्निबोध समासन्नं वर्त्तते यन्महामुने ॥ ९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! हे महामुने ! जिस कलि का स्वरूप वर्णन आप सुनना चाहते हैं, उसे आप संक्षेप से श्रवण कीजिये ॥ ९ ॥

वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम् ।
न साम-ऋग्-यजुर्व्वेदविनिष्पादनहेतुका ॥ १० ॥

विवाहा न कलौ धर्म्या न शिष्य-गुरुसंस्थितिः ।
न दाम्पत्यक्रमो नैव वह्निदैवात्मकः क्रमः ॥ ११ ॥

यत्र तत्र कुले जातो बली सर्व्वेस्वरः कलौ ।
सर्व्वेभ्य एव वर्णेभ्यो योग्यः कन्यावरोधने ॥ १२ ॥

कलिकाल में मनुष्यों की प्रवृत्ति, वर्ण और आश्रम के अनुकूल नहीं रहती एवं इस प्रकार की प्रवृत्ति से साम, ऋक और यजुर्वेद विहित कर्म भी सम्पादित नहीं होते । कलियुग में धर्मानुसार विवाह नहीं होगा, गुरु और शिष्य का सम्बन्ध समाप्त हो जायेगा, स्वामी एवं स्त्री का सम्बन्ध विच्छिन्न होगा, तथा हवन एवं देवपूजन भी नष्ट हो जायेगा । जिस किसी भी कुल में उत्पन्न बलवान् पुरुष सबका अधीश्वर होगा और सभी जातियों में उत्पन्न कन्याओं के साथ विवाह करेगा ॥ १०-१२ ॥

येन केनैव योगेन द्विजातिर्दीक्षितः कलौ ।
यैव सैव च मैत्रेय प्रायश्चित्तक्रिया कलौ ॥ १३ ॥

सर्व्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विज ।
देवताश्च कलौ सर्व्वाः सर्व्वः सर्व्वस्य चाश्रमः ॥ १४ ॥

उपवासस्तथायासो वित्तोत्सर्गस्तथा कलौ ।
धर्म्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठितः ॥ १५ ॥
वित्तेन भविता पुंसां स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ ।
स्त्रीणां रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति ॥ १६ ॥

सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चापि क्षयं गते
कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलङ्कृताः ॥ १७ ॥

हे मैत्रेय ! कलि में ब्राह्मणवर्ग जिसकिसी निन्दित उपाय से भी दीक्षित कहकर अपने को प्रचारित करेंगे । एवं पापात्मा लोग केवल लोगों को सन्तुष्ट करने के लिए जिस किसी भाव से प्रायश्चित्त का अनुष्ठान करेंगे । हे मैत्रेय ! जिसके मुख से जो वचन निकल जायेगा उन सबको वह शास्त्र कहकर प्रकाशित करेगा और इच्छानुसार सभी लोग सभी देवताओं की उपासना करेंगे एवं सभी के लिए सभी आश्रम भी होंगे । उपवास ही क्लेशसाध्य व्रत होगा और जिनकी जैसी शक्ति

होगी उसी के अनुसार धनदान, तप आदि धर्मानुष्ठान करेंगे। कलि में थोड़े धन पाकर भी मनुष्य बहुत गर्व करेंगे और स्त्रियाँ अपने केशों से ही अपने को सुन्दरी मानेगी। उस समय स्त्रियां सुवर्ण, मणि, रत्न और वस्त्र आदि से हीन होकर केवल केश की सजावट से ही अपने को विभूषित करेंगी ॥ १३-१७ ॥

परित्यक्षन्ति भर्त्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः ।
भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥ १८ ॥

कलि में स्त्रियाँ धनहीन पति का परित्याग करेंगी और धनवान् व्यक्ति ही स्त्रियों का पति होगा ॥ १८ ॥

यो यो ददाति बहुलं स स स्वामी तदा नृणाम् ।
स्वामित्वहेतुः सम्बन्धो भावी नाभिजनस्तदा ॥ १९ ॥

मनुष्यों में भी जो जिसको अधिक धन देगा वही व्यक्ति उसका स्वामी होगा स्वामित्व का कारण सम्बन्ध नहीं होगा, और सत्कुलोत्पन्न शिष्टपुरुष भी स्वामी नहीं हो सकेगा ॥ १९ ॥

गृहान्ता द्रव्यसङ्घाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः ।
अर्थाश्चात्मोपभोगान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २० ॥

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः ।
अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषाश्च स्पृहालवः ॥ २१ ॥

अभ्यर्थितोऽपि सुहृदा स्वार्थहानिं न मानवः ।
पणार्द्धार्द्धार्द्धमात्रेऽपि करिष्यति तदा द्विज ॥ २२ ॥

समानं पौरुषञ्चेतो भावि विप्रेषु वै कलौ ।
क्षीरप्रदानसम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम् ॥ २३ ॥

कलियुग में मनुष्य दानधर्मादि नहीं करके समस्त द्रव्य समूह घर बनाने में ही व्यय करेंगे। बुद्धि आत्मज्ञान में न लगाकर धन सञ्चय में ही लगायेंगे और सारी सम्पत्ति अतिथिसत्कारादि में न लगाकर अपने उपभोग में ही समाप्त करेंगे। कलि में स्त्रियाँ सुन्दर पुरुष की कामनावाली और स्वेच्छाचारिणी होंगी, तथा पुरुषवर्ग अन्याय से प्राप्त धन के इच्छुक होंगे। हे द्विज ! कलियुग में अपने मित्रों से प्रार्थना

किये जाने पर भी मनुष्य एक एक दमड़ी के लिए भी अपनी स्वार्थहानी नहीं करेंगे । कलियुग में ब्राह्मणों के साथ शूद्र आदि समानता का दावा करेंगे और दूध देने के कारण ही गायों का सम्मान रहेगा ॥ २०-२३ ॥

अनावृष्टिभयप्रायाः प्रजाः क्षुद्भयकातराः ।
भविष्यन्ति तदा सर्व्वा गगनासक्तदृष्टयः ॥ २४ ॥

कन्दपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवाः ।
आत्मानं पातयिष्यन्ति तदा वृष्ट्यादिदुःखिताः ॥ २५ ॥

दुर्भिक्षमेव सततं तदा क्लेशमनीश्वराः ।
प्राप्स्यन्ति व्याहतसुखप्रमोदा मानवाः कलौ ॥ २६ ॥

अस्नानभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम् ।
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पित्र्योदकक्रियाम् ॥ २७ ॥

उस समय समस्त प्रजागण भूख से व्याकुल होकर अनावृष्टि भय से प्रायः आकाश में ही अपनी दृष्टि लगाये रहेगी । मनुष्य अन्नाभाव के कारण तपस्वियों के समान कन्द, मूल, फल आदि के सहारे जीवित रहेंगे और अनावृष्टि से दुःखी होकर आत्महत्या भी करेंगे । उस समय असमर्थ लोग सुख और आनन्द के नष्ट हो जाने से सदा दुर्भिक्ष और क्लेश ही भोगेंगे । कलि में मनुष्य बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे, अग्नि, देवता एवं अतिथि की पूजा भी नहीं करेंगे तथा पिण्डोदकक्रिया भी न करेंगे ॥ २४-२७ ॥

लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च वह्वन्नादनतत्पराः ।
बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥ २८ ॥

उभाभ्यामेव पाणिभ्यां शिरः कण्डूयनं स्त्रियः ।
कुर्व्वन्त्यो गुरुभर्त्तृणामाज्ञां भेत्स्यन्त्यनादृताः ॥ २९ ॥

स्वपोषणपराः क्षुद्रा देहसंस्कारवर्ज्जिताः ।
परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥ ३० ॥

दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्व्वन्त्यः सततं स्पृहाम् ।
असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः ॥ ३१ ॥

वेदादानं करिष्यन्ति वटवश्च तदाव्रताः ।
गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि ।। ३२ ।।

वनवासा भविष्यन्ति ग्राम्याहारपरिग्रहाः ।
भिक्षवश्चापि मित्रादिस्नेहसम्बन्धयन्त्रिताः । ३३ ।।

अरक्षितारो हर्त्तारः शुल्कव्याजेन पार्थिवाः ।
हारिणो जनवित्तानां संप्राप्ते तु कलौ युगे ।। ३४ ।।

यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति ।
यश्च यश्चाबलः सर्व्वः स स भृत्यः कलौ युगे ।। ३५ ।।

स्त्रियाँ अत्यन्त विषयलोलुप होंगी सभी का शरीर छोटा हो जायगा किन्तु भोजन अधिक करेंगी और अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली एवं भाग्यहीना होंगी। वे स्त्रियाँ दोनों हाथों से मस्तक खुजलाती हुई गुरुजन और अपने पति की आज्ञा की अवहेलना करेंगी। कलियुग में स्त्रियाँ क्षुद्राशया होकर अपने देहपोषण में ही तत्पर रहेंगी और शरीर के विशेष संस्कार न करके कठोर एवं मिथ्या वचन बोलेगी। कुलस्त्रियाँ दुःशीला हो जायेगी, सदा दुःशील पुरुषों की अभिलाषा करेंगी एवं निरन्तर निन्दित आचरण में लगी रहेंगी। आचारहीन ब्राह्मणबालक ब्रह्मचारी के समान वेश धारण करके वेद का अध्ययन करेंगे, गृहस्थगण हवनादि का परित्यागकर उचित दान भी नहीं देंगे। वनवासी भिक्षुगण अपने आहार कन्दमूल का परित्याग कर ग्राम्य आहार ग्रहण करेंगे और मित्रादि के प्रेमबन्धन में बन्धे रहेंगे। कलियुग आने पर राजागण प्रजाओं का पालन नहीं करेंगे। कर लेने के छल से बलपूर्वक प्रजाओं का धन हरण करेंगे। कलि में जिस जिसके पास घोड़े, हाथी तथा रथ होंगे वही राजा होगा और जो बलहीन होगा वही दास समझा जायेगा ।। २८-३५ ।।

वैश्याः कृषिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्म्म यत्
शूद्रवृत्त्या प्रवत्स्यन्ति कारुकर्म्मोपजीविनः ।। ३६ ।।

भैक्ष्यव्रतास्तथा शूद्रा प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः ।
पाषण्डसंश्रयाः वृत्तिमाश्रयिष्यन्त्यसंस्कृताः ।। ३७ ।।

वैश्यगण कृषि वाणिज्य आदि अपनी वृत्ति को परित्याग करके शूद्रवृत्ति और शिल्पकर्म आदि द्वारा जीवन निर्वाह करेंगे। अधम शूद्रगण संन्यासाश्रम के चिन्ह धारण करके भिक्षावृत्ति में तत्पर रहेंगे। द्विजातिगण संस्काररहित होकर पाषण्डवृत्ति का अवलम्बन करेंगे अथवा लोगों से सम्मानित होकर शूद्रगण पाषण्डवृत्ति का अवलम्बन करेंगे ॥ ३६-३७ ॥

दुर्भिक्षकरपीड़ाभिरतीवोपहता जनाः।
गवेधुककदन्नाद्यान् देशान् यास्यन्ति दुःखिताः ॥ ३८ ॥

वेदमार्गे प्रलीने च पाषण्डाढ्ये ततो जने।
अधर्म्मवृद्ध्या लोकानां स्वल्पमायुर्भविष्यति ॥ ३९ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः।
नरेषु नृपदोषेण बालमृत्युर्भविष्यति ॥ ४० ॥

भवित्री योषितां सूतिः पञ्चषट्सप्तवार्षिकी।
नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ॥ ४१ ॥

उस समय लोग दुर्भिक्ष, राजकर एवं व्याधि से अत्यन्त पीड़ित होकर गवेधुक, कदन्नादि से युक्त देशों में आश्रय लेंगे। कहीं कहीं जौ और गेहूं के आधिक्यवाले देशों में चले जायेंगे'। इसके बाद वेदमार्ग का लोप और लोगों में पाषण्ड की वृद्धि एवं अधर्म की प्रचुरता होने पर प्रजागण की आयु अल्प हो जायगी। लोगों के शास्त्रविरुद्ध घोर तपस्या करने से एवं राजा के दोष से प्रजागण बाल्यावस्था में ही मरने लगेगी। कलिकाल में आठ, नौ या दस वर्षों के पुरुष के साथ सहवास से पाँच, छः सात वर्ष की बालिका भी सन्तान उत्पन्न करेंगी ॥ ३८-४१ ॥

पलितोद्भवश्च भविता तदा द्वादशवार्षिकः।
नातिजीवति वै कश्चित् कलौ वर्षाणि विंशतिम ॥ ४२ ॥

अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ।
यतस्ततो विनङ्क्ष्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः ॥ ४३ ॥

यदा यदा हि पाषण्डवृद्धिर्मैत्रेय लक्ष्यते ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥ ४४ ॥

यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् ।

प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्म्मभृतां नृणाम् ।

तदानुमेयं प्राधान्यं कलेर्मैत्रेय पण्डितैः ॥ ४५ ॥

यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः ।
इज्यते पुरुषैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेयं कलेर्बलम् ॥ ४६ ॥

न प्रीतिर्वेदवादेषु पाषण्डेषु यदा रतिः ।
कलेर्वृद्धिस्तदा प्राज्ञैरनुमेया विचक्षणैः ॥ ४७ ॥

बारह वर्ष की अवस्था में ही लोगों के बाल पकने लगेंगे और बीस वर्ष से अधिक कोई भी जीवित नहीं रहेगा । कलियुग में लोग मन्दबुद्धि, व्यर्थचिन्ह धारण करने वाले और दुष्ट चित्तवाले होंगे, अतएव वे थोड़े ही समय में विनष्ट हो जायेंगे । हे मैत्रेय ! जिस समय पाषण्डी लोगों की अधिक वृद्धि देखी जाय उस समय विज्ञजन कलिवृद्धि का अनुमान करें । हे मैत्रेय ! जब धर्मात्मा पुरुषों द्वारा आरम्भ किये गये कार्य पूर्ण न हों तब पण्डित जन कलियुग की प्रधानता का अनुमान करें । जिस समय लोग यज्ञों के अधीश्वर भगवान् पुरुषोत्तम का यज्ञों के द्वारा यजन नहीं करेंगे, उस समय कलि अत्यन्त बलवान् हुआ है—ऐसा समझना चाहिए । जिस समय मनुष्यों में वेद में प्रेम का अभाव हो तथा पाषाण्ड में प्रेम हो तब प्राज्ञ पण्डितजन कलियुग की वृद्धि जाने ॥ ४२-४७ ॥

कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्व्वस्त्रष्टारमीश्वरम् ।
नार्च्चयिष्यन्ति मैत्रेय पाषाण्डोपहता नराः ॥ ४८ ॥

हे मैत्रेय ! कलियुग में लोग पाषण्ड के वशीभूत हो जाने से समस्त प्राणियों के स्रष्टा जगतपति श्रीविष्णु की पूजा नहीं करेंगे ॥ ४८ ॥

किं वेदैः किं द्विजैर्देवैः किं शौचेनाम्बुजन्मना ।
इत्येवं विप्र वक्ष्यन्ति पाषण्डोपहता नराः ॥ ४९ ॥

स्वल्पाम्बुवृष्टिः पर्ज्जन्यः शस्यं स्वप्लफल तथा
फलं तथाल्पसारञ्च विप्र प्राप्ते कलौ युगे ॥ ५० ॥

शाणीप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः ।
शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ ५१ ॥

अणुप्रायाणि धान्यानि अजाप्रायं तथा पयः ।
भविष्यति कलौ प्राप्ते उषीरञ्चानुलेपनम् ॥ ५२ ॥

श्वश्रू श्वशुरभूयिष्ठा गुरवश्च नृणां कलौ ।
श्यालाद्या हारिभार्य्याश्च सुहृदो मुनिसूत्तम ॥ ५३ ॥

कस्य माता पिता कस्य यदा कर्म्मानुगः पुमान् ।
इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः ॥ ५४ ॥

वाङ्मनःकायिकैर्दोषैरभिभूताः पुनः पुनः ।
नराः पापान्यनुदिनं करिष्यन्त्यल्पमेधसः ॥ ५५ ॥

निःसत्त्वानामशौचानां निःश्रीकाणां तथा नृणाम् ।
यद्यद् दुःखाय तत् सर्व्वं कलिकाले भविष्यति ॥ ५६ ॥

हे विप्र ! उस समय पाषण्ड के उपदेश से मुग्ध होकर लोग कहेंगे—इन देव, ब्राह्मण, वेद और जल से होने वाली पवित्रता में क्या रक्खा है ? हे विप्र ! कलि के आगमन होने पर मेघ थोड़े जल वर्षा करने वाले होंगे, खेती थोड़ी उपजवाली होगी और फल आदि अल्प तत्ववाले होंगे । कलियुग में प्रायः सनके बने हुए वस्त्र होंगे और अधिक मात्रा में शमी के ही वृक्ष होंगे एवं चारों वर्ण प्रायः शूद्र के समान हो जायेंगे । कलि के आने पर धान्य अत्यन्त छोटे हो जायेंगे, प्रायः बकरियों का ही दूध मिलेगा और उशीर (खस) ही एकमात्र अनुलेपन रह जायेगा । हे मुनिश्रेष्ठ ! कलियुग में सास और ससुर ही लोगों के प्रधान गुरुजन होंगे और मनोहारिणी भार्या एवं साले ही प्रधान बन्धु होंगे । मनुष्यगण ससुर के अनुगामी होकर कहेंगे कि 'कौन किसकी माता और कौन किसका पिता है, अपने कर्म के अनुसार सब लोग जन्म लेते और मरते हैं' । उस समय अल्पबुद्धि मानव वाणी, मन और शरीर आदि के दोषों के वशीभूत होकर प्रतिदिन पापकर्म ही करेंगे । तेजोहीन, अशुचि और

श्रीहीन पुरुषों को जो जो दुःख हो सकते हैं, वे सभी दुःख कलियुग में उपस्थित होगें ॥ ४९-५६ ॥

निःस्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते ।
तथा प्रविरलो विप्र क्वचिल्लोको निवत्स्यति ॥ ५७ ॥

तत्राल्पेनैव यत्नेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम् ।
करोति यं कृतयुगे क्रियते तपसा हि सः ॥ ५८ ॥

हे द्विज ! स्वाध्याय और वषट्कार से हीन और स्वाहा स्वधा से रहित कलियुग में कहीं कहीं कुछ स्वल्प धर्म रह जायगा। किन्तु कलियुग में ये समस्त दोष होने पर भी एक प्रधान गुण भी है सत्ययुग में कठोर तपस्या से जो धर्म अर्जित होता है, वही धर्म कलि में अल्प परिश्रम करने से ही मनुष्य पा सकता है ॥ ५७-५८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के षष्ठ अंश में पहला अध्याय समाप्त।

षष्ठ अंश - दूसरा अध्याय

(कलियुग, शूद्र और स्त्रियों का महत्व-वर्णन)

व्यासश्चाह महाबुद्धिर्यदत्रैव हि वस्तुनि ।
तच्छ्रूयतां महाभाग गदतो मम तत्त्वतः ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! महामति व्यासजी ने जो समस्त तत्व कहा है वह मैं यथावत् कहता हूँ, आप श्रवण करें ॥ १ ॥

कस्मिन् कालेऽल्पको धर्म्मो ददाति सुमहत् फलम् ।
मुनीनामित्यभूद् वादः कैश्चासौ क्रियते सुखम् ॥ २ ॥

किसी समय मुनिगण का परस्पर वार्तालाप हुआ कि किस काल में किया गया थोड़ा भी धर्म महान् फल प्रदान करता है । इस विषय को लेकर एक विवाद उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

सन्देहनिर्णयार्थाय वेदव्यासं महामुनिम् ।
ययुस्ते संशयं प्रष्टुं मैत्रेय मुनिपुङ्गवाः ॥ ३ ॥

ददृशुस्ते मुनिं तत्र जाह्नवीसलिले द्विजाः ।
वेदव्यासं महाभागमर्द्धस्नातं महामतिम् ॥ ४ ॥

स्नानावसानं तत्तस्य प्रतीक्षन्तो महर्षयः ।
तस्थुस्तटे महानद्यास्तरुषण्डमुपाश्रिताः ॥ ५ ॥

मग्नोऽथ जाह्नवीतोयादुत्थायाह सुतो मम ।
कलिः साधुः कलिः साधुरित्येवं श्रृण्वतां वचः ॥ ६ ॥

तेषां मुनीनां भूयश्च ममज्ज स नदीजले।
उत्थाय साधु साध्विति शूद्र धन्योऽसि चाब्रवीत्॥ ७॥

स निमग्नः समुत्थाय पुनः प्राह महामुनिः।
योषितः साधुधन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्ति कः॥ ८॥

ततः स्नात्वा यथान्यायमायान्तं कृतसतक्रियम्।
उपतस्थुर्महाभागं मुनयस्ते सुतं मम॥ ९॥

कृतसंवन्दनांश्चाह कृतासनपरिग्रहान्।
किमर्थमागता यूयमिति सत्यवतीसुतः॥ १०॥

हे मुनिश्रेष्ठ मैत्रेय! वे समस्त श्रेष्ठ मुनिगण इस सन्देह का निर्णय करने के लिए महामुनि व्यास जी के समीप पहुंचे। हे द्विज! वहाँ पहुंचकर उन मुनियों ने मेरे पुत्र व्यास को श्रीगङ्गाजी में आधा स्नान किये हुए देखा। अतएव वे समस्त मुनिगण व्यासजी के स्नान समाप्ति की प्रतीक्षा में उस महानदी के तटपर स्थित एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। मेरे पुत्र व्यास ने स्नान के बीच में ही गङ्गाजल से ऊपर निकलकर मुनियों को सुनाकर 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, कलियुग ही श्रेष्ठ है'—ऐसा कहा। पुनः नदीजल में डुबकी लगाने के बाद निकलकर व्यास जी मुनियों के सुनाते हुए—हे शूद्र! तुम ही धन्य हो, तुम ही श्रेष्ठ हो—ऐसा वचन बोले। अनन्तर पुनः स्नानकर निकलते हुए व्यासजी ने बोला—हे स्त्रीगण! तुम ही श्रेष्ठ हो, तुम ही धन्य हो, तुमसे अधिक धन्य इस जगत में कौन है? ऐसा कहा। तदनन्तर यथाविधि स्नानकर नित्यक्रिया समाप्ति के बाद व्यासजी के आश्रम में आने के बाद मुनिगण उनके समीप पहुंचे। यथाविधि अभिवादन के पश्चात् आसनों पर बैठने के बाद सत्यवतीपुत्र व्यासजी ने उन मुनियों से पूछा—'आप लोग किस कारण से यहाँ आये हैं?'॥ ४-१०॥

तमूचुः संशयं प्रष्टुं भवन्तं वयमागताः।
अलं तेनास्तु तावन्नः कथ्यतामपरं त्वया॥ ११॥

कलिः साध्विति यत् प्रोक्तं शूद्रः साध्विति योषितः।
यदाह भगवान् साधु धन्याश्चेति पुनः पुनः॥ १२॥

तत् सर्व्वं श्रोतुमिच्छामो न चेद् गुह्यं महामुने।
तत् कथ्यतां ततो हृतस्थं प्रक्ष्यामस्त्वां प्रयोजनम्॥ १३॥

मुनियों ने कहा—हे महाभाग ! हम लोगों को किसी विषय में सन्देह उपस्थित हुआ है, उसी के निर्णय के लिए आप के समीप आये थे। वह तो इस समय रहे, आप अन्य विषय ही हम लोगों से कहे। आपने स्नान करते समय कलियुग श्रेष्ठ है, शूद्र श्रेष्ठ है, स्त्रीगण श्रेष्ठ हैं, धन्य है—ऐसा कहा। यह सब विषय हम लोग सुनना चाहते हैं। हे महामुने ! यह विषय यदि गोपनीय नहीं हो तो प्रकाशित कीजिये। अपना सन्देह हम बाद में कहेंगे॥ ११-१३॥

इत्युक्तो मुनिभिर्व्यासः प्रहस्येदमथाब्रवीत्।
श्रूयता भो मुनिश्रेष्ठा यदुक्तं साधु साध्विति॥ १४॥

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन यत्।
द्वापरे यच्च मासेन अहोरात्रेण तत् कलौ॥ १५॥

तपसो ब्रह्मचर्य्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साध्विति भाषितम्॥ १६॥

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्च्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्त्य केशवम्॥ १७॥

धर्म्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरूषः कलौ।
अल्पायासेन धर्म्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलेः॥ १८॥

व्रतचर्य्यापरेर्ग्राह्यो वेदः पूर्व्वं द्विजातिभिः।
ततः स्वधर्म्मसम्प्राप्तैर्यष्टव्यं विधिनाध्वरैः॥ १९॥

वृथा कथा वृथाभोज्यं वृथेज्या च द्विजन्मनाम्।
पतनाय तथा भाव्यं तैस्त्वसंयमिभिः सदा॥ २०॥

मुनिगण द्वारा महर्षि वेदव्यास से ऐसी जिज्ञासा करने पर व्यासजी ने हँसकर कहा—मैंने जो इनको साधु साधु कहा था उसका कारण सुनिये। हे ब्राह्मणो ! सत्ययुग में दसवर्षतक तपस्या, ब्रह्मचर्य, जप आदि करने से जो फल प्राप्त होता हैं,

वह त्रेता में एक वर्ष, द्वापर में एक मास और कलियुग में एक दिन में ही प्राप्त होता है। अतएव मैंने कलियुग को श्रेष्ठ कहा। सत्ययुग में बहु क्लेशसाध्य ध्यान, योग करके, त्रेता में अनेक प्रकार के यज्ञादि के अनुष्ठान करके एवं द्वापर में बहुत अर्चनादिद्वारा जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुग में केवल केशव के कीर्तन करने से प्राप्त होता है। हे धर्मज्ञगण! कलियुग में अल्प परिश्रम से ही पुरुष महान् धर्म प्राप्त करता है। अतएव मैं कलियुग के ऊपर अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। द्विजातियों को सर्वप्रथम ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए वेदाध्ययन करना होता है, पुनः स्वधर्माचरण से उपार्जित धन द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं। और द्विजातियों के लिए व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन, व्यर्थ यज्ञ पतन के कारण होते हैं; अतएव उनको सदैव संयमी होना चाहिए॥ १४-२०॥

असम्यक्करणे दोषस्तेषां सर्व्वेषु कर्म्मसु।
भोज्यपेयादिकञ्चैषां नेच्छाप्राप्तिकरं द्विजाः॥ २१॥

पारतन्त्र्यं समस्तेषु तेषां कार्य्येषु वै ततः।
जयन्ति ते निजात् लोकान् क्लेशेन महता द्विजाः॥ २२॥

द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान्।
निजान् जयति वै लोकाञ् शूद्रो धन्यतरस्ततः॥ २३॥

भक्ष्याभक्ष्येषु नास्यास्ति पेयापेये वै यतः।
नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरितः॥ २४॥

हे द्विजगण! जिस किसी कर्तव्य कर्म में किसी अंश में त्रुटि होने से द्विजातिवर्ग पाप के भागी होते हैं और वे इच्छानुसार भोजन या पानादि कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकते। वे समस्त कार्यों में परतन्त्र रहते हैं। हे द्विजगण! वे अत्यन्त कष्ट से पुण्यलोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु केवल द्विजातियों की सेवाद्वारा ही शूद्र पाक यज्ञ का फल प्राप्त करने का अधिकारी होता है; अएव मैंने शूद्रों को धन्य कहा। हे मुनिश्रेष्ठगण! शूद्रों को भक्ष्याभक्ष्य अथवा पेयापेय का कोई नियम है नहीं, इसलिए मैंने उन्हें साधु कहा॥ २१-२४॥

स्वधर्म्मस्याविरोधेन नरैर्लब्धं धनं सदा।
प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यञ्च ययाविधिः॥ २५॥

तस्यार्ज्जने महाक्लेशः पालने च द्विजोत्तमाः !
तथा सद्विनियोगाय विज्ञेय गहनं नृणाम् ।। २६ ।।

एभिरन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः ।
निजान् जयन्ति वै लोकान् प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ।। २७ ।।

योषिच्छुश्रूषणं भर्त्तुः कर्म्मणा मनसा गिरा ।
कुर्व्वतो समवाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः ।। २८ ।।

नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा ।
तृतीयं व्याहतं तेन मया साध्विति योषितः ।। २९ ।।

एतद्वः कथितं विप्रा यन्निमित्तमिहागताः ।
तत् पृच्छध्वं यथाकामं सर्व्वं वक्ष्यामि वः स्फुटम् ।। ३० ।।

स्त्रियाँ कैसे श्रेष्ठ है—यह कहते हैं), पुरुषों को सदा अपने धर्मानुकूल उपार्जित धन से ही सत्पात्र को दान और विधि के साथ यज्ञ करना चाहिये । हे उत्तमविप्रगण ! उस धन को उपार्जन और रक्षण में पुरुषों को महान् क्लेश होता है और उसको सत्पात्र को देना महान दुष्कर कार्य है । हे द्विजगण ! ये समस्त और धन्यान्य अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करके अपने धर्म की रक्षा करने के बाद क्रमशः प्राजापत्यादि शुभ लोकों में जा सकते हैं । किन्तु स्त्रियाँ तो केवल कर्म, मन और वचन से पति की सेवा और उनकी हितैषिणी बनकर ही पति के समान शुभलोकों को प्राप्त करसकती है, जिसे पुरुषगण अत्यन्त कष्ट से प्राप्त करते हैं । अतएव मैंने तीसरी बार स्त्रियों को साधु कहा था । हे द्विजगण ! मैंने आपलोगों से सब कुछ कह दिया, अब आपलोग जिसके लिए आये हैं, वह पूछिये । उसे भी मैं कहूँगा ।। २५-३० ।।

ततस्ते मुनयः प्रोचुर्यत् प्रष्टव्यं महामुने !
अन्यस्मिन्नेव तत् पृष्टे यथावत् कथितं त्वया ।। ३१ ।।

ततः प्रहस्य तान् प्राह कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनांस्तापसांस्तानुपागतान् ।। ३२ ।।

मयेष भवतां प्रश्नो ज्ञातो दिव्येन चक्षुषा।
तता हि वः प्रसङ्गेन साधु साध्विति भाषितम् ॥ ३३ ॥

स्वल्पेनैव प्रयत्नेन धर्म्मः सिध्यति वै कलौ।
नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्विषैः ॥ ३४ ॥

शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्मुनिसत्तमाः !
तथा स्त्रीभिरनायासं पतिशुश्रूषयैव हि ॥ ३५ ॥

ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतमं मतम।
धर्म्मसंसाधने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु ॥ ३६ ॥

भवद्भिर्यदभिप्रेतं तदेतत् कथितं मया।
अपृष्टेनापि धर्म्मज्ञाः किमन्यत् कथ्यतां द्विजाः ॥ ३७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद वे महर्षिगण बोले—हे महामुने ! हम लोग जिस विषय को पूछने के लिये आये थे, आपने उसका उत्तर इसी प्रसंग में दे दिया। उसके बाद महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने विस्मय से विकसित नेत्रों वाले उन आये हुए मुनियों से हँसकर कहा। मैंने आपलोगों के प्रश्नों को दिव्य दृष्टि से जान लिया था अतएव आपके प्रसङ्ग से 'साधु साधु' कहा। कलिकाल में जिन मनुष्यों ने अपने सद्गुणरूपी जल से समस्त पापों को धो डालते हैं, वे बहुत थोड़े परिश्रम से ही धर्मोपार्जन कर सकते हैं। हे मुनिश्रेष्ठगण ! शूद्रगण द्विजातियों की सेवा से और स्त्रियाँ पति सेवा से परिश्रम के बिना ही धर्म की सिद्धि प्राप्त करती हैं। अतएव मेरे मत से ये तीनों धन्यतर हैं, क्योंकि सत्य युग आदि तीन युगों में द्विजातियों को धर्म सम्पादन में महान् क्लेश होता है। हे धर्मज्ञ द्विजगण ! आप लोगों के पूछे बिना ही आप सबका जो अभिप्राय था उसे कह दिया, अब क्या बतलाऊँ ? ॥ ३१-३७ ॥

ततः संम्पूज्य ते व्यासं प्रशस्य च पुनः पुनः।
यथागतं द्विजा जग्मुर्व्यासोक्तिक्षतसंशयाः ॥ ३८ ॥

भवतोऽपि महाभाग ! रहस्यं कथितं मया ॥ ३९ ॥

अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान् गुणः।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥ ४० ॥

यच्चाहं भवता पृष्टो जगतामुपसंहतिम्।
प्राकृतामान्तरालाञ्च तप्मप्येष वदामि ते ॥ ४१ ॥

तदनन्तर उन महर्षिगण ने महर्षि व्यास को बारम्बार प्रशंसा की और व्यास जी के कथनानुसार निश्चय कर जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। हे महाभाग मैत्रेय ! आपसे भी मैंने यह रहस्य कह दिया। अत्यन्त दुष्ट कलियुग में यह एक महान् गुण है—इसमें मनुष्यगण केवल श्रीकृष्ण का नाम कीर्तन करने से ही समस्त बन्धन से मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर सकता है। अब आपने मुझसे जो जगत् का उपसंहार और प्राकृत प्रलय एवं अवान्तर प्रलय के विषय में पूछा था, उसे बतलाता हूं सुनो ॥ ३८-४१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के षष्ठ अंश में दूसरा अध्याय समाप्त।

षष्ठ अंश - तीसरा अध्याय

(निमेषादि काल, मान और नैमित्तिक प्रलय का वर्णन)

सर्व्वेषामेव भूतानां त्रिविधः प्रतिसञ्चरः ।
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको मतः ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! नैमित्तिक, आत्यन्तिक और प्राकृतिक भेद से समस्त भूतों का प्रलय तीन प्रकार का होता है ॥ १ ॥

ब्राह्मो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसञ्चरः ।
आत्यन्तिकश्च मोक्षाख्यः प्राकृतो द्विपरार्द्धिकः ॥ २ ॥

कल्प के अन्त में ब्राह्म नामक जो प्रलय होता है उसी का नाम नैमित्तिक प्रलय है, जो मोक्षरूप प्रलय है वह आत्यन्तिक और जो द्विपरार्द्ध के अन्त में होता है वह प्राकृत प्रलय कह जाता है ।

मैत्रेय उवाच ।

परार्द्धसंख्यां भगवन् ! ममाचक्ष्व यया तु सः ।
द्विगुणीकृतया ज्ञेयः प्राकृतः प्रतिसञ्चरः ॥ ३ ॥

श्रीमैत्रेय बोले—हे भगवन् ! आपने जो द्विगुणपरिमित काल को प्राकृत प्रलय के नाम से कहा उस परार्द्ध संख्या को मुझे कहिये ॥ ३ ॥

पराशर उवाच ।

स्थानात् स्थानं दशगुणमेकस्माद् गण्यते द्विज !
ततोऽष्टादशमे स्थाने परार्द्धमभिधीयते ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज ! एक से लेकर क्रमशः दसगुण गिनते-गिनते जो अठारहवीं बार गिनी जाती है वह संख्या परार्द्ध होती है ॥ ४ ॥

परादर्धद्विगुणं यत्तु प्राकृतः प्रलयो द्विज !
तदाव्यक्तेऽखिलं व्यक्तं स्वहेतौ लयमेति वै ॥ ५ ॥

निमेषो मानुषो योऽयं मात्रामात्रप्रमाणतः ।
तैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत् काष्ठास्तथा कलाः ॥ ६ ॥

(कोटि कोटि सहस्रकल्पस्वरूप) परार्थ की द्विगुण करने पर जितना काल होता है उतने काल में प्राकृत प्रलय होता है । इस समय समस्त व्यक्त पदार्थ अपने अव्यक्त कारण में लीन हो जाता है । मात्रा परिमाणवाला (एक मात्रावाले लघु अक्षर के उच्चारण में जितना काल लगता है उसके बराबर काल) मानव का जो निमेष कहा जाता है, वैसे पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा एवं तीस काष्ठा की एक कला होती है ॥ ५-६ ॥

नाड़िका तु प्रमाणेन कला दश च पञ्च च ।
उन्मानेनाम्भसः सा तु पलान्यर्द्धत्रयोदश ॥ ७ ॥
हेममाषैः कृतच्छिद्रश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।
मागधेन प्रमाणेन जलप्रस्थस्तु स स्मृतः ॥ ८ ॥

नाड़िकाभ्यामथ द्वाभ्यां मुहूर्त्तो द्विजसत्तम !
अहोरात्रं मुहूर्त्तास्तु त्रिंशन्मासो दिनैस्तथा ॥ ९ ॥

पन्द्रह कला एक नाडिका का प्रमाण है । वह नाडिका साढ़े बारह पल ताम्बे के बने हुए जलपात्र से जानी जाती है । मगधदेश के माप से वह पात्र जलप्रस्थ कहा जाता है, उसमें चार अङ्गुल लम्बी और चार मासे की बनी सोने की शलाका से छेद किया रहता है (उसके छेद को ऊपर करके जल में डुबा देने से जितनी देर में वह पात्र भर जाय उतने ही समय की एक नाडिका जाननी चाहिये) । हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार की दो नाडिकाओं का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त का एक दिन-रात एवं दिनरात का एक मास होता है ॥ ७-९ ॥

मासैर्द्वादशभिर्वर्षमहोरात्रन्तु तद्दिवि ।
त्रिभिर्वर्षशतैर्वर्षं षष्ट्या चैवासुरद्विषाम् ॥ १० ॥

तैस्तु द्वादशसाहस्त्र चतुर्युगमुदाहृतम् ।
चतुर्युगसहस्त्रन्तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम् ॥ ११ ॥

स कल्पोऽप्यत्र मनवश्चतुर्द्दश महामुने !
तदन्ते चैव मैत्रेय ! ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥ १२ ॥

तस्य स्वरूपमत्युग्रं मैत्रेय गदतो मम ।
शृणुष्व प्राकृतं भूयस्तव वक्ष्याम्यहं लयम् ॥ १३ ॥

बारह मास का एक वर्ष होता है, देवलोक में यही मानवीय वर्ष एक दिन-रात होता है । इसी प्रकार के तीन सौ साठ मानवीय वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है । ऐसा बारह हजार दिव्य वर्षों का एक चतुर्युग होता है और एक हजार चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन कहलाता है । हे महामुने ! ब्रह्मा के एक दिन को एक कल्प कहा जाता है । और एक कल्प में चौदह मनु होते हैं । हे मैत्रेय ! इसके अन्त में ब्रह्मा का नैमित्तिक प्रलय होता है । इस नैमित्तिक प्रलय का स्वरूप अत्यन्त भयङ्कर है, वह तुम्हारे समक्ष वर्णन करता हूँ, श्रवण करो । प्राकृत प्रलय के विषय में तुमसे पीछे कहूँगा ॥ १०-१३ ॥

चतुर्युगसहस्त्रान्ते क्षीणप्राये महीतले ।
अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी ॥ १४ ॥

ततो यान्यल्पसाराणि तानि सत्त्वान्यशेषतः ।
क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठ ! पार्थिवान्यत्र पीड़नात् ॥ १५ ॥

ततः स भगवान् विष्णू रुद्ररूपधरोऽव्ययः ।
क्षयाय यतते कर्त्तुमात्मस्थाः सकलाः प्रजाः ॥ १६ ॥

ततः स भगवान् विष्णुर्भानोः सप्तसु रश्मिषु ।
स्थितः पिबत्यशेषाणि जलानि मुनिसत्तम ॥ १७ ॥

पीत्वाम्भांसि समस्तानि प्राणिभूमिगतानि वै ।
शोषं नयति मैत्रेय ! समस्तं पृथिवीतलम् ॥ १८ ॥

एक हजार बार चतुर्युग बीतने पर पृथिवी जब क्षीण प्राय हो जाती है, तब सौ वर्षों तक अत्यन्त कठोर अनावृष्टि होती है । हे मुनिश्रेष्ठ ! उस काल में जो अल्पशक्तिवाले पार्थिव जीव होते हैं, वे सब अनावृष्टि से सर्वथा विनष्ट हो जाते हैं । उसके बाद रुद्ररूप धारण किये अव्ययात्मा भगवान् श्रीविष्णु संसार का विनाश करने के लिए समस्त प्रजा को अपने में लीन करने का प्रयास करते हैं । हे मुनिसत्तम ! उस समय रुद्ररूपी भगवान् श्रीविष्णु सूर्य की सातों किरणों में स्थित होकर समस्त जल को सोख लेते हैं । इस प्रकार भगवान् श्रीविष्णु प्राणियों तथा पृथिवी के अन्तर्गत समस्त जल को सोखकर पृथिवीमण्डल को शुष्क कर देते हैं ॥ १४-१८ ॥

सरित्-समुद्र-शैलेषु शैल-प्रस्रवणेषु च ।
पातालेषु च यत्तोयं तत् सर्व्वं नयति क्षयम् ॥ १९ ॥

ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोपबृंहिताः ।
त एव रश्मयः सप्त जायन्ते सप्त भास्कराः ॥ २० ॥

अधश्चोर्द्ध्वञ्च ते दीप्तास्ततः सप्त दिवाकराः ।
दहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विज ॥ २१ ॥

दह्यमानन्तु तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्यं द्विज ! भास्करैः ।
साद्रिनद्यर्णवाभोगं निःस्नेहमति जायते ॥ २२ ॥

ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिलं द्विज !
भवत्येका च वसुधा कूर्म्मपृष्ठोपमाकृतिः ॥ २३ ॥

ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ भूत्वा सर्व्वहरो हरिः ।
शेषनिःश्वाससम्भूतः पातालानि बभस्त्यधः ॥ २४ ॥

पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलनो महान् ।
भूमिमभ्येत्य सकलं बभस्ति वसुधातलम् ॥ २५ ॥

भुवर्लोकं ततः सर्व्वं स्वर्लोकञ्च सुदारुणः ।
ज्वालामालामहावर्त्तस्तत्रैव परिवर्त्तते ॥ २६ ॥

अम्बरीषमिवाभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा।
ज्वालावर्त्तपरीवारमुपक्षीणचराचरम्॥ २७॥

समुद्र, नदियों में, पर्वतीय सरिताओं, स्रोतों में, तथा विभिन्न पातालों में जितना जल है उन सबको वे सुखा देते हैं। इसके बाद भगवान् के प्रभाव से प्रभावित तथा जलपान से पुष्ट होकर वे सूर्य की सातों रश्मियाँ सात सूर्य हो जाती हैं। हे द्विज! देदीप्यमान वे सातों सूर्य ऊपर नीचे सभी ओर तथा पाताल पर्यन्त समस्त त्रिलोक को भस्म कर देते हैं। हे विप्र! उन प्रदीप्त सात सूर्यों से दग्ध हुई त्रिलोकी, पर्वत, नदी और समुद्रादि रस विहीन हो जाते हैं। तब, समस्त त्रिलोक के वृक्ष एवं जल आदि के भस्म हो जाने से यह पृथिवी कछुए की पीछ के समान कठोर हो जाती है। इसके बाद सबका संहार कने के लिए उद्यत भगवान् श्रीहरि अनन्त देव के निःश्वास से उत्पन्न कालाग्नि रुद्ररूप से समस्त पाताल को भस्म करते हैं। वह महान् अग्नि समस्त पाताल खण्ड को भस्म करते हुए भूमितक आकर पृथिवीतल को भी भस्म कर देते हैं। उसके बाद, वह जाज्वल्यमान दारुण अग्नि भुवर्लोक समूह को जलाकर स्वर्गलोक को भी भस्म कर देता है। और उस ज्वालामाला का महान् आवर्त वही भ्रमण करना रहता है। इस प्रकार ज्वाला के आवर्तों से परिपूर्ण समस्त चराचर के नष्ट होने पर समस्त त्रिलोक तक तपे हुए कटाह के समान दिखाई देती है॥ १९-२७॥

ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः।
कृताधिकारा गच्छन्ति महर्लोकं महामुने॥ २८॥

तस्मादपि महातापतप्ता लोकास्ततः परम्।
गच्छन्ति जनलोकं ते दशावृत्या परैषिणः॥ २९॥

हे महामुने! उस समय भुवर्लोक और स्वर्गलोक के निवासी मनु आदि महात्मागण प्रचण्ड अग्नि के ताप से सन्तप्त होकर महर्लोक में चले जाते हैं। किन्तु वहाँ पर भी उस उग्र अग्नि के ताप से सन्तप्त होकर बचने की आशा से वे जनलोक में चले जाते हैं॥ २८-२९॥

ततो दग्ध्वा जगत् सर्व्वं रुद्ररूपी जनार्द्दनः।
मुखनिःश्वासजान् मेघान करोति मुनिसत्तम॥ ३०॥

ततो गजकुलप्रख्यास्तड़ित्वन्तो निनादिनः
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्त्तका घनाः ॥ ३१ ॥

केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित् कुमुदसन्निभाः ।
धूमवर्णा घनाः केचित् केचित् पीताः पयोधराः ॥ ३२ ॥

केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा ।
केचिद्वैदूर्य्यसङ्काशा इन्द्रनीलनिभाः परे ॥ ३३ ॥

शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा ।
इन्द्रगोपनिभाः केचिन्मनःशिलनिभास्तथा ॥ ३४ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके बाद वे रुद्ररूपी भगवान् जनार्दन समस्त जगत् को दग्धकर अपने मुखनिःश्वास से मेघमण्डल को उत्पन्न करते हैं। अनन्तर विद्युत और वज्रध्वनि से युक्त संवर्तक नामक वह भयङ्कर मेघसमूह विशाल हस्तिसमूह के समान आकाश में फैल जाते हैं। उस समय कोई मेघ नीलकमल के समान श्यामवर्ण, कोई कुमुद के समान श्वेतवर्ण, कोई धूम्रवर्ण एवं कोई पीतवर्ण, और कोई कोई गर्दभ (गदहा) वर्णवाले, कोई आलता के समान वर्णवाले, कुछ वैदूर्यमणि के समान दीप्यमान् तथा कुछ इन्द्रनील मणि केतुल्य होते हैं, कोई शङ्ख, तथा कुन्द पुष्प के समान, कोई जातिपुष्प के समान उज्ज्वलवर्ण, कोई कज्जल के समान, कोई इन्द्रगोप कीट के समान (वर्षा काल में इन्द्रगोप क्रीड़ा देखा जाता है) लालवर्ण, कोई मनः शीला के समान गैरूकवर्ण ॥ ३०-३४ ॥

चाषपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना घनाः ।
केचित् पुरवराकाराः केचित् पर्व्वतसन्निभाः ॥ ३५ ॥

कूटागारनिभाश्चान्ये केचित् स्थूलनिभा घनाः ।
महारावा महाकायाः पूरयन्ति नभस्तलम् ॥ ३६ ॥

वर्षन्तस्ते महासारे-स्तमग्निमतिभैरवम् ।
शमयन्त्यखिलं विप्र ! त्रैलोक्यान्तरविस्तृतम् ॥ ३७ ॥

नष्टे चाग्नौ शतं तेऽपि वर्षाणामनिवारिताः ।
प्लावयन्तो जगत् सर्व्वं वर्षन्ति मुनिसत्तम । ३८ ॥

धाराभिरक्षमात्राभिः प्लावयित्वाखिलं भुवम्।
भुवर्लोकं तथैवोर्ध्वं प्लावयन्ति दिवं द्विज॥ ३९॥

अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे।
वर्षन्ति ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम्॥ ४०॥

कोई नीलकण्ठ के पंख के समान, कोई अत्यन्त सघन, कोई महान् प्रासाद के समान आकारवाले, कोई पर्वताकार, कोई कूटागार (गृह विशेष) के सदृश महाकाव्य, कोई पृथिवीतल के समान विस्तृत—ये समस्त मेघ विकट ध्वनि करते हुए आकाश को आच्छादित कर देते हैं। हे विप्र! उसके बाद वे मेघसमूह मूसलाधार जलवर्षण करते हुए त्रिभुवनव्यापी उस भयङ्कर अग्नि को शान्त कर देते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! वे मेघसमूह उस प्रज्वलित अग्नि को शान्तकर सौ वर्षों तक अविश्रान्तरूप से वर्षा करके जगत को प्लावित कर देते हैं। हे द्विज! वे अपनी स्थूलधाराओं से भूर्लोक को जल में डुबाने के बाद भुवर्लोक और उससे ऊपर के लोकों को भी जल में डुबा देते हैं। इस प्रकार समस्त संसार को अन्धकारयुक्त तथा सम्पूर्ण स्थावर, जङ्गम जीवों के नष्ट हो जाने पर भी वे महामेघ सौ वर्षों से अधिककाल पर्यन्त बरसते रहते हैं॥ ३५-४०॥

श्रीविष्णुपुराण के षष्ठ अंश में तीसरा अध्याय समाप्त।

षष्ठ अंश - चौथा अध्याय

(प्राकृतप्रलय का वर्णन)

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि महामुने !
एकार्णवं भवत्येव त्रैलोक्यमखिलं ततः ॥ १ ।

मुखनिःश्वासजो विष्णोर्वायुस्तान् जलदांस्ततः ।
नाशयित्वा तु मैत्रेय ! वर्षाणामधिकं शतम् ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—जब सप्तर्षियों के स्थान पर्यन्त जलमय हो जाता है, तब यह समस्त त्रिलोक एक महासमुद्र के समान हो जाती है । मैत्रेय बोले—अनन्तर भगवान् श्रीविष्णु के मुख से निकला हुआ वायु उस मेघमण्डल को विनष्ट कर सौ वर्षोंतक प्रचण्डरूप से प्रवाहित होता है ॥ १-२ ॥

सर्व्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान् भूतभावनः ।
अनादिरादिर्विश्वस्य पीत्वा वायुमशेषतः ॥ ३ ॥

एकार्णवे ततस्तस्मिन् शेषशय्यास्थितः प्रभुः ।
ब्रह्मरूपधरः शेते भगवानादिकृद्धरिः ॥ ४ ॥

जनलोकगतैः सिद्धैः सनकाद्यैरभिष्टुतः ।
ब्रह्मलोकगतैश्चैव चिन्त्यमानो मुमुक्षुभिः ॥ ५ ॥

आत्ममायामयीं दिव्यां योगनिद्रां समास्थितः ।
आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्तयन् परमेश्वरः ॥ ६ ॥

एष नैमित्तिको नाम मैत्रेय ! प्रतिसञ्चरः ।
निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरिः ॥ ७ ॥

उसके बाद विश्व के आदिपुरुष अनादिनिधन, सर्वभूतमय, अचिन्तनीय और भूतभावन, ब्रह्मस्वरूप, आदि कर्ता भगवान् श्रीविष्णु उस समस्त वायु को पान करके एकाकार उस समुद्र में स्थित होकर शेषशय्यापर शयन करते हैं। उस समय जनलोक निवासी सनकादि सिद्धगण उन महाप्रभु की स्तुति करते हैं और ब्रह्मलोकस्थित मुमुक्षु उन श्रीविष्णु का ध्यान करते हैं। उस समय परमेश्वर भगवान् श्रीविष्णु समस्त जगत् के व्यापार से रहित होकर अपने वासुदेवात्मक स्वरूप का चिन्तन करते हुए दिव्य योगनिद्रा का आश्रय करते हैं। हे मैत्रेय ! इस प्रलय में ब्रह्मारूपधारी भगवान् श्रीहरि का शयन ही निमित्त है, अतएव इसे नैमित्तिक प्रलय करते हैं ॥ ३-७ ॥

यदा जागर्त्ति विश्वात्मा स तदा चेष्टते जगत्।
निमीलत्येतदखिलं योगशय्याशयेऽच्युते ॥ ८ ॥

पद्मयोनेर्दिनं यत्तु चतुर्युगसहस्त्रवत्।
एकार्णवाप्लुते लोके तावती रात्रिरिष्यते ॥ ९ ॥

ततः प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुनः सृष्टिं करोत्यजः ।
ब्रह्मस्वरूपधृग् विष्णुर्यथा ते कथितं पुरा ॥ १० ॥

समस्त विश्व के आत्मा श्रीविष्णु जब जागते हैं, तब संसार की समस्त चेष्टाएँ होती रहती हैं और जिस काल में वे शेषशय्यापर शयन करते हैं, उस समय सम्पूर्ण संसार लीन हो जाता है। जिस प्रकार एक हजार चतुर्युग ब्रह्मा जी का एक दिन होता है, उसी प्रकार संसार का एकार्णव हो जाने पर उतनी ही बड़ी उनकी एक रात्रि भी होती है। अनन्तर उस रात्रि का अन्त होने पर ब्रह्मारूपधारी अजन्मा भगवान् श्रीविष्णु जागते हैं और ब्रह्माका रूप धारण कर मैंने जैसा पहले कहा था, उसी प्रकार से सृष्टि करते हैं ॥ ८-१० ॥

इत्येष कल्पसंहारश्चान्तरः प्रलयो द्विज !
नैमित्तिकस्ते कथितः प्राकृतः श्रृण्वतः परम् ॥ ११ ॥

अनावृष्ट्याग्निसम्पर्कात् कृते संक्षालने मुने !
समस्तेष्वेव लोकेषु पातालेष्वखिलेषु च ॥ १२ ॥

महदादेर्व्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये।
कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन् प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे॥ १३॥

आपो ग्रसन्ति वै पूर्व्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम्।
आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते॥ १४॥

प्रनष्टे गन्धतन्मात्रेऽभवत् पृथ्वी जलात्मिका।
रसाज्जलं समुद्‌भूतं तस्माज्जातं रसात्मकम्॥ १५॥

आपस्तदा प्रवृद्धास्तु वेगवत्यो महास्वनाः।
सर्व्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च।
सलिलेनैवोर्म्मिमता लोका व्याप्ताः समन्ततः॥ १६॥

अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा पीयते तु सः
नश्यन्त्यापस्ततस्ताश्च रसतन्मात्रसंक्षयात्॥ १७॥

ततश्चापो हृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्ति वै।
अग्न्यवस्थे तु सलिले तेजसा सर्व्वतो वृते॥ १८॥

हे द्विज ! इस प्रकार नैमित्तिक प्रलय और उसके बाद पुनः सृष्टि की रचना होती है। अब प्राकृतिक प्रलय सुनो। हे मुने ! पूर्वोक्त रूप से अनावृष्टि और अग्नि के संयोग से समस्त लोक और पातालों के नष्ट हो जाने पर महत्तत्त्व से लेकर पृथिवी पर्यन्त समस्त विकारों को ध्वंस करने कि लिए भगवान् की इच्छा से प्रलयकाल उपस्थित होता है, उस समय में जलसमूह सर्वप्रथम पृथिवी के गुण गन्ध को अपने में लीन कर लेता है। जब पृथिवी का गुण गन्ध समाप्त हो जाता है, तब पृथिवी का प्रलय हो जाता है। गन्धतन्मात्र गुण के नष्ट होने से पृथिवी जल में मिल जाती है। रससे जल उत्पन्न हुआ है, अतएव जल को रसात्मक जानना चाहिए। उस समय बहुत बढ़ा हुआ जल अत्यन्त वेग से महाशब्द करता हुआ समस्त भुवन को प्लावित कर देता है, यह जल कभी स्थिर होता है और कभी बहने लगता है। बाद में तरङ्गमालाओं से परिपूर्ण जल चारों दिशाओं में फैल जाता है। अनन्तर जल का गुण रस का अग्नि शोषण कर लेता है। तथा अग्निद्वारा शोषित होकर रस तन्मात्र का विनष्ट हो जाने से जलसमूह विलय प्राप्त होता है और वह रसहीन जलमण्डल

तेज में प्रवेश कर जाता है । इसके बाद क्रमशः तेज अतिशय प्रवलरूप धारण कर समस्त भुवन में व्याप्त हो जाता है ॥ ११-१८ ॥

स चाग्निः सर्व्वतो व्याप्य आदत्ते तज्जलं तदा ।
सर्व्वमापूर्य्य तेजोभिस्तदा जगदिदं शनैः ॥ १९ ॥

अर्च्चिर्भिः संवृते तस्मिन् तिर्य्यगूर्द्ध्व मधस्तथा ।
ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरत्ति प्रभाकरम् ॥ २० ॥

प्रलीने च ततस्तस्मिन् वायुभूतेऽखिलात्मनि ।
प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः ॥ २१ ॥

प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोधूयते महान् ।
निरालोके तदा लोके वाय्ववस्थे च तेजसि ॥ २२ ॥

ततस्तु मूलमासाद्य वायुः सम्भवमात्मनः ।
ऊर्द्धवश्चाधश्च तिर्य्यक् च दोधवीति दिशो दश ॥ २३ ॥

वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो ग्रसते पुनः ।
प्रशाम्यति ततो वायुः खन्तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥ २४ ॥

अरूपमरसस्पर्शमगन्धं न च मूर्त्तिमत् ।
सर्व्वमापूरयच्चैनत् सुमहत् सम्प्रकाशते ॥ २५ ॥

परिमण्डलं तच्छुषिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तदाकाशं सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥ २६ ॥

ततः शब्दं गुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः ।
भूतेन्द्रियेषु युगपद् भूतादौ संस्थितेषु वै ॥ २७ ॥

अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः ।
भूतादिं ग्रसते चापि महान् वै बुद्धिलक्षणः ॥ २८ ॥

वह अग्नि सभी ओर व्याप्त होकर जलमण्डल को ग्रसित कर लेता है और क्रमशः अपने तेजों से इस जगत् को व्याप्त कर लेता है । उस समय अग्नि द्वारा

ऊपर नीचे तथा सभी का संहार हो जाता है, तब वायुमण्डल तेज के आधार प्रभाकर सूर्य को ग्रास कर लेता है । तेजसमूह को नष्ट होने पर समस्त भुवन वायुमय हो जाता है और समस्त तेज अपने रूप का विनाश होने से शान्त भाव को प्राप्त करता है । उस समय केवल वायु ही चारों ओर प्रवाहित होता है तथा उस तेज समूह को वायु में प्रवेश करने पर समस्त भुवन अन्धकारमय बन जाता है । पुन: वह प्रचण्डवायु उत्पत्ति के बीज (मूल) आकाश का अवलम्बन कर ऊपर नीचे और कोण आदि दिशाओं को कम्पित कर देता है । क्रमेश: वायु के गुण स्पर्श को आकाश ग्रसित कर लेता है, उस समय वायु शान्त हो जाता है और आकाश स्वच्छ बनता है । उस समय रूप, रस, स्पर्श और मूर्त्तिहीन आकाश सभी लोकों को परिपूर्ण कर पूर्ण रूप से प्रकाशित रहता है । उस समय चारों ओर से गोल एवं छिद्रयुक्त शब्दलक्षण आकाश ही अवशिष्ट रहता है। और यह शब्दलक्षण आकाश समस्त को आच्छादितकर विराजमान रहता है । इसके बाद आकाश के गुण शब्द को भूतादि ग्रस लेता है । इस भूतादि में ही एक साथ पञ्चभूत (क्षिति, जल, आकाश, तेज, वायु) और इन्द्रियसमूह भी लय हो जाते हैं । केवल अहङ्कारात्मक रह जाने से यह तामस (तम: प्रधान) कहलाता है । पुन: भूतादिकों भी (सत्त्वप्रधान होने से) बुद्धिरूप महत्तत्त्व ग्रसलेता है ॥ १९-२८ ॥

उर्व्वी महांश्च जगत: प्रान्तेऽन्तर्बाह्यतस्तथा ॥ २९ ॥

एवं सप्त महाबद्धे ! क्रमात् प्रकृतयस्तु वै ।
प्रत्याहारे तु ता: सर्व्वा: प्रविशन्ति परस्परम् ॥ ३० ॥

येनेदमावृतं सर्व्वमण्डमप्सु प्रलीयते ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोकं सपर्व्वतम् ॥ ३१ ॥

उदकावरणं यत्तु ज्योतिषा पीयते तु तत् ।
ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे समीरण: ॥ ३२ ॥

आकाशञ्चैव भूतादिर्ग्रसते तं तदा महान् ।
महान्तमेभि: सहितं प्रकृतिर्ग्रसते द्विज ॥ ३३ ॥

गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्यूनञ्च महामुने !
प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतु: प्रधानं कारण परम् ॥ ३४ ॥

इत्येषा प्रकृतिः सर्व्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी।
व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्मिन् मैत्रेय ! लीयते ॥ ३५ ॥

एकः शुद्धोऽक्षरो नित्यः सर्वव्यापी तथा पुमान्।
सोऽप्यंशः सर्वभूतस्य मैत्रेय ! परमात्मनः ॥ ३६ ॥

न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकल्पनाः।
सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ॥ ३७ ॥

स ब्रह्म तत् परं धाम परमात्मा स चेश्वरः।
स विष्णुः सर्वमेवेदं यतो नावर्त्तते यतिः ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार पृथिवी और महत्तत्त्व ब्रह्माण्ड और अन्तर्जगत् की आदि एवं अन्तिम सीमाएँ हैं, उसी प्रकार उसके बाह्य जगत् की भी आदि और अन्तिम सीमाएँ हैं। हे महाप्राज्ञ ! इस प्रकार पृथिवी आदि के क्रम से जो सात आचरण कहे गये हैं, ये सातों आवरणसमूह प्रलय काल में पूर्ववत् (पृथिवी आदि क्रम से) परस्पर अपने अपने कारणों में लीन हो जाते हैं। जिससे यह सम्पूर्ण लोक व्याप्त है, वह सम्पूर्ण पृथिवी मण्डल, सातों समुद्र, सातों लोक और समस्त पर्वतों के साथ जल में लीन हो जाता है। और जो जलका आवरण है, वह अग्नि के द्वारा शोषित हो जाता है तथा वह सर्वहारी अग्नि वायु में एवं वायु आकाश में विलीन हो जाता है। हे द्विज ! आकाश को भूतादि तामस अहङ्कार तथा भूतादि को महत्तत्त्व और इन सबके साथ महत्तत्त्व को मूल प्रकृति अपने में लीन कर लेती है। हे महामुने ! न्यूनाधिक से रहित जो सत्त्व आदि तीनों गुणों की साम्यावस्था है, उसी को प्रकृति कहते हैं, और इसी को प्रधान भी कहते हैं। यह प्रधान ही सारे जगत् का प्रधान कारण है। यह प्रकृति व्यक्त और अव्यक्त रूप से सर्वमयी है, व्यक्तरूपा जो प्रकृति है, वह अव्यक्त में लीन हो जाती है। नित्य, शुद्धस्वरूप, सर्वव्यापी, अक्षर पुरुष है वह सर्वभूतमय परमात्मा का ही अंश है। सत्तामात्रस्वरूप आत्मा से (देहादि संघात से) अलग रहने वाले ज्ञानात्मा और ज्ञातव्य सर्वेश्वर में नाम और जाति आदि की कल्पना नहीं है, वही सभी के अधीश्वर हैं। वह विष्णु ही इस समस्त विश्वरूप से विराजमान हैं। उसको प्राप्त कर लेने के बाद योगिजन पुनः संसार में नहीं लौटते। २९-३८ ॥

प्रकृतिर्या मया ख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी।
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि॥ ३९॥

परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः।
विष्णुर्नाम्ना स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते॥ ४०॥

प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधं कर्म्म वैदिकम्।
ताभ्यामुभाभ्यां पुरुषैः सर्वमूर्त्तिः स इज्यते॥ ४१॥

ऋग्-यजुः-सामाभिर्मार्गैः प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ।
यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान् पुरुषैः पुरुषोत्तमः॥ ४२॥

ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्त्तिः स चेज्यते।
निवृत्ते योगिभिर्मार्गैर्विष्णुर्मुक्तिफलप्रदः॥ ४३॥

ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतैर्यत्तु किञ्चिद्वस्त्वभियुज्यते।
यच्च वाचामविषये तत्सर्वं विष्णुरव्ययः॥ ४४॥

व्यक्तं स एव चाव्यक्तं स एव पुरुषोऽव्ययः।
परमात्मा स विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरिः॥ ४५॥

व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन् प्रकृतिः सम्प्रलीयते।
पुरुषश्चापि मैत्रेय! व्यापिन्यव्याहतात्मनि॥ ४६॥

मैंने जिस व्यक्त तथा अव्यक्तरूपिणी प्रकृति का वर्णन किया, वह (प्रकृति) और पुरुष भी उसी परमात्मा में लीन हो जाते हैं। वह परमात्मा सभी का आधार और परमेश्वर है तथा वेद एवं वेदान्त में विष्णुरूप से वर्णन किया है। प्रवृत्तिरूप (कर्मयोग) और निवृत्तिरूप (सांख्ययोग) ये दो प्रकार का वैदिक कर्म है। और इन दोनों कर्मों से उस सर्वस्वरूप पुरुषोत्तम का ही पूजन होता है। लोगों द्वारा ऋक्, यजुः और सामवेद में कहे गये प्रवृत्तिमार्ग से उन यज्ञपति यज्ञपुरुष पुरुषोत्तम का ही यजन किया जाता है। निवृत्तिमार्ग में स्थित योगिगण भी उन्हीं ज्ञानात्मा, ज्ञानस्वरूप और मोक्षफलदायक श्रीविष्णुका ही ज्ञानयोग द्वारा यजन करते हैं। ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत—इन तीन प्रकार के स्वरों द्वारा जो कुछ कहा जाता है और जो वाणी का विषय भी नहीं है, वे सब भी अव्ययात्मा श्रीविष्णु ही है। विश्वात्मा,

विश्वरूपधारी परमात्मा वही श्रीहरि व्यक्त, अव्यक्त एवं अविनाशी पुरुष हैं । हे मैत्रेय ! सर्वव्यापक तथा अविकृतरूप उन परमात्मा में ही व्यक्त, अव्यक्त रूपवाली प्रकृति एवं पुरुष दोनों लीन हो जाते हैं ॥ ३९-४६ ॥

द्विपरार्द्धात्मकः कालः कथितो यो मया तव ।
तदहस्तस्य मैत्रेय ! विष्णोरीशस्य कथ्यते ॥ ४७ ॥

व्यक्ते च प्रकृतौ लीने प्रकृत्यां पुरुषे तथा ।
तत्र स्थिते निशा चान्या तत्प्रमाणा महामुने ॥ ४८ ॥

नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस्य परमात्मनः ।
उपचारस्तथाप्येष तस्येशस्य द्विजोच्यते ॥ ४९ ॥

इत्येष तव मैत्रेय ! कथितः प्राकृतो लयः ।
आत्यन्तिकमितो ब्रह्मन्निबोध प्रतिसञ्चरम् ॥ ५० ॥

हे मैत्रेय ! मैंने तुमसे जो द्विपरार्द्धकाल पहले कहा है वह उन विष्णु भगवान् का केवल एक दिन है । हे महामुने ! व्यक्त जगत् के अव्यक्त प्रकृति में तथा प्रकृति के पुरुष में लीन हो ज़ाने पर इतने ही समय की श्रीविष्णु भगावान् की रात्रि भी होती है । वस्तुतः हे विप्र ! नित्य परमात्मा का न तो कोई दिन है न रात्रि, लेकिन केवल उपचार से ही ऐसा कहा जाता है । हे मैत्रेय ! इस भाँति मैंने तुमसे प्राकृत प्रलय का वर्णन किया, अब आत्यन्तिक प्रलय का भी वर्णन करता हूँ श्रवण करो ॥ ४७-५० ॥

श्रीविष्णुपुराण के षष्ठ अंश में चौथा अध्याय समाप्त ।

षष्ठ अंश - पाँचवाँ अध्याय

(भगवान् के परमार्थिक रूप का वर्णन)

आध्यात्मिकादि मैत्रेय ! ज्ञात्वा तापत्रयं बुधः ।
उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम् ॥ १ ॥

आध्यात्मिको वै द्विविधः शारीरो मानसस्तथा ।
शारीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते श्रूयताञ्च सः ॥ २ ॥

शिरोरोग-प्रतिश्याय-ज्वरशूल-भगन्दरैः ।
गुल्मार्शः-श्वयथु-श्वास-च्छर्द्यादिभिरनेकधा ॥ ३ ॥

तथाक्षिरोगातीसार-कुष्ठाङ्गामयसंज्ञकै ।
भिद्यते देहजस्तापो मानसं श्रोतुमर्हसि ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! पण्डित लोग आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों तापों को जानकर ज्ञान-वैराग्य उत्पन्न होने से आत्यन्तिक प्रलय प्राप्त करते हैं । आध्यात्मिक ताप शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार के होते हैं, उनमें शारीरिक ताप अनेक प्रकार के हैं, उन्हें श्रवण करो । शिरोरोग, प्रतिश्याय ज्वर, शूल, भगन्दर, गुल्म, अर्श, श्वास, शोथ, छर्दि, नेत्ररोग, अतिसार, कुष्ठ, जलोदर आदि के भेद से शारीरिक दुःख अनेक प्रकार के हैं । अब मानसिक तापों को श्रवण करो ॥ १-४ ॥

काम-क्रोध-भय-द्वेष-लोभ-मोह-विषादजः ।
शोका-सूया-वमाने-र्ष्या-मात्सर्य्यादिभवस्तथा ॥ ५ ॥

मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठ ! तापो भवति नैकधा ।
इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्याध्यात्मिकः स्मृतः ॥ ६ ॥

मृग-पक्षि-मनुष्याद्यैः पिशाचोरग-राक्षसैः ।
सरीसृपाद्यैश्च नृणां जन्यते चाधिभौतिकः ॥ ७ ॥

शीतो-ष्ण-वात-वर्षाम्बु-वैद्युतादिसमुद्भवः ।
तापो द्विजवरश्रेष्ठ ! कथ्यते चाधिदैविकः ॥ ८ ॥

गर्भ-जन्म-जराज्ञान-मृत्यु-नारकजं तथा
दुःखं सहस्रशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तम ॥ ९ ॥

सुकुमारतनुर्गर्भे जन्तुर्बहुमलावृते ।
उल्वसंवेष्टितो भुग्नपृष्ठग्रीवास्थिसंहतिः ॥ १० ॥

अत्यन्तकटु-तीक्ष्णोष्ण-लवणैर्मातृभोजनैः ।
अत्यन्ततापैरत्यर्थं वर्द्धमानातिवेदनः ॥ ११ ॥

प्रसारणाकुञ्चनादेर्नाङ्गानां प्रभुरात्मनः ।
शकृन्मूत्रमहापङ्कशायी सर्वत्र पीड़ितः ॥ १२ ॥

निरुच्छ्वासः सचैतन्यः स्मरन् जन्मशतान्यथ ।
आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्म्मनिबन्धनः ॥ १३ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया, अपमान, ईर्ष्या और मात्सर्य आदि से उत्पन्न मानसिक दुःख अनेक प्रकार के होते हैं । ऐसे ही अनेक भेदों से युक्त दुःखसमूह को आध्यात्मिक ताप कहते हैं । मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, राक्षस और सरीसृप (बिच्छू) आदि से मनुष्यों को जो दुःख उत्पन्न होता है, उसे आधिभौतिक ताप कहते हैं । हे द्विजवर ! शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् प्रभृति से जो दुःख उत्पन्न होता है, उसे आधिदैविक ताप कहते हैं । हे मुनिसत्तम ! इन सबके अतिरिक्त गर्भवास, जन्म, जरा (बुढ़ापा), अज्ञान, मृत्यु और नरक से उत्पन्न दुःख के भी हजारों भेद हैं । अत्यन्त मल से परिपूर्ण गर्भाशय में गर्भझिल्ली से लिपटा हुआ सुकुमार शरीरवाला जीव, जिसकी पीठ और ग्रीवा की हड्डियाँ कुण्डलाकार मुड़ी रहती हैं । वहाँ पर वे माता के खाये हुए अत्यन्त तापप्रद खट्टे, कढ़वे, गर्म, चरपरे और खारे मलमूत्ररूपी महापङ्क में पड़ने से समस्त अङ्गों में अत्यन्त पीड़ा होने पर भी अपने अङ्गों को फैलाने अथवा सिकोड़ने

में समर्थ नहीं होता और चेतनायुक्त होने पर भी श्वास नहीं ले सकता, अपने सैकड़ों पूर्वजन्मों का स्मरण करके कर्मों से बँधा हुआ अत्यन्त दुःखपूर्वक गर्भ में पड़ा रहता है ॥ ५-१३ ॥

जायमानः पुरीषासृङ्मूत्रशुक्राविलाननः ।
प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिबन्धनः ॥ १४ ॥

अधोमुखो वै क्रियते प्रबलैः सूतिमारुतैः ।
क्लेशैर्निष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरातुरः ॥ १५ ॥

मूर्च्छामवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना ।
विज्ञानभ्रंशमाप्नोति जातश्च मुनिसत्तम ॥ १६ ॥

कण्टकैरिव तुन्नाङ्गः क्रकचैरिव दारितः ।
पूतिव्रणान्निपतितो धरण्यां कृमिको यथा ॥ १७ ॥

कण्डूयने चाप्यशक्तः परिवर्त्तेऽप्यनीश्वरः ।
स्तन्यपानादिकाहारमवाप्नोति परेच्छया ॥ १८ ॥

अशुचिः प्रस्तरे सुप्तः कीटदंशादिभिस्तथा ।
भक्ष्यमाणोऽपि नैवैषां समर्थो विनिवारणे ॥ १९ ॥

जन्मदुःखान्यनेकानि जन्मनोऽनन्तराणि वै ।
बालभावे यदाप्नोति आधिभौतादिकानि च ॥ २० ॥

उसके बाद जन्म के समय उसका मुख मल, मूत्र रक्त एवं शुक्र से लिप्त रहता है, तथा उसके समस्त अस्थिबन्धन प्राजापत्य (गर्भसंकोच) वायु से अतिशय पीड़ित होते हैं। प्रबल प्रसूतिवायु उसका मुख नीचे को कर देती है। वह भयानक क्लेश के साथ माता के जठर से बाहर होता है। हे मुनिसत्तम ! जठर से बाहर होने के बाद बाहरी वायु का स्पर्श होने से मूर्च्छित होकर ज्ञानशून्य हो जाता है। उस समय वह जीव दुर्गन्धयुक्त फोड़े से और काँटे से विधे हुए अथवा आरे से चीरे हुए फोड़े के समान पृथिवीपर गिर जाता है। उस जीव को स्वयं खुजलाने या करवट बदलने की भी शक्ति नहीं होती। वह स्नान और (दुग्ध) पान आदि आहार भी दूसरे की इच्छा से ही प्राप्त करता है। अपवित्र बिस्तरपर पड़ा रहता है, उस समय

कीड़े एवं दंश आदि उसको काटते हैं, किन्तु उन्हें दूर करने की भी शक्ति नहीं रहती । इस प्रकार जन्मकाल में और उसके बाद बाल्यवस्था में भी जीव आधिभौतिक अनेक कष्ट भोगता है ॥ १४-२० ॥

अज्ञानतमसाच्छन्नो मूढ़ान्तःकरणो नरः ।
न जानाति कुतः कोऽहं क्वाहं गन्ता किमात्मकः ॥ २१ ॥

केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम् ।
किं कार्य्यं किमकार्य्यं वा किं वाच्यं किन्न वोच्यते । २२ ॥

कोऽधर्म्मः कश्च वै धर्म्मः कस्मिन् वर्त्तेत वा कथम् ।
किं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥ २३ ॥

एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत् ।
अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदरपरायणैः ॥ २४ ॥

अज्ञानं तामसो भावः कार्य्यारम्भाः प्रवृत्तयः ।
अज्ञानिनां प्रवर्त्तन्ते कर्म्मलोपास्ततो द्विज ॥ २५ ॥

नरकं कर्म्मणां लोपात् फलमाहुर्महर्षयः ।
तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम् ॥ २६ ॥

अज्ञानरूपी अन्धकार से युक्त मूढ़ हृदय वाला पुरुष यह नहीं जानता कि मैं कहाँ से आया हूँ ? कौन हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? और मेरा स्वरूप क्या है ? । मैं किस बन्धन में बँधा हूँ, इस बन्धन का क्या कारण है ? अथवा यह अकारण ही प्राप्त हुआ है ? मुझे क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये । क्या धर्म है ? क्या अधर्म है ? किस अवस्था में मुझे किस प्रकार रहना चाहिये ? क्या कर्तव्य है ? क्या अकर्तव्य है ? अथवा क्या गुणमय और क्या दोषमय है' ? इस प्रकार अनेक भावनाओं से युक्त एवं शिश्नोदर परायण मानव पशु के समान अज्ञान जनित नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं । हे विप्र ! अज्ञान तामसिक भाव है (तामसी) के आरम्भ में प्रवृत्ति होती है, इससे वैदिक कर्मों का लोप होता है । बुद्धिमान् लोग कर्म लोप का फल नरक कहते हैं, अतएव अज्ञानी व्यक्तियों को इस लोक और परलोक में केवल दुःख ही भोगना पड़ता है ॥ २१-२६ ॥

जराजर्ज्जरदेहश्च शिथिलावयवः क्रमात्।
विगलच्छीर्णदशनो बली स्नायुशिरावृत्रः ॥ २७ ॥

दूरप्रनष्टनयनो व्योमान्तर्गततारकः।
नासाविवरनिर्यात-लोमपुञ्जश्चलद्वपुः ॥ २८ ॥

प्रकटीकृतसर्वास्थिर्नतपृष्ठास्थिसंहतिः।
उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ २९ ॥

शरीर क्रमशः जराजर्जरित हो जाता है, अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाते हैं, पुराने होने के कारण सभी दाँत गिर जाते हैं, मांस लोप हो जाने से केवल स्नायु और शिराएँ बच जाती हैं, वृद्ध पुरुष की दृष्टि दूर के विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती हैं। नेत्रों के तारे गोलकों में घुस जाते हैं, नासिका विवर से रोयें और बाहर निकल जाते हैं, देह काँपने लगता है। शरीर की सभी हड्डियाँ दिखलायी देने लगती हैं, मेरुदण्ड झुक जाता है, जठराग्नि के मन्द हो जाने से पुरुष का रोज का आहार और पुरुषार्थ भी कम हो जाते हैं ॥ २७-२९ ॥

कृच्छ्रचङ्क्रमणोत्थान-शयनासनचेष्टितः।
मन्दीभवच्छ्रोत्रनेत्रः स्त्रवल्लालाविलाननः ॥ ३० ॥

अनायत्तैः समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः।
तत्क्षणेऽप्यनुभूतानामस्मर्त्ताखिलवस्तुनाम् ॥ ३१ ॥

सकृदुच्चारिते वाक्ये समुद्भूतमहाश्रमः।
श्वास-कासससमुद्भूतमहायासप्रजागरः ॥ ३२ ॥

अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा संवेश्यते जरी।
भृत्यात्मपुत्रदाराणामवमानास्पदीकृतः ॥ ३३ ॥

प्रक्षीणाखिलशौचश्च विहाराहारसस्पृहः।
हास्यः परिजनस्यापि निर्व्विण्णाशेषबान्धवः ॥ ३४ ॥

अनुभूतमिवान्यस्मिन् जन्मन्यात्मविचेष्टितम्।
संस्मरन् यौवने दीर्घं निःश्वसित्यभितापितः ॥ ३५ ॥

एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय वै।
मरणे यानि दुःखानि प्राप्नोति श्रृणु तान्यपि ॥ ३६ ॥

उस समय अन्धप्राय वह जीव अत्यन्त कष्ट से चलता फिरता, उठता और बैठता है और उसकी शयन आदि सभी चेष्टाएँ बड़ी कठिनाई से होती हैं उसके श्रोत्र नेत्रों की शक्ति मन्द पड़ जाती है, तथा सदा लार गिरने से मुख मलिन हो जाता है। सभी इन्द्रियाँ उसके वश से बाहर हो जाती हैं, और उस समय वह सर्वतोभावेन मृत्यु के लिये उन्मुख हो जाता है एवं सद्यः अनुभूत पदार्थों को भी वह स्मरण नहीं कर सकता है। उस समय एक बात बोलने में भी उसे महान् परिश्रम होता है और श्वास एवं कास (खाँसी) आदि के कारण महान् कष्ट से वह दिन-रात जागता रहता है। वह वृद्ध पुरुष दूसरों की सहायता से उठता और बैठता है, अतएव सेवक, पुत्र और स्त्री भी उसे सदा अनादर करता है। उस समय वह अपने समस्त शौचादिक्रिया से रहित हो जाता है, किन्तु भोग एवं भोजन की इच्छा बढ़ जाती है, अपने परिजन भी उसे देखकर हँसते हैं, और उसके समस्त बन्धुवर्ग उससे उदासीन रहते हैं। अपनी युवावस्था में किये हुए समस्त कार्यों को जन्मान्तर में किये हुए के समान याद कर वह अत्यन्त दुःख और दीर्घ निःश्वास छोड़ता रहता है। वृद्धावस्था में इस प्रकार के अनेकों दुःख करने के बाद मृत्यु के समय उसे जो दुःख होता है वे भी सुनो ॥ ३०-३६ ॥

श्लथग्रीवाङ्घ्रिहस्तोऽथ व्याप्तो वेपथुना भृशम्।
मुहुर्ग्लानिपरवशो मुहुर्ज्ञानलवान्वितः ॥ ३७ ॥

हिरण्य-धान्य-तनय-भार्य्या-भृत्य-गृहादिषु।
एते कथं भविष्यन्ति ममेति ममताकुलः ॥ ३८ ॥

मर्म्मभिद्भिर्महारोगैः क्रकचैरिव दारुणैः।
शरैरिवान्तकस्योग्रैश्छिद्यमानास्थिबन्धनः ॥ ३९ ॥

उस समय उसके कण्ठ, हाथ, पैर शिथिल हो जाते हैं, शरीर अत्यन्त कम्पित होने लगता है, बारंबार उसे ग्लानि होती है और कभी कभी कुछ ज्ञान भी प्राप्त होता है। उस समय वह 'अब हमारा यह सुवर्ण, धान्य, पुत्र, भार्या, अनुचर, गृह आदि हमारे बिना कैसे रहेगा' इस प्रकार की ममता से व्याकुल

बोता है। और मर्मभेदी यमराज के दारुण बाण के समान महाभयङ्कर रोगों से उसके प्राणबन्धन कटने लगते हैं॥ ३७-३९॥

विवर्त्तमानताराक्षि हस्तपादं मुहुः क्षिपन्।
संशुष्यमाणताल्वोष्ठकण्ठो घुरघुरायते॥ ४०॥

शूलेष्वारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रे प्रवेश्यताम्।
तापेन महता व्याप्तस्तृषा चार्त्तस्तथा क्षुधा॥ ४१॥

क्लेशादुत्क्रान्तिमाप्नोति याम्यकिङ्करपीड़ितः।
ततश्च यातनादेहं क्लेशेन प्रतिपद्यते॥ ४२॥
एतान्यन्यानि चोग्राणि दुःखानि मरणे नृणाम्।
शृणुष्व नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषैर्मृतैः॥ ४३॥

उस समय उसकी आँखों की तारे घूमने लगती है और हाथ पैर पटकने लगता है, उसके तालु, कण्ठ, सूख जाते हैं। दोष समूह से कण्ठ बन्द हो जाता है, अतः वह घर्घर शब्द करने लगता है और ऊर्ध्व श्वास से पीड़ित तथा महाताप से व्याप्त होकर क्षुधा-तृष्णा से अत्यन्त क्लेश पाने लगता है। ऐसे समय में वह यमदूतों से अत्यन्त पीड़ित होता हुआ बड़े कष्ट से अपना शरीर त्याग करता है और बहुत क्लेश से अपने कर्मों का फल भोगने के लिए यातना-देह प्राप्त करता है। मरण के समय में ये सभी एवं अन्यान्य अनेक प्रकार के महादुःख उत्पन्न होते हैं, अब, मरणोपरान्त उन्हें नरक में जो यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं वह भी सुनो॥ ४०-४३॥

याम्यकिङ्करपाशादिग्रहणं दण्डताड़नम्।
यमस्य दर्शनञ्चोग्रमुग्रमार्गविलोकनम्॥ ४४॥

करम्भबालुका-वह्नि-यन्त्र-शस्त्रादिभीषणे।
प्रत्येकं नरके याश्च यातना द्विज! दुःसहाः॥ ४५॥

क्रकचैः पीड्यमानानामूषायाञ्चापि धम्यताम्।
कुठारैः कृत्यमानानां भूमौ चापि निखन्यताम्॥ ४६॥

शूलेष्वारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रे, प्रवेश्यताम्।
गृध्रैः सम्भक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभुज्यताम् ॥ ४७ ॥

सर्वप्रथम यमदूत अपने पाशों में बाँध कर प्रेतात्मा के दण्ड से प्रहार करते हैं, पश्चात् यमराज का दर्शन होता है और वहाँ पहुंचने में अनेक प्रकार के भयङ्कर मार्ग देखने पड़ते हैं। हे द्विज ? फिर तप्तबालुका, अग्नि यन्त्र और शस्त्रादि से अतिशय भयङ्कर नरकों में विविध दुःख भोगना पड़ता है। किसी को आरे से चीरा जाता है, किसी को भूस में तपाया जाता है, किसी को कुल्हाड़ियों से काटा जाता है और किसी को भूमि में गाड़ दिया जाता है। और शूली पर चढ़ाये जाने से, सिंह के मुख में डाले जाने से, गिद्धों के नोचने से, हाथियों के द्वारा दलित होने से, किसी किसी को भयङ्कर कष्ट होता है ॥ ४४-४७ ॥

क्वाथ्यतां तैलामध्ये च क्लिश्यतां क्षारकर्द्दमैः।
उच्चान्निपात्यमानानां क्षिप्यतां क्षेपयन्त्रकैः ॥ ४८ ॥

नरके यानि दुःखानि पापहेतूद्भवानि वै।
प्राप्यन्ते नारकैर्विप्र ! तेषां संख्या न विद्यते ॥ ४९ ॥

किसी को तपे हुए तेल में गिराया जाता है, खारे दल दल में फँसने से, ऊपर से नीचे गिराने से और किसी को क्षेपण (फेंकने वाले) यन्त्र द्वारा फेंकने से महान् कष्ट होता है। मनुष्य अपने अपने पापों के कारण नरक में महान् दुःख प्राप्त करते हैं। नरकवासियों को जो सारी यातनाएँ होती है उसकी गणना नहीं की जा सकती ॥ ४८-४९ ॥

न केवलं द्विजश्रेष्ठ नरके दुःखपद्धतिः।
स्वर्गेऽपि पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः ॥ ५० ॥

पुनश्च गर्भे भवति जायते च पुनः पुनः।
गर्भे विलीयते भूयो जायमानोऽस्तमेति च ॥ ५१ ॥

म्रियते जातमात्रश्च बालभावेऽथ यौवने।
मध्यमं वा वयः प्राप्य वार्द्धके वा ध्रुवा मृतिः ॥ ५२ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! केवल नरक में ही दुःख है, ऐसी बात नहीं, किन्तु स्वर्ग से पतन के भय से स्वर्गवासीगण भी क्षय की आशंका से कभी शान्ति प्राप्त नहीं करते हैं । नरक अथवा स्वर्ग भोग के बाद में पुनः जीव गर्भ में प्रवेश करके जन्म लेता है और उसी प्रकार से फिर मृत्यु का ग्रास बनता है । कोई जन्मग्रहण के समय में, कोई बाल्यकाल में, कोई युवावस्था में, कोई प्रौढ होने पर और कोई वृद्ध होने पर निश्चय ही मृत्यु के मुख में गिरता है ॥ ५०-५२ ॥

यावज्जीवति तावच्च दुःखैर्नानाविधैः प्लुतः ।
तन्तुकारणपक्ष्मौघैरास्ते कार्पासबीजवत् ॥ ५३ ॥

द्रव्यनाशे तथोत्पत्तौ पालने च तथा नृणाम् ।
भवन्त्यनेकदुःखानि तथैवेष्टविपत्तिषु ॥ ५४ ॥

यद् यत् प्रीतिकरं पुंसां वस्तु मैत्रेय ! जायते ।
तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति ॥ ५५ ॥

जिस प्रकार कपास का बीज कपस से घिरा रहता है उसी प्रकार जीव जब तक जीवित रहता है तब तक अनेक प्रकार के कष्टों से घिरा रहता है । धन का उपार्जन, संरक्षण और नाश में तथा इष्टमित्रों के वियोग (विनाश) में मनुष्यों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं । हे मैत्रेय ! जो वस्तु मनुष्यों को प्रिय हैं, वे सभी अन्त में दुःखरूपी वृक्ष को बीज हो जाती हैं ॥ ५३-५५ ॥

कलत्र-पुत्र-भृत्यादि-गृह-क्षेत्र-धनादिकैः ।
क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम् ॥ ५६ ॥

स्त्री, पुत्र, दास, गृह, क्षेत्र और धन आदि से मनुष्यों को जितना क्लेश होता है, उसकी अपेक्षा सुख का भाग अत्यन्त अल्प होता है ॥ ५६ ॥

इति संसारदुःखार्क-तापतापितचेतसाम् ।
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ॥ ५७ ॥

तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य पण्डितैः ।
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः ॥ ५८ ॥

निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा ।
भैषज्यं भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मता ॥ ५९ ॥

इन समस्त संसार दुःखरूपी सूर्य के ताप से सन्तप्त चित्त वाले मनुष्यों के लिए मोक्षरूपी वृक्ष की छाया के अतिरिक्त और कहीं सुख नहीं है । अतएव मेरे विचार में गर्भ, जन्म और वृद्धावस्था आदि समय में उत्पन्न होने वाले आध्यात्मिकादि त्रिविध दुःखों का एकमात्र सनातन औषधि भगवत्प्राप्ति ही है । जिसका एक ही लक्षण निरतिशय आनन्दरूप सुख का लाभ है ॥ ५७-५९ ॥

तस्मात् तत्प्राप्तये यत्नः कर्त्तव्यः पण्डितैर्नरैः ।
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानञ्च कर्म्म चोक्तं महामुने ॥ ६० ॥

आगमोत्थं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ।
शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम ॥ ६१ ॥

अन्धं तम इवाज्ञानं दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम् ।
यथा सूर्य्यस्तथा ज्ञानं यद् विप्रर्षे ! विवेकजम् ॥ ६२ ।

हे महामुने ! पण्डितों को सदा भगवत्प्राप्ति के निमित्त प्रयत्न करना चाहिये । कर्म और ज्ञान—ये दोनों ही भगवत्प्राप्ति के कारण हैं । ज्ञान दो प्रकार का है—एक आगम (शास्त्र-जन्य) दूसरा विचार से उत्पन्न । आगम के द्वारा शब्दब्रह्म और विचार के द्वारा परमब्रह्म का ज्ञान होता है । हे विप्रर्षे ! अज्ञान घोर अन्धकार के समान है । उसको विनाश करने के लिए इन्द्रिय से उत्पन्न ज्ञान दीपक के समान है और विवेक से उत्पन्न ज्ञान सूर्य के समान है । अर्थात् प्रदीप जिस प्रकार अन्धकार को विनाश करने में समर्थ होता है उसी प्रकार आगम द्वारा शब्दब्रह्म को जान लेने पर कुछ अज्ञान नष्ट हो जाता है । विवेक द्वारा परम ब्रह्म को जान लेने पर समस्त अज्ञान विनष्ट हो जाता है । जिस प्रकार सूर्य के प्रकाशित होने पर समस्त अन्धकार दूर हो जाता है ॥ ६०-६२ ॥

मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तम !
तदेतच्छ्रुयतामत्र सम्बन्धे गदतो मम ॥ ६३ ॥

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६४ ॥

द्वे विद्ये वेदितव्ये वै इति चाथर्व्वणी श्रुतिः ।
परया त्वक्षरप्राप्तिर्ऋग्वेदादिमयापरा ॥ ६५ ॥

यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ।
अनिर्द्देश्यमरूपञ्च पाणिपादाद्यसंयुतम् ॥ ६६ ॥

विभुं सर्व्वगतं नित्यं भूतयोनिमकारणम् ।
व्याप्यव्याप्तं यतः सर्व्वं तद् वै पश्यन्ति सूरयः ॥ ६७ ॥

तद् ब्रह्म परमं धाम तद् ध्येयं मोक्षकाङ्क्षिभिः ।
श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ६८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस विषय में मनुजी ने वेदार्थ का स्मरणकर जो कुछ कहा है, वह मैं कहता हूँ, सुनो । शब्दब्रह्म और परमब्रह्म के भेद से ब्रह्म दो प्रकार के हैं । प्रथम शब्दब्रह्म को जान लेने पर परमब्रह्म को जान सकता है । इसी प्रकार कर्म और ज्ञान के भेद से विद्या भी दो प्रकार की है अर्थात् कर्मविद्या और ज्ञानरूपविद्या । यह अथर्ववेद श्रुति है और पराविद्या द्वारा अक्षरब्रह्म की प्राप्ति होती है, यह ऋग्वेद श्रुति में कहा गया है । जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, नित्य, अव्यय, अनिदृश्य, अरूप, हस्तपादादि से वर्जित, विभु और भूतों का अदिकारण, व्याप्य व्यापक आदि अनेक रूपों से विराजमान हैं, उन्हीं को मुनिगण ज्ञानचक्षु द्वारा दर्शन करते हैं । वही ब्रह्म है, वही परम धाम है । और मोक्षाभिलाषी मुनिगण उन्हीं का ध्यान करते हैं । उन्हीं को वेद में अतिसूक्ष्म एवं श्रीविष्णु का परमपद कहा गया है ॥ ६३-६८ ॥

तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः ।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः ॥ ६९ ॥

एवं निगदितार्थस्य तत्तत्त्वं तस्य तत्त्वतः ।
ज्ञायते येन तज्ज्ञानं परम्न्यत् त्रयीमयम् ॥ ७० ॥

अशब्दगोचरस्यापि तस्य वै ब्रह्मणो द्विज !
पूजायां भगवच्छब्दः क्रियते ह्यौपचारिकः ॥ ७१ ॥

शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि वर्त्तते ।
मैत्रेय ! भगवच्छब्दः सर्व्वकारणकारणे ॥ ७२ ॥

सम्भर्त्तेति तथा भर्त्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः ।
नेता गमयिता स्त्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने ॥ ७३ ॥

ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य धर्म्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥ ७४ ॥

वसन्ति यत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।
सर्व्वभूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽन्ययः ॥ ७५ ॥

परमात्मा की यह मूर्ति 'भगवत्' शब्द द्वारा वाच्य है और भगवत्, शब्द ही उस अनादि एवं अक्षय परमात्मा का वाचक है । इस प्रकार कहे गये स्वरूपवाले परमात्मा के तत्त्व का जिसके द्वारा वास्तविक ज्ञान होता है, वही परमज्ञान (पराविद्या) है । त्रयीमय ज्ञान (कर्मकाण्ड) इससे भिन्न है (अर्थात् अपरा विद्या है) । हे द्विज ! वह परमब्रह्म यद्यपि शब्द से अगोचर है तथापि पूजा के लिए उसका भगवत् शब्द से कीर्तन किया जाता है । हे मैत्रेय ! विशुद्ध एवं समस्त कारणों का कारण, महाविभूतिशाली वह परमब्रह्म के लिए ही भगवत् शब्द का प्रयोग किया जाता है । हे मुने ! भगवत् शब्द में 'मकार के' दो अर्थ हैं,—भरणकर्ता और सबका आधार । 'गकार का' अर्थ कर्म फल प्राप्त कराने वाले, लय करने वाला और रचना करने वाला है । समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः का नाम 'भग' है । सभी के आत्मभूत उस परमात्मा मे भूतगण निवास करते हैं और वह स्वयं भी सभी भूतों में वास करते हैं, अतएव वह अव्यय ही 'वकार का' अर्थ है ॥ ६९७५ ॥

एवमेष महाशब्दो भगवानिति सत्तम !
परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यतः ॥ ७६ ॥

तत्र पूज्यपदार्थोक्ति-परिभाषासमन्वितः ।
शब्दोऽयं नोपचारेण अन्यत्र हुयपचारतः ॥ ७७ ॥

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति ॥ ७८ ॥

ज्ञान-शक्ति-बलैश्वर्य्य-वीर्य्य-तेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥ ७९ ॥

हे मैत्रेय ! इस प्रकार के अर्थ से युक्त 'भगवत्' यह महान् शब्द परम ब्रह्मस्वरूप वासुदेव के अतिरिक्त अन्य कहीं प्रयुक्त नहीं होता । पूज्यपदार्थसूचक लक्षणों से युक्त इस भगवान् शब्द का केवल परमात्मा में ही व्यवहार होता है अन्यत्र यह गौणरूप से रहता है । कारण, जो समस्त प्राणियों की उत्पत्ति और नाश, आना और जाना तथा विद्या एवं अविद्या को जानता है वही भगवान् शब्द से व्यवहार करने योग्य है । त्याग करने योग्य त्रिविध गुण और उनके क्लेश आदि को परित्याग कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि समस्त सद्गुण भगवत् शब्द द्वारा ही प्रतीत होते हैं ॥ ७६-७९ ॥

सर्व्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।
भूतेषु च स सर्व्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥ ८० ॥

खाण्डिक्यजनकायाह पृष्टः केशिध्वजः पुरा ।
नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः ॥ ८१ ॥

भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत् ।
धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः ॥ ८२ ॥

स सर्व्वभूतप्रकृति विकारान् गुणांश्च दोषांश्च मुने ! व्यतीतः ।
अतीतसर्व्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुवनान्तराले ॥८३ ॥

समस्त प्राणिगण उस परमात्मा में ही निवास करते हैं और सभी के आत्मस्वरूप वह वासुदेव भी सभी प्राणियों में निवास करते हैं, अतएव उनको वासुदेव कहा जाता है । प्राचीनकाल में खाण्डिक्यजनक द्वारा पूछे जाने पर केशिध्वज ने 'वासुदेव' शब्द का अर्थ इस प्रकार से किया था । 'प्रभु सभी प्राणियों में व्याप्त हैं और समस्त प्राणी भी उन्हीं में निवास करते हैं तथा वे ही जगत् के निर्माता एवं रक्षक हैं; अतएव वे वासुदेव कहलाते हैं' हे मुने ! वह परमात्मा स्वयं समस्त आवरणों से रहित हैं । वे समस्त प्राणियों की प्रकृति, विकार गुण एवं उनके कार्य आदि दोषों से भी विलक्षण हैं । पृथिवी और आकाश के बीच में जो कुछ स्थित है वह सब उनसे व्याप्त है ॥ ८०-८३ ॥

समस्तकल्याणगुणात्मको हि स्वशक्तिलेशावृतभूतवर्गः ।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥ ८४ ॥

तेजोबलैश्वर्य्यमहावबोधः स्ववीर्य्यशक्तयादिगुणैकराशिः ।
परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परापरेशे ॥ ८५ ॥
स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपो व्यक्तस्वरूपोऽप्रकटस्वरूपः ।
सर्व्वेश्वरः सर्व्वगः सर्व्ववेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥ ८६ ॥
संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्म्मलमेकरूपम् ।
संदृश्यते वाप्यधिगम्यते वा तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ॥ ८७ ॥

समस्त शुभगुणों के स्वरूप वे परमात्मा अपनी शक्ति के कणमात्र से भूतगण में व्याप्त होकर अपनी इच्छा से अनेक शरीर धारणकर समस्त जगत् का कल्याण करते हैं। वे तेज, बल, ऐश्वर्य, महाविज्ञान, वीर्य तथा शक्ति आदि गुणों की एकमात्र राशि (कोष) हैं और उन परातपर परमेश्वर में अविद्या आदि क्लेशों का अभाव है। वे ईश्वर ही समष्टि और व्यष्टिरूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्तरूप हैं, वे ही सभी के प्रभु, सबके साक्षी एवं सब कुछ जानने वाले हैं तथा उन्हीं सर्वशक्तिमान् का नाम परमेश्वर हैं। जिसके द्वारा निर्दोष, विशुद्ध एकरूप और निर्मल वे देखे अथवा जाने जाते हैं उसी का नाम ज्ञान है (पराविद्या) और जो इसके विपरीत है वही अज्ञान (अपरा विद्या) है ॥ ८४-८७ ॥

श्रीविष्णुपुराण के षष्ठ अंश में पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

षष्ठ अंश - छठा अध्याय

(केशिध्वज और खाण्डिक्य की कथा)

स्वाध्याय-संयमाभ्यां स दृश्यते पुरुषोत्तमः ।
तत्प्राप्तिकारण ब्रह्म तदेतदिति चोच्यते ॥ १ ॥

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमेव च ।
स्वाध्याय-योगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ २ ॥

तदीक्षणाय स्वाध्यायश्चक्षुर्योगस्तथापरम् ।
न मांसचक्षुषा द्रष्टु ब्रह्मभूतः स शक्यते ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—स्वाध्याय और संयम से वे पुरुषोत्तम देखे जाते हैं, ब्रह्मप्राप्ति के कारण होने से ये दोनों भी ब्रह्म कहे जाते हैं । स्वाध्याय से योग का एवं योग से स्वाध्याय का अवलम्बन करे । स्वाध्याय और योगरूप सम्पत्ति से परमात्मा का प्रकाश होता है । अर्थात् ज्ञान का प्रकाश होता है । ब्रह्मस्वरूप परमात्मा को दर्शन के लिए स्वाध्याय और योग दोनों ही चक्षु-स्वरूप हैं । इस चर्मचक्षु से परमात्मा का दर्शन नहीं होता ॥ १-३ ॥

मैत्रेय उवाच ।

भगवंस्तमहं योगं ज्ञातुमिच्छामि तं वद ।
ज्ञाते यत्राखिलाधारं पश्येयं परमेश्वरम् ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन् ! जिस योग को जान लेने पर मैं परमात्मा का दर्शन कर सकूँगा, वह योग क्या है ? मैं उसे जानना चाहता हूँ, आप उसका वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥

पराशर उवाच ।

यथा केशिध्वजः प्राह खाण्डिक्याय महात्मने !
जनकाय पुरा योगं तथाहं कथयामि ते ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—प्राचीनकाल में केशिध्वज ने जिस प्रकार योग का वर्णन महात्मा खाण्डिक्य जनक से किया था, मैं तुमको वही कहता हूँ ॥ ५ ॥

मैत्रेय उवाच ।

खाण्डिक्यः कोऽभवद् ब्रह्मन् को वा केशिध्वजोऽभवत् ।
कथं तयोश्च संवादो योगसम्बन्धवानभूत् ॥ ६ ॥

श्रीमैत्रेय बोले—हे ब्रह्मन् ! यह केशिध्वज और खाण्डिक्य कौन थे ? और उन दोनों का योग सम्बन्धी संवाद किस कारण से हुआ था ? ॥ ६ ॥

पराशर उवाच ।

धर्म्मध्वजो वै जनकस्तस्य पुत्रो मितध्वजः ।
कृतध्वजश्च नाम्ना स सदाध्यात्मरतिर्नृपः ॥ ७ ॥

कृतध्वजस्य पुत्रोऽभूत ख्यातः केशिध्वजो द्विजः ।
पुत्रो मितध्वजस्यापि खाण्डिक्यो जनकोऽभवत् ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—प्राचीनकाल में धर्मध्वज जनक नामक राजा थे । उनके अमितध्वज और कृतध्वज नामके दो पुत्र थे । इनमें कृतध्वज सदा अध्यात्मशास्त्र में लीन रहता था । कृतध्वज का विख्यात पुत्र केशिध्वज हुआ और अमित ध्वज का पुत्र खाण्डिक्य जनक था ॥ ७-८ ॥

कर्म्ममार्गेऽति खाण्डिक्यः पृथिव्यामभवत् कृती ।
केशिध्वजोऽप्यतीवासीदात्मविद्याविशारदः ॥ ९ ॥

भूमण्डल में खाण्डिक्य कर्ममार्ग में अतिशय निपुण हुआ था और केशिध्वज अध्यात्मविद्या में परम प्रवीण था ॥ ९ ॥

तावुभावपि चैवास्तां विजिगीषू परस्परम् ।
केशिध्वजेन खाण्डिक्यः स्वराष्ट्रादवरोपितः ॥ १० ॥

पुरोधसा मन्त्रिभिश्च समवेतोऽल्पसाधनः ।
राज्यान्निराकृतकः सोऽथ दुर्गारण्यचरोऽभवत् ॥ ११ ॥

इयाज सोऽपि सुबहून् यज्ञान् ज्ञानव्यपाश्रयः ।
ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय तर्त्तुं मृत्युमविद्यया ॥ १२ ॥

ये दोनों आपस में एक दूसरे को पराजित करने के लिए सचेष्ट रहते थे। कालान्तर में केशिध्वज ने खाण्डिक्य को राज्यभ्रष्ट कर दिया। राज्यच्युत होने पर वे पुरोहित और मन्त्रिगण एवं अल्प सामग्री लेकर दुर्गम वन में चले गये। केशिध्वज राजा ने ज्ञाननिष्ठ, होकर भी अविद्या (कर्म) द्वारा मृत्यु को पार करने के लिए ज्ञानदृष्टि रखते हुए अनेकों यज्ञ किये ॥ १०-१२ ॥

एकदा वर्त्तमानस्य योगे योगविदां वर !
धर्म्मधेनुं जघानोग्र-शार्दूलो विजने वने ॥ १३ ॥

ततो राजा हतं ज्ञात्वा धेनुं व्याघ्रेण ऋत्विजः ।
प्रायश्चित्तं स पप्रच्छं किमत्रेति विधीयते ॥ १४ ॥

ते चोचुर्न वयं विद्मः कशेरुः पृच्छ्यतामिति ।
कशेरुरपि तेनोक्तस्तथैव प्राह भार्गवम् ॥ १५ ॥

शुनकं पृच्छ राजेन्द्र ! नाहं वेद्मि स वेत्स्यति ।
स गत्वा तमपृच्छच्च सोऽप्याह श्रृणु यन्मुने ॥ १६ ॥

हे योगिश्रेष्ठ ! एक दिन राजा केशिध्वज जब यज्ञानुष्ठान में विराजमान थे तब हवि के लिए दूध देने वाली उनकी धेनु को निर्जन वन में एक भयङ्कर व्याघ्र ने हत्या कर दी। व्याघ्र के द्वारा गौ को मारे जाने का समाचार सुनकर राजा ने ऋत्विजों से पूछा कि 'इसमें क्या प्रायश्चित करने का विधान है' ? । ऋत्विजों ने कहा—'हम लोग इस विषय में नहीं जानते। आप कशेरु से जिज्ञासा कीजिये।' राजा ने जब कशेरु से पूछा तब उन्होंने भी कहा कि हे राजेन्द्र ! 'मैं इस वषय में नहीं जानता। आप भृगु के पुत्र शुनक से पूछिये, वे निश्चय जानते होंगे।' हे मुने ! राजा ने जब जाकर शुनक से पूछा तब उन्होंने जो कहा उसे सुनो ॥ १४-१६ ॥

न कशेरुर्न चैवाहं न चान्यः साम्प्रतं भुवि।
वेत्त्येक एव त्वच्छत्रुः खाण्डिक्यो यो जितस्त्वया॥ १७॥

हे राजन् ! कशेरु, मैं अथवा अन्य कोई भी इस समय भूमण्डलपर इस विषय को नहीं जानता, किन्तु जो तुमसे पराजित हुए हैं एकमात्र वही तुम्हारा शत्रु खाण्डिक्य ही इस विषय को जानता है॥ १७॥

स चाहं तं प्रयाम्येष प्रष्टुमात्मरिपुं मुने !
प्राप्त एव मया यज्ञो यदि मां स हनिष्यति॥ १८॥

प्रायश्चित्तमशेषेण यदि पृष्टो वदिष्यति।
ततश्चाविकलो यागो मुनिश्रेष्ठ ! भविष्यति॥ १९॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य कृष्णाजिनधरो नृपः !
वनं जगाम यत्रास्ते खाण्डिक्यः स महामतिः॥ २०॥

तमायान्तं समालोक्य खाण्डिक्यो रिपुमात्मनः।
प्रोवाच क्रोधताम्राक्षः समारोपितकार्म्मुकः॥ २१॥

कृष्णाजिनं त्वं कवचमावध्यास्मान्निहंस्यसि।
कृष्णाजिनधरे वेत्सि न मयि प्रहरिष्यति॥ २२॥

मृगाणां वत् पृष्ठेषु मूढ़ ! कृष्णाजिनं न किम् ?
येषां त्वया मया चोग्राः प्रहिताःशितसायकाः॥ २३॥

स त्वामहं हनिष्यामि न मे जीवन विमोक्ष्यसे।
आततायस्यसि दुर्बुद्धे ! मम राष्ट्रहरो रिपुः॥ २४॥

खाण्डिक्य ! संशयं प्रष्टुं भवन्तमहमागतः।
न त्वां हन्तुं विचार्य्यैतत् कोपं वाण्ञ्च मुञ्च च॥ २५॥

इसके बाद केशीध्वज बोले हे मुने ! मैं प्रायश्चित पूछने के लिए अपने शत्रु के समीप जाऊँगा। यदि वह मेरी हत्या कर देगा तब मुझे यज्ञ का फल प्राप्त होगा अथवा पूछे जाने पर इस प्रायश्चित का विषय शास्त्रानुकूल कहा तो भी मेरा यज्ञ निर्विघ्न समोप्त हो जायगा। श्रीपराशरजी बोले—ऐसी बात कहकर राजा कृष्ण-

मृगचर्म धारणकर रथपर चढ़ा और जहाँ महामति खाण्डिक्य निवास करते थे वहाँ प्रस्थान किया। अपने शत्रु उस केशिध्वज को आते हुए देखकर खाण्डिक्य ने धनुष चढ़ा लिया और क्रोध से अपनी आँखें लाल करके कहा। खाण्डिक्य बोले—क्या तुम कृष्ण मृगचर्मरूप कवच धारणकर हम लोगों का वध करेगा? अथवा क्या तुम यह समझ रहा है कि कृष्णमृगचर्म धारण किये हुए मुझपर प्रहार नहीं करेगा। हे मूर्ख! क्या मृगों की पीठ पर कृष्णमृगचर्म नहीं होता जिनके ऊपर मैंने और तुमने तेज बाणों की वर्षा की है। अतएव मैं तुम्हें अवश्य मारूँगा, अब तुम जीवित बचकर यहाँ से नहीं जा सकते। हे दुर्बुद्धे! तुम अततायी हो, मेरा राज्य हरण करने वाले शत्रु हो। केशीध्वज ने कहा—हे खाण्डिक्य? हमारे कुछ प्रश्न तुमसे हैं, उसी को पूछने के लिए यहाँ आया हूँ। मैं आपका वध करने के लिए नहीं आया, अतएव तुम क्रोध और बाण दोनों का परित्याग करो ॥ १८-२५ ॥

ततः स मन्त्रिभिः सार्द्धमेकान्ते सपुरोहितः।
मन्त्रयामास खाण्डिक्यः सर्व्वै रेव महामतिः ॥ २६ ॥

तमूचुर्मन्त्रिणो वध्यो रिपुरेष वशं गतः।
हते तु पृथिवी सर्व्वा तव वश्या भविष्यति ॥ २७ ॥

खाण्डिक्यश्चाह तान् सर्व्वानेतदेवं न संशयः।
हते तु पृथिवी सर्व्वा मम वश्या भविष्यति ॥ २८ ॥

परलोकजयस्तस्य पृथिवी सकला मम।
न हन्मि चेल्लोकजयो मम तस्य वसुन्धरा।
नाहं मन्ये लोकजयादधिका स्याद् वसुन्धरा ॥ २९ ॥

परलोकजयोऽनन्तः स्वल्पकालो महीजयः।
तस्मादेनं न हिंसिष्ये यत् पृच्छति वदामि तत् ॥ ३० ॥

श्रीपराशरजी बोले—वही बात सुनकर महामति खाण्डिक्य ने अपने पुरोहित और मन्त्रियों के साथ एकान्त में विचार किया। मन्त्रियों ने कहा—जब शत्रु आपके वश में आया है तब उसका वध करना ही आपका कर्तव्य है। कारण शत्रु का विनाश होने से समस्त पृथिवी आपके वश में हो जायगी।

खाण्डिक्य ने उन सभी से कहा—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इसके मारे जाने पर इसे केशिध्वज को पारलौकिक विजय प्राप्त होगी और मुझे समस्त पृथिवी का लाभ होगा, किन्तु यदि मैं इसका वध न करूं तो पारलौकिक जय मेरी होगी इसको केवल पृथिवी मिलेगी। मैं पारलौकिक जय से पृथिवी को अधिक नहीं मानता हूँ। परलोक की विजय अनन्तकाल के लिए और पृथिवी की विजय स्वल्पकाल के लिए होती है। अतएव मैं इसका वध नहीं करूँगा, किन्तु यह जो पूछेगा मैं उसी का उत्तर दूँगा ॥ २६-३० ॥

ततस्तमभ्युपेत्याह खाण्डिक्यजनको रिपुम्।
प्रष्टव्यं यत्त्वया सर्व्वं तत् पृच्छत्व वदाम्यहम्॥ ३१ ॥

ततः सर्व्वं यथावृतं धर्म्मधेनुवधं द्विज!
कथयित्वा स पप्रच्छ प्रायश्चित्तं हि तद्गतम्॥ ३२ ॥

स चाचष्ट यथान्यायं द्विज! केशिध्वजाय तत्।
प्रायश्चित्तमशेषेण यद् वै तत्र विधीयते॥ ३३ ॥

विदितार्थः स तेनैवं सोऽनुज्ञातो महात्मना।
यागभूमिमुपाश्रित्य चक्रे सर्व्वाः क्रियाः क्रमात्॥ ३४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद वे खाण्डिक्य जनक केशिध्वज के समीप जाकर बोले—तुम्हें जो पूछना हो पूछो मैं उसका उत्तर दूँगा। श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! तदनन्तर केशिध्वज राजा ने जिस प्रकार धर्मधेनु का वध हुआ था वह सब वृत्तान्त उसे कहकर उसका प्रायश्चित्त पूछा। हे द्विज! उसके बाद खाण्डिक्य जनक ने न्याय के अनुसार केशिध्वज को गोवध का समस्त प्रायश्चित कह दिया। अनन्तर महात्मा खाण्डिक्य से समस्त विधान समंझ कर और उनकी आज्ञा प्राप्त करके राजा केशिध्वज ने यज्ञभूमि में आकर क्रमशः समस्त कर्म सम्पूर्ण किया॥ ३१-३४ ॥

क्रमेण विधिवद् यागं नीत्वा सोऽवभृथाप्लुतः।
कृतकृत्यस्ततो भूत्वा चिन्तयामास पार्थिवः॥ ३५ ॥

पूजिता ऋत्विजः सर्व्वे सदस्या मानिता मया।
तथैवार्थिजनोऽप्यर्थैर्योजितोऽभिमतैर्यथा ॥ ३६ ॥

यथार्हमस्य लोकस्य मया सर्व्वं विचेष्टितम्।
अनिष्पन्नक्रियं चेतस्तथापि मम किं यथा ॥ ३७ ॥

इति सञ्चिन्त्य यत्नेन सस्मार स महीपतिः।
खाण्डिक्याय न दत्तेति मया वै गुरुदक्षिणा ॥ ३८ ॥

जगाम च ततो भूयो रथमारुह्य पार्थिवः।
मैत्रेय ! दुर्गगहनं खाण्डिक्यो यत्र संस्थितः ॥ ३९ ॥

खाण्डिक्योऽपि तथायान्तं पुनर्दृष्ट्वा धृतायुधः।
तस्थौ हन्तुं कृतमतिस्तथाह स पुनर्नृपः ॥ ४० ॥

भो नाहं तेऽपकाराय प्राप्तः खाण्डिक्य ! मा क्रुधः।
गुरोर्निष्क्रयदानाय मामवेहि त्वमागतम् ॥ ४१ ॥

पुनः कालक्रम से यज्ञ समाप्ति के बाद अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करके कृतकृत्य होकर राजा केशिध्वज ने विचार किया। मैंने समस्त ऋत्विजों की यथाविधि पूजा की, सदस्यगण का सम्मान किया और याचकों को इच्छानुसार वस्तुएँ दी। इस संसार में मनुष्य को जो करना चाहिये वह सब मैंने कर दिया, तथापि मेरे मन में किसी कर्म का अभाव मालूम पड़ता है। इस प्रकार विचारते हुए राजा को स्मरण आया कि अभी तक मैंने खाण्डिक्य को गुरुदक्षिणा प्रदान नहीं की। हे मैत्रेय ! इसके बाद वह राजा केशिध्वज रथपर चढ़कर खाण्डिक्य जहाँ रहते थे उसी गहन वन में पहुंचे। खाण्डिक्य भी उसको शस्त्र धारण कर आते हुए देख कर पुनः मारने के लिए तैयार हुए, तब केशिध्वज बोले। हे खाण्डिक्य ! मैं यहाँ तुम्हारा किसी प्रकार के अपकार करने के लिए नहीं आया हूँ, अतएव तुम शान्त रहो, क्रोध न करो। मैं गुरुदक्षिणा देने के लिए आया हूँ, ऐसा जानो ॥ ३५-४१ ॥

निष्पादितो मया यागः सम्यक् त्वदुपदेशतः।
सोऽहं ते दातुमिच्छामि वृणुष्व गुरुदक्षिणाम् ॥ ४२ ॥

तुम्हारे उपदेश से मेरा यज्ञ अच्छी प्रकार सम्पन्न हुआ, अब मैं तुमको गुरुदक्षिणा देने की इच्छा करता हूँ, जो इच्छा माँग लो ॥ ४२ ॥

भूयः स मन्त्रिभिः सार्द्धं मन्त्रयामास पार्थिवः।
गुरुनिष्कृतिकामोऽत्र किमयं प्रार्थ्यतामिति ॥ ४३ ॥

तमूचुर्मन्त्रिणो राज्यमशेषं प्रार्थ्यतामिति।
कृतिभिः प्रार्थ्यते राज्यमनायासितसैनिकैः ॥ ४४ ॥

प्रहस्य तानाह नृपः स खाण्डिक्यो महामतिः।
स्वल्पकालं महीराज्यं मादृशैः प्रार्थ्यते कथम् ॥ ४५ ॥

एवमेतद्भवन्तोऽत्र ह्यर्थसाधनमन्त्रिणः।
परमार्थः कथं कोऽत्र यूयं नात्र विचक्षणाः ॥ ४६ ॥

इत्युक्त्वा समुपेत्यैनं स तु केशिध्वजं नृपम्।
उवाच किमवश्यं त्वं ददासि गुरुदक्षिणाम् ॥ ४७ ॥

बाढ़मित्येव तेनोक्तः खाण्डिक्यस्तमथाब्रवीत्।
भवानध्यात्मविज्ञानपरमार्थविचक्षणः ॥ ४८ ॥

यदि चेद्दीयते मह्यं भवता गुरुनिष्क्रयः।
तत् क्लेशप्रशमायालं यत् कर्म्म तदुदीरय ॥ ४९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद पुनः खण्डिक्य ने अपने मन्त्रियों के साथ विचार किया कि 'केशिध्वज मुझे गुरुदक्षिणा देने आया है, इससे मैं क्या मांगूँ ?'। मन्त्रियों ने कहा—हे राजन् ! आप इससे समस्त राज्य माँग लीजिये, बुद्धिमान् मनुष्य अपनी सेना को कष्ट दिये बिना शत्रुयों से राज्य ही माँगते हैं। अनन्तर उनके वचन को सुनकर हँसते हुए खाण्डिक्य ने कहा—मेरे समान व्यक्ति अल्पकालतक ही रहने वाले राज्य की याचना कैसे कर सकते हैं। यह उचित है कि आप लोग मुझे स्वार्थसाधन-निमित्त परामर्श देने वाले हैं, किन्तु परमार्थ क्या है ? कैसा है ? इस विषय के ज्ञाता आप लोग नहीं हैं। श्रीपराशरजी बोले—मन्त्रिगण से ऐसी बात कहकर खाण्डिक्य केशिध्वज के समीप आकर बोले'—क्या तुम मुझे अवश्य गुरुदक्षिणा दोगे ?। केशिध्वज बोले—हां 'मैं अवश्य गुरुदक्षिणा दूँगा' तब

खाण्डिक्य ने कहा—तुम अध्यात्मज्ञानस्वरूप परमार्थ विद्या में अत्यन्त निपुण हो । सो यदि तुम गुरुदक्षिणा देने की इच्छा करते हो तो जिस कर्म को करने से समस्त क्लेशों की शान्ति करने में समर्थ हो वही मुझे कहो ॥ ४३-४९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के षष्ठ अंश में छठा अध्याय समाप्त ।

षष्ठ अंश - सातवाँ अध्याय

(ब्रह्मयोग का वर्णन)

न प्रार्थितं त्वया कस्मान्मम राज्यमकण्टकम्।
राज्यलाभाद् विना नान्यत् क्षत्रियाणामतिप्रियम्॥ १॥

केशिध्वज! निबोध त्वं मया न प्रार्थितं यतः।
राज्यमेतदशेषं ते यत्र गृध्यन्त्यपण्डिताः॥ २॥

केशिध्वज बोले—तुमने मुझ से निष्कण्टक राज्य की याचना क्यों नहीं की? क्योंकि क्षत्रियों के लिए राज्य प्राप्ति से बढ़कर और कुछ प्रिय नहीं है। खाण्डिक्य बोले—हे केशिध्वज! मूर्खलोग ही सदा राज्य के लिए लोलुप होते हैं। मैंने विशाल राज्य की याचना क्यों नहीं की; वह सुनो॥ १-२॥

क्षत्रियाणामयं धर्म्मो यत् प्रजापरिपालनम्।
वधश्च धर्म्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्थिनाम्॥ ३॥

यत्राशक्तस्य मे दोषो नैवास्त्यपहृते त्वया।
बन्धायैव भवत्येषा अविद्याप्यक्रमोज्झिता॥ ४॥

जन्मोपभोगलिप्सार्थमियं राज्यस्पृहा मम।
अन्येषां दोषजा नैषा धर्म्ममेवानुरुध्यते॥ ५॥

न याच्ञा क्षत्रबन्धूनां धर्म्मो ह्येतत् सतां मतम्।
अतो न याचितं राज्यमविद्यान्तर्गतं तव॥ ६॥

राज्ये गृध्यन्त्यविद्वांसो ममत्वाहतचेतसः।
अहम्मानमहापान-मदमत्ता न मादृशः॥ ७॥

प्रजापालन और राज्य के विरोधियों को धर्म-युद्ध से वध करना यही क्षत्रियों का धर्म है। किन्तु शक्तिहीन होने के कारण यदि तुमने मेरा राज्य हरण कर लिया तो असमर्थता के कारण प्रजापालन न करने पर भी मुझे कोई दोष होगा नहीं। किन्तु राज्याधिकार ग्रहण कर प्रजा को धर्मानुकूल पालन न करने से ही दोष होगा। क्योंकि यद्यपि यह अपना कर्म अविद्या ही है तथापि नियमविरुद्ध त्याग करने से यह बन्धन का कारण होती है। यह राज्यस्पृहा हमारे जन्मान्तर में किये गये कर्मसमूह से प्राप्त सुख भोग के लिए होगी और वही मन्त्री आदि अन्य लोगों को राग एवं लोभ आदि दोषसमूह से उत्पन्न होती हैं, केवल धर्मानुरोध से नहीं। उत्तम क्षत्रियों के लिए राज्य आदि की याचना धर्म नहीं माना गया है, यह महात्माओं का मत है। अतएव मैंने अविद्या के अन्तर्गत तुम्हारे राज्य की याचना नहीं की। अहङ्काररूपी मद्य का पानकर जो लोग उन्मत्त होते हैं, तथा जिनका चित्त ममताग्रस्त हो रहा है, ऐसे मूढ लोक ही राज्य की कामना करते हैं किन्तु मेरे समान व्यक्ति राज्य की कामना नहीं करते ॥ ३-७ ॥

प्रहृष्टः साध्विति प्राह ततः केशिध्वजो नृपः।
खाण्डिक्यजनकं प्रीत्या श्रूयतां वचनं मम ॥ ८ ॥

अहन्त्वविद्यामृत्युञ्च तर्त्तुकामः करोमि वै।
राज्यं यागांश्च विविधान् भोगैः पुण्यक्षयं तथा ॥ ९ ॥

तदिदं ते मनो दिष्ट्या विवेकैश्वर्य्यतां गतम्।
श्रूयतां चाप्यविद्यायाः स्वरूपं कुलनन्दन ॥१० ॥

श्रीपराशरजी बोले—केशिध्वज राजा ने प्रसन्न होकर खाण्डिक्य जनक को साधुवाद दिया और प्रसन्नतापूर्वक कहा कि मेरा वचन सुनो। मैं अविद्यारूप (प्रजापालनादि) क्रियाद्वारा मृत्यु को पार करने की कामना से राज्य एवं विविध यज्ञों का सम्पादन करता हूँ और अनेक भोगों द्वारा अपने पुण्यों का भी क्षय करता हूँ। हे कुलनन्दन ! बहुत बड़ा भाग्य है कि तुम्हारा मन विवेकसम्पन्न हुआ है, इसलिए अब तुम अविद्या का स्वरूप सुनो ॥ ८-१० ॥

अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या अस्वे स्वमिति यामतिः।
अविद्यातरुसम्भूतेर्बीजमेतद् द्विधा स्थितम् ॥ ११ ॥

पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहतमोवृतः ।
अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम् ॥ १२ ॥

आकाश-वाय्व-ग्नि-जल-पृथिवीभ्यः पृथक् स्थिते ॥
आत्मन्यात्मयं भावं कः करोति कलेवरे ॥ १३ ॥

कलेवरोपभोग्यं हि गृहक्षेत्रादिकञ्च कः ।
अदेहे ह्यात्मनि प्राज्ञो ममेदमिति मन्यते ॥ १४ ॥

इत्थञ्च पुत्र-पौत्रेषु तद्देहोत्पादितेषु कः ।
करोति पण्डितः स्वाम्यमनात्मनि कलेवरे ॥ १५ ॥

सर्व्वं देहोपभोगाय कुरुते कर्म्म मानवः ।
देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा बन्धाय तत्परम् ॥ १६ ॥

मृन्मयञ्च यथा गेहं लिप्यते च मृदम्भसा ।
पार्थिवोऽयं तथा देहो मृदन्नालेपनस्थितिः ॥ १७ ॥

संसाररूपी वृक्ष के बीजस्वरूप यह अविद्या दो प्रकार की है—अनात्मा में आत्मबुद्धि और जो अपना नहीं है उसे आत्मबुद्धि (अपना) मानना। यह कुमति जीव मोहरूपी अन्धकार से आवृत्त होकर पञ्चभूतात्मक देह में आत्मबुद्धि अर्थात् मैं और मेरा का भाव रखता है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि से जब आत्मा सर्वथा अलग है तब कौन बुद्धिमान् मनुष्य इस शरीर में आत्मबुद्धि करेगा। और कौन प्राज्ञ मनुष्य आत्मा को देह से अलग होने पर भी देह के उपभोग्य गृह, क्षेत्र आदि में अपनापन का भाव रखेगा। इस प्रकार इस आत्मा को शरीर से भिन्न होने के कारण इससे उत्पन्न पुत्र-पौत्रादि में भी कौन बुद्धिमान् अपनापन का भाव करेगा। मनुष्य समस्त कर्म देह के ही उपभोग के लिए करता है, किन्तु जब यह देह अपने से अलग है, तब किये जाते हुए समस्त कर्म केवल देहोत्पत्तिरूप बन्धन के लिए होते हैं। जैसे मिट्टी के घर को मिट्टी और जल से लीपते हैं ठीक वैसे ही यह पार्थिव शरीर भी मृन्मय अन्न और जल की ही सहयता से स्थिर रहता है॥ ११-१७ ॥

पञ्चभूतात्मकैर्भोगैः पञ्चभूतात्मकं वपुः ।
आप्यायते यदि ततः पुंसो गर्व्वोऽत्र किं ततः ॥ १८ ॥

अनेकजन्मसाहस्रीं संसारपदवीं व्रजन् ।
मोहश्रमं प्रयातोऽसौ वासनारेणुगुण्ठितः ॥ १९ ॥

प्रक्षाल्यते यदा सोऽस्य रेणुर्ज्ञानोष्णवारिणा ।
तदा संसारपान्थस्य याति मोहश्रमः शमम् ॥ २० ॥

मोहश्रमे शमं याते स्वस्थान्तःकरणः पुमान् ।
अनन्यातिशयाबाधं परं निर्व्वाणमृच्छति ॥ २१ ॥

निर्व्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः ।
दुःखाज्ञानमला धर्म्माः प्रकृतेस्ते तु नात्मनः ॥ २२ ॥

जलस्य नाग्निसंसर्गः स्थालीसङ्गात्तथापि हि ।
शब्दोद्रेकादिकान् धर्म्मास्तत् करोति यथा मुने ॥ २३ ॥

तथात्मा प्रकृतेः सङ्गादहम्मानादिदूषितः ।
भजते प्राकृतान् धर्म्मानभ्यस्तेभ्यो हि सोऽव्ययः ॥ २४ ॥

तदेतत् कथितं बीजमविद्यायास्तव प्रभो !
क्लेशानाञ्च क्षयकरं योगादन्यन्न विद्यते ॥ २५ ॥

यदि पञ्चभूतों से बना हुआ यह शरीर पाञ्चभौतिक पदार्थों से पुष्ट होता है तो इसमें पुरुष ने क्या उपभोग किया ? अनेक सहस्रों जन्मोंतक संसार में भ्रमण करता हुआ और वासनारूपी धूलि से ढका हुआ यह जीव केवल मोह रूपी परिश्रम को ही प्राप्त करता है । किन्तु जब ज्ञानरूपी गरम जल से उसकी मोहरूप धूलि धो दी जाती है तब संसारपथ के पथिक का मोहरूपी श्रम मिट जाता है । मोहरूपी श्रम को शान्त होने पर स्वस्थ (स्वच्छ) अन्तःकरणवाला पुरुष निरतिशय और निर्बाध परम निर्वाणपद पा लेता है । यह ज्ञानमय निर्मल आत्मा निर्वाणस्वरूप ही है, दुःख और अज्ञान आदि प्रकृति के धर्म है, आत्मा के नहीं । हे मुने ! जिस प्रकार स्थाली में स्थित जल अग्नि के संसर्ग न होने पर भी केवल स्थाली के अग्नि से संसर्ग होने के कारण वह जल उच्छलता और शब्दादि धर्म प्राप्त करता है, उसी प्रकार प्रकृति

के संसर्ग होने से वह अव्ययं आत्मा अभिमानादि से दूषित होकर प्राकृतिक धर्म का भोग करता है । हे प्रभो ! मैंने यह अविद्या के बीज का वर्णन किया, क्लेशसमूह को नाश करने के लिए योग के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ॥ १८-२५ ॥

तन्तु ब्रूहि महाभाग ! योगं योगविदुत्तम !
विज्ञातयोगशास्त्रार्थस्त्वमस्यां निमिसन्ततौ ॥ २६ ॥

खाण्डिक्य बोले—हे योगज्ञाताओं,में श्रेष्ठ ! हे महाभाग केशिध्वज ! तुम मुझे उस योग का स्वरूप कहो, क्योंकि निमिवंश में तुम ही विशेषरूप से योगशास्त्र के ज्ञाता हो ॥ २६ ॥

योगस्वरूपं खाण्डिक्य ! श्रूयतां गदतो मम ।
यत्र स्थितो न च्यवते प्राप्य ब्रह्मलयं मुनिः ॥ २७ ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्तयै निर्व्विषयं तथा ॥ २८ ॥

विषयेभ्यः समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः ।
चिन्तयेन्मूक्तये तेन ब्रह्मभूतं परेश्वरम् ॥ २९ ॥

आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्म ध्यायिनं मुनिम् ।
विकार्य्यमात्मनः शक्त्या लोहमाकर्षको यथा ॥ ३० ॥

केशिध्वज बोले—हे खाण्डिक्य ! मैं योग का स्वरूप कहता हूँ तुम श्रवण करो जिस योग का अवलम्बन कर ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ मुनि पुनः संसार में नहीं आता । मनुष्य का मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है, मन जब विषय में आसक्त होता है तब बन्धन में और जब विषय का परित्याग करता है तब मुक्ति का कारण बनता है । अतएव ज्ञानी मुनिगण विषयों से अपने मन को अलग कर मुक्ति के लिये ब्रह्मस्वरूप परमेश्वर का ध्यान करते हैं । हे मुने ! जिस प्रकार चुम्बक पत्थर द्वारा लोहा खींच लिया जाता है उसी प्रकार ब्रह्म या विचार करने पर स्वभावतः योगी को परमात्मा आत्मभाव की ओर खींच लेता है ॥ २६-३० ॥

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते ॥ ३१ ॥

एवमत्यन्तवैशिष्ट्ययुक्तकर्म्मोपलक्षणः ।
यस्य योगस्य वै योगी मुमुक्षुरभिधीयते ॥ ३२ ॥

आत्मज्ञान के लिए प्रयत्नभूत यम, नियमादि की अपेक्षा रखने वाली जो मन की विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्म के साथ संयोग स्थापना का नाम 'योग' है । इस प्रकार के विशिष्ट कर्मद्वारा जिस का योग उपलक्षित होता है, उसी व्यक्ति को योगी और मुमुक्षु कहा जाता है ॥ ३१-३२ ॥

योगयुक् प्रथमं योगी युञ्जानो ह्यभिधीयते ।
विनिष्पन्नसमाधिस्तु परं ब्रह्मोपलब्धिमान् ॥ ३३ ॥

सर्वप्रथम योगी जिस समय योगयुक्त होता है उस समय उसको युञ्जान कहा जाता है और क्रमशः समाधि सम्पन्न होने पर उसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

यद्यन्तरायदोषेण दूष्यते नास्य मानसम् ।
जन्मान्तरैरभ्यसतो मुक्तिः पूर्व्वस्य जायते ॥ ३४ ॥

विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्तिं तत्रैव जन्मनि ।
प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्म्मचयोऽचिरात् ॥ ३५ ॥

ब्रह्मचर्य्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहान् ।
सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां स्वमनो नयन् ॥ ३६ ॥

स्वाध्याय-शौच-सन्तोष-तपांसि नियतात्मवान् ।
कुर्व्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन् प्रवणं मनः ॥ ३७ ॥

एते यमाः सनियमाः पञ्च पञ्च प्रकीर्त्तिताः
विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामाणां विमुक्तिदाः ॥ ३८ ॥

एकं भद्रासनादीनां समास्थाय गुणैर्युतः ।
यमाख्यैर्नियमाख्यैश्च युञ्जीत नियतो यतिः ॥ ३९ ॥

प्राणाख्यमनिलं वश्यमभ्यासात् कुरुते तु यत् ।
प्राणायामः स विज्ञेयः सबीजोऽबीज एव च ॥ ४० ॥

यदि पूर्वोक्त युञ्जान योगी का मन किसी विघ्नवश दूषित हो जाय तब वह अभ्यास बल से जन्मान्तर में मुक्तिलाभ करता है । किन्तु 'समाधिसम्पन्न' योगी उसी जन्म में ही मुक्तिलाभ कर लेता है कारण उसका समस्त कर्मसमूह योगाग्नि से उसी जन्म में भस्म हो जाता है । योगी को चाहिये कि अपने मन को ब्रह्म चिन्तन के योग्य बनाता हुआ ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह (किसी से कुछ न लेना) को निष्काम भाव से अवलम्बन करे । संयतचित्त होकर स्वाध्याय, शौच, सन्तोष, तपस्या का अवलम्बन करता हुआ मन को सदा परमब्रह्म के चिन्तन में लगाये । उपरोक्त पाँच-पाँच यम और नियम कहे गये हैं । सकामभाव से इनका सेवन करने से अलग अलग फल मिलते हैं और निष्कामभाव से सेवन करने से मोक्ष मिलता है । भद्रासन आदि में किसी एक का अवलम्बन कर गुनवान् यति यम, नियम आदि गुणों से युक्त होकर संयतचित्त से योग का अभ्यास करें । अभ्यास के द्वारा प्राण वायु को जिसके द्वारा वशीभूत किया जाता है उसका नाम 'प्राणायाम' है । सबीज और निर्बीज भेद से प्राणायाम दो प्रकार का होता है ॥ ३४-४० ॥

परस्परेणाभिभवं प्राणापानौ यदानिलौ ।
कुरुतः सद्विधानेन तृतीयः संयमात्तयोः ॥ ४१ ॥

तस्य चालम्बनवतः स्थूलं रूपं द्विजोत्तम !
आलम्बनमनन्तस्य योगिनोऽभ्यसतः स्मृतम् ॥ ४२ ॥

शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित् ।
कुर्य्याच्चित्तानुचारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥ ४३ ॥

वश्यता परमा तेन जायतेऽतिचलात्मनाम् ।
इन्द्रियाणामवश्यैस्तैर्न योगी योगसाधकः ॥ ४४ ॥

प्राणायामेन पवनैः प्रत्याहारेण चेन्द्रियैः ।
वशीकृतैस्ततः कुर्य्यात् स्थिरं चेतः शुभाश्रये ॥ ४५ ॥

सद्गुरु के उपदेश से विशेष प्रणाली के अनुसार परिचालित होकर जब योगी प्राण और अपान वायु के द्वारा एक दूसरे को निरोध करता है तब क्रमशः पूरक और रेचक नाम के दो प्राणायाम होते हैं और इन दोनों को एक ही समय संयम करने से तीसरा कुम्भक नाम का प्राणायाम होता है। हे द्विजोत्तम! जब योगी सबीज प्राणायाम आरम्भ करता है तब उसका अवलम्बन अनन्त भगवान् का स्थूलरूप होता है। क्रमशः प्रत्याहार में परायण होकर शब्द आदि विषयों में लगी हुई इन्द्रियगण को निग्रह करके अपने चित्त को अनुकूल बनाता है। इससे अत्यन्त चञ्चल स्वभाववाले इन्द्रियगण वशीभूत होते हैं और इन्द्रियों को वशीभूत किये बिना कोई भी योगी योगसाधन नहीं कर सकता। इस प्रकार प्राणायामद्वारा वायु को और प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को वशीभूत करके चित्त को शुभ आश्रय में सुस्थिर करे॥ ४१-४५॥

कथ्यतां मे महाभाग! चेतसो यः शुभाश्रयः।
यदाधारमशेषं तद्धन्ति दोषसमुद्भवम्॥ ४६॥

आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः।
भूप! मूर्त्तममूर्त्तञ्च परञ्चापरमेव च॥ ४७॥

त्रिविधा भावना भूप! विश्वमेतन्निबोध मे।
ब्रह्माख्या कर्म्मसंज्ञा च तथा चैवोभयात्मिका॥ ४८॥

ब्रह्मभावात्मिका ह्येका कर्म्मभावात्मिका परा।
उभयात्मिका तथैवान्या त्रिविधा भावभावना॥ ४९॥

सनन्दनादयो ब्रह्मन् ब्रह्मभावनया युताः।
कर्म्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावराश्चराः॥ ५०॥

हिरण्यगर्भादिषु च ब्रह्मकर्म्मात्मिका द्विधा।
बोधाधिकारयुक्तेषु विद्यते भावभावना॥ ५१॥

खाण्डिक्य बोले—हे महाभाग! जिसका अवलम्बन कर चित्त के दोष समूह को नष्ट किया जा सके वह चित्त का शुभ आश्रय क्या है? उसे तुम मुझसे कहो। केशिध्वज बोले—हे राजन्! ब्रह्म ही चित्त का शुभ आश्रय है, किन्तु वह

दो प्रकार का है, मूर्त और अमूर्त, जिसको पर और अपर कहा जाता है। हे भूप! इस जगत् में तीन प्रकार की भावनाएँ होती हैं, उसे तुम श्रवण करो। प्रथम—ब्रह्म-भावना, द्वितीय—कर्म भावना, तृतीय—उभयभावना ब्रह्म और कर्म इन दोनों की भावना है। भावभावना भी तीन प्रकार की होती है, प्रथम—ब्रह्मभावना, द्वितीय—कर्मभावना, तृतीय—ब्रह्म और कर्म भाव को भावना। हे ब्रह्मन्! सनन्दन आदि ऋषिगण ब्रह्मभावना से युक्त हैं और देवताओं से लेकर स्थावर, जङ्गमं पर्यन्त सभी प्राणी कर्मभावना से सम्पन्न हैं। हिरण्यगर्भ आदि में कर्म और ब्रह्म ये दोनों प्रकार की भावनाएँ हैं, जिसको जिस प्रकार का बोध और अधिकार है, उसको उसी प्रकार की भावभावना होती है॥ ४६-५१॥

अक्षीणेषु समस्तेषु विशेषज्ञानकर्म्मसु।
विश्वमेतत् परं चान्यद् भेदभिन्नदृशां नृप॥ ५२॥

प्रत्यस्तमिदभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम्।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥ ५३॥

तच्च विष्णोः परं रूपमरूपस्याजमक्षरम्।
विश्वरूपाच्च त्रैरूप्यलक्षणं परमात्मनः॥ ५४॥

न तद्योगयुजा शक्यं नृप! चिन्तयितुं यतः।
तमः स्थूलं हरे रूपं चिन्तयेद् विश्वगोचरम्॥ ५५॥

हिरण्यगर्भो भगवान् वासवोऽथ प्रजापतिः।
मारुतो वसवो रुद्रा भास्करास्तारका ग्रहाः॥ ५६॥

गन्धर्व्व-यक्षा दैत्याद्याः सकला देवयोनयः।
मनुष्याः पशवः शैलाः समुद्राः सरितो द्रुमाः॥ ५७॥

भूप! भूतान्यशेषाणि भूतानां ये च हेतवः।
प्रधानादि विशेषान्तं चेतनाचेतनात्मकम्॥ ५८॥

एकपादं द्विपादञ्च बहुपादमपादकम्।
मूर्त्तमेतद्धरे रूपं भावनात्रितयात्मकम्॥ ५९॥

हे राजन् ! भेदज्ञान के कारण जब कर्मसमूह अक्षीण अवस्था में रहते हैं, तब भेददृष्टि वाले जीवगण को विश्व और परमात्मा में भेदज्ञान रहता है । जिस ज्ञान में समस्त भेद समाप्त हो जाते हैं और जिससे सत्तामात्र एवं वचन से अगोचर केवल आत्मा ही जाना जाता है, उसी ज्ञान का नाम ब्रह्मज्ञान है । रूपविहीन श्रीविष्णुका वही नित्य और परमरूप है तथा वह समस्त विश्वरूप से विलक्षण है । योगिजन सर्वप्रथम उस परमरूप का ध्यान करने में समर्थ नहीं होते, अतएव परमात्मा श्रीहरि के स्थूल रूप का ही ध्यान करते हैं । हे राजन् ! भगवान् वासुदेव, हिरण्यगर्भ, इन्द्र, प्रजापति, वायु, वसु, रुद्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष एवं दैत्य आदि सम्पूर्ण देवयोनियाँ और मनुष्य, पशु, पर्वत, समुद्र, नदी एवं वृक्ष आदि समस्त भूतसमुदाय तथा उनके कारणसमूह प्रधान (प्रकृति) से आरम्भ कर विशेष (पञ्चतन्मात्र) पर्यन्त एकपाद, द्विपाद, बहुपाद अथवा अपाद चेतना या अचेतनरूप ये सभी त्रिविध भावनात्मक परमात्मा श्रीहरि के मूर्तरूप हैं ॥ ५२-५९ ॥

एतत् सर्व्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम् ॥ ६० ॥

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा ।
अविद्या कर्म्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ ६१ ॥

यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप ! सर्व्वगा ।
ससारतापानखिलानवाप्नोत्यनुसन्ततान् ॥ ६२ ॥

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्रज्ञसंज्ञिता ।
सर्व्वभूतेषु भूपाल ! तारतम्येन लक्ष्यते ॥ ६३ ॥

अप्राणवत्सु स्वल्पाल्पा स्थावरेषु ततोऽधिका ।
सरीसृपेषु तेभ्योऽन्याप्यतिशक्त्या पतत्रिषु ॥ ६४ ॥

पतत्रिभ्यो मृगास्तेभ्यः स्वशक्त्या पशवोऽधिका ।
पशुभ्यो मनुजाश्चातिशक्त्या पुंसः प्रभाविताः ॥ ६५ ॥

यह समस्त चराचर जगत्, परमब्रह्मस्वरूप श्रीविष्णु भगवान् की शक्ति से युक्त 'विश्व' नामक रूप है । शक्ति भी तीन प्रकार की है—परा विष्णुशक्ति,

अपरा क्षेत्रशक्ति, तथा इन दोनों से अतिरिक्त कर्मशक्ति अथवा अविद्याशक्ति। हे नृप ! अविद्याशक्ति से युक्त होकर सर्वव्यापिनी क्षेत्रशक्ति सभी प्रकार के अतिविस्तृत सांसारिक तापों को प्राप्त करती है । हे राजन् ! उस अविद्याशक्ति से तिरोहित (ढँकी) रहने के कारण वह क्षेत्रशक्ति समस्त भूतों में तारतम्यभाव से दिखायी देती है । वह क्षेत्रज्ञशक्ति प्राणविहीन पदार्थों में बहुत कम, स्थावर पदार्थों में उससे कुछ ज्यादा, उससे अधिक सरोसृपादि में उससे भी अधिक पक्षियों में रहती है । पक्षियों से अधिक मृगों में, मृगों से अधिक पशुओं में और पशुओं की अपेक्षा मानव भगवान् की उस क्षेत्रज्ञशक्ति से अधिक प्रभावित है ॥ ६०-६५ ॥

तेभ्योऽपि नाग-गन्धर्व्व-यक्षाद्या देवता नृप !
शक्रः समस्तदेवेभ्यस्ततश्चाति प्रजापतिः ॥ ६६ ॥

हिरण्यगर्भोऽति ततः पुंसः शक्त्युपलक्षितः ।
एतान्यशेषरूपस्य तस्य रूपाणि पार्थिव ॥ ६७ ॥

यतस्तच्छक्तियोगेन व्याप्तानि नभसा यथा ।
द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते ॥ ६८ ॥

हे नृप ! मनुष्यों की अपेक्षा नाग, गन्धर्व एवं यक्ष आदि सभी देवताओं में और देवताओं की अपेक्षा इन्द्र में, इन्द्र की अपेक्षा प्रजापति में, प्रजापति से हिरण्यगर्भ में उस क्षेत्रज्ञ शक्ति का प्रभाव विशेष प्रकाश है । हे भूपाल ! ये समस्त रूप परमेश्वर के ही शरीर हैं, क्योंकि ये सभी आकाश के समान व्याप्त हैं ॥ ६६-६८ ॥

अमूर्त्तं ब्रह्मणो रूपं यत् सदित्युच्यते बुधैः ।
समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः ॥ ६९ ॥

तद्विश्वरूपरूपं वै रूपमन्यद्धरेर्महत् ।
समस्तशक्तिरूपाणि तत् करोति जनेश्वर ॥ ७० ॥

देव-तिर्य्यङ्-मनुष्यादिचेष्टावन्ति स्वलीलया
जगतामुपकाराय न सा कर्म्मनिमित्तजा ।
चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिन्यव्याहतात्मिका ॥ ७१ ॥

तद्रूपं विश्वरूपस्य तस्य योगयुजा नृप !
चिन्त्यमात्मविशुद्ध्यर्थं सर्व्वकिल्विषनाशनम् ॥ ७२ ॥

यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः ।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्व्वकिल्विषम् ॥ ७३ ॥

हे महामते ! योगिजन जिस रूप का ध्यान करते हैं, वह श्रीविष्णुनामक ब्रह्म का दूसरा अमूर्त (मूर्तिहीन) स्वरूप है, जिसके प्राज्ञजन 'सत्' कहते हैं । हे राजन् ! उसी में समस्त शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं और वही भगवान् का विश्वरूप से श्रीहरि का और एक रूप है । हे नरेश्वर ! भगवान् का वही रूप अपनी लीला से देवता, तिर्यक् और मनुष्यादि की चेष्टा से युक्त सर्वशक्तिमय रूप को धारण करता है । इन समस्त रूपों में भगवान् की जो व्यापक और अव्याहत चेष्टा होती है, वह जगत् के उपकार केलिए होती है, कर्मजन्य नहीं है । हे राजन् ! योगयुक्त व्यक्ति चित्त की शुद्धि के लिए भगवान् विश्वरूप के उस सर्वपापविनाशक रूप का ही चिन्तन करते हैं । जिस प्रकार वायुद्वारा सम्बन्धित ऊँची शिखाओं से युक्त अग्नि तृणसमूह को भस्म कर देता है, उसी प्रकार चित्त में स्थित भगवान् श्रीविष्णु योगिजनाओं के समस्त पाप भस्म कर देते हैं ॥ ६६-७३ ॥

तस्मात् समस्तशक्तीनामाधारे तत्र चेतसः ।
कुर्व्वीत संस्थितिं सा तु विज्ञेया शुद्धधारणा ॥ ७४ ॥

शुभाश्रयः स चित्तस्य सर्व्वगस्य तथात्मनः ।
त्रिभावभावनातीतो मुक्तये योगिनां नृप ॥ ७५ ॥

अन्ये च पुरुषव्याघ्र ! चेतसो ये व्यपाश्रयाः ।
अशुद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्याः कर्म्मयोनयः ॥ ७६ ॥

मूर्त्तं भगवतो रूपं सर्व्वापाश्रयनिःस्पृहम् ।
एषा वै धारणा ज्ञेया यच्चित्तं तत्र धार्य्यते ॥ ७७ ॥

यच्च मूर्त्तं हरे रूपं यादृक् चिन्त्यं नराधिप !
तच्छ्रूयतामनाधारे धारणा नोपपद्यते ॥ ७८ ॥

प्रसन्नचारुवदनं पद्मपत्रोपमेक्षणम्।
सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्जलम्॥ ७९॥

समकर्णान्तविन्यस्त-चारुकर्णविभूषणम्।
कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्ण-श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥ ८०॥

बलीत्रिभङ्गिना मग्नाभिना चोदरेण वै।
प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम्॥ ८१॥

समस्थितोरुजङ्घञ्च सुस्थिराङ्घ्रिवराम्बुजम्।
चिन्तयेद् ब्रह्म मूर्त्तञ्च पीतनिर्म्मलवाससम्॥ ८२॥

अतएव समस्त शक्तियों के आधार भगवान् श्रीविष्णु में चित्त को स्थिर करना ही 'धारणा' कहा जाता है। हे राजन्! तीनों भावनाओं से अतीत भगवान् श्रीविष्णु योगियों की मुक्ति के लिए उनके चञ्चल एवं किसी विलक्षण विषय में स्थित रहने वाले चित्त के शुभ आश्रय हैं। हे पुरुषसिंह! इससे भिन्न आश्रयभूत जो अन्य देवता आदि कर्मयोनियाँ हैं, वे सभी अशुद्ध हैं। यह भगवान् का मूर्तरूप चित्त को अन्य अवलम्बनों से निःस्पृह कर देता है। इस प्रकार भगवान् में चित्त को स्थिर करने का ही नाम धारणा है। हे नरेश! वह धारणा किसी आधार के बिना नहीं होती, अतएव भगवान् के मूर्तरूप का जिस प्रकार ध्यान करना चाहिये, उसे श्रवण करो। जो प्रसन्नवदन और कमलदल के समान नेत्रवाले हैं एवं सुन्दर कपोल और विशाल भाल से अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं तथा अपने सुन्दर कानों में मनोहर कुण्डल धारण किये हैं, जिनका विशाल वक्षःस्थल श्रीवत्सचिन्ह से सुशोभित है, जो भगवान् तरङ्ग के समान त्रिवली तथा गम्भीर नाभि वाले उदर से विराजित हैं, जिनके लम्बी लम्बी आठ अथवा चार भुजाएँ हैं, जिनकी जङ्घा और ऊरु समान भाव से स्थिर हैं तथा सुन्दर चरणकमल की सुघड़ता से सुशोभित हैं, उन निर्मल पीताम्बरधारी ब्रह्मस्वरूप श्रीविष्णु भगवान् का ध्यान करें॥ ७४-८२॥

किरीटचारुकेयूर-कटकादिविभूषितम्।
शाङ्र्ग-शङ्ख-गदा-खड्ग-चक्राक्षबलयान्वितम्॥ ८३॥

चिन्तयेत् तन्मना योगी समाधायात्ममानसम्।
तावद् यावद् दृढ़ीभूता तत्रैव नृप! धारणा॥ ८४॥

व्रजतस्तिष्ठतोऽन्यद् वा स्वेच्छया कर्म्म कुर्व्वतः ।
नापयाति यदा चित्तात् सिद्धां मन्येत तां तदा ॥ ८५ ॥

ततः शङ्ख-गदा-चक्र-शाङ्र्गादिरहित बुधः ।
चिन्तयेद्भवद्रूपं प्रशान्तं साक्षसूत्रकम् ॥ ८६ ॥

सा यदा धारणा तद्वदवस्थानवती ततः ।
किरीट-केयूरमुखैर्भूषणै रहितं स्मरेत् ॥ ८७ ॥

तदेकावयवं देवं चेतसा हि पुनर्बुधः ।
कुर्य्यात्ततोऽवयविनि प्रणिधानपरो भवेत् ॥ ८८ ॥

हे राजन् ! किरीट, हार, केयूर और कटक आदि अलङ्कार से युक्त शाङ्र्ग धनुष, शंख, गदा, चक्र एवं अक्षमालाओं को धारण किये हुए भगवान् के दिव्यरूप का योगी को अपने मन को एकाग्र करके तन्मयभाव से तब तक ध्यान करना चाहिये,—जब तक धारणा दृढ़ न हो जाय । चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा अपने इच्छानुसार कोई काम करते हुए भी अपने चित्त से भगवान् की मूर्ति जब मन से दूर न हो तब इसे सिद्ध ही समझना चाहिये । इसे दृढ़ हो जाने पर बुद्धिमान् व्यक्ति शङ्ख, चक्र, गदा और शाङ्र्ग धनुष आदि से रहित एवं स्फटिक की अक्षमाला तथा यज्ञोपवीत धारण किये भगवान् के शान्तस्वरूप का चिन्तन करे । जब पहले के समान यह धारणा भी स्थिर हो जाय, तब किरीट, केयूर आदि से रहित भगवान् के रूप का स्मरण करे । अनन्तर विज्ञ व्यक्ति अपने चित्त में एक (प्रधान) अवयवयुक्त भगवान् का चिन्तन करे पुनः समस्त अवयवों का परित्याग कर केवल अवयवी का चिन्तन करे ॥ ८३-८८ ॥

तद्रूपप्रत्ययायैका सन्ततिश्चान्यनिःस्पृहा ।
तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप ॥ ८९ ॥

तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत् ।
मनसा ध्याननिष्पाद्यः समाधिः सोऽभिधीयत ॥ ९० ॥

हे राजन् ! जिसमें केवल परमेश्वर की ही प्रतीति होती है, इस प्रकार की अन्य विषयों की स्पृहा से रहित जो एक अनवरत धारा है उसी को ध्यान कहते हैं

और यह पूर्वोक्त यमादि छः नियमों से निष्पन्न होती है। उस ध्येय पदार्थ का ही मन के द्वारा ध्यान से सिद्ध होने योग्य और कल्पना हीन जो स्वरूप ग्रहण किया जाता है उसको 'समाधि' कहते हैं ॥ ८९-९० ॥

विज्ञानं प्रापकं प्राप्ये परे ब्रह्मणि पार्थिव !
प्रापणीयस्तथैवात्मा प्रक्षीणाशेषभावनः ॥ ९१ ॥

क्षेत्रज्ञः कारणं ज्ञानं करणं तेन तस्य तत्।
निष्पाद्यं मुक्तिकार्य्यं वै कृतकृत्यो निवर्त्तते ॥ ९२ ॥

हे पार्थिव ! समाधि से होने वाला भगवत्साक्षात्कार रूप विज्ञान ही प्राप्त करने योग्य परमब्रह्म को प्राप्त कराने वाला है और समस्त भावनाओं से रहित केवल आत्मा ही वहाँ तक पहुंचनेवाला है। मोक्षप्राप्ति के लिए क्षेत्रज्ञ कर्ता और ज्ञान कारण है, ज्ञानरूपी कारण के द्वारा मोक्षरूपी कार्य को सिद्धकर वह विज्ञान कृतकृत्य होकर निवृत्त हो जाता है ॥ ९१-९२ ॥

तद्भावभावनापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना।
भवत्यभेदी भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥ ९३ ॥

विभेदजनके ज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति ॥ ९४ ॥

इत्युक्तस्ते महायोगः खाण्डिक्य ! परिपृच्छतः।
संक्षेप-विस्तराभ्यान्तु किमन्यत् क्रियतां तव ॥ ९५ ॥

उस समय वह भगवद् भाव से परिपूर्ण होकर परमात्मा से अभिन्न हो जाता है। क्योंकि इसका भेदज्ञान तो अज्ञान से ही उत्पन्न होता है। भेद के उत्पादक अज्ञान के सर्वथा नष्ट होने पर ब्रह्म और आत्मा में अविद्यमान भेद कौन उत्पन्न कर सकता है ? हे खाण्डिक्य ! इस प्रकार तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने संक्षेप और विस्तार से योग का वर्णन किया, अब तुम्हारे लिये और क्या करू ॥ ९३-९५ ॥

कथिते योगसद्भावे सर्व्वमेव कृतं मम।
तवोपदेशेनाशेषो नष्टश्चित्तमलो यतः ॥ ९६ ॥

ममेति यन्मया प्रोक्तमसदेतन्न चान्यथा ।
नरेन्द्र ! गदितुं शक्यमपि विज्ञेयवेदिभिः ॥ ९७ ॥

अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयोः ।
परमार्थस्त्वसंलाप्यो गोचरो वचसां न सः ॥ ९८ ॥

तद् गच्छ श्रेयसे सर्व्वं ममैतद्भवता कृतम् ।
यद्विमुक्तिप्रदो योगः प्रोक्तः केशिध्वजाव्ययः ॥ ९९ ॥

खाण्डिक्य बोला—आपने इस महायोग का वर्णन करके मेरा समस्त कार्य सम्पन्न कर दिया, क्योंकि इस उपदेश से मेरे मनका सम्पूर्ण मल विनष्ट हो गया । हे राजन् ! मैंने जो 'मेरा' यह शब्द कहा था, वह भी असत्य ही था, ज्ञेय वस्तु के ज्ञाता ऐसा नहीं कह सकता । 'मैं' और 'मेरा' ऐसी बुद्धि एवं इसका व्यवहार भी अविद्या ही है, क्योंकि जो वचन से भी अगोचर है वह कहने का विषय नहीं । हे केशिध्वज ! तुमने इस मुक्तिदायक योग का वर्णन करके मेरे कल्याण के लिए सब कुछ कर दिया, अब तुम सुख से जाओ ॥ ९७-९९ ॥

यथार्हपूजया तेन खाण्डिक्येन स पूजितः ।
आजगाम पुरं ब्रह्मस्ततः केशिध्वजो नृपः ॥ १०० ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे ब्रह्मन् ! इसके बाद खाण्डिक्य से यथायोग्य पूजित होकर केशिध्वज अपने नगर में आ गये ॥ १०० ॥

खाण्डिक्योऽपि सुतं कृत्वा राजानं योगसिद्धये ।
वनं जगाम गोविन्दे विनिवेशितमानसः ॥ १०१ ॥

तत्रैकान्तरतिर्भूत्वा यमादिगुणशोधितः ।
विष्ण्वाख्यये निर्म्मले ब्रह्मण्यवाप नृपतिर्लयम् ॥ १०२ ॥

केशिध्वजोऽपि मुक्त्यर्थं स्वकर्म्मक्षपणोन्मुखः ।
बुभुजे विषयान् कर्म्म चक्रे चानभिसंहितम् ॥ १०३ ॥

स कल्पनोपभोगैश्च क्षीणपापोऽमलस्तथा ।
अवाप सिद्धिमत्यन्तं तापक्षयफलां द्विज ॥ १०४ ॥

खाण्डिक्य राजा भी अपने पुत्र को राजा बनाकर स्वयं श्रीगोविन्द में चित्त लगाकर योगसिद्धि के लिए वन को चले गये। पश्चात् खाण्डिक्य राजा वन में यमादि साधन द्वारा परमेश्वर में चित्त लगाकर श्रीविष्णुनामक निर्मल ब्रह्म में लीन हो गये। कैशिध्वज राजा भी अपनी मुक्ति के लिए कर्मों का क्षय करते हुए समस्त विषयों में कमी करते रहे। उन्होंने निष्काम भाव से अनेकों शुभ कर्म भी किये। हे द्विज ! इस प्रकार अनेकों कल्याणदायक कर्मों को भोगने से उनका पाप और प्रारब्ध कर्म का क्षय हो गया, अतएव उन्होंने तापत्रय विहीन सिद्धि प्राप्त की ॥ १०१-१०४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के षष्ठ अंश में सातवाँ अध्याय समाप्त।

षष्ठ अंश - आठवां अध्याय

(विष्णुपुराण का माहात्म्य और उपसंहार)

इत्येष कथितः सम्यक् तृतीयः प्रतिसञ्चरः ।
आत्यन्तिको विमुक्तिर्या लयो ब्रह्मणि शाश्वते ॥ १ ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव भवतो गदितं मया ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! इस प्रकार मैंने तीसरे आत्यन्तिक प्रलय का विषय तुमसे कहा, इसी से जीवगण शाश्वत ब्रह्मस्वरूप में आत्यन्तिक लय को प्राप्त करते हैं । मैंने तुमसे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशों के चरित्रों का वर्णन किया ॥ १-२ ॥

पुराणं वैष्णवञ्चैतत् सर्व्वकिल्विषनाशनम् ।
विशिष्टं सर्व्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥ ३ ॥

तुभ्य यथावन्मैत्रेय ! प्रोक्तं शुश्रूषवेऽव्ययम् ।
यदन्यदपि वक्तव्यं तत् पृच्छाद्य वदामि ते ॥ ४ ॥

यह विष्णुपुराण समस्त पापों का विनाश करने वाला सम्पूर्ण शाखाओं में श्रेष्ठ और मोक्ष का साधक है । हे मैत्रेय ! तुम्हें सुनने के लिए उत्सुक देखकर यथावत् मैंने वर्णन किया । और जो कुछ भी तुम्हें सुनने की इच्छा हो सो पूछो, मैं कहता हूँ ॥ ३-४ ॥

मैत्रेय उवाच ।

भगवन् ! कथितं सर्व्वं यत् पृष्टोऽसि मया मुने !
श्रुतञ्चैतन्मया भक्तया नान्यत् प्रष्टव्यमस्ति ते ॥ ५ ॥

विच्छिन्नाः सर्व्वसन्देहा वैमल्यं मनसः कृतम्।
त्वत्प्रसादान्मया ज्ञाता उत्पत्ति-स्थिति-संयमाः ॥ ६ ॥

ज्ञातश्चतुर्विधो राशिः शक्तिश्च त्रिविधा गुरो !
विज्ञाता चापि कार्त्स्न्येन त्रिविधा भावभावना ॥ ७ ॥

त्वत्प्रसादान्मया ज्ञातं ज्ञेयमन्यैरलं द्विज !
यथैतदखिलं विष्णोर्जगन्न व्यतिरिच्यते ॥ ८ ॥

कृतार्थोऽस्म्यपसन्देह-स्त्वत्प्रसादान्महामुने !
वर्णधर्म्मादयो धर्म्मा विदिता यदशेषतः ॥ ९ ॥

प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च ज्ञातं कर्म्म मयाखिलम्।
प्रसीद विप्रप्रवर ! नान्यत् प्रष्टव्यमस्ति मे ॥ १० ॥

मैत्रेय जी बोले—हे भगवन् ! मैंने जो कुछ भी आपसे पूछा था, वह आपने कह दिया और मैंने इसको भक्तिपूर्वक श्रवण किया, अब मुझे और कुछ पूछना नहीं है। मेरे सभी सन्देह विनष्ट हो गये। आपकी कृपा से मेरा मन निर्मल हो गया। मैं सृष्टि, स्थिति, और प्रलय की कथा जान चुका हूँ। हे गुरो ! चार प्रकार की राशि और तीन प्रकार की शक्ति भी मैं जान गया। तीन प्रकार की भावनाओं का भी अच्छी प्रकार बोध हो गया। हे विप्र ! आपकी कृपा से यह सम्पूर्ण जगत् श्रीविष्णु भगवान् से भिन्न नहीं है, यह जान लिया। अतएव अब कुछ भी जानने के लिये शेष नहीं रहा। हे महामुने ! आपकी कृपा से मैं निःसन्देह कृतार्थ हो गया। और वर्ण, धर्म आदि जो समस्त धर्म हैं, उन सबको भी जान चुका हूँ। प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप जो कुछ भी कर्म है, उन सभी का बोध भी मुझे हो चुका है। हे विप्रवर ! आप प्रसन्न रहें, अब मुझे और कुछ पूछना नहीं है ॥ ५-१० ॥

यदस्य कथनायासैर्योजितोऽसि मया गुरो !
तत् क्षम्यतां विशेषोऽस्ति न सतां पुत्र-शिष्ययोः ॥ ११ ॥

हे गुरो ! मैंने आपको इस समस्त पुराण के कहने का जो कष्ट दिया उसे आप मुझे क्षमा करें, क्योंकि सज्जनों के लिए पुत्र और शिष्य में कोई भेद नहीं होता ॥ ११ ॥

पराशर उवाच।

एतत्ते यन्मयाख्यातं पुराणं वेदसम्मितम्।
श्रुतेस्मिन सर्व्वदोषोत्थपापराशिः प्रशाम्यति। १२॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं कृत्स्नं मयात्र तव कीर्त्तितम्॥ १३॥

अत्र देवास्तथा दैत्या गन्धर्व्वोरगराक्षसाः।
यक्षा विद्याधराः सिद्धाः कथ्यन्तेऽप्सरसस्तथा॥ १४॥

मुनयो भावितात्मानः कथ्यन्ते तपसान्विताः।
चातुर्व्वर्ण्यं यथा पुंसां विशिष्टचरिता नराः॥ १५॥

पुण्याः प्रदेशा मेदिन्याः पुण्या नद्योऽथ सागराः।
पर्व्वताश्च महापुण्याश्चरितानि च धीमताम्॥ १६॥

वर्णधर्म्मादयो धर्म्मा वेदधर्म्माश्च कृत्स्नशः।
येषां संश्रवणान् सद्यः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥ १७॥

उत्पत्ति-स्थिति-नाशानां हेतुर्यो जगतोऽव्ययः।
स सर्व्वभूतः सर्व्वात्मा कथ्यते भगवान् हरिः॥ १८॥

श्रीपराशरजी बोले—मैने यह जो वेदधर्मसम्मत पुराण सुनाया इसे श्रवण करने से दोषसमूह से उत्पन्न समस्त पाप शान्त हो जाता है। इसमें मैंने तुम्हें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित का आदि विषय विस्तारपूर्वक कहो। इस विष्णुपुराण में देव, दैत्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध और अप्सरागण का भी वर्णन किया गया है। आत्माराम और तपस्या में निरत मुनिगण, चातुर्वर्ण्य-विभाग, महापुरुषों के विशेष चरित, पृथिवी के पवित्र प्रदेश, नदी, समुद्र, पुण्यदायक पर्वतसमूह, ज्ञानी लोगों का चरित्र, वर्ण-धर्म प्रभृति धर्म और समस्त वेदशास्त्रों का भी सम्यक् प्रकार से इसमें वर्णन किया गया, इन सभी के श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इस पुराण में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारण अव्ययात्मा, सर्वभूतमय सभी के आत्मास्वरूप, भगवान् श्रीहरि का वर्णन किया गया॥ १२-१८॥

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्व्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव ॥ १९ ॥

यन्नाम कीर्त्तितं भक्तया विलापनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥ २० ॥

कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्त्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति विलयं सद्यः सकृद् यत्रानुसंस्मृते ॥ २१ ॥

हिरण्यगर्भ-देवेन्द्र-रुद्रा-दित्या-श्वि-वायुभिः ।
किन्नरैर्वसुभिः साध्यैर्विश्वदेवादिभिः सुरैः ॥ २२ ॥

यक्ष-रक्षोगणैः सिद्धैदैत्य-गन्धर्व्व-दानवैः ।
अप्सरोभिस्तथा तारानक्षत्रैः सकलैर्ग्रहैः ॥ २३ ॥

सप्तर्षिभिस्तथा धिष्ण्यैर्धिष्ण्याधिपतिभिस्तथा ।
ब्राह्मणाद्यैर्मनुष्यैश्च तथैव पशुभिर्मृगैः ॥ २४ ॥

सरीसृपैर्विहङ्गैश्च प्रेताद्यैः समहीरुहैः ।
वना-द्रि-सागर-सरित्-पातालैः सधरादिभिः ॥ २५ ॥

शब्दादिभिश्च सहितं ब्रह्माण्डमखिलं द्विज !
मेरोरिवाणुर्यस्यैतद् यन्मयञ्च द्विजोत्तम ॥ २६ ॥

स सर्व्वः सर्व्ववित् सर्व्वस्वरूपो रूपवर्ज्जितः ।
कीर्त्यते भगवान् विष्णुरत्र पापप्रणाशनः ॥ २७ ॥

जिनके नाम का विवश हो कर भी कीर्तन करने से मनुष्य अपने सभी पापों से इस प्रकार मुक्त हो जाता है । जिस प्रकार सिंह से भयभीत भेड़िया (अर्थात् सिंह से डरकर भेड़िया जैसे) भाग जाता है, वैसे ही भगवान् के नाम लेने से समस्त पाप भी भाग जाता है । हे मैत्रेय ! जिस प्रकार अग्नि समस्त धातुओं के मल को विनाश कर देता है, उसी प्रकार जिनका नामस्मरण से पाप समूह पूर्णरूप से विनष्ट होता है । एक बार भी जिनके नाम स्मरण करने से मानवगण को अत्यन्त उग्र नरक प्रदान करने वाला कलिकल्मष तुरन्त समाप्त हो जाता है । हे द्विजश्रेष्ठ ! हिरण्यगर्भ,

देवराज इन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, वायु, साध्य, विश्वदेव आदि देवगण, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, दैत्य, गन्धर्व, दानव, अप्सरा, तारा, नक्षत्र, ग्रह, सप्तर्षिलोक, लोकपालगण, ब्राह्मणादि मनुष्य, पशु, मृग, सर्प, विहंग और पलाश आदि वृक्ष, वन, अग्नि, समुद्र, नदी,पाताल, पृथिवी आदि एवं शब्दादि विषयों के सहित समस्त ब्रह्माण्ड जिनके आगे सुमेरु के सामने रेणु के समान है । तथा जो इन सभी के उपादन कारण हैं, उन सर्व-सर्वज्ञ सर्वस्वरूप, रूपवर्जित और पापविनाशक भगवान् श्रीविष्णु का इसमें स्वरूप कीर्तन किया गया है ॥ १९-२७ ॥

यदश्वमेधावभृथे स्नातः प्राप्नोति वै फलम् ।
सकलं तदवाप्नोति श्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥ २८ ॥

प्रयाते पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्व्वुदे ।
कृतोपवासः प्राप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः ॥ २९ ॥

यदग्निहोत्रे सुहुते वर्षेणाप्नोति वै फलम् ।
सकलं समवाप्नोति तदस्य श्रवणात् सकृत् । ३० ॥

यज्ज्यैष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै नियतेन्द्रियः ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ३१ ॥

तदाप्नोति फलं सम्यक् समाधानेन कीर्त्तनात् ।
पुराणस्यास्य विप्रर्षे ! केशवार्पितमानसः ॥ ३२ ॥

यमुनासलिले स्नातः पुरुषो मुनिसत्तम !
ज्येष्ठामूलेऽमले पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत् ॥ ३३ ॥

समभ्यर्च्चर्याच्युतं सम्यङ् मथुरायां समाहितः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम् ॥ ३४ ॥

आलोक्यर्द्धिमथान्येषामुन्नीतानां स्ववंशजैः ।
एतत् किलोचुरन्येषां पितरः सपितामहाः ॥ ३५ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! अश्वमेध यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल इस पुराण के श्रवण से प्राप्त होता है । प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र

और अर्वुदाचल (अर्थात् समुद्रतट) पर रह कर उपवास करने से जो फल प्राप्त होता है, वह समस्त फल इस पुराण श्रवण से मिलता है । एक वर्षतक ठीक से अग्निहोत्र करने पर मुष्य को जो महान् पुण्य मिलता है, वही फल इस पुराण को एक बार सुनने से प्राप्त होता है । संयतेन्द्रिय मनुष्य ज्येष्ठ शुक्लद्वादशी तिथि को स्नान कर मथुरा में श्रीहरि के दर्शन से जो उत्कृष्ट गति प्राप्त करता है हे विप्रर्षि ! भगवान् में मन लगाकर जो व्यक्ति भक्ति के साथ इस पुराण का श्रवण करता है, वह भी वही उत्तम गति प्राप्त करता है । हे मुनिसत्तम ! ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को उपवास करते हुए मथुरा में यमुनास्नान करके एकाग्रचित्त से भली प्रकार श्रीविष्णु की पूजा करने पर मनुष्य को समस्त अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । अपने वंशजों द्वारा उन्नति प्राप्त किये हुए पितरों की समृद्धि को देखकर अन्य पुरुषों के पितृ-पितामहों ने अपने वंशजों को लक्ष्य कर इस प्रकार कहा था ॥ २८-३५ ॥

कश्चिदस्मत्कुले जातः कालिन्दीसलिलाप्लुतः ।
अर्च्चयिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः ॥ ३६ ॥

ज्येष्ठामूले सिते पक्षे येनैवं वयमप्युत ।
परामृद्धिमवाप्स्यामस्तारिताः स्वकूलोद्भवः ॥ ३७ ॥

ज्येष्ठामूले सिते पक्षे समभ्यच्चर्य जनादर्द्दनम् ।
धन्यानां कुलजः पिण्डान् यमुनायां प्रदास्यति ॥ ३८ ॥

तस्मिन् काले समभ्यच्चर्य्य तत्र कृष्णं समाहितः ।
दत्त्वा पिण्डान् पितृभ्यश्च यमुनासलिलाप्लुतः ॥ ३९ ॥

यदाप्नोति नरः पुण्यं तारयन् स पितामहान् ।
श्रुत्वाध्यायं तदाप्नोति पुराणस्यास्य भक्तिमान् ॥ ४० ॥

एतत् संसारभीरूणां परित्राणमनुत्तमम् ।
दुःस्वप्ननाशनं नृणां सर्व्वदुष्टनिवर्हणम् ॥ ४१ ॥

क्या हमारे कुल में भी कोई ऐसा होगा ? जो ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि को मथुरा में उपवासकरते हुए यमुना जल में स्नान करके श्रीगोविन्द का पूजन, करेगा, जिससे हम लोग भी संसार से उद्धार प्राप्त करके पुण्य समृद्धि

प्राप्त करने में समर्थ होंगे। और जो भाग्यवान् होते हैं, उन्हीं के कुल में उत्पन्न पुरुष ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष में भगवान् की पूजा करके यमुना जी में पितृगण को पिण्डदान करते हैं। इस दिन समाहित होकर मथुरा के यमुना में रत्नाकर श्रीविष्णु भगवान् के पूजनपूर्वक पितरों के उद्देश्य में पिण्डदान करके पितृगण का उद्धार कर मनुष्य जो फललाभ करता है, वह फल इस विष्णुपुराण के एक अध्याय के भी भक्तिपूर्वक श्रवण करने से प्राप्त करता है। यह पुराण संसार से भयभीत मनुष्यों के परित्राण करने के लिये सर्वोत्तम साधन है, इससे मनुष्यों का दुःस्वप्न नष्ट होता है और सम्पूर्ण दोषों की शान्ति होती है ॥ ३६-४१ ॥

इदमार्षं पुरा प्राह ऋभवे कमलोद्भवः।
ऋभुः प्रियव्रतायाह स च भागुरयेऽब्रवीत् ॥ ४२ ॥

भागुरिः स्तवमित्राय दधीचाय च चोक्तवान्।
स वै सारस्वते प्रादाद् भृगुः सारस्वतादपि ॥ ४३ ॥

भृगुणा पुरुकुत्साय नर्म्मदायै च चोक्तवान।
नर्म्मदा धृतराष्ट्राय नागाय पूरणाय च ॥ ४४ ॥

प्राचीन काल में ब्रह्मा जी ने ऋभु को यह ऋषिप्रोक्त पुराण कहा था, ऋभु ने प्रियव्रत को और प्रियव्रत ने भागुरी से कहा। भागुरि ने शुभमित्र से, शुभमित्र ने दधीचि से यह पुराण कहा। और दधीचि ने सारस्वत से कहा तथा सारस्वत से भृगु ने इसे प्राप्त किया। भृगु ने पुरुकुत्स को, पुरुकुत्स ने नर्मदा को तथा नर्मदा ने धृतराष्ट्र और पूरण नामक नाग को प्रदान किया ॥ ४२-४४ ॥

ताभ्याञ्च नागराजाय प्रोक्तं वासुकये द्विज !
वासुकिः प्राह वत्साय वत्सश्चाश्वतराय वै ॥ ४५ ॥

कम्बलाय च तेनोक्तमेलापत्राय तेन च।
पातालं समनुप्राप्तस्ततो वेदशिरा मुनिः ॥ ४६ ॥

प्राप्तवानेतदखिल स च प्रमतये ददौ।
दत्तं प्रमतिना चैव जातूकर्णाय धीमते ॥ ४७ ॥

जातूकर्णेन चैवोक्तमन्येषां पुण्यशालिनाम् ।
वशिष्ठवरदानेन ममाप्येतत् स्मृतिं गतम् ॥ ४८ ॥

मयापि तुभ्यं मैत्रेय ! यथावत् कथितं त्विदम् ।
त्वमप्येतच्छमीकाय कलेरन्ते गदिष्यसि ॥ ४९ ॥

इत्येतत् परमं गुह्यं कलिकल्मषनाशनम् ।
यः श्रृणोति नरः पापैः स सर्व्वैर्द्विज ! मुच्यते ॥ ५० ॥

पितृपक्षमनुष्येभ्यः समस्तामरसंस्तुतिः ।
कृता तेन भवेदेतद् यः श्रृणोति दिने दिने ॥ ५१ ॥

कपिलादानजनितं पुण्यमत्यन्तदुर्लभम् ।
श्रुत्वैतस्य दशाध्यायानवाप्नोति न संशयः ॥ ५२ ॥

हे द्विज ! उन दोनों नागों ने वासुकि को, वासुकि ने वत्स को एवं वत्स ने अश्वतर को यह पुराण कहा । अश्वतर ने कम्बल, को, कम्बल ने एलापन को यह पुराण प्रदान किया । इसके बाद वेदशिरा मुनि ने पाताल में आकर सम्पूर्ण विष्णुपुराण को प्राप्त किया । उन्होने प्रमति को, प्रमति ने बुद्धिमान् जातुकर्ण्य को, जातुकर्ण्य अन्यान्य धर्मात्मा महात्मागण को सुनाया । और वशिष्ठजी के वरदान से यह पुराण मुझे भी स्मरण हो आया । हे मैत्रेय ! मैंने तुमसे यथावत् यह कहा तुम भी कलियुग के अन्त में शमी से यह पुराण कहना । हे द्विज ! जो व्यक्ति कलि के पाप को नाश करने वाला परम गुह्य इस पुराण का श्रवण करता है, वह समस्त दोषों से मुक्त हो जाता है । जो व्यक्ति प्रतिदिन इस पुराण का श्रवण करता है, वह समस्त देवगण, पितृगण और मनुष्यगण की स्तुति करने का फल प्राप्त करता है । कपिला गौ दान करने का फल अत्यन्त दुर्लभ है । जो व्यक्ति इस पुराण के दस अध्यायों का श्रवण करेगा वह निःसन्देह कपिला गोदान फल प्राप्त करेगा ॥ ४५-५२ ॥

यस्त्वेतत् सकलं श्रृणोति पुरुषः कृत्वा मनस्यच्युत,
सर्वं सर्व्वमयं समस्तजगता माधारमात्माश्रयम् ।
ज्ञानं ज्ञेयमनन्तमाद्यरहितं सर्व्वामराणां हितं
स प्राप्नोति न संशयोऽस्त्यविकलं यद्वाजिमेधे फलम् ॥ ५३ ॥

यत्रादौ भगवांश्चराचरगुरुर्मध्ये तथान्ते च सः,
ब्रह्मज्ञानमयोऽच्युतोऽखिलजगन्मध्यान्तसर्गप्रभुः ।
तच्छृण्वन् पुरुषः पवित्रपरमं भक्त्या पठन् धारयन्,
प्राप्नोत्यस्ति न तत् समस्तभुवनेष्वेकान्तसिद्धिर्हरिः ॥ ५४ ॥

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने,
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः,
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्त्तिते ॥ ५५ ॥

यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वरं कर्म्मिणो,
यं यं ब्रह्ममयं परापरमयं ध्यायन्ति च ज्ञानिनः ।
यञ्च प्राप्य न जायते न म्रियते नो वर्द्धते हीयते,
नैवासन्न च सद्भवत्यति ततः किं वा हरेः श्रूयताम् ॥ ५६ ॥

सम्पूर्ण जगत् के आधार, आत्मा के आधार, सर्वमय विष्णुपुराण का श्रवण करता है—वह अविकल अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है,—इसमें सन्देह नहीं । जिसके आदि, अन्त और मध्य में समस्त जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार में समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचर के गुरु भगवान् अच्युत का ही कीर्तन हुआ है, उस अमल परमश्रेष्ठ पुराण का श्रवण, पठन और धारण करने से जो फल प्राप्त होता है, वह समस्त त्रिलोक में अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्ति हो सकता, क्योंकि एकान्त सिद्धिस्वरूप भगवान् श्रीविष्णु ही इससे प्राप्त होने वाले फल हैं । उनमें चित्त लगाने से नरक गमन नहीं होता, जिनके स्मरण में स्वर्गप्राप्ति भी विघ्नस्वरूप मालूम पड़ती है, जिनमें चित्त लग जाने पर ब्रह्मलोक भी तुच्छ बोध होता है एवं जो अव्यय प्रभु निर्मलचित्तवाले पुरुषों के हृदय में अधिष्ठित होकर मुक्तिप्रदान करते हैं, उन्हीं भगवान् का कीर्तन करने से यदि पाप नष्ट होते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ? । यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठ लोग यज्ञ द्वारा जिनकी पूजा सदा करते हैं, ज्ञानिगण ब्रह्मरूप से जिनका ध्यान करते हैं और जिनको प्राप्त कर लेने पर जीव को जन्म-मरण वृद्धि-ह्रास आदि कुछ भी नहीं होता है, तथा जो न सत् (कारण) हैं, न असत् (कार्य) हैं, उन श्रीविष्णु भगवान् के अतिरिक्त और क्या श्रवण किया जाय ॥ ५३-५६ ॥

कव्यं यः पितृरूपधृग् विधिहुतं हव्यञ्च भुङ्क्ते प्रभु,-
र्देवत्वे भगवाननादिनिधनः स्वाहास्वधासंज्ञितम् ।
यस्मिन् ब्रह्मणि सर्व्वशक्तिनिलये मानानि नो मानिनाम्,
निष्ठायै प्रभवन्ति हन्ति कलुषं श्रोत्रं स यातो हरिः ॥ ५७ ॥

जो अनादिनिधन विभु भगवान् पितृरूप धारणकर स्वधानामवाले कव्य और देवरूप धारणकर विधि के साथ अग्नि में हवन किये हुए स्वाहानामक हव्य को ग्रहण करते हैं तथा प्रमाण में निपुण व्यक्तिगण प्रमाण द्वारा जिन ब्रह्मस्वरूप एवं समस्त शक्तियों के आश्रयभूत के विषय में इयत्ता करने में समर्थ नहीं होते, वही भगवान् श्रीहरि श्रवणपथ में आते ही समस्त पापों को ध्वंस करते हैं ॥ ५७ ॥

नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भ्वोऽस्ति,
वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्ज्जितस्य ।
नापक्षयञ्च समुपैत्यविकल्पवस्तु,
यस्तं नतोऽस्मि पुरुषोत्तममाद्यमीशम् ॥ ५८ ॥

तस्यैव योऽनुगुणभुग् बहुधैक एव,
शुद्धोऽप्यशुद्ध इव मूर्त्तिविभागभेदैः ।
ज्ञानान्वितः सकलसत्त्वभूतिकर्त्ता,
तस्मै नतोऽस्मि पुरुषाय सदाव्ययाय ॥ ५९ ॥

जिनकी उत्पत्ति और वृद्धिरूप परिणाम नहीं है यथा जिनका विनाश भी नहीं होता, जो ब्रह्मस्वरूप एवं सभी के आदि पुरुष हैं, जो नित्य निर्विकार पदार्थ हैं, उन्हीं परमेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ। जो एक होकर भी अपने गुणों के परिणाम से अनेक मूर्ति धारण कर नाना रूप में विराजमान रहते हैं और जो शुद्ध होकर भी अशुद्ध के समान प्रतीत होते हैं तथा ज्ञानस्वरूप जो समस्त भूत एवं विभूतियों के आधार हैं, उन अव्यय पुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५८-५९ ॥

ज्ञानप्रवृत्तिनियमैक्यमयाय पुंसो
भोगप्रदानपटवे त्रिगुणात्मकाय ।

अव्याकृताय भवभावनकारणाय

वन्दे स्वरूपमभवाय सदाजराय ॥ ६० ॥

व्योमा-निला-ग्नि-जल-भूरचनामयाय

शब्दादिभोगविषयोपनयक्षमाय ।

पुंसः समस्तकरणैरुपकारकाय

व्यक्ताय सूक्ष्मविमलाय सदा नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

इति विविधमजस्य यस्य रूपं

प्रकृतिपरात्ममयं सनातनस्य ।

प्रदिशतु भगवानशेषपुंसां

हरिरपजन्मजरादिकां स सिद्धिम् ॥ ६२ ॥

जो ज्ञान (सत्त्व), प्रवृत्ति (रज) और नियम (तम) की एकतास्वरूप हैं और पुरुष को भोग प्रदान करने में समर्थ हैं एवं त्रिगुणात्मक तथा अव्याकृत हैं, जगत् की उत्पत्ति के कारण हैं, उन स्वतः सिद्ध जराशून्य प्रभु को नमस्कार करता हूँ। जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवीस्वरूप हैं, शब्दादि विषयों को प्रदान करने में समर्थ हैं और समस्त इन्द्रियों द्वारा जीव के उपकारी हैं, उन व्यक्त, सूक्ष्म एवं विमलस्वरूप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार जिन नित्य एवं सनातन परमात्मा के प्रकृति पुरुषमय अनेकरूप हैं, वे भगवान् श्रीहरि समस्त पुरुषों को जन्म और बुढ़ापा आदि से विहीन मुक्तिरूप सिद्धि प्रदान करें ॥ ६०-६२ ॥

श्रीविष्णुपुराण के षष्ठ अंश में आठवाँ अध्याय समाप्त ।

श्री विष्णुपुराण सम्पूर्ण

...uction

Agni Ma...
664 pp ...50.00

Bhagavata M...purana-
4vols 2304 pp Set 1500.00

Bhavishya Mahapurana
3vols 1400 pp Set 1200.00

Brahma Mahapurana
728 pp 450.00

Devi Bhagavata Mahapurana
1154 pp 800.00

Ganesha Purana
832 pp 1993 450.00

Garuda Mahapurana
668 pp 400.00

Harivansha Purana
मूल, हिन्दी अनुवाद तथा श्लोकानुक्रमणी सहित
1802 pp 2vols set 900.00

Kurma Mahapuran
298 pp 300.00

Linga Mahapurana
774 pp 400.00

Markandeya Mahapurana
मूल, हिन्दी अनुवाद तथा श्लोकानुक्रमणी सहित
828 pp 450.00

Narada Mahapurana
932 pp 600.00

Padma Mahapurana
2381pp 4vols set 1600.00

Shiva Mahapurana
1504 pp 2vols set 900.00

Shiva Mahapurana (Small Type)
412 pp 400.00

Skanda Mahapurana
5600 pp 8 vols set 4000.00

Skanda Mahapurana (small type)
1452 pp 3vols set 1500.00

Vamana Mahapurana
472 pp 400.00

Vayu Mahapurana
540 pp 400.00

Vishnudharmottara Mahapurana
1246 pp 900.00

Vishnu Mahapurana-with two commentaries
680 pp 500.00

विष्णुमहापुराण
मूल, हिन्दी अनुवाद तथा श्लोकानुक्रमणी सहित
—डा० श्रद्धा शुक्ला
2 vols Press

Maha Bhagavat Devipurana
Press

Ekamara Purana
490 pp 150.00

Kalki Purana
316pp 120.00

Kuber Purana (Text With Study) Press

Narasimha Purana
380 pp 100.00

Saura Purana
290 pp 100.00

Srimadbhargavopapuranam
—Brijesh Kumar Shukla
pp 348 Rs. 124.00

Vasuki Purana
260 pp 100.00

Ashtadasha Purana Darpana
Contents of 18 Puranas
432 pp 180.00

PURANAS WITH TEXT, TRANS & NOTES IN ENGLISH VERSWISE

Vishnu Purana—*H.H. Wilson*
1065 pp 2 vols Set 500.00

Matsya Purana—*N.S. Singh*
1252 pp 2 vols 500.00

Narasimha Purana —*Dr.S.Jena*
750 pp 400.00

Kalika Purana
Prof. Biswanarayan Shastri
1770 pp 3vols set 900.00

NAG PUBLISHERS
11/A (UA) Jawahar Nagar. Delhi - 110007 (INDIA)